श्रीगुरुचरण परिचर्या।

हा भक्तवत्सल ! क्या आपको यही करना था ? शरण्य! इस शरणागतका त्याग क्या ऐसे ही समयमें करना था जब कि ऊपर शून्य महाकाश और नीचे विस्तृत पृथिवीके अतिरिक्त मेरा कोई भी आधार नहीं था। प्रभो ! 'रक्षिष्यतीति' विश्वासपूर्वक मैंने आपके श्रीचरणोंका 'गोप्तृत्ववरण' किया था; परन्तु दुर्बल-दीनका भाग्य ही कितना बड़ा ? दैवने मुझे ठग लिया। मेरा चमकता हुआ ललाटन्तप-प्रखर-प्रतापी सूर्य देखते ही देखते अथम गया। दिशाएँ अन्धकारमय हो गई। अभागिनी आंखें चिरकालके लिये तरसती रह गई। हृदय शून्य हो गया। भविष्य दुःखमय हो गया। खिलती हुई भावना-कलिकापर तुषारपात हुआ। परन्तु नाथ! यह भावना तो अप्राकृत वस्तु है। निरवयव और निर्विकार वस्तु है। दिव्य हृदयकी दिव्यज्योति है। अन्धकारमें प्रकाश है। निराशामें आशा है। अनन्त दुःखकी निशामें सुखकी चमकती हुई एक रमणीय अतएव सुखप्रद रेखा है। इसके अदृश्य करनेमें हत-विधि समर्थ न हो सका। आज केवल यही जीवनाधार अवशिष्ट है।

प्रभो ! आपकी वह असीमकृपा, निःसीम वात्सल्य, हँसते नेत्रपुण्डरीक, प्रसादयुक्त शोकहर श्री चरण-कोकनद, भावमय वाङ्नवसुधा, ये महनीय रत्न कृपण-धन-समान हृदयकमलके सम्पुटके अभ्यन्तर, सूक्ष्मसे सूक्ष्म-कोई देख न सके-कोई ले न सके ऐसी मनोमञ्जूषामें आज सुरक्षित हैं; तथा श्री चरणोंके पुनः अनन्त दर्शन पर्यन्त वहां ही सुरक्षित रहेंगे। आज यह ही मेरा जीवन-धन है।

परमोद्धारक ! सेवकने तो केवल अस्थि-चर्ममय-देह श्री चरणोंमें अर्पण किया। परन्तु स्वामीने अविनाशी, अमूल्य, उभयलोककल्याणप्रद, परलोक-पाथेय प्रलयकालके अन्धतममें महाप्रकाशमय अनन्त-भास्कर, अपार भव-कूपार-तारक श्री तारक-षडक्षर श्री राममन्त्ररूप अमूल्य मङ्गल-मणि देकर दासका परम कल्याण कर दिया। नाथ! आपकी इस अनन्त उदारताका मैं अनन्त ऋणी हूं।

पूज्यपाद ! आज इच्छा होती है कि मैं आपकी कुछ सेवा करूं। श्री चरणोंकी पूजा करूं। मुझे यह तो विश्वास है कि आप मेरी अल्पसे भी अल्प सेवाका अङ्गीकार अवश्य करेंगे। अतः हे प्रभो! आपके ब्रह्मचारीकी, दीन-दासकी, श्री चरणरजकी यह भेट चरणोंमें समर्पित है।

गुरु-पूर्णिमा	वियोग-कातर
वि० सं० १९८२	आपका-प्रियतम 'ब्रह्मचारी'

दो शब्द

श्रीयुत पाठक महानुभाव !

आज यह आचार्य्यप्रवर श्री रामानन्दस्वामीजी महाराजका दिग्विजय आपके सम्मुख उपस्थित है। जितना शीघ्र इसे प्रकाशित करना चाहिये था उससे बहुत अधिक विलम्ब हो चुका है। परन्तु इसमें मेरा दोष नहीं है। भगवदिच्छा ही कारण है। कितनेही ऐसे विघ्न आकर उपस्थित हुये कि जिनके कारण यह विलम्ब अनिवार्य था। अतः आशा है इसके लिये आप लोग मुझे क्षमा करेंगे।

दिग्विजयके प्रकाशनका कार्य मैंने अपने हाथमें इस लिये लिया कि मुझे भी अपने प्रिय श्री रामानन्द सम्प्रदायकी सेवाका सौभाग्य मिले। इस कार्यमें जो २ कठिनताएँ मुझे सहन करनी पड़ी हैं उसका साक्षी केवल मेरा अन्तरात्मा है। तथापि प्रभुकी असीम कृपासे मैं आज अपने मनोरथमें सफल हुआ और दिग्विजयको आपके हाथोंतक पहुंचा सका।

परिश्रमका फल यदि प्राप्त हो जावे तो वह परिश्रम प्रतीत नहीं होता। फलाभिसन्धिके विना कार्य करनेकी अभी मुझमें शक्ति नहीं है अतः फल तो अवश्य वाञ्छनीय है। अतः यदि श्री वैष्णव महानुभाव तथा अन्य विचारशील महोदय इस दिग्विजयका प्रेमपूर्वक स्वागत करेंगे तो मैं अपने सम्पूर्ण परिश्रमको सफल समझूंगा।

इस दिग्विजयकी आरम्भसे दो टीकाएँ अर्थात् संस्कृतटीका-बालबुद्धिप्रसादिनी और हिन्दी टीका-पताका छप रही थीं। परन्तु धनके संकोचसे एकादश सर्गसे संस्कृतटीका बन्द कर दी गई। और केवल हिन्दी टीका-पताका रक्खी गई है। इस अक्षमताके लिये पाठक क्षमा करें। द्वितीयावृत्तिमें सब अनुकूलता सम्पादित हो जायगी।

इस बृहत्कार्यमें जिन महानुभावोंने द्रव्यद्वारा सहायता दी है—चाहे साक्षात् मुझे, अथवा श्री ब्रह्मचारीजी महाराजके द्वारा—उन सब महाशयोंको धन्यवाद देता हूं तथा इस अल्प सहायतासे भी वह जो अक्षय्य पुण्य सञ्चित कर सके हैं उसके लिये मैं उन्हें प्रभुका कृपापात्र समझता हूं।

शीघ्रताके कारण तथा कितनी ही अनियमितताके कारण इस ग्रन्थमें अनेक भूलें रह गई हैं जो मानवदृष्टिके लिये एक साधारण वस्तु है। उसके लिये ग्रन्थके अन्तमें शुद्धिपत्र जोड़ दिया है तथापि यदि कहीं त्रुटी रह गई हो तो सुज्ञ पाठक सुधार लेनेका कष्ट करें।

श्रीरघुनाथ पुस्तकालय
आबूपहाड़ (राजपूताना)

निवेदकः—श्रीरामशोभादास वैष्णव

उपकृति-स्मृति

इस श्रीरामानन्द दिग्विजयका आरम्भ श्री-रामनवमी वि० १९८१ के दिन पालनपुरमें हुआ था। इसका अधिकांश भाग पालनपुरमें ही माननीय महान्त श्रीप्रेमदासजी महाराजके सुप्रबन्धमें, उनकी रक्षामें-उनके ही मन्दिरमें मैंने पूर्ण किया है। तथा कुछ भाग आबू पहाड़की चम्पा गुफामें लिखा गया है। चम्पा गुफामें मेरे लिये सब प्रकारकी अनुकूलता वहांके श्रीरघुनाथ मन्दिरके महन्त परमहंस श्रीयुत स्वामि-दामोदरदासजी महाराजने सम्पादन की थी। अतः मैं दोनों ही उपर्युक्त महानुभावोंका हृदयसे उपकार मानता हूं।

त्रिवेदोपाह्व श्री भगवद्दास ब्रह्मचारी

श्रीमद्रामानन्ददिग्विजयके सम्बन्धमें

विशेष ज्ञातव्य

महानुभावो !

इस दिग्विजयमें मैंने जो कुछ लिखा है उसके सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है। जैसा कि कबीरजीकी उत्पत्तिका मैंने भक्तमालसे पृथक्रूपमें वर्णन किया है। पीपाजीकी धर्मपत्नीका नाम स्मृति लिखा है। श्री सुशीलादेवीके पू० पिताजीका नाम 'धन्य' (धन्यगोपाल) लिखा है। इन सब बातोंमें मेरे साथ विरोध किया जा सकता है। परन्तु मैंने अपने परमाराध्य, प्रातःस्मरणीय श्रीगुरुदेवके चरणोंमें रहकर जो कुछ सुना है, जो कुछ सीखा है—उसीका इस ग्रन्थमें समावेश किया है। एक विषयमें जब अनेक प्रकारकी बातें कही जाती हैं तो उसमें मनुष्यको अधिकार है कि जिसे वह अच्छा समझे—मान्य करे। मुझे जो कुछ अच्छा प्रतीत हुआ है उसीको इस ग्रन्थमें लिखा है। तथा लोकोक्ति, इतिहास, आदिके आश्रयसे जो कुछ मिला है उसीका अवलम्बन करके इस ग्रन्थकी रचना मैंने की है। अतः जिसे जहां विरोध प्रतीत हो उसे प्रभुके नामपर सहन करके मौनावलम्बन करें, यही विनीत प्रार्थना है।

तथा सहृदय विद्वानोंसे प्रार्थना है कि 'कवि न होउं नहिं चतुर कहाऊं' मुझमें न काव्यशक्ति है और न वाक्पाटव है। जो कुछ है वह श्रीस्वामी रामानन्दजी महाराजकी कृपा है और पूज्यतम विद्यागुरुओंका आशीर्वाद है। इन्हीं दोके बलसे मैं इस ग्रन्थके लिखनेमें समर्थ हो सका हूं। भूलना तो मानवधर्म है। इस ग्रन्थमें भी अनेक भूलें होंगी। परन्तु—'हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः' की आशासे निर्भय होकर सहर्ष, सानन्द आपके सम्मुख इस ग्रन्थको उपस्थित करता हूं।

निवेदक
त्रिवेदोपाह्व श्रीभगवद्दास ब्रह्मचारी

यतिसार्वभौम-श्रीसम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्री १००८

स्वामि-श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज.

(परम प्राचीन-हस्तलिखित-श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर-में चित्रित हस्तचित्रके आधारपर)

श्रीः

भाष्यकार–श्रीस्वामी रामानन्दचार्य्यजी महाराज

जिस समय देशमें सत्यमार्ग–प्रदर्शक महापुरुषका अभाव हो चुका था और भारतवर्ष निर्निमेष दृष्टिसे उस शुभ दिवसकी प्रतीक्षा कर रहा था जिस दिन किसी महापुरुषके पादार्पणसे भारतकी भूमि पवित्र हो। यवनोंके अत्याचारोंसे पीडित आर्य्यप्रजा किंकर्तव्य विमूढ हो गई थी। मन्दिरोंपर यवनोंके आक्रमणसे भिन्न–हृदय भारतीय प्रजा अपनी अशक्तितापर अश्रुओंका अनन्त धारासे उत्तप्तहृदया भारतमाताको प्लावितकर रही थी। गौओंका त्राहि त्राहि शब्द भारतीय आकाश–मण्डलमें प्रतिध्वनित हो रहा था। भक्तिका लेश भी नहीं रह गया था। यदि भक्तिका नाम अवशिष्ट भी था तो वह ऐसे अर्थमें था जो मृतप्राय धार्मिक प्रजाके उज्जीवनमें असमर्थ था। वेदाविरोधी जैनियोंकी प्रबलता प्रतिदिवस बढ़ती जा रही था। जहाँ तहाँ वेदों और वैदिक देवोंकी निन्दा करते हुये जैनमतावलम्बी भटका करते थे। विष्णु तो सस्त्रीक हैं, सराग हैं, सदेह हैं, वह तुम्हारा क्या कल्याण करेंगे! जैन मत ही सर्व श्रेष्ठ है, इसमें ही मुक्तिका मार्ग परिपूर्णतया उपदिष्ट है, वैदिक धर्म तो हिंसामय धर्म है। अतः यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जैन मतका अङ्गीकार करो। इस प्रकारसे कुदृष्टि–कुलाक्रान्त जैन लोग वैदिकोंके मर्मस्थानमें छुराघात कर रहे थे। ऐसे समयमें एक महान् धर्माचार्य्यकी भारतको आवश्यकताथी और वह प्रभुकृपासे परिपूर्ण हुई।

यहांपर स्पष्टतया इस विवेचनाकी आवश्यकता प्रतीत होती है कि श्रीस्वामी रामानन्दजी महाराज जिस समय यहां अवतीर्ण हुये उस समय हिन्दुधर्मको सबसे अधिक भय किससे था।

उस समय हिन्दु-धर्मके दो प्रबल और प्रबलतर शत्रु दो दिशाओंमें अपना कार्य कर रहे थे और हिन्दु-धर्म-वैदिक-धर्मको समूल नष्ट करनेके प्रयत्नमें लगे हुये थे। उन दो शत्रुओंमेंसे एक यवनसाम्राज्य था और दूसरा जैनमत। यवनसाम्राज्य प्रबल शत्रु था और जैनमत प्रबलतर। यवनसाम्राज्यकी अपेक्षा मैं जैनमतको प्रबलतर इसलिये कहता हूं कि यवनोंने हमारे पुस्तक जलाये, हमारे मन्दिरोंको तोड़ा, हमारे देवोंको नष्ट किया, हमारे धर्मको भ्रष्ट किया, हमारे बच्चोंको दो दो पैसेमें बेंचा और लोकोक्तिके अनुसार श्रीसोमनाथके लिङ्गको पैरोंतले रौंदा। उसने यह सब किया परन्तु यह कृत्य एक ऐसा कृत्य है जिसका प्रभाव क्षणिक हो सकता है। स्थायी नहीं। उसने यह सब कुछ करते हुये भी हमारे देवी देवताओं, ऋषियों और मुनियोंको अपना पाजामा नहीं पहनाया। उनके भूतकालके शुद्ध वायुमण्डलको दूषित नहीं किया। परन्तु जैनियोंने हिन्दुधर्मके साथ जो अत्याचार किया है वह अक्षम्य है। जैन धर्मके आरम्भका हेतु राग और द्वेष है। इन्हीं दो स्तम्भोंके ऊपर खड़ा होकर जैन मत कहता है कि वीतरागका मार्ग मेरे घरमें है। सत्य तो यह है कि जिसका संस्थापक अथवा तो उत्तेजक राग और द्वेष है उसमतमें वीतरागितातो आकाश कुसुमसे अधिक कुछ नहीं है। मैं अपने कथनकी पुष्टिमें संक्षिप्तमें कुछ प्रमाण उपस्थित करता हूं।

हिन्दुओंके साथ जब एक अमुक समुदायका विरोध अत्यन्त भयङ्कर रूपमें बढ़ा तो वह समाज जैनसमाजके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने सबसे प्रथम हमारी वैदिकभाषाका सामना किया। उसने विचार किया कि वेदोंकी भाषा संस्कृत है तो हम लोगोंके ग्रन्थ प्राकृतभाषामें होने चाहियें। प्राकृतका अर्थ स्वाभाविक और संस्कृतका अर्थ कृत्रिम करके इस समाजने वैदिक-भाषा और वेदोंके महत्त्वमूलमें कुठाराघातका प्रयत्न किया। जैसे हमारे यहां सूत्र ग्रन्थ संस्कृतभाषामें थे उसी प्रकारसे इन्होंने प्राकृतभाषामें कुछ ग्रन्थ

बनाये और उन्हें सूत्र नामसे प्रख्यात किया। उसके पश्चात् हमारे पुराणोंकी प्रतिद्वन्द्विता इस समाजने की। पुराणोंकी आज्ञाके प्रतिकूल इन्होंने अपने यहां आज्ञाएँ प्रवर्तित कीं। पुराणों और भारतकी कथामें उथल पुथल किया। जितने ऋषि, मुनि, राजर्षि आदि पुराणोंमें थे प्रायः सबको इस समाजने जैनमतके अनुकूल वर्णन किया। सबको वेदका विरोधकरनेवाला बताया। हिन्दुधर्मके प्राणसमान परब्रह्म, जगन्नियन्ता, सर्वशक्तिसम्पन्न, विश्वम्भर भगवान् श्रीराम; जगज्जननी, आदि शक्ति महाराणी श्रीजानकीजी तथा अन्य तीनों भाइयोंको जैन धर्ममें प्रविष्ट होकर, शिरके बाल नोंचवाकर, दीक्षा लेकर मोक्षमें जानेकी बात इस जैन समाजने अपने ग्रन्थोंमें लिखनेकी धृष्टताकी। सबसे बड़ी नीचता इस समाजने जो की वह यह कि "कृष्ण मरकर तीसरे नरकमें गये।" यह एक ऐसा शब्द है कि जो अधमसे भी अधम हिन्दुकी लेखनीसे नहीं लिखा जा सकता। हिन्दुधर्ममें जो पवित्रता थी उसके विरुद्ध इस समाजने अपने यहां अपवित्रताको प्रविष्ट किया। हिन्दु संन्यासियों, महात्माओं, ऋषियों और मुनियोंमें जो स्नान, तथा मलोत्सर्गके पश्चात् मृत्तिकासे हस्त पादादि शुद्ध करनेका सदाचार था, इस समाजने उसके साथ भी विरोध किया और अपने साधुओंको स्नान न करने तथा शौच जाकर मिट्टीसे हाथ न धोनेका आदेश दिया। हमारे यहां २४ अवतार माने गये हैं तो इसने भी २४ तीर्थङ्करोंकी कल्पना की। हमारे यहां मन्दिर और उसमें मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाकी विधिथी तो इसने भी *मन्दिर और मूर्तियोंका स्वाङ्ग रचा। हमारे यहां मूर्तियां श्रृङ्गारित रहती हैं तो इन्होंने श्रृङ्गार विनाकी मूर्तियां बनाईं। परन्तु पीछेसे एक ऐसी शाखा निकली कि जिसने अपने यहां हमारी तरह श्रृङ्गाररचनाका

---

* श्रीरमेशचन्द्रदत्त तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती इत्यादिने जो यह लिखा है कि मूर्तिपूजा जैनियोंसे चली इसमें मेरे मतसे कुछ तथ्यांश नहीं है। इसका पूर्ण विवेचन मैं 'वैष्णवधर्मकी प्राचीनता' नामक पुस्तकमें करूंगा।

स्वीकार किया। यह सब किया तो भले करे। कुछ न कुछ करनेमें सब स्वतन्त्र हैं। परन्तु जैन समाजने साथ २ जो वेदोंकी निन्दाका क्रम प्रवाहित रखा, ब्राह्मणोंके साथ *अशिष्ट व्यवहारको भी जीवित रखा, यह सब महती अज्ञानता है। इसी भयङ्कर और गंभीरकारी समयमें, विशाल और परमोदार हिन्दुधर्ममें 'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न विशेज्जैनमन्दिरम्' इस श्लोककी रचना हुई। इसका उत्तरदायित्व हिन्दुधर्मपर नहीं प्रत्युत जैनमत-पर है जिसने अपनी अदूरदर्शिताके कारण इस श्लोकके निर्माण करनेका अवसर दिया।

मेरे इस कथनपर यह कहा जा सकता है कि जैसे यह कहा जाता है कि जैनमतने हिन्दुधर्म और हिन्दुशास्त्रोंका अनुकरण किया है, ऐसे ही यही क्यों न मान लिया जावे कि जैन मत ही प्राचीनमत है और हिन्दु-धर्म उसका अनुकरण है। परन्तु ऐसा न होनेके कारण हैं। प्रथम तो यह कि यदि हिन्दुधर्म ही अनुकरण होता तो उसमें जैन मतका पद २ खण्डन होता और घृणा सूचक वाक्य होते जैसा कि जैनियोंके ग्रन्थोंमें हिन्दुधर्मके विरुद्ध अनेक असह्य कटु वाक्य हैं। हमारे वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें कहीं भी ऐसा नहीं है। यदि हमारे वेद और वेदोंकी भाषा जैन मतकी अनुयायिनी होती तो अवश्य उसमें जैनमतका प्रतिवाद होता तथा जैन-मतसे अवरकालमें उनके होनेके कारण उससे पूर्वकालके जैन ग्रन्थोंमें वेदका

---

* इनके कल्पसूत्रोंमें लिखा है कि जहां 'पासंडा' पाषण्डी ब्राह्मण—जैन मुनियोंकी निन्दा करनेवाले ब्राह्मण हों वहां जैन मुनि निवास न करें। इस निन्दक धर्मने ब्राह्मणजातिको 'पाषण्डी' कहकर तिरस्कृत किया।

तथा इसी सूत्रमें यह भी लिखा है कि इनके अन्तिम तीर्थंकर 'महावीर' प्रथम ब्राह्मणीके गर्भमें आये थे और पश्चात् क्षत्रियाके गर्भमें गये। ब्राह्मणीके गर्भमें आनेका कारण यह था कि उनके कुछ पापकर्म थे उन्हें भोगनेकेलिये ब्राह्मणीके गर्भमें आये। उनके भोग लेनेके पश्चात् क्षत्रियाके गर्भमें गये। अर्थात् ब्राह्मणकी जाति नीच जाति है अतः पाप भोगनेके लिये वहां आये थे।

तिरस्कार न होता। यदि हमारे यहां तीर्थङ्करोंका अनुकरण होता तो हिन्दु-धर्म इतना बुद्धू नहीं है कि वह जैनकी सङ्ख्याके परतन्त्र होकर २४ ही अवतार लिखता। वह अवश्य ४८ लिखता। यदि हिन्दुधर्म जैन मतका अनुकरण होता तो तो वह अपने देवी देवताओंको शृङ्गारमय न रखता क्योंकि वह जान सकता था कि वीतरागिताका बेसुरा अलाप अलापनेवाला जैनमत मेरा खण्डन करेगा। यदि हिन्दुधर्म जैनमतका अनुकरण होता तो भागवत जैसे ग्रन्थमें कभी भी ऋषभदेवको अवतार न स्वीकार किया जाता इत्यादि अनेक कारण बताये जा सकते हैं कि हिन्दुधर्म किसी धर्मका अनु-करण नहीं है। प्रत्युत अन्य सब मत इस पुराणधर्मके अधमर्ण हैं।

यतः जैनमत हिन्दुधर्मके देवी, देवताओं, ऋषियों और मुनियोंके वे ही पौराणिक और ऐतिहासिक नाम लेकर उन्हें जैनमतकी गूदड़ीमें ढांक-नेके प्रयत्नमें लगा हुआ था तथा उसकी यह प्रबल इच्छा थी कि जैनमत हिन्दुधर्मको हड़पकर जावे, अतः मैं कहता हूं कि जैनमत हिन्दुधर्मका प्रबलतर शत्रु था।

इन दो शत्रुओंका सामना करके हिन्दुधर्मकी रक्षा, हिन्दु मर्यादाकी रक्षा, हिन्दुजातिकी रक्षा, हिन्दुसभ्यताकी रक्षा, वैदिकरूढिकी रक्षा, वैष्णवधर्मकी रक्षा—इत्यादि अनेक कार्य थे जिनकेलिये परमाचार्य्य श्रीरामा-नन्द स्वामीजी महाराजका इस धराधामपर पदार्पण हुआ।

श्रीस्वामीजीकी अवतारभूमि और उनका समय

श्रीमद्वाल्मीकि संहितामें एक कथा लिखी है। उसका सारांश यह है कि एक मनसुख नामका ब्राह्मणकुमार अ-पने मातापितासे पृथक् होकर विरक्तभावसे तीर्थराज-प्रयागके किसी अरण्यमें निवास करता था। वह सर्वेश्वर श्रीरामजीका परम भक्त था। प्रभु उसकी अनन्यनिष्ठा देखकर, बालरूप धारणकर, उसके साथ क्रीडाके व्याजसे वहां पधारे। बहुत देर तक साथ खेलनेके कारण दोनों बालकोंमें शुद्ध अनुराग उत्पन्न हुआ। प्रभु जब जाने लगे, मनसुख रोने लगा।

बालक-प्रभुका वियोग उसे असह्य हो गया। मनसुखने जङ्गल-सुलभ एक फल देकर प्रभुको बिदा किया। प्रभुने उसे वर मांगनेको कहा। मनसुखने कहा, पुनः कभी मेरा और आपका इसी प्रयागमें सम्बन्ध हो ऐसा करना। 'एवमस्तु' कहकर प्रभु चले गये। इसी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये श्री स्वामीजीने प्रयागमें ही अवतार ग्रहण किया। विक्रमके १३५६ संवत्में (ई० १३००) अर्थात् कलियुगके ४४०० वर्ष बीत जानेपर प्रयागक्षेत्रमें पू० पा० पुण्यसदनशर्माके गृहमें माता श्रीसुशीलादेवीकी कुक्षिसे श्रीस्वामीजी महाराजका अवतार हुआ। उस दिन माघमासके कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथि थी। पिताने विधिपूर्वक ६ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार कराकर पुत्र रामानन्दको काशीमें श्रीराघवानन्द स्वामीजी महाराजके यहां विद्याध्ययनके निमित्त पहुंचा दिया। वहां पर ही ब्रह्मचारी रामानन्दने साङ्गोपाङ्ग समस्त शास्त्रोंका अध्ययन किया। विद्याकी समाप्ति और वैष्णवधर्मप्रचार तथा वादि-गजमर्दनकी क्षमता देखकर आचार्य्य श्री राघवानन्दजीने ब्रह्मचारी रामानन्दको गृह जाकर समावर्तन संस्कारकी आज्ञा दी। श्रीब्रह्मचारी रामानन्दने-जो कि 'रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले।' वैश्वानरसंहिताके इस वचनानुसार साक्षात् श्रीरामजीके अवतार ही थे-सांसारिक बन्धनोंसे बद्ध होनेके लिये सविनय अस्वीकार किया। उसी समय उनकी माता और पिता पुत्रके समाचार जाननेके लिये वहां आये। पुत्रकी अनुपम विद्वत्ता, लोकोत्तर तेजपर मातापिताके आनन्द का पार न रहा। छातीसे लगा लिया। गद्गदहृदयसे पुत्रके मस्तकका पुनः २ चुम्बन किया। घर न चलनेके समाचारसे मातापिताको असह्य कष्ट हुआ। बालकने सब गुह्य बातें सुनाकर-पूर्वजन्मकी कथाका स्मरण कराकर, तथा देवोंद्वारा भूभारके उतारनेके लिये की गई प्रार्थनाको स्वीकार कर, यहां आनेके हेतुको समझाकर, उनके हृदयके खेदको दूर कर दिया। मातापिताकी सहर्ष आज्ञा लेकर ब्रह्मचारी रामानन्दने श्रीराघवानन्दजी महा-

राजसे समस्त विद्वानोंके समक्ष प्रव्रज्या ले ली। आजसे ब्रह्मचारी रामानन्द श्रीस्वामी रामानन्दके नामसे प्रख्यात हुये।

जिस समय श्रीवैष्णवाचार्य्य स्वामी श्रीराघवानन्दजीने ब्रह्मचारी रामानन्दको परिव्राजक बनाया उस समय आज्ञादी कि तुम सर्वत्र भ्रमण करके वैष्णवधर्म और अस्मत्कुल-देव श्रीरामचन्द्रकी भक्तिका प्रचार करो। स्वा० रामानन्दजी कुछ दिनों तक काशीमें ही गुरुमहाराजके समीप रहकर योग, जप, तप और शास्त्राध्ययन आदि कार्य करते रहे। योग, तप आदि स्वामीजीके गौण कार्य थे। भक्ति ही प्रधान थी। इसमें अधिक समय लगाया करते थे। तपका अर्थ धुनी तापना आदि नहीं किन्तु तितिक्षा है। इसके अभ्यासमें वह निरत थे। काशीमें ही श्रीअनन्तानन्दजी प्रभृति उनके शिष्य हुये। स्वामीजीने काशीमें ही बाहरसे आये हुये अनेक विद्वानोंके साथ अनेक शास्त्रार्थ किये। शिष्यकी योग्यतापर आचार्य्य श्रीराघवानन्द गद्गद हो गये। कुछ दिनोंके पश्चात् स्वामी राघवानन्दजी स्वामी रामानन्दजीको आचार्य्यपद देकर स्वयं साकेतवासी हुये।

श्री स्वामी रामानन्दजी महाराज पृथिवीपर प्रतिदिन बढ़ते हुये अत्याचारों और अत्याचारियोंका अन्त करके, अनेक शास्त्रार्थोंमें विधर्मियोंका पराभव करके, द्वेषी गोसाइयोंका मानमर्दन करके, म्लेच्छोंसे पीडित अयोध्याकी प्रजाका उद्धार करके, सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य स्थापन करके वि० सं० १४६७ के वैशाख मास शुक्लपक्ष तृतीयाके दिन देवराज-इन्द्रकी प्रार्थनापर, विमानपर बैठकर साकेतको पधार गये।

श्रीस्वामीजी महाराजकी धर्मनीतिका आदर्श

श्रीस्वामीजी महाराजका कार्य देखते हुये किसीके लिये भी यह मान लेना अनिवार्य हो जाता है कि वह देश और कालकी गतिके बड़े ज्ञाता थे। भविष्यकी स्थिति समझनेके लिये उनमें महती शक्ति थी। उस समयकी स्थितिसे अनुमेय जो भविष्यकी स्थिति थी उसके लिये यह आवश्यक था कि हिन्दूमात्र किसी एक श्रृङ्खलामें बँधें। इसके-

लिये शास्त्रानुसार श्रीस्वामीजीने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा स्त्रियोंको भी नाममात्रके परिवर्तनके साथ एक ही राममन्त्रसे दीक्षित किया। उन्होंने इस बातकी भविष्यकी प्रजाके लिये घोषणा की कि भगवच्छरणागति स्वीकार करनेमें किसी जाति और कुलका बन्धन नहीं है। दलित देश और दलित जातियोंका कैसे उद्धार करना चाहिये, इस तत्त्वको वह वस्तुतः जानते थे। हिन्दुधर्मकी रक्षा निकट भविष्यकी प्रजा कैसे कर सकेगी, इस बातकी उनको चिन्ता अवश्य थी। वह वर्णाश्रमके ठीक २ शास्त्रीय रीतिसे पालन करते हुये भी एक ऐसे तत्त्वका सम्मेलन चाहते थे कि जिसमें इस जातिका नामावशेष मात्र न रह जावे। वह इस बातकी आवश्यकता समझते थे कि जो हिन्दु बलात्कारसे धर्मान्तर स्वीकार करते हों उन्हें यदि पीछे ले आनेकी शक्ति हो तो ले आ सकते हैं। अतएव उन्होंने अयोध्यामें विलोमयन्त्र द्वारा मुसलमान बनाये गये हुये हिन्दुओंको पुनः हिन्दु जातिमें प्रविष्ट किया। जैसा कि भविष्य पुराण तृतीय पर्व चतुर्थखण्ड अध्याय २१ में लिखा है—

'म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः।
संयोगिनश्च ते ज्ञेया अयोध्यायां बभूविरे॥'

अर्थात् अयोध्यापुरीमें सिकन्दर बादशाहने अपने एक यन्त्रके द्वारा जिन २ हिन्दुओंको म्लेच्छ बना लिया था उन्हें श्रीरामानन्द स्वामीजीके शिष्योंने स्वामीजीके प्रभावसे वैष्णव बना लिया।

'कण्ठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता।
भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं तदाऽभवत्॥'

भ० पु० प० ३ ख० ४ अ० २१ श्लो० ५३

उनके गलेमें तुलसीकी माला, जिह्वापर रामनाम और मस्तकमें श्वेत मृत्तिकाका ऊर्द्ध्वपुण्ड्र और बीचमें रक्तश्री, यह सब कार्य स्वयं हो गये।

तथा जो मुसलमान् हिन्दु हुये थे वह संयोगी* नामकी जाति हुई। स्वामीजी समझते थे कि अब तो म्लेच्छोंका बल बढ़ने लग गया है। हिन्दु जाति दिन २ शिथिल और निर्बल होती जा रही है। यदि इस जातिमेंसे निर्गमन ही होता रहा और आगमनका द्वार बन्द रहा तो एक दिवस आवेगा जब श्रीराम और श्रीकृष्णका नाम लेनेवाला भूपृष्ठपर कोई नहीं रहेगा। गौओंकी रक्षा करनेवाला एक भी न बचेगा। हिन्दुओंके मन्दिर मुल्लाओंके निमाज़ पढ़नेकी जगह बन जावेंगे। इन सब ऊहापोहके अनन्तर पतित परावर्तनका सिद्धान्त स्वामीजीने स्वीकार किया होगा। ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

परन्तु यहांपर एक वस्तु ध्यानमें रखने योग्य है। आज जो पतित-परावर्तनकी अविरत धारा बह रही है इसके साथ श्री स्वामीजीके सिद्धान्तका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। स्वामीजीने केवल उन म्लेच्छोंको ही शुद्ध किया है जो अल्पकालके ही म्लेच्छ थे और बलात्कारसे यन्त्रबलसे म्लेच्छ बनाये गये थे। जो प्रथमसे ही हिन्दुधर्ममें आनेके लिये उत्कण्ठित थे। ऐसे ही हिन्दुओंको ले लेनेके लिये अपने हिन्दुशास्त्रोंमें अनेक जगह उल्लेख है। आजकी धारामें तो किसीका कुछ विचार ही नहीं है। शास्त्रीय पद्धति और शास्त्रोक्त वचनोंकी अवहेलनाके साथ आजकी शुद्धिका क्रम चल पड़ा है। आजकी शुद्धिमें ईर्ष्या और द्वेष है और श्रीस्वामीजीकी शुद्धिमें दया और प्रेम है।

---

* इस समय मेरे पास भविष्य पुराण नहीं है। परन्तु जहाँ तक मुझे स्मरण है, इस प्रसङ्गमें वहां लिखा है कि जो हिन्दु यन्त्रबलसे मुसल्मान बनाये गये थे वह तो पुनः श्री स्वामीजीके शिष्योंके यन्त्रबलसे हिन्दु बनकर अपनी जातिमें जा मिले। परन्तु इस वैष्णवयन्त्रके नीचेसे जो जन्मके मुसल्मान् निकलते थे वह भी हिन्दु हो जाते थे। और इन्हीं हिन्दुओंकी संयोगी नामकी जाति बनी। परन्तु इसपर अभी तात्त्विक अन्वेषण करनेकी अतीव आवश्यकता है।

एक यहां शङ्का हो सकती है कि यदि श्रीस्वामीजी केवल अल्पकाल-के ही पतितोंका ही पुनरावर्तन स्वीकार करते थे तो बाल्यकालसे एक यवनगृहमें परिपोषित कबीरको वैष्णवधर्ममें कैसे सम्मिलित किया ?

इस प्रश्नपर बहुत कुछ विवेचन हो सकता है और मैं पूर्णरूपसे इस विषयका विचार 'वैष्णवधर्मकी प्राचीनता' नामक पुस्तकमें करूंगा। अतः यहांपर संक्षेपमें इतना ही उत्तर पर्याप्त है कि श्री कबीरजीके हृदयमें जितनी अधिक श्री रामभक्ति थी, उनका जितना अनन्य प्रेम भगवच्चरणोंमें था उन सबको देखते हुये कबिरजीको वैष्णवमार्गमें ले आनेके कारण स्वामीजीपर लाञ्छन नहीं लग सकता। स्वामीजीने कबिरजीको शुद्ध नहीं किया, उन्हें विधिवत् दीक्षा नहीं दी, उन्हें अपने व्यवहारमें सम्मिलित नहीं किया। केवल प्रभुकी भक्तिका उत्तम अधिकारी समझकर अपने आश्रमके किसी विभागमें निवासस्थानमात्र दिया। कबीरजीके सम्बन्धमें थोड़ासा विचार जो आज आवश्यक है वह आगे चलकर प्रकरणानुसार करूंगा।

यह पतितपरावर्तन केवल श्रीस्वामीजीने ही किया, सो नहीं प्रत्युत अन्य धर्माचार्य्योंने भी इस मार्गका अवलम्बन किया है। इसके साक्षी श्रीमद्वल्लभाचार्य्यजी तथा श्री चैतन्यमहाप्रभुजीके जीवनवृत्तान्त हैं।

श्री स्वामी रामानन्दजीपर लोकमत

श्री नाभाजी श्रीरामानन्द सम्प्रदाय वृक्षके एक मनोहर पुष्प हैं।

श्री स्वामीजी और नाभाजीका भक्तमाल

वैष्णवोंमें तथा अन्य लोगोंमें भी श्री नाभाजीका भक्त-माल एक उत्तम स्थान भोग रहा है। वैष्णवभक्तोंकी यह धारणा है कि नाभाजीने जो कुछ लिखा है वह सब अक्षरशः सत्य और निर्विवाद है। इसीलिये आजसे छ वर्ष पूर्व परम्पराके विवादमें भक्तमाल प्रमाणरूपमें विपत्तियोंकी ओरसे उपस्थित किया गया था। उसका समाधान भी उस समयके प्रकाशित पुस्तकोंमें समयानुसार मैंने कर दिया था। आज इस विषयपर कुछ विस्तारपूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है। श्री नाभाजी महात्मा थे, हमारे सम्प्रदायकी शोभा थे, परम वैष्णव थे, हिन्दीके कवि थे यह सब तो मैं स्वीकार करता हूं और अन्योंसे भी स्वीकार करानेकी शक्ति रखता हूं। परन्तु वह त्रिकालज्ञ थे, निर्भ्रान्त थे इसे मैं आजके जागृत और चैतन्य भारतकी दृष्टिसे अथवा तो अपनी निर्बलतासे, स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हूं। मनुष्य मनुष्य ही है। उसकी ज्ञानशक्ति मर्यादित ही रहती है। बड़े२ ऋषियों और मुनियोंके सिद्धान्तोंका खण्डन किया गया है। भगवदवतार कपिलके सिद्धान्तोंका सभी वैष्णवाचार्य्योंने तथा श्रीमच्छङ्कराचार्यने भी खण्डन किया है। षड्दर्शन एक दूसरेके सिद्धान्तोंकी समीक्षा करते हैं। एक स्मृति दूसरेसे विरुद्ध जाती है। एक सूत्रग्रन्थ अन्योंसे विपरीत बोलता है। अतः यह मान ही लेना चाहिये कि मनुष्यका ज्ञान सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं है।

श्री नाभाजी भी एक मनुष्य थे। उनको निर्भ्रान्त मानकर कोई भी सिद्धान्त स्थापन करनेमें बड़ी भारी भूल होगी। मेरे कथनका यह आशय नहीं है कि उनका समस्त ग्रन्थ ही भ्रान्तिमय है। प्रत्युत जहां शास्त्र, सदाचार और लौकिक व्यवहारसे विरोध प्रतीत होता हो वहां मानव-सुलभ भ्रान्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है। श्री नाभाजीने भगवद्भक्तोंके पवित्र इतिहासपर अपनी शक्तिके अनुसार प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया है इसके लिये हम उनके ऋणी हैं। परन्तु उन्होंने जो भूलकी है अथवा जहां मुझे भूल मालूम होता है उसे इस दिग्विजयके साथ सम्बन्ध होनेके कारण यहांपर प्रदर्शित करता हूं। उन्होने भक्तमालमें लिखा है—

"श्री रामानुजपद्धतिप्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसर्यो।"

इस छप्पयमें हमारे आचार्य्य श्री रामानन्द स्वामाजीका वर्णन है। इस छप्पयको श्री नाभाजीने किस आशयसे लिखा है यह विवादग्रस्त है। यदि उनका यह आशय रहा हो कि जिस पद्धतिसे श्री स्वामी रामानुजाचार्य्यजीने धर्मप्रचार किया था उसी पद्धतिसे अर्थात् शास्त्रार्थ आदि करके और श्री आनन्दभाष्य आदि ग्रन्थोंकी रचना करके श्री स्वामी रामानन्दाचार्यजीने भी धर्मप्रचार किया तो कोई क्षति नहीं है। परन्तु यदि यह आशय रहा हो कि श्री रामानन्दस्वामीजीने श्री रामानुजस्वामीजीकी पद्धति-सम्प्रदायका अनुसरण किया अर्थात् उनके सम्प्रदाय और उनके परम्पराके अनुयायी थे तो यह भारी भूल है। इस भूलका विवरण मेरे तत्त्वोद्बोधनमीमांसामें देखना चाहिये।

भक्तमालके टीकाकार और श्री स्वामीजी

भक्तमालके टीकाकारोंने श्री स्वामीजीका पूर्वनाम रामदत्त लिखा है। उनकी सम्मतिसे संन्यास लेनेके पश्चात् स्वामीजीका श्री रामानन्द नाम पड़ा। इस विषयमें मेरी सम्मति भिन्न है। जहां तक मैंने परिशीलन किया है, मैं इस निश्चयपर पहूंचा हूं कि स्वामीजीका जन्मनाम श्री रामानन्द ही है। संन्यासके पश्चात् भी यही नाम रहा। यह कोई आवश्यक

नियम नहीं है कि संन्यासके पश्चात् संन्यासीका नाम अवश्य परिवर्तित किया जावे। यही कारण है कि प्रारम्भिक वैष्णवी दीक्षा पञ्चसंस्कारपूर्वक जब श्री स्वामीजीकी, काशीमें श्री राघवानन्द स्वामीजीके पास हुई तब भी नाम यही का यही रहा। पञ्चसंस्कारमें नाम संस्कार भी एक संस्कार है परन्तु जिसका नाम प्रथमसे ही भगवत्सम्बन्धी हो उसे परिवर्तन करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। मेरे इस माननेमें कारण है। वैश्वानरसंहिता, अगस्त्यसंहिता, वाल्मीकिसंहिता और भविष्यपुराण आदिमें इस नामका कहीं भी उल्लेख नहीं है। प्रत्युत सब स्थलोंमें श्री रामानन्द ही नाम लिखा है। तथा जिस नामसे अवतारकी सूचना हो चुकी हो उसी नामसे अवतारका होना शास्त्रीय क्रम है। सर्वत्र श्री रामानन्दका अवतार होगा यही लिखा है अतएव श्री रामानन्द ही नाम प्रामाणिक नाम है। रामदत्तादि नहीं।

यदि इस कल्पनाको प्रामाणिक मानकर स्वामीजीका रामदत्त नाम स्वीकार कर लिया जावे और यह मान लिया जावे कि संन्यासी होनेके पश्चात् श्री रामानन्द नाम पड़ा, तो यह भी मानना पड़ेगा कि श्री राघवानन्द स्वामीजीके ऊपर अद्वैतमार्गके संस्थापक श्री स्वामी शङ्कराचार्यजीके गिरि, पुरी, भारती, तीर्थ और आनन्द आदि नामोंका कुछ प्रभाव था और उसीसे प्रेरित होकर उन्होंने अपने शिष्य श्री रामदत्तका श्री रामानन्द नाम रखा। परन्तु इसको माननेके लिये हृदयसे आज्ञा नहीं मिलती है। क्योंकि श्री राघवानन्द स्वामीजी परम विरक्त और वैष्णव थे। उस समय श्रीराममन्त्रके वही आचार्य थे। भगवान् श्री रामके अनन्य भक्त थे। श्रीराममन्त्रमें उनकी पूर्ण निष्ठा थी। श्रीरामानन्द स्वामीजीने उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया, यही मेरे कथनमें प्रबल प्रमाण है। आनन्दान्त नाम रखनेकी प्रथा भी अपने सम्प्रदायमें अथवा अन्य वैष्णव सम्प्रदायोंमें प्रायः नहीं है। श्री रामानुज स्वामीजी भी संन्यासी ही थे परन्तु वे श्री रामानुजानन्द नहीं

थे । श्री तोताद्रि स्वामीजी भी संन्यासी हैं परन्तु उनका नाम भी आनन्दान्त नहीं है। श्री वल्लभाचार्यजीने भी अन्तमें संन्यास ग्रहण किया था परन्तु वह भी आनन्दान्त नाम स्वीकार नहीं किये थे। अतः स्वामीजीका मूल नाम ही श्री रामानन्द था । रामदत्त नहीं । टीकाकारोंको भ्रम हुआ है।

दासान्त नाम क्यों नहीं रखा गया

आज श्रीरामानन्द सम्प्रदायमें तथा निम्बार्कादि सम्प्रदायोंमें भी विरक्त वैष्णवोंका नाम प्रायः दासान्त ही होता है । 'दासान्तं नाम कुर्यात्' इत्यादि वचन भी इस प्रथाके उपोद्वलक हैं । तब एक यह शङ्का होती है कि श्री स्वामीजीके नामके आगे दासपद क्यों नहीं जोड़ा गया? इस प्रश्नका सर्वप्रथम तो उत्तर यह है कि जैसे यह प्रश्न श्री स्वामीजीके लिये किया गया है वैसे ही यही प्रश्न श्री रामानुजाचार्य्य, श्री निम्बार्काचार्य्य, श्री मध्वाचार्य्य, श्री वल्लभाचार्य्य और श्री चैतन्यमहाप्रभुके लिये भी किया जा सकता है। क्योंकि नामकरणमें जो शास्त्र हमारे लिये प्रमाण हैं वही उन आचार्य्योंके लिये भी प्रमाण हैं । इस प्रतिद्वन्द्वी उत्तरके पश्चात् सिद्धान्त उत्तर मेरी सम्मतिमें यह है कि पराशरसंहितामें लिखा है—

'योजयेन्नाम दास्यान्तं भगवन्नामपूर्वकम् ।'

इस श्लोकमें कहीं २ 'दास्यान्त' के स्थानमें 'दासान्त' भी पाठ उपलब्ध होता है। इसका अर्थ यह है कि वैष्णवोंका नाम ऐसा होना चाहिये जिसके अन्तमें दासभावसूचक शब्द हो । 'दासान्त' पाठ बहुत समीचीन नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे नामके अन्तमें 'दास' ही होना चाहिये, ऐसा आग्रह हो जाता है और इस आग्रहका अपवाद तो आज अपने सम्प्रदायमें भी अनेक है। शरण, प्रपन्न, प्रसाद, इत्यादि अपवादके उदाहरण हैं। अतः 'दास्यान्त' पाठ ही सर्वोत्तम है । दास्य शब्द भी उपलक्षण है। नाममें ऐसे शब्द होने चाहिये जिससे नम्रता और विनयका

प्रकाश पड़ता हो। और वह भी नामका आवश्यक अङ्ग नहीं है। आवश्यक तो केवल भगवन्नाम है। दास, शरण, प्रपन्न आदि शर्मा, वर्मा, गुप्त आदिके समान उपाधिमात्र है। इस उपाधिको ग्रहण करना अथवा न करना यह मनुष्यके विचारके ऊपर निर्भर है। शर्मान्त नाम ब्राह्मणका होना चाहिये, ऐसी शास्त्राज्ञा है। परन्तु शर्मा न कहकर द्विवेदी, त्रिवेदी, पाठक आदि शब्दोंका भी व्यवहार पुष्कल परिमाणमें होता है। इसी प्रकार श्रीस्वामीजीके नामके आगे दासादिपद नहीं जोड़े गये। वह आचार्य्य थे अतएव आचार्य्य प्रथाके अनुसार वह श्रीरामानन्दाचार्य्य इस नामसे पृथ्वीपर प्रख्यात हुये।

नामके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ लिखा है उसी रीतिसे इस प्रश्नका भी समाधान हो जाता है कि श्रीस्वामीजीने अपने शिष्योंके नामके अन्तमें भी दास पद क्यों नहीं लगाया। स्वामीजी इस बातको स्वीकार कर रहे हैं कि भगवन्नाममात्र ही आवश्यक है। शेष सब गौण हैं। अतएव उनके अनन्त शिष्योंमेंसे प्रधान जो १२ शिष्य थे, उनमें सात शिष्योंके नामके आगे तो 'आनन्द'पद है परन्तु शेष पांच श्रीपीपाजी प्रभृतिका नाम ज्योंका त्यों रहने दिया। 'भगवन्नामपूर्वकम्' इस कथनसे भागवतसम्बन्ध भी ले लेना चाहिये। अतएव सुग्रीवदास, हनुमान्दास, भागवतदास, रविदास, धनेश, इत्यादि नाम भी वैष्णवी मर्यादाके बाहर नहीं हैं।

रामभारती और श्रीरामानन्द

'वैष्णवधर्मरत्नाकर' भाषापुस्तकमें, तथा अन्यत्र भी कहीं २ लिखा है कि श्री स्वामी रामानन्दजी प्रथम गोसाईं थे। पीछेसे जब श्रीराघवानन्दजीके शिष्य हुये तो श्री रामानन्द नाम पड़ा। परन्तु पूर्वनाम 'रामभारती' था। यह भी एक अन्धपरम्पराका अन्धप्रलाप है। इसमें कुछ भी प्रमाण नहीं है। विपक्षियोंने जो बात चलादी उसे किसी भी विचारके बिना मान लेना यह एक रोग चल पड़ा है। इसी रोगके वश होकर श्रीस्वामीजीको 'रामभारती' लिखा गया है। भला, समस्त शास्त्र

जिसे भगवदवतार कहते हों, वैष्णव धर्मकी रक्षा और वैष्णवमर्यादा स्थापन-के लिये जिसका अवतार हुआ हो वह 'रामभारती' बनकर भटकता फिरे इसे कौन विवेकी पुरुष मान सकता है? अतः यह कथन व्यर्थ है।

श्रीरामानन्द स्वामीजी तथा भस्म और जटा

आज यह कहनेवाले अपने सम्प्रदायमें अल्प नहीं हैं कि श्रीस्वामीजी महाराज स्वयं भी जटा और भस्म धारण करते थे और हम लोगोंको भी वैसा ही करनेका आदेश कर गये हैं। इतना कहकर ही लोग चुप नहीं हुये हैं प्रत्युत चित्रोंमें भी वैसी ही आकृति बनाई है। अयोध्याके श्रीरामानन्दमन्दिरमें भी श्रीस्वामीजी जटिल वेषमें विराजे हैं। यह सब देखकर यह निश्चय होजाता है कि अभी हमारे कल्याणका दिन दूर है। जहां विष्वक्सेन संहितामें यह लिखा है कि—

'न धारयेज्जटाभारं भस्म चैव न धारयेत्

अर्थात् जटा और भस्म ब्राह्मणादि वैष्णवोंको नहीं धारण करना चाहिये, वहां आचार्यको जटा रखा देना, विभूति लपेट देना हृदयको विदीर्ण कर देता है। आज अपने सम्प्रदायमें अनेक महात्मा जटा और विभूति धारण करते हैं, जगन्नाथपुरीके परमप्रतापी श्री जगन्नाथदासजी महाराज विभूति धारण करते थे, आज भी श्री महन्त रघुबीरदासजी महाराज विभूति और जटा धारण करते हैं, श्री वैष्णवदासजीकी छावनीके महान्त परमवैष्णव श्री रामशोभादासजी महाराजके शिष्य तथा त्यागी महात्माओंके महान्त श्री सियारामदासजी महाराज जटा, भस्म धारण करते हैं। इन्हें कौन रोक सकता है। ये सभी प्रतापी महात्मा हैं। इनसे हमारे सम्प्रदायकी शोभा है। हम भी इनको सादर दण्डवत् प्रणाम करते हैं। हमारे हृदयमें भी इनकेलिये परम पूज्य भाव है। दुःख इतना ही है कि "श्री स्वामीजीकी ऐसी आज्ञा है और वह स्वयं ऐसा करते थे' यह शब्द भी मुझे सुनने पड़ते हैं। श्री स्वामीजी जटा भस्म धारण करते थे इसका प्रमाण आज

तक बहुत अन्वेषण करनेपर भी मुझे नहीं मिल सका। किसी भी इतिहासलेखककी लेखनीसे यह बात आज तक नहीं लिखी गई है।

ओ पूज्य श्रीरामानन्दीय वैष्णवो! आपके सर्वथा जागृत होनेकी कौनसी घड़ी प्रभुने निर्माणकी है उसे शोधिये। अन्ध परम्पराके प्रवाहमें कब तक हम बहते रहेंगे। हे हमारे प्रभु! आप हमको ऐसा बल दें जिससे हम अपने स्वरूप अपने "धर्म और अपने आचार्य्यके वैभवको पहचान सकें।

श्री रामानन्द स्वामीजी और रामानन्द धर्मप्रकाश

'रामनन्द धर्मप्रकाश' नामकी गुजरातीमें एक पुस्तिका है। उसमें लिखा है कि "स्वामी रामानन्दजी जन्म रहित साधुवेशमें प्रकट हुये। उनके पिता पुण्यसदन नन्दके अवतार और माता सुशीला यशोदाका अवतार थीं। द्वापरमें भगवान्‌के वियोगसे नन्द और यशोदाको परम दुःख हुआ। तब भगवान्‌ने उन्हें कहा कि आप लोग कलियुगमें ब्राह्मण होंगे और मैं आपके घर साधुवेशमें अवतार लूंगा।"

इसी पुस्तकमें आगे चलकर लिखा है कि "स्वामीजी अपनी माताको आत्मिक ज्ञान देकर उन्हें अपने काकाके पुत्र मोतीशङ्करके पास रखकर स्वयं काशीमें एक शिवमार्गी गिरिजाशङ्करके पास गये। वहां उनसे साधुसंस्कार लेकर 'रामभारती' के नामसे प्रसिद्ध हुये।"

इसी पुस्तकमें आगे चलकर पुनः लिखा है कि "श्री रामानन्द स्वामीजी जब अपनी जमात लेकर दक्षिणकी ओर गये तो वहांके रामानुजीय लोगोंने स्वामीजीको पतितोपदेष्टा मानकर स्वसम्प्रदायसे बाहर कर दिया। श्री राघवानन्दजी शिष्यका यह अपमान देखकर दुःखित हुये। पश्चात् स्वामीजीको अपने नामसे नवीन सम्प्रदाय चलानेकी आज्ञा दी।"

यह सब लेख सम्प्रदायानभिज्ञ आपापन्थियोंके हैं। इसमें कुछ तत्त्व नहीं है। तथापि थोड़ीसी समीक्षा अपेक्षित है, उसे लिखता हूं।

यदि स्वामीजी साधुवेशमें उत्पन्न हुये तो दीक्षाकी क्या आवश्यकता थी ? जन्मरहित प्रकट हुये इसका क्या अर्थ है ? यदि माता पिताके विना उत्पन्न हुये तो पुनः तुमने मातापिताकी कल्पना क्यों की ? यदि नन्द और यशोदाके प्रेमवश होकर ही, उन्हें सुखी करनेके लिये ही श्री रामानन्द स्वामीजीका अवतार हुआ तो पुनः उन्हें साधु होनेकी क्या आवश्यकता थी ? घरमें ही रहकर मातापिता—नन्द और यशोदाको प्रसन्न करना चाहता था न ? क्या साधु होनेसे इन नन्द और यशोदाको दुःख नहीं हुआ ? हुआ तो पुनः भी कोई वरदान दे गये कि नहीं ! मोती-शङ्कर उनके काकाके लड़के थे। माताको वहीं सौंपकर अपने काशी आये यह सब बातें मूर्खताकी हैं, तथा प्रमाण शून्य हैं। सबसे बड़ी मूर्खताकी बात यह लिखी गई है कि गृहस्थके यहां आकर स्वामीजी साधु हुये ! स्वामीजी दक्षिणमें गये और रामानुजीयोंने स्वसम्प्रदायसे बाहर कर दिया यह स्वप्नावस्थाका स्वप्न है। स्वामीजी उनके सम्प्रदायमें थे ही नहीं तो बाहर कौन करता ? श्री राघवानन्दजीकी आज्ञासे स्वामीजीने नवीन सम्प्रदाय चलाया ऐसा लिखना और मानना दोनों ही जडता है।

ऐसे अविवेकियोंके लेखोंसे सावधान रहनेकी बड़ी आवश्यकता है।

श्रीरामानन्द स्वामी और रामानन्द नाट्य

'रामानन्द नाट्य' नामक पुस्तकमें लिखा है कि "स्वामीजीने कबीर आदिको हिन्दु बनाया था। उसकी ईर्ष्या मुसलमानोंके हृदयमें समाई हुई थी। एक समय स्वामीजी दिल्ली शहरमें पधारे। वहां सिकन्दर लोदी बादशाह था। बादशाहके मन्त्रीने स्वामीजीका बनावटी सत्कार बहुत अच्छा किया। पुनः उसने स्वामीजीको एक वेश्याके घर पहुंचाया। पश्चात् बादशाहसे शिकायतकी कि यह संन्यासी वेश्याके घर गया है। बादशाह और मन्त्री दोनोंही वेश्याके घर उनका पता लगानेको चले। दोनों जाकर वहां छिप रहे। वेश्याने बड़े २ प्रयत्न किये परन्तु

स्वामीजीकी मनोवृत्ति चञ्चल नहीं हुई । उसने बलात्कार करना चाहा, तब स्वामीजीने उसे धिक्कारकर, श्री रामनामका उपदेश करके, स्वयम् अग्निरूप होकर पृथ्वीमें समा गये । "

इस कथाके लिखने वालेने तो श्रद्धासे ही लिखी होगी परन्तु भगवान् ऐसे मूढ श्रद्धालुओंसे सबकी रक्षा करें। यह कथा निस्सार, मनगढन्त अतएव सर्वथा अप्रामाणिक है। श्री स्वामीजी मुसलमानोंके यहां कभी भी अतिथि नहीं हुये तो दिल्लीमें बादशाहके यहां अतिथि कैसे हुये? जो स्वामीजी दिल्ली—बादशाहके बड़ासे भी बड़ी भेंटको काशीमें स्वीकार नहीं किये वह दिल्ली बादशाहके यहां अतिथि होकर गये, यह बड़ा आश्चर्य है। ऐसी पुस्तकोंको शीघ्र अग्निसात् करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

श्रीरामानन्द स्वामी और हारमाला

हारमाला नामक पुस्तकमें लिखा है कि जब स्वामीजी द्वारकामें थे तब जूनागढ़में नरसिंह मेहताको वहांके राजाने मेहताजीके मूलगुरु शिवपन्थी भीमगिरिके बहकानेसे जेलमें बन्द कर दिया। और कहा कि जो तेरा विष्णु सत्य होगा तो तुझे इस जेलमें माला पहिनावेगा। श्रीस्वामीजी तो साक्षात् विष्णु ही थे ! उन्होंने आकर मेहताजीको माला पहनाई। राजाको शाप दिया कि तूने मेरे भक्तको जेलमें डाला है। कष्ट दिया है। अतः अहमदाबादका अहमदशाह तुझे पकड़कर जेलमें डालेगा और तुझे मुसलमान बनावेगा।

इस कथामें भी सत्यांश कुछ प्रतीत नहीं होता है। नरसिंहमेहता और श्री स्वामीजीके कालमें भी अन्तर है। तथा जो स्वामीजी मुसलमानोंसे हिन्दुधर्मकी रक्षाके निमित्त आये थे वह एक हिन्दुको मुसलमान बन जानेका शाप दें यह कैसे माना जा सकता है। अतः ये सब मनगढन्त बातें हैं।

'रामानन्द धर्मप्रकाश' में लिखा है कि "स्वामीजी दाक्षिण वेङ्कटाचल पर्वतके बड़े मन्दिरमें गये। वहांके आचार्यने स्वामीजीका अनादर किया। स्वामीजी हाथीराम नामक एक साधुसे मिले। पर्वतका राज्य दिलानेका वचन देकर उसे शिष्य किया। पश्चात् वहांके राजाको मध्यस्थ बनाकर दाक्षिणात्य आचार्य्योंसे शास्त्रार्थ किया। हाथीरामको अपने तपोबलसे हाथी बना दिया। इस प्रभावसे चकित होकर राजाने उस मन्दिरकी गद्दीको हाथीरामको सौंप दिया।"

श्री स्वामीजी और हाथीराम बावा

इस कथामें सत्यांश कितना है, प्रभु जाने! यह सब मैं सत्य मान सकता हूं कि श्री स्वामीजी अपने विद्याबल और तपोबलसे उपरि लिखित सब कार्य किये होंगे। परन्तु धनका लोभ देकर श्री स्वामीजीने हाथीराम साधुको अपना शिष्य बनाया होगा यह त्रिकालमें भी मुझसे न मानी जा सके, ऐसी बात है। जो आचार्य साधुता—विरक्तताका रहस्य समझानेके लिये, त्यागवृत्तिका ज्वलन्त उदाहरण भारतके सम्मुख रखनेके लिये, आया था, उसने 'हाथीरामजी' को धनके लोभसे साधु बनाया हो, यह भला कोई भी विद्वान् कैसे मान सकता है? धनके लोभसे, गद्दीके लोभसे, जो किसीको शिष्य बनाता है अथवा जो कोई शिष्य बनता है वह कितना अधम है इसकी सीमा नहीं। विरक्तता साधुताका मूल है। जो वैराग्य उत्पन्न हुआ हो तो साधु होना उत्तम है। वैराग्य न हो तो धनके लोभसे, प्रतिष्ठाके लोभसे, साधुका वेष बनाकर संसारमें वाञ्चनाका विस्तार करना, प्रभुके दरबारमें महान् अधर्म है। ऐसा अधमकार्य एक महान् वैष्णवाचार्य्यके हाथसे होना कभी भी शक्य नहीं है।

इस किंवदन्तीके विषयमें मैंने बालाजीके वर्तमान श्री महान्तजीको लिखकर कुछ पूछ पाछ की थी। परन्तु उसका कुछ उत्तर नहीं मिला। अतः मैं निश्चितरूपसे कहनेमें असमर्थ हूं कि श्री स्वामीजीका और श्री हाथीरामजी बाबाका समानकाल है या नहीं?

इसी पुस्तकमें लिखा है कि "स्वामीजी रामेश्वर जाकर उसी विद्वानसे शास्त्रार्थ करके अपने पन्थके साधुओंको शङ्कर ऊपर जल चढ़ानेका अधिकार प्राप्त कराया।

श्री स्वामी रामानन्द और रामेश्वर

कैसा अनर्थ और अन्याय श्री स्वामीजीके साथ किया गया है। एक वैष्णवाचार्य अपने अनुयायियोंको शङ्कर ऊपर जल चढ़ानेका आदेश देकर किस प्रकार वैष्णवता स्थापन कर सकता है? भगवान्के भक्तोंको श्री शङ्करजीको जल चढ़ानेसे क्या लाभ? भक्तिमें अनन्यता प्राणरूप है। वह अनन्यता इस प्रकारके व्यवहारसे कैसे स्थिर रह सकती है? विनु प्रयास भवसागर तरनेकेलिये क्या वैष्णवसम्प्रदायमें भक्ति और प्रपत्तिरूप साधन नहीं है? क्या हमारे प्रभुमें शक्ति नहीं है कि वह अपने भक्तोंको भवसागरके पार पहुंचा दें? क्या रामनामका माहात्म्य अस्त हो गया था? क्या राममन्त्रकी शक्ति क्षीण हो गई थी? जिसके मस्तकपर प्रभु और महाराणीजीका चरणारविन्द विराजमान हो, भुजाओंपर भगवदायुध हों, गलेमें भगवान्की प्रियतमा झूल रही हों, मुखमें पवित्र श्री सीताराम नामका रटन हो रहा हो, हृदयमें मनोहर श्यामसुन्दर परमानन्दधाम श्रीरामकी 'कोटिन काम लजावनहारी' मधुर मूर्तिका ध्यान हो उसे अपने प्रभुको छोड़कर श्री शिवजीके पास दौड़ जानेका अवसर ही कब मिल सकता है? एक गुजराती कविने गाया है कि—

"सौन्दर्यना सागर ज्यां लहँरा लेताँ होय,
त्यां नेत्रने नेवराश केवी ?"

'अर्थात् जहां सौन्दर्य समुद्र लहरा रहा हो उस सौन्दर्य–रस–पानसे आंखोंको अवकाश कहांसे मिले।' भक्तिरसमें भींजा हुआ हरिजन भी यदि अन्य देवोंकी सेवाकेलिये लोलुप हो तो इसका सीधा अर्थ यह है कि अभी उसके हृदयमें भक्ति आरूढमूला नहीं हुई है।

मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि श्रीविष्णुभक्त परम वैष्णव श्री-शङ्करजीका अपमान करें। मैं मानता हूं कि भक्ताग्रगण्य श्री शङ्करजी भक्त-मूर्धन्य हैं। भक्तापचार हमारे यहां अत्यन्त निषिद्ध है। परन्तु मुझे तो इतना ही कहना है कि श्रीशिवजी की पूजा दो प्रकारसे हो सकती है। एक तो जैसा कि शैव लोग अथवा तो श्रीशिवजीके आग्रही भक्त लोग करते हैं। तथा एक वह पूजा है जिसे प्रभुरूपमें न मानकर, उनके आगे किसी वस्तुको वरदान रूपमें न मांगकर, उनकेविना हरिभक्ति प्राप्त ही न होगी, प्रभु भक्तिके वही द्वार हैं, इत्यादि भावनाको हृदयमें धारण न करके वैष्णवजन कर सकते हैं। ऐसी पूजा मेरी दृष्टिमें इतना ही पर्याप्त है कि श्रीशिवजीका कभी हमारे शब्दोंसे अपमान न हो, भक्तिमार्गमें उन्हें अपना अग्रगण्य स्वीकार करना, प्रभुचरणोंमें उनकी अनन्यताको अपने हृदयमें प्रतिबिम्बित करना इत्यादि। जल चढ़ाना, उनके लिङ्गपर चढ़े जलको मस्तकपर धारण करना, इत्यादि कार्य मेरी दृष्टिमें तो श्रीसम्प्रदायके अनु-कूल नहीं ही है।

अतः श्री स्वामीजीने कभी भी अपने शिष्योंकेलिये रामेश्वर दर्शनके-लिये प्रयत्न नहीं किया है।

श्री स्वामीजी और हन्टर साहब

हन्टर साहब लिखते हैं कि—"रामानुज स्वामीके पश्चात् उनकी गद्दी ऊपर बैठनेवाला पांचवां आचार्य श्री स्वामी रामानन्दजी थे।

श्री स्वामीजी और गुजरात विद्यापीठ

अहमदाबादके गुजरात विद्यापीठने भी हन्टर साहेबका ही अनुकरण करते हुये एक पुस्त-कमें लिखा है कि—"यह महापुरुष १५ वीं शता-ब्दीके आरम्भमें हो गये हैं। और वह स्वामी रामानुजाचार्यकी गादीके पांचवा आचार्य थे।

विद्यापीठने श्रीस्वामीजीके अवतारकालके निर्णय करनेमें जो भूलकी है उसका विवरण तो मैं आगेके प्रकरणमें करूंगा। यहां इतना ही कह देना पर्याप्त है कि श्रीस्वामी रामानन्दजीको श्री रामानुजस्वामीजीकी गादीके पांचवां आचार्य माननमें हन्टरसाहेब और उनके अनुयायी विद्यापीठ, दोनोंने ही भूलकी है। विद्यापीठने इतनी प्रामाणिक संस्था होकर भी, जिसे वह अल्प प्रयाससे जान सकती है—उसे जाने विना इस प्रकार अपनी सम्मति प्रकट करनेमें बड़ी भारी भूल की है।

श्री स्वामीजीका विवाद-ग्रस्त अवतार संवत्

जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है अगस्त्य संहिताके अनुसार कलियुगके ४४०० वर्षव्यतीत होनेके पश्चात् श्रीस्वामी रामानन्दजीका अवतार हुआ है। इस हिसाबसे आज ६३० वर्ष होते हैं।

भविष्यपुराणमें स्वामीजीके समयमें सिकन्दर लोदीका होना लिखा है। इस लिखनेका महत्त्व उस समय बढ़ जाता है जब कि हम देखते हैं कि श्रीकबीरदासजीको, जो कि स्वामीजीके ही शिष्य थे प्रायः सभी ऐतिहासिकोंने सिकन्दर लोदीके समयमें ही स्वीकार किया है। सिकन्दर लोदीका समय प्रायः सभी ऐतिहासिकोंकी सम्मतिमें १५ वीं शताब्दीमें १५४५ से १५७४ ई० तक माना गया है। अगस्त्यसंहिताके अनुसार श्रीस्वामीजीका अवतार ई० सन् १३०० में होता है। यदि स्वामीजीका आयुष्यकाल २५० वर्षसे भी कुछ अधिक मान लिया जावे तो अगस्तसंहिता और भविष्यपुराण दोनोंकी एकता हो सकती है। क्यों कि ई० १४४५ में लोदीवंशका आरम्भ हो जाता है। परन्तु इतना बड़ा आयुष्यकाल स्वामीजीका किसीने भी स्वीकार नहीं किया है। परलोकवासी श्रीयुत प० रामनारायणदासजीके कथनानुसार स्वामीजी इस भूतलपर ११.१ वर्ष तक विराजमान रहे। भक्तमालमें श्री भगवान् प्रसादजीके कथनानुसार स्वा-

मीजीका आयुष्यकाल १४६ वर्षका होता है। रघुराजसिंहजीने 'वर्ष सप्त शत' लिखा है। इसका ७०० वर्ष अर्थ करके भक्तमालमें श्रीभगवान्प्रसादजीने एक प्रकारसे इसका खण्डन कर दिया है। परन्तु यदि ७०० वर्ष अर्थ न करके, 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस नियमके अनुसार १०७ वर्ष अर्थ कर दिया जावे तो लगभग श्री० प० रामनारायणदासजीके सिद्धान्त तक वह पहुंच जाते हैं। जो कुछ हो १५० वर्षसे अधिक आयुष्यकाल आज तक किसीने स्वीकार नहीं किया है। और कबीरदासजी स्वामीजीके शिष्य थे यह सबको एक स्वरसे स्वीकृत है। वह सिकन्दर लोदीके समयमें थे इसमें भी सब सहमत हैं। भक्तमालमें श्रीभगवान्प्रसादजीने भी यही लिखा है। तब, अब यह समस्या हल नहीं होती है कि स्वामीजीके परधाम पधार जानेके १०० वर्ष बाद कबीरजी उनके शिष्य कैसे हुये। तबतो हमको अगत्या इस सिद्धान्तपर आना पड़ता है कि स्वामीजी सिकन्दर लोदीके समयमें ही थे और वह समय १५४५ से आरम्भ होता है। इतिहासमें एक दूसरे सिकन्दरका भी उल्लेख है। परन्तु वह हुमायूं है। सिकन्दर नामसे तख्तपर बैठा था और डेढ़ मासके बाद ही मर गया था। अतः इस सिकन्दरका भ्रम तो किसीको नहीं ही होना चाहिये।

श्री स्वामीजी और फ़र्कुहर साहब

फ़र्कुहर साहब जो कि एक विज्ञ और प्रतिष्ठित अङ्गरेज हैं—उन्होंने अपने एक बड़े लम्बे अङ्गरेजी लेखमें स्वामीजीके सम्बन्धमें कितनी ही विचारणीय बातें लिखी हैं। जिनपर विचार करना परम आवश्यक है। प्रथम मैं यहांपर उनके उस लेखांशको लेता हूं जिसमें उन्होंने स्वामीजीके समयका निर्णय किया है। वह लिखते हैं—

(१) स्वामीजीका साम्प्रदायिक समय १२६६ ई० से १४१० ई० तक है।

(२) नामदेवजी १२९० ई० में ज्ञानेश्वराचार्य्यसे मिले थे। अतः नामदेवजी और ज्ञानेश्वरजी समकालिक हैं। इसके पश्चात् डाक्टर भण्डारकरके शब्दोंसे थोड़ासा दबकर नामदेवजीका समय १४०० से १४३० ई० तक माना है। तथा ग्रन्थसाहेबके आदारपर नामदेवजीको स्वामीजीका निकट पूर्ववर्ती बताये हुये फ़र्कुहर साहब इस सिद्धान्तपर आते हैं कि–

(३) स्वामीजीके आचार्य्यत्वका समय १४२५ अथवा १४३० ई० के लगभग आरम्भ होता है।

(४) मैकलिफ़ने पीपाजीका समय निश्चितरूपसे १४२५ ई० दिया है। पीपाजी स्वामीके शिष्य थे। वह १४४५ ई० में २० वर्षकी अवस्थामें दीक्षित हुये होंगे। अतः स्वामीजीका उपर्युक्त समय ही योग्य समय है।

(५) कबीरजी १३९९ और १४४० इन दो मतभेद ग्रस्त सन्में पैदा हुये। १५१८ में परलोक सिधारे। अन्तिम सन् अर्थात् १४४० ई० उचित लगता है। क्योंकि तिसपर भी उनकी अवस्था ७८ वर्षकी होती है। पूर्व सन् माननेसे ११९ वर्षका आयुष्य होता है। अतः १४५५ में १५ वर्षका अवस्थामें स्वामीजीसे मिले होंगे।

(६) मीराबाई रविदास चमारकी शिष्या थीं। उन्होंने १४७० ई० के लगभग अपने देवरसे पीडित होकर चित्तौरगढ़को छोड़ दिया। रविदासजी स्वामीजीके शिष्य थे। मालूम होता है कि उस समय श्री स्वामीजी स्वर्गवासी हो गये होंगे। अतएव रविदासको स्वतन्त्र आचार्यत्व प्राप्त हुआ होगा। इससे सिद्ध हुआ कि स्वामीजीका आचार्यत्वकाल १४३० से १४७७ तकका है।

(७) स्वामीजीके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् कबीरदासके आचार्यत्वका समय १४७० से १५१८ तक ४८ वर्षके विस्तारका होजाता है। अत-

एवं हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि स्वामीजीका जन्म १४०० के लगभग हुआ। १४३० के लगभग आचार्यत्वको प्राप्त हुये और १४७० के लगभग स्वर्गवासी हुये।

यहां तक मैंने—फ़र्कुहर साहेबने स्वामीजीके कालके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है—उसका अपने शब्दोंमें संक्षेपमें वर्णन किया है। अब इसपर विचार करता हूं।

फ़र्कुहर साहेबके विचारको मनन करनेके पश्चात् हम इस परिणामपर आते हैं कि वह भारतवर्षके एक आवतारिक, विरक्त, योगी, बालब्रह्मचारी ऊर्द्ध्वरेतस्कके लिये भी ७० वर्षसे अधिक जीना असम्भव मानते हैं। मैं नहीं समझता हूं कि जब आज कल भी हमारे देशके तथा यूरोपके भी कितने ही लोग १५०–१५० वर्ष जीवन व्यतीत करके परलोकयात्रा करते हैं तो इतने बड़े संयमि–सार्वभौमको ७० वर्ष ही जीनेकी सम्भावना क्योंकी गई? फर्कुहर साहेबको हमारा साम्प्रदायिक समय उचित नहीं प्रतीत होता है अतएव उन्होंने केवल उसका उल्लेख करके, आगे चलकर अपनी सम्मति स्थिरकर दी है। परन्तु मैं कहता हूं कि जो साम्प्रदायिक समय है वही उचित है। अर्थात् १३०० ई० में ही उनका इस भूतलपर पदार्पण हुआ है। हमारे इस मानलेनेपर एक प्रश्न रह जाता है कि यदि यह समय मानलें तो साम्प्रदायिकोंके ही मतानुसार उनका आयुष्यकाल १०७ अथवा १११ वर्षमें अर्थात् १४०९ अथवा १४१३ में पूरा हो जाता है। तथा कबीरदासजी फ़र्कुहर साहेबके मतानुसार १४४० में जन्मलेकर १५ वर्षकी अवस्थामें—१४५५ ई० में दीक्षित नहीं हो सकते। दूसरा प्रश्न यह होता है कि यदि मैकलिफ़का दिया हुआ पीपाजीका सन् सत्य है तो पीपाजी १४२५ में जन्मलेकर १४४५ में स्वामीजीसे दीक्षा नहीं ले सकते।

इन सब प्रश्नोंका उत्तर केवल एक मार्गसे हो सकता है। वह यह कि, जिस प्रकारसे श्रीस्वामीजीका अवतार संवत् शास्त्रीयनियत संवत् है उस प्रकारसे उनके साकेतगमनका नियत संवत् नहीं है। परधामगमनकालमें साम्प्रदायिकोंका विवाद है। मेरी अपनी सम्मति है कि स्वामीजीका शास्त्रानुसार अवतार सन् १३०० ई० और परधामगमन सन् १४७० ई० है। अर्थात् उनका आयुष्यकाल १७० वर्षका है। एक आवतारिक ब्रह्मनिष्ठ परमयोगी महापुरुषकेलिये इतने समय तक परोपकारार्थ शरीरको धारण करना किञ्चिन्मात्र भी आश्चर्यकारक नहीं है। सौ २ वर्ष तक तो आज भी हिन्दुस्तानमें कितनेही आयुष्यकाल भोगनेवाले बैठे हैं। अतः मेरे इस माने हुये समयमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती। तथा इस प्रकारसे इतिहासकारोंके कोलाहलकी भी सङ्गति हो जाती है।

यहांपर और भी एक प्रश्नका निर्णय कर लेना आवश्यक है। सिकन्दर लोदीके समयमें कितने ही लोगोंने कबीरजीका होना माना है। और लोदीका समय १५४५ माना गया है। यदि स्वामीजी १४७० में परधाम पधार गये हों तो ७५ वर्ष अथवा इससे भी अधिक पीछेके समयमें होनेवाले कबीरजी उनके शिष्य कैसे हुये?

यह प्रश्न खूब महत्त्व रखता है। अतः इसपर एक नयी और प्रौढ दृष्टिकी आवश्यकता है। यह तो सबको ज्ञात है कि कबीरदासजी द्वादश भगवन्मतकोविदोंमेंसे एक हैं। वैष्णव धर्मके प्रचारकेलिये जिस प्रकार श्री स्वामीजी महाराजने अवतार लिया था उसी प्रकार कबीरदासजी भी वैष्णवधर्मकी सेवाकेलिये आये थे। परन्तु आज कबीरजीके ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि उन्होंने साकार ब्रह्मकी उपेक्षा करके निराकार ब्रह्मको अधिक महत्त्व दिया है। मैं यह माननेके लिये कभी भी तैयार नहीं हूं कि श्री स्वामीजी जैसे आचार्यके शिष्य और स्वयं भगवन्मतकोविद—स्वामीजीके सिद्धान्तों, उपदेशों और आदर्शसे विरुद्ध कोई भी काम करें। तब

हमको विवश होकर यह मान लेना पड़ता है कि सिकन्दर लोदीके समयमें जो कबीर रहे होंगे वह मूल कबीरजीके पीछेके गद्दीनशीन होंगे। उन्होंने भी अपनेको कबीर नामसे ही प्रख्यात किया होगा। तथा मूल कबीरजीके साकारब्रह्मके सिद्धान्तमें निराकार ब्रह्मका सम्मेलन कर दिया होगा। मेरा यह कथन केवल कल्पनाकी भित्तिपर आधार नहीं रखता है, प्रत्युत इसमें प्रमाण भी उपस्थित किया जा सकता है।

अयोध्यामें श्रीहनुमत्‌निवास तथा बड़ीकुटिया इत्यादि कई जो वैष्णव स्थान हैं वह कबीरदासीय स्थान हैं। परन्तु वह लोग अपनेको 'कबीरपन्थी' न कहकर 'श्रीरामकबीर' कहते हैं। आजके 'कबीर-पन्थी' लोगोंके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये लोग श्रीरामके परमोपासक और श्रीरामानन्दीय वैष्णव हैं। श्रीवैष्णवोंके साथ ही उनका सर्व प्रकारका सम्बन्ध है। अतः 'रामकबीर' इस संज्ञान्तरके बलसे मैं कह सकता हूं कि रामकबीर ही मूल कबीरजी थे और निराकारवादी कबीर पीछेसे उन्हीं मूल कबीरजीकी शाखामेंसे हैं. और उनके साथ आज श्रीरामानन्दियोंका कोई घनिष्ट सम्बन्ध—व्यवहार दीख नहीं पड़ता है।

तथा श्री कबीरजीके जो चमत्कार सिकन्दर लोदीके समयमें वर्णित हैं, उनके विषयमें मुझे प्रतीत होता है कि या तो मूल कबीरजीके ही चमत्कारोंका सम्बन्ध उस समयके कबीरजीके नामसे प्रसिद्ध है, या तो वह भी मूल कबीरजीके समान ही महात्मा तथा चमत्कारी पुरुप रहे हों। मैं केवल दिशाका निर्देश कर रहा हूं। उसके याथातथ्यका निर्णय विद्वद्वर्ग इस रीतिसे करे जिससे अपना साम्प्रदायिक स्तंभ टूट न जावे।

सिकन्दर लोदीका दूसरा समय

मैं पूर्वमें दिखा चुका हूं कि सिकन्दर लोदीका समय १५४५ से आरम्भ होता है। परन्तु इसमें मतभेद तो अवश्य है। कितने ही इतिहासवेत्ताओंकी सम्मतिमें १४५० से लोदी वंशका आरम्भ होता है। सिकन्दर लोदी-

का बाप बहलोलखां लोदी १४५० ई० में दिल्लीके तख्तपर बैठा और ३८ वर्ष तक राज्य करके ई० १४८८ में मर गया। इसी सन्में सिकन्दर लोदी तख्तपर आया। १५१७ ई० तक राज्य किया। यदि सिकन्दर लोदीके समयमें स्वामीजी थे, यह सत्य हो और इस समयके कबीरजी ही स्वामीजीके शिष्य थे, यह भी सत्य हो तो, यह मान लिये विना छुटकारा नहीं है कि स्वामीजी महाराजका आयुष्यकाल दो सौ वर्षसे ऊपर है।

डा० हंटर साहबने लिखा है कि कबीरदासजी १३०० ई० से १४२० तक थे। मूर साहबके मतसे कबीर साहेब १६ वीं शताब्दीके आदिमें थे। फारबेशकी डिक्शिनरीमें उनका समय १४ वीं सदी माना गया है। 'हिन्दुइज़्म' नामके पुस्तकमें भी १४ वीं सदी है।

अन्य अंग्रेज लेखकोंके मतमें कबीरदासजीका समय

कबीरजीके पुस्तकोंमें भी उनके समयका ठीक २ पता नहीं हैं। तथापि कितनी ही 'साखियां' प्रकाशके कुछ किरण दे सकती हैं। एक साखी है—

कबीरमतके पुस्तकोंमें उनका समय

'चौदहसो पचपन सालगिरा चन्द्रवार एक ठाट ठये।'

इस साखीके अनुसार कबीर साहब १३९८ में जन्म लिये। एक दूसरी साखीमें लिखा है—

'संवत् पन्द्रह सौ औ पांच, मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकादशी, मिलो पवनसे पवन॥'

इस साखीसे उनका मरण संवत् १४४८ सिद्ध होता है। इस गणनासे उनका आयुष्यकाल केवल ५० वर्षका होता है। एक दूसरी साखी ऊपरकी साखीसे मिलती जुलती इस प्रकार है—

' पन्द्रह सो पचहत्तरा कियो मगहर गमन ।
माघ सुदी एकादशी मिलो पवनसे पवन ॥ '

इसके अनुसार उनका आयुष्यकाल १७७ वर्षका होता है ।

श्रीयुत भगवानप्रसादजी और कबीरजी

भक्तमालके टीकाकार श्रीयुत भगवानप्रसादजीने नामदेवजी और कबीरजीको समकालिक लिखा है । नामदेवजीका जन्म सन् १४८८ ई० लिखा है । और सिकन्दर लौदी बादशाहका समय बताया है । इसी भक्तमालकी टीकामें टीकाकारने एक दोहा लिखा है कि—

' पन्द्रह सौ उनचासमें मगहर कीनों गौन ।
अगहन सुदी एकादशी मिले पौन सो पौन । "

इससे उनका आयुष्यकाल, यदि १३९८ में जन्म मानें तो १५१ वर्षका हो जाता है । परन्तु इसी भक्तमालमें उनका जन्म संवत् १४५१ वि० लिखा है । इस गणनासे ९८ वर्षका आयुष्यकाल होता है । श्रीयुत् भगवान्प्रसादजीने न जाने किस हिसाबसे ३ वर्ष अधिक लिखा है ।

ई० मार्सडेन, लाला सीतारामजी और कबीरजी

ई० मार्सडेन और लाला सीतारामजीने कबीरजीका जन्म १३८० और मरण सन् १४२० ई० लिखा है । इस हिसाबसे कबीरजीका आयुष्यकाल ४० वर्षका होता है ।

सिंहावलोकन

इस प्रकारसे कबीरजीका समय मतभेदग्रस्त समय है । मि० हंटर, फ़ारबेश, हिन्दुइज़्म, कबीरकी साखी ई० मार्सडेन और श्रीयुत भगवान् प्रसादजी इन ६ की सम्मतिसे कबीरदासजी १४ वीं शताब्दीमें थे । अर्थात् स्वामीजी महाराजसे १०० वर्षके पीछेके समयमें इनका जन्म हुआ था ।

फ़र्कुहर साहब १५ वीं शताब्दीमें ही जन्म और मरण दोनों ही मान रहे हैं। उनके मतसे कबीरजीका जन्म १४४० ई० में और मरण १५१८ ई० में हुआ।

मूरके मतसे कबीरजी स्वामीजीके दो सौ वर्षके पीछेके समयमें हुये।

इस विषयमें यदि अधिक मतकी प्रधानता स्वीकार की जा सके, जो कि आजके युगकी एक विशेष बात है, तो हम इस सिद्धान्तपर आ सकते हैं कि स्वामीजीका अवतार सन् १३०० ई० में है। उनका आयुष्यकाल दो सौ वर्षके भीतर है। इसी समयमें कबीरजी स्वामीजीके शिष्य हुये हैं।

परन्तु अब रह गया यह कि, सिकन्दर लोदीके समयमें कबीरजी थे। स्वामीजी भी थे। ऐसी धारणा ऐतिहासिकोंकी है। सिकन्दर लोदी १४८८में तख़्तपर बैठता है। १५१७ तक बादशाही करता है। पूर्वके कहे हुये ६ सम्मतियोंके बलसे सिकन्दर लोदीके तख़्तपर बैठनेसे पहले ही कबीरजी मर जाते हैं। केवल श्री भगवान्प्रसादजीके मतमें, सिकन्दरके समयमें कबीरजी ५ वर्ष जीते हैं। परन्तु श्रीयुत भगवान् प्रसादजीने सिकन्दर लोदीका समय १५४५ दिया है। यदि इसको मान लें तब तो सिकन्दरसे ५० वर्ष पहले कबीरजी मर जाते हैं। ऐसी ही भूल आपने नामदेवजीके विषयमें भी की है। उनका जन्म सन् १४८८ मानकर—सिकन्दर लोदीके समयमें वह थे—ऐसा लिखा है परन्तु उसका समय इनके ही सिद्धान्तके अनुसार ५७ वर्ष पीछे आरम्भ होता है। सम्भव है कि उस समय नामदेवजी परधाम चले गये हों।

श्री पीपाजीका समय

यहांपर इतना ध्यान रखना चाहिये कि मेरे विचारसे लोदीके समय बतानेमें श्रीभगवान्प्रसादजीको भ्रम हुआ है। भक्तमालमें उन्होंने लिखा है कि श्री पीपाजीका समय संवत् १४६० से ऊपर और १५५० अर्थात् ई० १४१४ और १४६४ के भीतर था। इतनेके भीतर ही उनका जन्म और मरण दोनों ही आपके मतसे सिद्ध है।

फ़र्कुहर साहबके मतसे मैकलिफने १४२५ ई० पीपाजीका जन्मसन् दिया है। इनके मतसे २० वर्षकी अवस्थामें १४४५ ई० में वह स्वामीजीके शिष्य हुये थे। इस थोड़ेसे मतभेदके छोड़नेपर दोनों महानुभाव एक ही रेखापर आकर खड़े हो जाते हैं।

श्री स्वामीजीका नियत समय

इतनी लम्बी यात्रा कर लेनेके पश्चात् हम इस निश्चित सिद्धान्तपर आ जाते हैं कि स्वामीजीका जन्म साम्प्रदायिक दृष्टिसे जो कि सर्वथा ही सत्य है—सन् १३०० ई० में हुआ और १३९ वर्ष पर्यन्त इस भाग्यशालिनी भरतभूमिको पवित्र करके १४४९ ई० में परमधाम पधारे।

श्री० प० रामनारायणदासजीने जो परमधाम सन् १४११ दिया है वह अशुद्ध है।

श्री स्वामीजी और फर्कुहर साहेब

उपर्युक्त फ़र्कुहर साहबने और भी कितनी ही बातें अपने उसी लेखमें लिखी है जिसके एक अंशपर ऊपर पूर्ण विचार कर चुका हूं। आप लिखते हैं कि—

"साम्प्रदायिकोंकी धारणा है कि वे (श्री स्वामी रामानन्दजी) दक्षिणसे आये तथा श्री रामानुचार्य्यसे उनका सम्बन्ध है। '....झगड़ेके कारण वे (स्वामी रामानन्दजी) सम्प्रदायसे अलग हो गये। कभी २ यह भी कहा जाता है कि उस पार्थक्यका परिणाम केवल इतना ही हुआ कि सामाजिक विषयोंमें श्रीरामानुजीयोंसे वे कुछ अधिक स्वतन्त्र हो गये।....तिसपर भी हर हालतमें यही निरूपण किया जाता है कि वे श्री रामानुजाचार्य्यके ही सिद्धान्तोंका उपदेश करते थे उसी मन्त्रका व्यवहार करते थे और उसी सम्प्रदायमें सम्मिलित थे।

फ़र्कुहर साहेबने जो कुछ लिखा है, वह उनकी इच्छाकी बात है। अन्याय इतना ही किया है कि 'साम्प्रदायिकोंकी धारणा है' ऐसा लिख

दिया है। कोई भी साम्प्रदायिक श्रीस्वामीजीको दाक्षिणात्य नहीं मानता है। झगड़ेसे वह श्रीरामानुजाचार्य्यजीके सम्प्रदायसे पृथक् हो गये यह भी एक अन्ध परम्परामात्र ही है। श्री रामानुजसम्प्रदायसे पृथक् होकर स्वामीजी सामाजिक विषयोंमें कुछ अधिक स्वतन्त्र हो गये, यह कहना भी अनुचित ही है। सामाजिक विषयमें उनका लक्ष्य था परन्तु स्वतन्त्र नहीं थे, किन्तु शास्त्रीयमर्यादामें रहकर ही सामाजिक सङ्गठन उन्होंने किया। परन्तु श्रीरामानुजसम्प्रदायसे पृथक् होकर नहीं; प्रत्युत पृथक् थे ही। इसका विवेचन प्रसङ्गोपात्त आगे आवेगा। स्वामीजी दाक्षिणात्य थे इस भ्रमका निराकरण तो फ़र्कुहर साहेबने स्वयंकर लिया है और वह यह मानते हैं कि स्वामीजी प्रयागके थे। आगे चलकर आप लिखते हैं—

"उन्होंने (स्वा० रामानन्दजीने) कभी भी विशिष्टाद्वैतकी शिक्षादी इस बातका कहीं किञ्चिन्मात्र भी प्रमाण नहीं है। उनके शिष्योंके उपदेशमें अद्वैतवादके उल्लेख अधिक प्रमाणमें मिलते हैं। कहीं २. भेदाभेदसिद्धान्तकी भी चर्चा हुई है। किन्तु श्रीरामानुजाचार्यके सविशेष सिद्धान्तका उनमें कहीं पता नहीं है।"

इस बातका पूर्णप्रमाण मैं आगे चलकर लिखूंगा कि स्वामीजीने सर्वदा विशिष्टाद्वैतकी ही शिक्षा दी है। उनके शिष्योंमेंसे—का अर्थ यदि द्वादश शिष्योंसे हो तब तो यह जानना अवशिष्ट रह जाता है कि उन द्वादश शिष्योंमेंसे किन २ शिष्योंके उपदेशमें अद्वैतवादका सिद्धान्तरूपसे उल्लेख है। कबीरजीके यहां जो कुछ लिखा है उसका स्वरूप मैं पूर्वमें वर्णन कर चुका हूं। यदि उनके शिष्योंमेंसे—का अर्थ यह है कि समस्त श्री रामानन्दीय वैष्णव। तो भी यह बताना चाहिये कि किन २ उपदेशकोंने अद्वैतवादका उपदेश दिया है।

मेरा अनुमान है कि फ़र्कुहर साहेबको अपनी ऐसी सम्मति स्थिर करनेमें हिन्दी कविसम्राट् श्री गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजका रामायण

मूलभूत हो। मैं समझता हूं कि श्री गोस्वामीजीके रामायणके निम्न लिखित पदोंसे ही फ़र्कुहर साहेब भ्रान्त हुये हैं। वे पद यह हैं—

'वन्दे वाणीविनायकौ', 'भवानीशङ्करौ वन्दे', 'शङ्कररूपिणम्', 'गणनायक करिवरवदन', 'उमारमण करुणा अयन', 'करौ कृपा', 'तासु शाप हरि कीन्ह प्रमाणा', 'पूजन गौरि सखी ले आई', 'मन जाहि रांचेउ मिलहिं सो बर', 'इहि भाँति गौरि अशीष सुनि सिय सहित हिय हरषित चली', 'सभय हृदय विनवति जेहि तेही। मनहीं मन मनाय अकुलानी। होहु प्रसन्न महेश भवानी। गणनायक वरदायक देवा। आज लगे कीन्हीं तव सेवा। वार २ विनती सुनु मोरी। करहु चाप गरुता अति थोरी।' 'आप चढ़े स्यन्दन सुमिरि हर गुरु गौरि गणेश।', "'भुधरसुता' को 'वामाङ्क' में लिये हुये 'वालविधु' 'गरल' 'व्याल' वाले हे 'सुरवर' हे 'सर्वाधिप' हे 'सर्वगत' श्री शङ्करजी 'पातु माम्'', 'गनपति गौरि गिरीश मनाई', 'कुसगुन' और 'भयानक सपना' देख २ कर भरतजी 'शिव अभिषेक करहिं विधि नाना' तथा 'हृदय महेश मनाई' मातु, पिता, परिजन, भाईका 'कुशल', मनाते थे, वंन काण्डमें 'शङ्करं' 'वन्दे', युद्धकाण्डमें 'कालव्यालकरालभूषणधरं' 'कलिकल्मषौघशमनं' 'काशीशं' 'गिरिजापतिं' 'नौमि' 'यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्', 'लिङ्ग थापि विधिवत् करि पूजा' 'शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहु मोहिं न भावा', 'शङ्कर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढमति थोरी', 'शिवद्रोही मम दास। सो नर करहिं कल्पभर कोटि नरक महं वास' इत्यादि।

फ़र्कुहर साहेबने विचार किया होगा कि ऐसे प्रसिद्ध विद्वान् और उद्भट कविकी लेखनीमें उचित समयपर विष्णुसे कहीं प्रार्थना नहीं की गई है। सर्वत्र तामस ही देवसे वन्दना, प्रार्थना की गई है। अतः अवश्य ही श्रीरामानन्द सम्प्रदायमें अद्वैतवादका उपदेश होगा। यद्यपि इन तामस

देवताओंसे अद्वैतवादका कोई सम्बन्ध नहीं तथापि एक प्रकारसे अत्यन्त सामीप्य तो अद्वैतवादके साथ इनका है ही है अतः फ़र्कुहर साहेब इतनी दृढ़तासे अपना सिद्धान्त बना सके होंगे।

श्री गोस्वामीजीके रामायणसे जिन २ लोगोंको फ़र्कुहर साहेबके समान ही भ्रम होता हो उन सबको कुछ प्रकाश मिले, एतदर्थ मैं अयोध्याके प्रसिद्ध रामायणी श्री रामबालकदासजी महाराजका एक पत्र यहां ज्योंका त्यों उद्धृत कर देना चाहता हूं। यह पत्र मेरे एक पत्रके उत्तरमें आया था।

श्री रामायणीजीका पत्र

यह प्रश्न कि वाणी विनायककी वन्दना क्योंकी और 'गुरुं शङ्कर-रूपिणं' क्यों कहे ; सो वाणी विनायक शङ्करजी भागवत हैं। इसका प्रमाण इसी ग्रन्थमें है। देखि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ढढोरी॥ देत न बनइ निपट लघु लागी। एक टक रही रूप अनुरागी॥ अनुराग होना इष्टमें यथार्थ है। और सारद दारू नारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तरजामी॥ जेहिपर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥ आप बानीके प्रेरक हैं। और गणेशजी श्रीरामनामको जपि प्रदक्षिणा करि प्रथम पूज्य भये। यथा। महिमा जासु जान गन-राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ। इससे गणेशजी भागवत हैं। और शङ्करजीका वचन है कि, रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि शिव नायउ माथ। और तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती। पुनः, सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा। और पार्वतीजी भी वैसा ही, यथा; मंगल भवन अमंगलहारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी। पुनः, रामरूप नप सिष सुभग बारहिंबार निहारि। पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि।' ऐसी दशा होना इष्टमें है। क्योंकि शङ्करजीने रामरूपका बोध कराया है। यथा, तुम कृपाल सब संशय हरऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ। श्री रामरूपका जानना, श्री रामनामका

जपना, यही भागवतका चिह्न है। यथा सुन्दरकाण्डमें जब श्री हनुमानजी महारानीजीको ढूँढते २ विभीषनजीके यहां गये हैं तब उनने प्रातःकाल, राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा। सो भागवतका महत्त्व आपके सम्प्रदाई ग्रन्थनमें अच्छी तरहसे प्रकाशित है। सो यह सर्व भागवत हैं। यह जानि करके गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने मंगलाचरण किये। और गुरुं शङ्कररूपिणं कहे। औ महारानी भी पूजन करती भई। और श्री दशरथजी महाराज भी स्मरण किये। और श्री रामजी महाराज वनयात्राके समय स्मरण किये। क्योंकि भागवत भागवतका स्मरण करते हैं। पुः विनयपत्रिका ग्रन्थका। किये छोह छाया कमल करको भक्तपर भजते हि भजै और यह ग्रन्थ सर्वमत रक्षक है। इस ग्रन्थमें शिव महत्त्व, शक्ति महत्त्व, गणेश महत्त्व, सूर्य महत्त्व कहि औ श्री रामजीको पर ठहराये हैं। जिससे इन देवनके उपासक इस ग्रन्थमें श्रवण धारण रूपी स्नान पान करें। और श्री रामजीको पर जानें। और लिङ्ग स्थापना इसलिये किये कि शिवकांचीमें और विष्णुकांचीमें परस्पर विरोध दूर करनेके लिये श्रीमुख वचन कहे ॥ दोहा ॥ शङ्कर प्रिय मम द्रोही शिवद्रोही मम दास। ते नर करहिं कल्पभर घोर नरक मँह वास ॥ जिससे ऐसा निरोध न करें। ऐसे नरकके भागी न होय। हरिहर निन्दा सुने जो काना। होय पाप गोघात समाना। पुः परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। पर निन्दा सम अघ न गरीसा। यदि कहिये भागवतका यह वेष नहीं है तो पद्मपुराणमें भगवतवचन है।

त्वं च रुद्र महाभाग मोहनार्थं सुरद्विषाम्।
पाषण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुरसत्तम ॥

भगवत आज्ञासे ऐसा वेष किये हैं। लेकिन साज अमङ्गल मङ्गलरासी। अशिव वेष शिव धाम कृपाला। श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे १३ अध्याये षोडशश्लोके,

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा॥

नवमस्कन्धे ४ अध्याये। श्रीभगवानुवाच—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

६३ श्लोके षष्ठस्कन्धे ३ अध्याये—

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते॥२०।२१॥

पुनः वानी नाम सीताजीका है। प्रमाण जानकी सहस्र नाम है। परन्तु जानकी सहस्र नाम दो हैं। एक तो अद्भुतरामायणमें। एक सुन्दरीतन्त्रमें। यहां सुन्दरीतन्त्रका प्रमाण जानिये। यथा।

ब्रह्माणी बृहता ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवावनी।

पुनः,

'वाणी चैव विलासिनी।'

इस करके वाणी नाम सीताजीका है। और विनायक नाम विशेष नायक श्रीराघव हैं। इससे तो शब्दार्थसे भी ग्रन्थकारने युगल सरकार हीका मङ्गलाचरण किया है। अथवा जहां ग्रन्थकारने उपासना गाई है। यथा। जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि। पुनः। सियाराममय सब जग जानी। जहां भूत प्रेत सब रात्तसनको इस भांति बन्दना करी तहां गनेसजीमें कौन भेद है। क्योंकि ग्रन्थकारने यही वाक्य मध्य औ अन्तमें भी धरा है। यथा। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त। पुनः। निज प्रभुमय देखहिं जगत कासन करहिं विरोध। इत्यादि प्रमाणसे दृढ़ है।

इति

इस समाधानके पश्चात् भी जिन्हें सन्तोष न हो वह श्री रामायणाजीसे पत्र लिखकर पूछ सकते हैं।*

पुनः फर्कुहर साहेब लिखते हैं—

'मध्ययुगमें दक्षिणदेशमें एक भक्तिमार्ग प्रचलित था। वह लोग केवल श्रीरामजीको ही मुक्तिका दाता मानते थे। उनका मुख्य ग्रन्थ वाल्मीकिरामायण था। इस रामायणमें श्रीरामजीको ब्रह्मरूपसे प्रतिपादन न करके मनुष्यरूपसे ही वर्णन किया है। सीताजीका रावणद्वारा हरण किया जाना भी एक सामान्यरीतिसे लिखा हुआ है। इससे भक्तिमार्गीय लोगोंके हृदयों-पर आघात होता होगा। अतः उन लोगोंने एक दूसरा रामायण तैयार किया जिसका नाम अध्यात्मरामायण है। इसमें श्रीरामको ब्रह्म प्रतिपादन किया गया है। श्रीसीताजीकेलिये भी लिखा गया है कि जङ्गलमें जिस सीताजीका हरण हुआ है वह मायाकी बनी हुई थीं। वास्तविक नहीं थीं। अद्वैतवादके उपदेशोंसे यह ग्रन्थ भरा पड़ा है। इसी प्रकार अगस्त्य—सुतीक्ष्णसंवाद नामका एक पुस्तक है जिसका दूसरा नाम अगस्त्य संहिता है। दोनों ग्रन्थोंसे उसी भक्तिमार्गका पता चलता है। यद्यपि दक्षिणमें आज यह भक्तिमार्गीय—रामोपासक नहीं हैं तथापि कितनेही रामभक्त हैं जो निस्सन्देह उस मध्ययुगवाले सम्प्रदायके अवशिष्ट चिह्न हैं।'

---

* यद्यपि फर्कुहर साहेबने आगे चलकर स्पष्ट लिख दिया है कि अध्यात्मरामायणके कारण श्री स्वामीजीके शिष्योंमें अद्वैतवादकी झलक पाई जाती है। इससे गोसाईजीकी रामायणका कोई प्रभाव फर्कुहर साहेबपर नहीं है, यह स्पष्ट है। तथापि जो मैंने गोसाईंजीके रामायणके सम्बन्धमें इतना विस्तारसे लिखा उसका कारण यह है कि मैं आगे चलकर बताऊंगा कि अध्यात्मरामायण आज हमारे सम्प्रदायमें प्रतिष्ठित नहीं है। कभी प्रतिष्ठित रहा होगा यह भी कहा नहीं जा सकता। अध्यात्मरामायणकी बहुत अधिक सहायतासे श्री तुलसीकृत रामायण बना है। और वह आज हमारे ही सम्प्रदायमें नहीं प्रत्युत हिन्दूमात्रमें प्रचलित है। अतः इसके उत्तरसे अध्यात्मरामायणका उत्तर हो जावेगा।

भ० ब्रह्मचारी

रामानन्दस्वामी, इसी अध्यात्मरामायण बनानेवाले सम्प्रदायके साधु थे। १४३० ई० के लगभग दक्षिणसे आते समय वह इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंको अपने साथ लाये होंगे। अध्यात्मरामायण और अगस्त्यसंहिता भी अपने साथ लाये होंगे। परन्तु इसे मैं सिद्ध नहीं कर सकता। श्रीराम-मन्त्र भी वहांसे लाये होंगे। वह साधारण साधु होंगे। संन्यासी नहीं। उनके शिष्योंमें जो आज अद्वैतवादकी झलक है उसका कारण वही अध्यात्मरामायण है।'

'वह श्रीवैष्णव नहीं थे। तथापि वह श्रीरामानुजाचार्य्यजीके श्री भाष्यको देखते रहे होंगे। क्योंकि वह ईश्वरवादियोंकेलिये चित्ताकर्षक ग्रन्थ हैं आज कल्ह भी उनके अनुयायी श्रीभाष्यको इसीलिये देखते हैं कि उसमें ईश्वरवाद बहुत अच्छी तरहसे समझाया गया है। रामानन्द भाष्य आज तक कोई नहीं है। इसका भी यही कारण है कि वह सामान्य साधु थे, श्री वैष्णव नहीं।'

संक्षेपमें मैंने अपनी भाषामें फ़र्कुहर साहेबके आशयको यहांपर उद्धृत किया है। उनके इस विचार प्रवाहका तिरस्कार करनेसे पहले मैं प्रथम अपना तिरस्कार कर लेना उचित समझता हूं।

श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव देख रहे हैं कि आज समुद्रपारसे भी हमारे ऊपर कठोरसे कठोर आक्षेप हो रहे हैं। हमारी रहनी, करनी आज इतनी बिगड़ी हुई हैं कि हमें देखकर कोई भी पुरुष हमें श्रीवैष्णव नहीं कह सकता है। हमारे व्यवहारमें, आचारमें, दैनिकक्रियाओंमें, हमारी वेषभूषामें ६०० वर्षके भीतर इतना अधिक परिवर्तन हो चुका है कि हमें देखकर लोग हमारे आचार्य्य रामानन्द स्वामीजी महाराजको भी यह कहनेका कोई भी पुरुष साहस कर सकता है कि 'वह श्री वैष्णव नहीं थे।' आज हमोरेमें यह अभिमान कहां है कि हम श्रीवैष्णव हैं? सत्य है जो मनुष्य अथवा जो समाज अपने प्राचीन आदर्शका तिलाञ्जलि दे देता है, उसका

अस्तित्व ही असमञ्जस हो जाता है। श्रीरामानन्दकी पवित्र, तेजस्वी और ओजस्वी सन्तानका, उसकी गाढनिद्रामें सर्वस्व हरण हो गया। अवशिष्टांशपर भी शनैः २ हाथ विपत्ती बढ़ा रहे हैं परन्तु प्रभुको इस भक्त-मण्डलीपर अभी तक भी करुणा नहीं आती है। फ़र्कुहर साहेबको मैं इस उपर्युक्त सिद्धान्तको प्रकट करनेके कारण अल्पमात्र भी दोषी नहीं कह सकता। आजकी जो हमारी स्थिति है उससे प्रत्येक तलस्पर्शी विद्वान् वही मत स्थिर कर सकता है—जो फ़र्कुहर साहेबने किया है। आज हमारे सम्प्रदायमें दो चारसे अधिक कितने विद्वान् हैं जो गोस्वामीजीके रामायणके अतिरिक्त सिद्धान्तकी कोई भी बात जानते हों? हे प्रभो! हे दयानिधे! हे अशरण शरण! 'नय सुपथा राये अस्मान्' हमारे कल्याणका मार्ग दिखा। इस अन्धेरीरातमें भटकते हुओंका हाथ पकड़!! अब मैं फ़र्कुहर साहेबके मत-पर विचार करता हूं।

'मध्ययुगमें'—से आरम्भ करके—'अवशिष्ट चिह्न हैं' तक जो कुछ कहा गया है प्रथम उसकी परीक्षा ही आवश्यक है। आप कहते हैं कि वाल्मीकिरामायणसे असन्तुष्ट होकर दाक्षिणात्य श्रीरामभक्तोंने अध्यात्मरामा-णकी रचनाकी। वा० रा० से असन्तोषका कारण आप बताते हैं कि उसमें श्रीरामजीको सामान्य मनुष्य लिखा है और श्रीमहाराणीजीका हरण सामा-न्य रीतिसे वर्णित है। मेरी समझमें फ़र्कुहर साहेब भूल रहे हैं। वा० रा० में भगवान् श्रीरामचन्द्रको सामान्य मनुष्य नहीं माना गया है प्रत्युत पूर्ण, पुरुषोत्तम, परब्रह्म, त्रैलोक्यनायक स्वीकार किया गया है। यह वस्तु प्रत्येक रामायणपाठीको विदित है। महाराणीजीका हरण सामान्य रीतिसे लिखा है अर्थात् मायाकी सीताका हरण हुआ—ऐसा नहीं लिखा है, यह बात मानी जा सकती है। परन्तु इतनेसे श्रीसीताजीके आदि शक्ति होनेमें कोई अन्तर नहीं आता। प्रभु और जगदम्बा दोनोंही मानवलीला करनेकेलिये पृथिवी-पर अवतरे हैं, यह प्रत्येक भक्तको विदित है, ऐसी दशामें प्रभुभक्त कभी

शिथिलश्रद्ध नहीं हो सकते थे। यदि उनकी श्रद्धाका अन्त वा० रा० से होता होता तो हमारे सम्प्रदायमें वाल्मीकिरामायणसे कालक्षेपकी अनवच्छिन्न विधि न चली आती। अतः इन दोनों हेतुओंसे अध्यात्मरामायणकी भक्तों-द्वारा रचनाका अनुमान निरर्थक है।

'रामानन्द स्वामी इसी–से आरम्भ करके–'वही अध्यात्मरामायण है' तक जो कुछ फ़र्कुहर साहेबने कहा है वह तो रोमाञ्च उत्पन्न करावे, ऐसी बातें हैं। इस पैराग्राफ़में (खण्डकमें) ५ बातें लिखी हैं। पांचों ही निस्सत्व हैं। (१) स्वामीजी दक्षिणसे आते समय दक्षिणके भक्तिमार्गके सिद्धान्तोंको अपने साथ लाये होंगे (२) अध्यात्म रामायण और अगस्त्य संहिता भी साथ लाये होंगे। इन दो बातोंकी अप्रामाणिकता तो फ़र्कुहर साहेब स्वयम्–'परन्तु मैं इसे सिद्ध नहीं कर सकता'–लिखकर सिद्ध कर रहे हैं। तथा स्वामीजी दाक्षिणात्य नहीं थे यह फ़र्कुहर साहेब मान चुके हैं तब दक्षिणसे आनेकी बात भी स्वयं खण्डित हो जाती है अतः पिष्टपेषणकी आवश्यकता नहीं। (३) श्री राममन्त्र भी अपने साथ लाये होंगे। ऐसा लिखनेवाले फ़र्कुहर साहेब भूल जाते हैं कि आज स्वामीजीके सम्बन्धमें सर्वसम्मत सम्मति स्थिर हो चुकी है कि उन्होंने श्री राममन्त्रकी दीक्षा श्री राघवानन्द स्वामीजीसे ली है। और श्री राघवानन्द स्वामीजी काशीमें रहते थे। तब दक्षिणसे राममन्त्र लानेकी बात तो नितान्त निर्मूल है। शास्त्र, पुराण, इतिहास और साम्प्रदायिकोंमें प्रचलित कथाओंके विरुद्ध है। तथा फ़र्कुहर साहेबके इस अनुमानमें कोई हेतु भी नहीं है। (४) 'वह साधारण साधु होंगे, संन्यासी नहीं' इस कथनमें भी कोई यहांपर प्रमाण नहीं दिया है। परन्तु इससे आगेके खण्डकमें लिखा है कि 'रामानन्द भाष्य आजतक कोई नहीं है अतः वह सामान्य साधु थे।' कैसा सुन्दर हेतु है? भाष्य नहीं है अतः श्री स्वामीजी संन्यासी नहीं थे किन्तु सामान्य साधु थे। इस कथनमें कुछ तत्त्व नहीं है। श्री स्वामीजीने

ब्रह्मसूत्रपर एक भाष्य लिखा है। जो आजतक अप्रकाशित था। परन्तु अयोध्याकी पुरातत्त्वानुसम्बधायिनी समितिने उसका शोध किया है और वह अब मुद्रित हो रहा है। अतः यदि भाष्याभावसेही उनके संन्यासी न होनेका अनुमान किया जाता हो तो वह व्यर्थ है। परन्तु श्री स्वामीजी संन्यासी नहीं थे ऐसा मन्द २ स्वर मुझे कभी कभी श्रीवैष्णवोंके मुखसे भी सुननेमें आता है। अतः स्वामीजी संन्यासी थे या नहीं इसका विवेचन आगेके प्रकरणमें पूर्ण रीतिसे करूंगा। (५) अध्यात्म रामायणके अद्वैत-वादकी झलक स्वामीजीके शिष्योंमें है' ऐसा कहते भी फ़र्कुहर साहेब भूलते हैं। मैंने ऊपर बताया है कि इस कथनसे उनका तात्पर्य श्रीगोस्वा-मीजीके रामायणसे है। और उस रामायणमें यदि कहीं अद्वैतवादका भ्रम होता हो तो वह भ्रममात्र ही है। अन्य जिन कारणोंसे उस रामायणमें अद्वैतवादका भ्रम हो सकता है उसका निराकरण ऊपर विस्तृतरूपसे किया जा चुका है। अध्यात्म रामायण तो कभी भी हमारे सम्प्रदायमें प्रविष्ट नहीं हुआ और न वह साम्प्रदायिक ग्रन्थ हमारे यहां माना जाता है।

'वह श्रीवैष्णव नहीं थे' यह कहकर तो फ़र्कुहर साहबने कहनेका अन्त कर दिया है। अभी उन्हें बहुत विचार करनेकी आवश्यकता है। जिस आचार्य्यने श्रीवैष्णवताकी रक्षाकेलिये सब प्रकारका यत्न किया, साम्प्रदायिक तत्त्वोंका संग्रह किया, श्रीआनन्दभाष्य और श्रीवैष्णवमताब्ज-भास्कर जैसे ग्रन्थोंका निर्माण किया, जिनके शिष्य प्रशिष्योंमें चाहे किसी दशामें—श्रीवैष्णवता अनवरत चली आ रही है—अन्य सब ही सम्प्रदायोंने जिस सम्प्रदायको श्रीसम्प्रदाय मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है उसके आचा-र्यकेलिये यह कहना कि वह वैष्णव नहीं थे, कितना हास्यास्पद है? वह श्रीरामानुजाचार्य्यके भाष्यको देखते रहे होंगे, एतावता यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने कोई भाष्य नहीं लिखा और वह श्रीवैष्णव नहीं थे।

फ़र्कुहर साहेबने एक स्थलपर लिखा है–

'रामानन्दस्वामीजीने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है।'

फ़र्कुहर साहेबके इस अज्ञानको कैसे दूर किया जावे। श्री आनन्द-भाष्य तो अभी छप रहा है, अप्रकाशित था; परन्तु श्री वैष्णवमताब्जभास्कर तो आजसे ३०–४० वर्ष पूर्व छप चुका है और उसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तका ही प्रतिपादन है। तब फ़र्कुहर साहेबने यह कहनेका साहस कैसे किया होगा सो नहीं जाना जा सकता। सम्भव है कि विद्वान् लेखकको वै० म० भा० ग्रन्थ उपलब्ध न हुआ हो।

फ़र्कुहर साहेबने एक स्थलपर लिखा है कि–

'श्री रामानन्दस्वामीने विशिष्टाद्वैत मतकी शिक्षा कभी भी नहीं दी।'

'रामानन्दसम्प्रदायमें केवल सीता और रामकी ही उपासना है। कृष्ण तथा दूसरे अवतार यहां तक कि विष्णुकी ओर भी ध्यान नहीं दिया गया है।'

'यदि स्वामी रामानन्द वैष्णवमतके होते तो वे भी त्रिदण्डी संन्यासी होते....वे किस संस्थाके त्यागी तपस्वी थे यह हम नहीं जानते। परन्तु उनके अनुयायी संन्यासी नहीं हैं प्रत्युत विरागी नामधारी साधु हैं और यह बहुत सम्भव है कि वे अपने नेताके ही चिन्होंका धारण करते हों।'

यह सब भी मिथ्याप्रलापमात्र ही हैं। स्वामीजीने सर्वदा विशिष्टाद्वैतका ही उपदेश किया है जैसा कि उनके ग्रन्थों तथा समय २ पर उनके विद्वान् शिष्यों प्रशिष्योंके ग्रन्थोंसे स्पष्ट है।

हमारे यहां श्री सीतारामकी ही उपासना है यह सत्य है परन्तु अन्य अवतारोंकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है यह कथन भ्रान्ति मूलक है। गीताका प्रामाण्यङ्गीकार और कृष्णजयन्ती आदिका व्रत स्पष्ट प्रमाण है कि हमारे सम्प्रदायमें श्रीसीतारामकी उपासना होते हुये भी भगवदवतारोंमें पूज्य और श्रेयोबुद्धि है।

स्वामीजी वैष्णवमतके ही थे। वे संन्यासी ही थे। त्रिदण्डी संन्यासी ही थे। इन सब विषयोंमें अनेक शास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रमाण हैं। जो इसी भूमिकामें पाठकोंकी दृष्टिमें आजावेंगे। उनके अनुयायी कौन हैं, सामान्य साधु हैं या संन्यासी हैं—इसके जाननेकेलिये मेरे लिखे हुये 'आश्रमकण्टकोद्धार' पुस्तकको वांचना चाहिये। यहांपर भी प्रकरण वश कुछ विचार आगे किया जायगा।

पुनः फ़र्कुहर साहेबने लिखा है कि—

'सम्भव है कि स्वामीरामानन्दजीके आनेके पश्चात् उत्तर हिन्दुस्तानके भक्तलोग दक्षिणके विद्वानोंसे सम्बन्ध जोड़नेकी प्रबल इच्छा रखे हों और वह सम्बन्ध हो गया हो। धीरे २ रामानुजसम्प्रदायके साथ सौहार्दभाव विकसित हो गया हो और पीछेसे ये लोग भी श्रीसम्प्रदायी होनेका अभिमान करने लग गये हों।'

दक्षिणसे स्वामीजीके आनेकी बात तो पीछे खण्डित हो चुकी है। परन्तु यदि कोई मान ले कि वह दक्षिणसे आये तो वह यह भी माननेकेलिये विवश होगा कि रामानन्द स्वामी जिस सम्प्रदायको लेकर यहां आये, उसी सम्प्रदायके साथ वे या उनके अनुयायी मिलनेको तैयार हो सकते हैं। जब आप सर्वतो भावसे यह कह चुके हैं कि रामानन्द स्वामी रामानुजसम्प्रदायके नहीं थे तब वह या उनके अनुयायी रामानुजसम्प्रदायके साथ मिलनेकी इच्छा किये हों, यह मानना दुर्घट है।

परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। न स्वामीजी दक्षिणसे आये और न उन्होंने या उनके अनुयायियोंने श्रीरामानुजसम्प्रदायके साथ मिलनेका प्रयत्न किया। श्रीरामानन्दीय लोग दक्षिणके वैष्णवोंके साथ क्यों सम्बन्ध स्थापन करनेका प्रयत्न किये होंगे यह अकल्पनीय है। कोईभी कारण नहीं है कि वे लोग ऐसा कर सकें। हां, इसके विपरीत यहतो कहा जा सकता

है कि, जब दक्षिणके श्री रामानुजीय लोग इस देशमें प्रथम २ आये होंगे उस समय यहांका एक ऐसा दल अवश्य रहा होगा जो उनकी प्रतिद्वन्द्विताकेलिये उद्यत हो गया हो। और वह दल वैष्णवमात्रका विरोधी था। श्री रामानन्दीय लोग अपने समानकी श्रेणीके–एक सम्प्रदाय–श्री सम्प्रदाय और एक सिद्धान्त–विशिष्टाद्वैत–के लोगोंके साथ उस अनुचित व्यवहारको देखकर दक्षिणके वैष्णवोंके पक्षमें खड़े हो गये हों और इस समयकी अतुलनीय और अमोघ सहायतासे अधमर्ण हो कर श्री रामानुजीय लोग इस विजयी, प्रभावशाली और चमत्कारी समुदायके साथ सम्बन्ध स्थापन किये हों।

श्री स्वामीजी और भविष्यपुराण

श्री स्वामीजी महाराजका अवतार कैसे हुआ, कहां हुआ और कब हुआ इन सब विषयोंका पूर्ण विवेचन हो चुका। अब मैं भविष्य पुराणकी एक कथाको यहां मुद्रित करता हूं। इस कथाका सम्बन्ध भविष्यपुराणके उस प्रसिद्ध श्लोकके साथ है जिसे सब लोगोंने श्री स्वामीजीके अवतारके सम्बन्धमें उद्धृत किया है।

लिखा है कि 'मायावतीमें मित्रशर्मा नामक एक ब्राह्मण थे। वह काव्यके अच्छे पण्डित थे। गङ्गाद्वारमें कुम्भराशिके सूर्यपर बड़ा भारी उत्सव था। वहां कितनी ही सुन्दरी स्त्रियां आई हुई थीं। मित्रशर्मा वहां कलसेन राजाकी चित्रिणी नामवाली १२ वर्षकी कन्यापर आसक्त हो गये। चित्रिणी भी मित्रशर्मापर मोहित हो गई। चित्रिणीने घर जाकर सूर्यका पूजन आरम्भ किया। मित्रशर्मा भी वैशाखमासमें जलमें खड़े होकर आदित्यहृदयका पाठ किया करते थे। मास पूर्ण होनेपर सूर्यने उन्हें वरदान दिया। उधर चित्रिणीको भी वर मिला। सूर्यने चित्रिणीके मातापिताको स्वप्नमें कहा कि अपनी कन्या मित्रशर्माको दे दो। कलसेनराजाने उसे मित्रशर्माको दे दी। उन दोनोंको राजाने अपने पास ही रखा। वह दोनों प्रतिदिन सूर्यचक्रको

ताम्रपत्रपर लिखकर पूजा करते थे। दोनोंने, सौ वर्षतक निर्जर रहकर आनन्दमय जीवन व्यतीत किया। मृत्युके पश्चात् सूर्यके पास गये।'

इस कथाको सुनकर इन्द्रने देवताओं सहित, प्रकट हुये—सूर्यको देखा। भक्तिसे नम्र देवोंको देखकर सूर्य बोले—

उवाच वचनं रम्यं देवकार्य्यं परं शुभम्।
ममांशात्तनयो भूमौ भविष्यति सुरोत्तम!
इत्युक्त्वा स्वस्य बिम्बस्य तेजोराशिं समन्ततः।
समुत्पाद्य कृतं काश्यां रामानन्दस्ततोऽभवत्॥
देवलस्य च विप्रस्य कान्यकुब्जस्य वै सुतः।
बाल्यात्प्रभृति स ज्ञानी रामनामपरायणः।
मात्रा पित्रा यदा त्यक्तो राघवं शरणं गतः॥
तदा तु भगवान् साक्षाच्चतुर्दशकलो हरिः।
सीतापतिस्तद्धृदये निवासं कृतवान् मुदा॥

इन श्लोकोंसे यह प्रतीत होता है कि भगवान् श्री रामानन्द स्वामी सूर्यावतार हैं। श्री रामावतार नहीं। साथ ही यह भी विदित होता है कि उनके पिताका नाम देवल था श्री पुण्यसदन नहीं। तथा उनकी जन्मभूमि काशी थी, प्रयाग नहीं। परन्तु मुझे मालूम होता है कि ये सब श्लोक या तो कल्पान्तरकी कथाको वर्णन कर रहे हैं अथवा तो पञ्चरात्रकी संहिताओं तथा श्री रामानन्द संप्रदायके वृद्ध महापुरुषोंकी परम्पराप्राप्त ख्यातिके विरुद्ध होनेसे अप्रमाणिक हैं। जिस प्रकारसे श्री पीपाजी* और भक्त नरसिंह मेहताके सम्बन्धमें अनेक प्रमाणोंके विरुद्ध दक्षिण देशका वणिक् आदि अप्रमाणिक लेख भविष्यपुराणमें कहींसे आ गये हैं उसी प्रकारसे यह भी प्रसङ्ग वहां अश्रद्धेय रीतिसे ही वर्णित है।

* श्री पीपाजी मालवाके गांगरोनगढके क्षत्रिय राजा थे। तथा श्री नरसिंह गुजरातके नागर ब्राह्मण थे। इन दोनोंके लिये वर्तमान इतिहास प्रमाण हैं।

अध्यात्मरामायणकी रचनाका समय

फ़र्कुहर साहेबने जिस अध्यात्मरामायणकी चर्चाकी है उसके कर्ताकानाम भविष्यपुराणके अनुसार रामशर्मा है। भ० पु० में लिखा है कि–

'शिष्यो भूत्वा स्थितिस्तत्र कृष्णचैतन्यपूजकः।
कृतं तदाज्ञया तेनाध्यात्मरामायणं शुभम्॥'

अर्थात् श्री कृष्णचैतन्यजीका पूजक, शिष्य बनकर रामशर्मा वहां रहा। और श्रीकृष्णचैतन्यजीकी आज्ञासे उसने सुन्दर अध्यात्मरामायण बनाया। यदि भ० पु० की इस बातको हम मानलें तो यह स्पष्ट सिद्ध है कि यह अ० रा० श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभुके समयमें बना है। कृष्णचैतन्यजी जिस समय बङ्गालमें वैष्णवताका प्रचार कर रहे थे उसी समय श्री वल्लभाचार्य्यजी दक्षिणमें वैष्णवधर्मकी पताका लहरा रहे थे। अतः यह ऐतिहासिक दृष्टिसे निर्विवाद है कि कृष्णचैतन्य और वल्लभाचार्य्यजी ये दोनों महापुरुष समकालिक हैं। इनका काल ई० सन् १६०० माना गया है। अब फ़र्कुहर साहेब विचार करें कि सन् १६०० में बने हुये अध्यात्मरामायणका प्रचार, उनके माने हुये १४०० ई० में अवतीर्ण श्रीस्वामीरामानन्दजीने किस प्रकार किया होगा: तथा उसमें वर्णित अद्वैतवादका अवलम्बन भी श्रीस्वामीजीने कैसे किया होगा?

अध्यात्मरामायणके कर्ताका नाम उपलब्ध नहीं होता है। केवल इसी पुराणमें इतना उल्लेख मिलता है अतः इस नामको न माननेमें कोई विशेष हेतु नहीं है। परन्तु इतना तो विचारणीय है ही है कि भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजीने अध्यात्मरामायण बनानेकी अपने शिष्यको क्यों आज्ञा दी। तथा कृष्णचैतन्य महाप्रभुका सम्प्रदाय मध्वाचार्य्यजीसे सम्बन्ध रखता है और द्वैतवादी थे। तब कृष्णचैतन्य महाप्रभुजीके शिष्यने स्वसम्प्रदायविरुद्ध अद्वैतवाद उस ग्रन्थमें क्यों लिखा? जो हो, इतना तो निष्कण्टक है कि इस अध्यात्मरामायणके साथ स्वामी रामानन्दाचार्य्यका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

आजकल विरक्तवैष्णवोंमें पञ्चमाश्रमकी खूब चहल पहल है। समस्त श्री रामानन्दीय वैष्णव तथा अन्य भी कितने ही वैष्णव यह मानते हैं कि वैष्णवोंका पञ्चमाश्रम है। परन्तु वह इतना विचारना भूल जाते हैं कि यदि समस्त वैष्णवोंका पञ्चमाश्रम हो तो गृहस्थाश्रमी कहलाने वाले वैष्णवोंका आजका लौकिक व्यवहार कैसे चलेगा? यदि लोगोंके माननेके अनुसार वैष्णवोंका अच्युत गोत्र हो तो विवाह आदि क्रियाओंका निर्वाह कैसे होगा? तथा वैष्णवमात्रके समानाश्रमी और समान गोत्रवाला होनेके कारण वर्णाश्रमकी रक्षा कैसे होगी? मैंने इसका पूर्ण विचार आश्रम कण्टकोद्धारमें कर दिया है।

श्री रामानन्द स्वामीजी किस आश्रममें थे?

मेरा मत है कि स्वामीजी त्रिदण्डी संन्यासी थे। चतुर्थ उनका आश्रम था। गोत्र भी वही था जो उनके पिताका था। पञ्चमाश्रम और और अच्युत गोत्र ये दोनों ही शब्द विरक्तताकी चरमसीमाके सूचक हैं न कि वस्तुतः तदर्थप्रतिपादक। जब आश्रम त्याग करना है तब पञ्चमाश्रम नामक एक अन्य आश्रमकी कल्पनाका क्या प्रयोजन है? जब गोत्र-कार्य्यसे पृथक् हो गये तब अच्युत गोत्रकी क्या आवश्यकता है? तथा वह कौनसी वस्तु है जो संन्यासाश्रमीको नहीं प्राप्त हो सकती? विरक्त-मार्ग ही तो संन्यासाश्रम है। तब इससे भिन्न पञ्चमाश्रमकी सृष्टि निष्फल है। श्रीमद्भागवत आदिमें जहां २ पञ्चमाश्रम और अच्युतगोत्रका उल्लेख है वह केवल 'नान्तरिक्षेऽग्निश्चेतव्यः' के समान अनुवादमात्र है। अर्थात् जिसके ऊपर प्रभुकी परमानुकम्पा है, जिन्होंने सब प्रकारकी एषणाओंको त्यागकरके प्रभुचरणमात्रको शरण मान चुके हैं, उनकेलिये वर्ण, आश्रम, और गोत्रादि किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। इसी स्वयंसिद्ध आव-श्यकताभावको सूचित करनेकेलिये पञ्चमाश्रम और अच्युत गोत्र इन दो शब्दोंका जन्म हुआ है। जो लोग विषयलोलुप हैं, केवल वेषसे विरक्त हैं परन्तु हृदयमें नाना प्रकारकी दुर्वासनाएं जीवित हैं, जिनके पास विरक्त-

ताका एक बिन्दु भी नहीं है परन्तु संसारकी वञ्चना करनेकेलिये विरक्तोंके सब साङ्गोपाङ्ग चिह्न हैं, जो रात्रिन्दिवा सांसारिक व्यवहारमें ही मस्त हो रहे हैं, जिनमें पारमार्थिक गन्ध भी नहीं है, ऐसे नरपिशाचोंकेलिये पञ्चमाश्रम और अच्युतगोत्र नहीं है। मन्दमति नरपशु इस आशयको न समझकर रागद्वेषसे परिपूर्ण होते हुये भी, राक्षसके समान निरर्गल व्यवहारशाली होकर भी, कहते हैं कि हम पञ्चमाश्रमी हैं और हम अच्युतगोत्रवाले हैं।

स्वामी श्रीरामानन्दजी और उनके निर्मित ग्रन्थ

श्री स्वामीजी महाराजने ब्रह्मसूत्रके ऊपर एक विशद भाष्य लिखा है जिसका नाम है 'आनन्दभाष्य'*। दूसरा ग्रन्थ है 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर'×। तीसरा ग्रन्थ है गीताभाष्य। परन्तु अभीतक इसके सात अध्यायका ही पता चला है। शेषांशकी गवेषणा हो रही है। इसके अतिरिक्त स्वामीजीने अन्य कोई ग्रन्थ बनाया हो, इसका अभीतक पता नहीं चला है+।

---

* 'आनन्दभाष्य' की तीन प्रति उपलब्ध हुई हैं। प्राचीन लेख होनेसे कितने ही स्थलमें पत्र सड़ गये हैं। अक्षर दुर्वाच्य हो गये हैं। बड़े श्रमके साथ इसका शोधन हुआ है और मुद्रित हो रहा है।

× यह ग्रन्थ प्रायः आजसे ४२ वर्ष पूर्व काशीमें लीथो प्रेसमें छप चुका है। आज यह ग्रन्थ दुष्प्राप्य हो गया है। इसकी हस्तलिखित प्रतिका शोध किया गया है। अभी तक एक प्रति मिली है। मुद्रित और लिखित प्रतिमें कितने ही स्थलमें भेद हैं। किसीमें कोई श्लोक है किसीमें नहीं है। इसकी विस्तृत भाषा टीका मैं लिख रहा हूं।

+ कितने ही दुराग्रही लोगोंका कथन है कि 'श्री रामार्चन-पद्धति' भी श्री रामानन्द स्वामीजीकी ही बनाई हुई है। 'रामानन्दकृता सेयं श्रीरामार्चनपद्धतिः' यह श्लोक प्रमाणमें रखा जाता है। परन्तु इस पुस्तककी रचना और उसका क्रम इतना बेढङ्ग है कि कोई भी विज्ञ पुरुष उसे आचार्यका ग्रन्थ नहीं स्वीकार कर सकता। यदि माना भी जावे तब इतना मानना अनिवार्य है कि उस पुस्तकमें पाठफेर अवश्य है। पाठान्तरमें मुख्य प्रमाण तो यही है कि वह दो प्रेसमें छपी है और दोनोंका पाठक्रम भिन्न २ है।

क्या श्रीस्वामीजी वर्णाश्रमके विरोधी थे ?

कितनेही लेखकोंका कथन है कि श्रीरामानन्द स्वामीजीने वर्ण और आश्रमकी व्यवस्थामें शिथिलता उत्पन्न की है। इसकेलिये वह रविदासजी चमार, सेनजी हज्जाम और कबीरजी जुलाहेका दृष्टान्त देते हैं। परन्तु मेरा निश्चय है कि लेखक महानुभावोंने आचार्य्यके आशयपर गम्भीरताके साथ विचार किये विना ही ऐसा अपना मत प्रकट किया है। स्वामीजी पूर्णरूपसे वर्ण और आश्रमके आग्रही थे। वह तिलमात्र भी वर्णव्यवस्थामें परिवर्तन नहीं चाहते थे। उनके जो नीच वर्णके शिष्य हैं वे सबके सब देव हैं। प्रभुप्रेरणासे ही उन्होंने नीचकुलमें जन्म लिया है। नीचकुलमें जन्मलेनेपर भी आचार्यने जो उन्हें वैष्णवी दीक्षा दी वह इस लिये कि विष्णुभक्तिका प्रत्येक प्राणी अधिकारी है। भक्तिमें जाति बाधिका नहीं है। चाहे जो भगवच्छरणागति प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त स्वामीजीने कभी भी वर्णाश्रमके शिथिल करनेका प्रयत्न नहीं किये। स्वयं परमविरक्त होनेपर भी ब्राह्मणेतरका पक्व अन्न कभी भी उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उन्होंने कभी भी ब्राह्मणेतरको गुरु अथवा आचार्य्यका अधिकार नहीं दिया। मेरे विचारमें, स्वामीजी मानते थे कि विरक्त—भगवद्भक्त प्रत्येक जातिके लोग हो सकते हैं। परन्तु मन्त्रदेनेका अधिकार ब्राह्मणको ही है। विरक्तता सबमें हो सकती है परन्तु ब्राह्मणकी विरक्ततामें एक वह अलौकिक तेज है जिसके आगे सब शास्त्रकार झुक जाते हैं। यह जो कुछ मैं कह रहा हूं वह सब उनके ग्रन्थके आधारपर कह रहा हूं।

उपसंहार

जहांतक उचित प्रतीत हुआ, श्रीस्वामीजीके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक घटनाओंपर इस स्थलमें विचार किया गया है। इससे अधिक यदि कोई वस्तु मिलेगी तो उसे पुनः पाठकोंकी सेवामें समर्पित करूंगा। यहांपर इतना कहे विना मुझसे नहीं रहा जाता है कि यद्यपि श्रीरामानुजसम्प्रदायके साथ श्रीरामानन्दस-

म्प्रदाय मिलकर अपना अस्तित्व खो बैठा था। उसे अपने गौरव, अपनी प्रतिष्ठा और अपनी अगाध शक्तिका भान नहीं रहा। वह इतना अक्षम हो गया कि प्रत्येक कार्यमें उसे परमुखापेक्षी बनना पड़ता है। तथापि हमको इसके सम्बन्धसे इतना लाभ अवश्य हुआ है कि हमारे अनन्त सिद्धान्तरत्न उनके द्वारा सुरक्षित रह सके हैं। चाहे उनकारूप भले ही इस प्रकारसे परिवर्तित हो चुका है कि उनके पहचाननेमें श्रम और काठिन्य है तथापि यह निर्विवाद है कि उनके सम्मेलनसे आज हम पुनः अपनी सम्पति प्राप्त कर सके हैं। नहीं तो श्रीरामानन्दसम्प्रदाय जिस घोर निद्रामें सदियोंसे सोता आरहा है उसकी ओर ध्यान देनेसे हृदय कम्पित हो जाता है और यह आशा टूट जाती है कि श्रीरामानुजसम्प्रदायके सम्बन्धके विना हमारे इन सिद्धान्तरूप—अनर्घ्यरत्नोंकी किसी प्रकार भी रक्षा हो सकती थी। अतः मैं अपने अत्यन्त समीपी श्रीरामानुजसम्प्रदायका उपकारके साथ हृदयसे धन्यवाद करता हूं।

मैं कितनेही वर्षोंसे मथ रहा हूं, अन्वेषण कर रहा हूं उसका परिणामस्वरूप यह मेरा लेख है। तथापि मैं समझ रहा हूं कि अभी मुझे श्रीरामानन्दसम्प्रदाय और श्रीरामानन्द स्वामीजीके सम्बन्धमें बहुत कुछ जानना अवशिष्ट है। मैंने इतिहासोंके पत्रे उलटनेमें अपने समयकी आहुति दी है परन्तु मैं समझता हूं कि अभी मुझे आगे बहुत कुछ अन्वेषण करना है। अतः मैं अपने विवेकी, सभ्य, सुशिक्षित और सच्चे वैष्णव महात्माओंसे प्रार्थना करता हूं कि मेरे इस लेखमें यदि कहींपर अनौचित्य प्रतीत हो तो वह मुझे क्षमा करें। यदि कहीं भूल प्रतीत हो तो कृपाकर सूचित करें। यदि कहीं न्यूनता प्रतीत हो तो मुझे लिखकर भेज दें मैं समयपर सुधार कर लूंगा।

त्रिवेदोपाह्व श्रीभगवद्दास ब्रह्मचारी
विद्याभास्कर

श्रीरामानन्ददिग्विजयस्य विषयानुक्रमणिका

९—श्री पीपाराजागमनम्। तत्कृतं स्तुत्यादिकम्। तद्दीक्षाग्रहणम्। अन्येषां च शिष्याणामागमनं दीक्षाग्रहणं च।

१०—श्री स्वामिपादानाह्वयितुं गांगरौनगढतः पीपानृपस्य दूतागमनम्। स्वामिनस्तत्र गन्तुं प्रस्थानम्। मार्गे यातुधानाधिकेषु खलेषु श्रीमतां स्वामिनां चमत्कृतिः। गाङ्गरौनगढप्राप्तिः। तत्र नृपकृता स्तुतिः। आतिथ्यम्।

११—तत्र श्रीस्वामिकृतः प्रपत्तिमार्गोपदेशः।

१२—तत्रैव सप्तविंशत्यधिकशतोपदेशः।

१३—ततः श्री स्वामिप्रयाणमाकर्ण्य तद्वियोगमसहमानस्य श्रीपीपानृपस्य सहगमनेऽनुरोधः। गृह एव त्वया स्थातव्यमिति निपुणमुपदिश्य पश्चात्तदाग्रहविशेषेण गन्तुमनुज्ञाप्रदानम्। स्मृतिमहाराज्ञ्याः समीपे नृपस्य गमनम्। सर्ववृत्तान्तनिवेदनम्। स्मृतिकरुणक्रन्दनम्। अन्ते स्मृत्याऽनुज्ञापितस्य नृपस्य प्रातःकाले सर्वाः प्रकृतीराकार्य्य संसदि ताभ्योऽनुज्ञाप्रार्थनम्। स्वभ्रातुः स्वस्थाने नियोजनम्। राज्ञो विरक्तवेषेण ततः प्रस्थानम्।

१४—रैवतकवर्णनम्। इन्द्रविमानमारुह्य रैवतकोपरि सर्वेषां गमनम्। तत्र देवराजेन श्रीमदाचार्यस्य चरणपादुकास्थापितमिति वर्णनम्। पथि जिनतापससम्मेलनम्। तत्र प्रश्नोत्तरादिकम्। तीर्थेषु भ्रमत आचार्य्यस्यार्बुदगिरिनिवासः। तत्र रघुनाथमन्दिरसंस्थापनम्। जयपुरोज्जयिन्ययोध्यादिगमनपूर्वकं क्रमशः काश्यामागमनम्।

१५—काश्यामागमनानन्तरं कनिष्ठनामधेयस्य योगिन उपद्रववर्णनम्। तच्छमनम्। महासेनपण्डितस्य शास्त्रार्थेच्छया स्वामिसमीप आगमनम्। अपारकन्याया विद्यायाः काश्यामागमनम्। तस्याः स्वामिनः कस्यचिदन्तेवासिनः सविधे रतियाचनम्। ब्रह्मचारिणा तेनास्वीकृतायां तत्प्रार्थनायां

तत्कृतमन्त्रप्रयोगः। तच्छान्तिः। गत्वा तयोक्तस्य तस्याः पितुराग-
मनम्। तन्मानभङ्गः।

१६—सत्यमूर्तिपण्डितेन सह जीवाणुत्वे शास्त्रार्थः।

१७—दिल्लीपादशाहस्य मस्तकपीडानिवारणार्थं स्वामिन आह्वयितुं दिल्लीतो दूतानामागमनम्। आचार्याशीर्वादेन तत्पीडाशान्तिः। तकीतिनामधेयस्य वादशाहगुरोः काश्यामागमनम्। तेन सह साकारेश्वरवादे विचारः। तस्य पराजयः। दिल्लीवादशाहसमीपे तत्कृतं स्वामिगुणवर्णनम्। स्वामिनां सविधे वादशाहस्योपदाप्रेषणम्। श्रीस्वामिकृतस्तदङ्गीकारः। पुनर्यात्रार्थं प्रयाणम्। महाराष्ट्रेषु सिद्धसेनगणिजिनसाधुना शास्त्रार्थः।

१८—महीशूरनगरे सुरेश्वरार्येण शास्त्रार्थः। बहूनां ब्राह्मणादीनां वैष्णवधर्म-स्वीकारवर्णनम्। ततः प्रस्थितस्य यतिराजस्य क्रमेण जनकपुर आगमनम्। काश्यामागमनम्।

१९—काश्यां शिष्यैः सह समवस्थितस्य यतिराजस्य पुर आकाशवाण्या श्रीअयोध्यायां यवनराजेन स्थापितेन यन्त्रेण तत्रत्यानां हिन्दूनां यवनत्वावाप्तिवर्णनपूर्वकं तद्दुःखशमनार्थं देवानां प्रार्थनम्। स्वामिनां स्वशिष्याणां तत्र प्रेषणम्। शिष्याणामयोध्यां प्रति गमनम्। तत्र वैष्णवयन्त्रस्थापनम्। यवनीभूतानां हिन्दूनां पुनर्हिन्दुत्वप्राप्तिः तज्जातीयैः कृतस्तेषां बहिष्कारः। तत्र यतिराजस्य गमनम्। तत्कृत उपदेशः। यतिराजस्य शिष्यैः सह पुनः काश्यामागमनम्।

२०—काश्मीरविदुषां कृता स्तुतिः। स्वर्गादिन्द्रस्यागमनम्। साकेतलोकप्रयाणकालसूचना। स्वामिकृतः शिष्येभ्य उपदेशः। तेषामवस्थित्यै दिग्विभागवर्णनम्। साकेतप्रयाणम्।

श्रीमते रामचन्द्राय नमः

ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दासविरचितः

श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजयः

स्वोपज्ञबालबुद्धिप्रसादिनीत्याख्यसंस्कृतटीकया

स्वोपज्ञपताकाख्यहिन्दीव्याख्यया च समेतः

विद्यागुरून्नमस्कृत्य गूढशब्दार्थबोधिनी ।
क्रियतेऽल्पान्तरैष्टीका बालबुद्धिप्रसादिनी ॥

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिर्वृतये कान्तासंमिततयोपदेशयुजे ॥' इति शास्त्रोक्तदिशा धर्मादिचतुर्वर्गसाधनभूतं साक्षाद्भगवदवतार-श्रीमद्भगवद्रामानन्दाचार्यदिग्विजयवर्णनरूपं काव्यं प्रणयन्नादौ विशिष्टशिष्टाचाराद्यनुमित-श्रुतितः प्राप्तविधानं निर्विघ्नतया ग्रन्थपरिसमाप्तये स्वेष्टदेवतास्मरणरूपं मङ्गलं निबध्नाति—

अतसीगुच्छसच्छायं माया यं नातिवर्तते ।
तं श्रीरामं गुणग्रामं वन्दे बुद्धिविशुद्धये ॥ १ ॥

बा॰ बु॰ प्र॰ यं माया नातिवर्तते सदावशवर्तिनी भवतीत्यर्थः तथा अतसी-गुच्छस्य सती छायेवच्छाया यस्य तं गुणग्राममखिलकल्याणगुणाकरं श्रीरामं बुद्धि-विशुद्धये मतिवैशद्याय वन्दे ॥१॥

पताका—रामानन्दमुनीन्द्रस्य दिग्विजयोऽयमुत्तमः ।
पताकाव्याख्यया सद्यः सनाथीक्रियते मया ॥१॥

शिष्टाचारादिके द्वारा अनुमित 'समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्' इत्यादि श्रुतिसे विहित स्वेष्ट देवता स्मरणरूप मङ्गलका ग्रन्थ समाप्तिके लिये ग्रन्था-रम्भमें उल्लेख करते हैं। अतसी पुष्पके गुच्छाके समान श्यामकान्तिवाले, तथा माया—अविद्या जिनको कभी भी उल्लंघन नहीं करती, ऐसे अखिल कल्याण गुणाकर भगवान् श्रीरामजी महाराजको स्वबुद्धिकी पवित्रताकेलिये प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

नीलपाथोजसङ्काशविलसत्सत्तरस्तनुम् ।
जगज्जन्मादिवीजं श्रीजानकीजानिमाश्रये ॥२॥

बा० बु० प्र० नीलपाथोजसङ्काशा नीलकमलतुल्या विलसन्ती सत्तराः शोभन-बलवती तनुर्यस्य तं, जगतः सृष्टिस्थितिप्रलयादिकारणभूतं (यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते० तै० उ० ३। १। १) श्रिया परमसौभाग्येन लोकोत्तरसौन्दर्येण वोपेता जानकी जाया यस्य तं च जानकीनाथमाश्रये। पूर्वस्मिन्श्लोके 'अतसीगुच्छे'त्यादिना भगवत श्यामता वर्णिता, अत्र च नीलपाथोजे'त्यादिना तच्छरीरस्य मार्दवादि वर्ण्यतेऽतो न पुनरुक्तिदोषः ॥ २ ॥

पताका—नीलकमलके समान सुन्दर और ओजस्वी शरीरवाले, सृष्टि, स्थिति और प्रलयके मूल कारण श्रीजानकीनाथका आश्रय लेता हूं ॥२॥

श्रेयसां परमं धाम साकेताभरणं परम् ।
सर्वलोकैकशरणं जानकीरमणं भजे ॥३॥

बा० बु० प्र० श्रेयसां सर्वकल्याणानां परमं सर्वोत्कृष्टं धाम, साकेताभरणं, परमतिमहनीयं सर्वप्राणिनामेकं प्रधानं शरणं श्रीजानकीरमणं भजे ॥ ३ ॥

पताका—सम्पूर्ण कल्याण गुणोंके सुन्दर भण्डार, साकेत लोकके अ-लङ्कारभूत, परात्पर, सर्व प्राणियोंके एकमात्र शरण श्री जानकीरमणको मैं भजता हूं ॥ ३ ॥

जगदामोदकाखण्डशीतरोचीरुगाननाम् ।
जगदम्बां सदालम्बां मातरं जानकीं श्रये ॥४॥

बा० बु० प्र० जगत आमोदकः प्रसादको योऽखण्डः शीतरोचिश्चन्द्रस्तस्य रुगिव रुग्यस्य, इत्थंभूतमाननं यस्यास्तां सतामालम्बभूतां जगदम्बां संसारमात्रस्य मधुर शब्देन सान्त्वनप्रदात्रीं श्रीजानकीमातरं श्रये ॥ ४ ॥

पताका—संसारको आनन्दित करनेवाले पूर्णचन्द्रके समान प्रसन्न मुख वाली, सज्जनोंको आलम्बन देनेवाली, सांसारिक जीवोंको मधुर शब्दोंसे आश्वासन देनेवाली श्री जानकी माताको भजता हूं ॥४॥

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्य्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥५॥

बा० बु० प्र० सीतानाथः सर्वेश्वरः श्रीरामचन्द्रः समारम्भो यस्यास्तथा श्री-महारामानन्दार्य्यो मध्यमो यस्या एवं भूतामस्मदाचार्य्यपर्यन्तां गुरुपरम्परां वन्दे ॥५॥

पताका—श्रीरामजी महाराज जिसके आरम्भमें हैं और श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जिसके मध्यमें हैं ऐसी अपने आचार्य्यपर्यन्त गुरुपरम्पराको प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥

विरक्त वैष्णवश्रेष्ठं श्रीमद्राममनोहरम् ।
मनोहरगुणाधीशं श्रीशसङ्काशसत्प्रभम् ॥६॥
यस्य मूर्द्धि स्थितो विन्दुरिन्दुशोभामचूचुरत् ।
तं समाराध्यपादाब्जं साकेतस्थं गुरुं श्रये ॥७॥ (युग्मम्)

बा० बु० प्र० 'अस्मदाचार्य्यपर्यन्तामि' त्यत्रास्मच्छब्देन विवक्षितार्थं स्पष्टयति, विरक्तवैष्णवेषु श्रेष्ठं मनोहराणां गुणनामधीशमधिष्ठातारं श्रीशस्य विष्णोः सङ्काशा तुल्य सती शोभना प्रभा यस्य तं भगवत्तुल्यमित्यर्थः। अनेन गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु-रित्यादिश्लोकार्थो व्यक्तीकृतो वेदितव्यः। तथा यस्य मूर्द्धि स्थितो विन्दुरूर्द्ध्वपुण्ड्रमध्य इत्यर्थः, इन्दुशोभां चन्द्रच्छटामचूचुरत् तं समाराध्यपादाब्जं पूज्यचरणारविन्दं साकेतस्थं श्री १०८ राममनोहरप्रसादं गुरुं श्रीराममन्त्रप्रदातारं श्रये ॥ ६ ॥ ७ ॥

पताका—विरक्त वैष्णवोंमें श्रेष्ठ सुन्दर गुणोंवाले, भगवत्तुल्य तेजवाले, तथा जिनके मस्तकमें उर्द्ध्वपुण्ड्रके मध्यमें बिन्दु शोभित था ऐसे पूज्य चरण-कमल राममन्त्रके प्रदाता अतएव परमोद्धारक गुरुश्री १०८ स्वामी राम-मनोहर प्रसादजी महाराजका आश्रय लेता हूं ॥ ७ ॥

सत्सत्कृतसतां मूर्द्धा वहामि चरणच्युतान् ।
रेणून् हि यत्कृपातन्त्राद्यन्त्रिता विघ्नराशयः ॥८॥

बा० बु० प्र० सद्भिरपि सत्कृता ये सन्तो महाशयास्तेषां चरणच्युतान् रेणून् शिरसा वहामि । हि निश्चयेन यत्कृपातन्त्राद्यदनुग्रहप्रभावाद्विघ्नराशयो यन्त्रिताः प्रतिबद्धा भवन्ति ॥ ८ ॥

पताका—सज्जनों द्वारा सत्कृत सत्पुरुषोंके चरणोंसे गिरे हुए रजको अपने मस्तकपर धारण करता हूं जिसकी कृपासे सब विघ्नोंके भण्डार बन्द हो जाते हैं ॥ ८ ॥

परकीर्तिकलानाथराहोश्च खलरक्षसः ।
संसर्गसर्गशून्यत्वं कामये विघ्नशान्तये ॥९॥

बा० बु० प्र० परेषां कीर्तिकलानाथस्य कीर्तिचन्द्रस्य, राहुभूतस्य खलराक्षसस्य संसर्गसर्गस्य सम्पर्करचनायाः शून्यत्वं विघ्नशान्त्यर्थं कामये ॥ ९ ॥

पताका—अन्योंकी कीर्तिरूपी चन्द्रमाकेलिये राहु समान दुष्टरूपी राक्षसोंके सम्बन्धाभावको मैं सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये चाहता हूं ॥९॥

यस्यापारयशःपारावारं चोल्लङ्घितुं क्षमाः ।
न सुरा नासुरा वापि नो नराः किन्नरा न वा ॥१०॥

बा० बु० प्र० यस्यापारयशःपारावारमनन्तकीर्तिसागरं सुरा असुरा नराः किन्नराश्चाप्युल्लङ्घितुं याथार्थ्येन ज्ञातुं क्षमा न भवन्ति ॥ १० ॥

पताका—जिनके अनन्त यशरूप सागरका सुर, असुर, नर और किन्नर भी पार नहीं पा सकते ॥ १० ॥

तस्य श्रीमद्यतीन्द्रस्य गुणान्स्तोतुं समुत्सुकः ।
चिरोदन्याव्यथाशून्यरसनारसपूर्तये ॥११॥ (युग्मम्)

बा० बु० प्र० तस्य श्रीमद्रामानन्दयतीन्द्रस्य गुणान् स्तोतुमहं चिरेणोदन्याया पिपासाया व्यथया शून्याया रसनाया रसपूर्तये समुत्सुकोऽस्मि, नतु याथार्थ्येन वर्णयितुम् ॥ ११ ॥

पताका—उन श्री स्वामी रामानन्दजी महाराजके गुणोंका वर्णन करनेके लिये मैं उत्सुक हूं उसका कारण केवल चिरकालसे पिपासाकी पीडासे पीडित नीरस जिह्वाकी रसपूर्ति ही है ॥ ११ ॥

यच्चरितामृतास्वादादमरा अमराः किल ।
पूता भवतु मे वाणी तदास्वादरसादरा ॥१२॥

व्या० वृ० प्र० यच्चरितामृतास्वादादमरा देवा अपि अमरा अमरणधर्माणो जातास्तस्य चरितामृतस्य आ समन्तात्स्वादो यस्मिंस्तस्मिन् रस आदरो यस्या एवंभूता मे वाणी पूता भवतु ॥ १२ ॥

पताका—जिस चरितामृतके आस्वाद करनेसे देवता लोग भी अमर हो गये, उसीके स्वादिष्ट रसमें आदरवाली मेरी वाणी पवित्र हो ॥१२॥

कविकीर्तितृपा नाहं कविताकामिनीं भजे ।
केवलं स्वात्मतोषाय प्रवृत्तिरिह दृश्यताम् ॥१३॥

व्या० वृ० प्र० कविकीर्तिपिपासयाऽऽहं कविताकामिनीं न भजे । किन्तु केवलं स्वान्तःपरितोषायात्र मे प्रवृत्तिर्ज्ञायताम् ॥ १३ ॥

पताका—कवियोंकी कीर्ति प्राप्तिके लोभसे मैं कविता कामिनीका आलिङ्गन नहीं कर रहा हूं । केवल स्वमनःपरितोषके लिये ही यह मेरी प्रवृत्ति समझनी चाहिये ॥ १३ ॥

एकदा भारते वर्षे भारतेऽपि विधेर्वशात् ।
विपदम्भोधिकल्लोलनिर्घोषो व्यापदञ्जसा ॥ १४ ॥

व्या० वृ० प्र० इदानीं श्रीरामानन्दस्वामिचरणावतारप्रसङ्गमुपवर्णयति । एकदा भारतेऽपि कान्तियुक्तेऽपि भारते वर्षे देशे विधेर्वशाद्विपदम्भोधिकल्लोलानां विपत्तिसिन्धुतरङ्गाणां निर्घोषोऽञ्जसा व्यापद्व्याप्नोत् ॥ १४ ॥

पताका—एक समय दैववशात् अत्यन्त प्रभापूर्ण भारतवर्षमें विपत्तिसागरके तुमुल तरङ्गोंका शब्द चारों ओर व्याप्त हो गया ॥ १४ ॥

रामोऽरमत गोत्रायां यस्यां सद्गोत्रजः पुरा ।
कश्यपैः सा समाक्रान्ता दैवाद्भारतकाश्यपी ॥१५॥

व्या० वृ० प्र० यस्यां गोत्रायां पृथिव्यां सद्गोत्रजः सद्वंशजः श्रीरामः पुरा पूर्वमरमत, दैवात्सा भारतकाश्यपी भारतभूमिः कश्यपैर्मद्यपैः समाक्रान्ता ॥ १५ ॥

पताका—प्रथम जिस भूमिमें भगवान् श्री रामचन्द्रजीने क्रीडाएँ की थीं वही भारतभूमि विधिवशात् मद्यपोंसे आक्रान्त हो गई ॥ १५ ॥

कृष्णः कृषति यत्रैव कंसादीनसुरान् पुरा ।
हन्त ! तत्रैव मेदिन्यां प्रादुःषन्ति स्म दुर्जनाः ॥१६॥

वा० बु० प्र० पुरा यत्र भगवान् कृष्णः कंसादीनसुरान् कृषति बभञ्ज (पा० ३। २। १२२) तत्रैव मेदिन्यां भूम्यां दुर्जनाः हन्तेति खेदे प्रादुःषन्ति (पा० ८। ३। ८७) स्म प्रादुरभवन् ॥ १६ ॥

पताका—प्रथम द्वापरमें जिस भूमिमें भगवान् श्रीकृष्णने कंसादि दैत्योंका सर्वथा नाश किया था, हा ! उसी भूमिमें पुनः दुष्ट उत्पन्न हो गये ॥१६॥

गाः संगोपायितुं यत्र गोपालोऽवातरद्भुवि ।
तस्यामेव प्रवद्वृते तासां संहननं किल ॥ १७ ॥

वा० बु० प्र० यत्र गाः संगोपायितुं त्रातुं गोपालोऽवातरत्तस्यामेव भुवि तासां गवां संहननं सम्यग्वधः प्रवद्वृते प्रवृत्तः ॥ १७ ॥

पताका—जिस भूमिमें गौओंकी रक्षाके लिये गोपाल—कृष्णने अवतार लिया था वहां ही गौओंका वध होने लग गया था ॥ १७ ॥

मानवं वेषमादाय सर्वथा धर्मतानवम् ।
यस्यां विश्वम्भरायां स निराचीकरदीश्वरः ॥१८॥

वा० बु० प्र० यस्यां विश्वम्भरायां भूमौ स ईश्वरः श्रीरामो मानवं वेषमादाय धर्मतानवं धर्मक्षीणतां निराचीकरन्निराकृतवान् ॥ १८ ॥

पताका—जिस भूमिमें प्रभुने मनुष्य शरीर धारण करके धर्मकी क्षीणताको दूर किया था ॥ १८ ॥

तस्यामेव क्षितौ जातः धर्मक्षयपरिक्षयः ।
कस्य प्रचेतसश्चेतोनाडुनोन्निर्दयं तदा ॥१९॥

वा० बु० प्र० तस्यामेव जात उत्पन्नः धर्मक्षयपरिक्षयो धर्मनिकायनिकन्दनं कस्य प्रचेतसः सदयहृदयस्य पुरुषस्य चेतो निर्दयं यथा तथा नाडुनोन्न परितापितवान् ॥१९॥

पताकाः—उसी भूमिमें उत्पन्न हुवा धर्मविनाश किस सहृदय पुरुषके मनको व्यथित नहीं करता था ? ॥१९॥

तदानीं दुःसहक्लेशक्रान्तकाया वसुन्धरा ।
धेनुरूपधरा देवी ब्रह्माणमुपतस्थुषी ॥ २० ॥

व्या० सु० प्र० तदानीं दुःसहक्लेशैः क्रान्तः कायो यस्याः सा दिव्यगुणविशिष्टा देवी धेनुरूपधरा सती ब्रह्माणमुपतस्थुषी प्राप्तवती ॥ २० ॥

पताका:—उस समय दुःसह दुःखोंसे पीडित होकर पृथ्वीमाता गौका-रूप धारण करके ब्रह्माके पास गई ॥ २० ॥

सादरं तं नमस्कृत्य नमस्कार्या रसाऽऽरसा ।
विवर्णवदनोवाद स्वां दशामादितोऽखिलाम् ॥२१॥

व्या० सु० प्र० भगवल्लीलाश्रयत्वात्सर्वसहत्वाच्चनमस्कार्याऽऽरसा दुःखित्वान्नीरसा विवर्णवदना खिन्नमानना सा रसा पृथ्वी तं ब्रह्माणं नमस्कृत्यादितः स्वामखिलां दशामुवाद वर्णयामास ॥ २१ ॥

पताका:—भगवान्‌की लीलाका आश्रय होनेसे नमस्कार करने योग्य दुःखिनी मलिनवदना वह पृथ्वी ब्रह्माजीको नमस्कार करके आरम्भसे अपनी सम्पूर्ण दशाको वर्णन करने लगी ॥ २१ ॥

श्रोत्रातिथिं विधायैव तस्यास्तां दुरवस्थितिम् ।
उदतिष्ठत्सुरज्येष्ठः शोकशङ्कुकदर्थितः ॥ २२ ॥

व्या० सु० प्र० सुरज्येष्ठो ब्रह्मा तस्या भूमेस्तां दुरवस्थितिं दुरवस्थां श्रोत्रयोरतिथिं विधायाकर्ण्येत्यर्थः शोकशङ्कुकदर्थितःशोककण्टकनिपीडितः सन्नुदतिष्ठत् ॥ २२ ॥

ध्वजः—वह ब्रह्माजी पृथ्वीकी उस दीन दशाको सुनकर चिन्तासे व्याकुल होकर उठ खड़े हुये ॥ २२ ॥

इयाय स तुरासाहं तत्क्षणं चतुराननः ।
परदुःखासहिष्णोर्हि स्वसुखापेक्षिता कुतः ॥ २३ ॥

व्या० सु० प्र० स चतुराननस्तत्क्षणं तुरासाहं देवराजमियाय जगाम । ननु-वृद्धत्वाद्गमने दुःखं स्यादित्याह परदुःखेति, हि यतः परदुःखासहिष्णोरन्यव्यथाऽऽसहनशीलस्य पुरुषस्य स्वसुखापेक्षिता स्वानन्दापेक्षित्वं कुतः ? नेत्यर्थः ॥ २३ ॥

पताका–ब्रह्माजी उसी समय इन्द्रके पास गये। वृद्ध होनेके कारण जानेमें दुःख तो हुआ होगा परन्तु जो दूसरोंके दुःखोंको सहन नहीं कर सकते उनको अपने सुखकी अपेक्षा कहांसे हो? ॥ २३ ॥

आयन्तं तं विलोक्यैव त्यक्तसिंहासनासनः।
महौजाः स विडौजास्तु प्रत्युदतिष्ठदञ्जसा ॥ २४ ॥

वा० बु० प्र० महदोजो यस्य स विडौजा इन्द्र आयन्तं तं ब्रह्माणं विलोक्यैव त्यक्तं सिंहासनमेवासनं येन इत्थंभूतः सन्नञ्जसा प्रत्युदतिष्ठत् ॥ २४ ॥

पताका–अत्यन्त बलशाली इन्द्र ब्रह्माजीको आते हुए देखकर शीघ्र सिंहासनको छोड़कर सहसा उठ खड़े हुये ॥ २४ ॥

विकसत्पद्मसद्माभौ पुण्यपादौ प्रजापतेः।
नमद्धरिशिरोरत्नभाभिः सम्भूषितौ क्षणम् ॥ २५ ॥

वा० बु० प्र० नमतो हरेरिन्द्रस्य शिरोरत्नानां मुकुटजटितानामित्यर्थः भाभिः कान्तिभिर्विकसन्ति यानि पद्मानि तेषां सद्मानि तेषामाभेवाभा ययोस्तौ प्रजापतेः पुण्यपादौ क्षणं सम्भूषितौ, इन्द्रस्तं प्रणनामेति भावः ॥ २५ ॥

पताका–नमस्कार करते हुये इन्द्रके शिर–मुकुटमें जड़े हुए रत्नोंकी किरणोंने थोड़ी देरके लिये ब्रह्माजीके पुष्पित कमल समान पवित्र चरणोंको अलङ्कृत कर दिया।

अर्घ्यपाद्यादिभिस्तोयैः सत्कृत्य परमेष्ठिनम्।
मिलत्करपुटः श्रीमान् व्याजहार शचीपतिः ॥ २६ ॥

वा० बु० प्र० अर्घ्यपाद्यादिभि (पा. ५। २। २४) स्तोयैर्जलैः परमेष्ठिनं ब्रह्माणं सत्कृत्य मिलत्करपुटो बद्धाञ्जलिः शचीपतिरिन्द्रो व्याजहारोवाच ॥ २६ ॥

पताका–अर्घ्य और पाद्यादि जलसे ब्रह्माजीका सत्कार करके हाथ जोड़कर श्रीमान् देवराज बोलने लगे ॥ २६ ॥

सर्वदेवसमाराध्य! साध्य! सिद्धगणैरपि।
ऋद्ध! सर्वफलैर्वृद्ध! कथमाकस्मिकागमः ॥ २७ ॥

बा० बु० प्र० हे सर्वदेवाना समाराध्य ! सिद्धगणैरपि साध्य ! सर्वैः फलैर्धर्मा-दिभिर्ऋद्ध पूर्ण ! वृद्ध ! चतुरानन आकास्मिक आगम आगमनं कथं केन हेतुना ? ॥२७॥

पताका—हे सर्वदेवोंके पूज्य, सिद्धगणोंसे भी साधन करने योग्य धर्मादि सर्वफलोंसे पूर्ण वृद्ध ब्रह्माजी! अकस्मात् आगमन कैसे हुआ ॥२७

हन्त ! कष्टं कृतं, तत्र कथं नायं जनः स्मृतः ।
लोकाचारं न वीक्षन्ते ह्यथवा भक्तवत्सलाः ॥ २८ ॥

बा० बु० प्र० हन्तेति सम्भ्रमे, श्रीमता कष्टं कृतम्, अयमेव जनस्तत्र स्वसदने कथं न स्मृतः ? अथवा हि निश्चयं भक्तवत्सला लोकाचारं लघुजनो न गन्तव्य इत्येतद्रूपमाचारं न वीक्षन्ते ॥ २८ ॥

पताका—आपने कष्ट किया, मुझे ही क्यों नहीं बुला लिया। अथवा भक्तवत्सल लोग अमुक छोटा है, उसके पास नहीं जाना चाहिये इत्यादि लोकाचारकी ओर दृष्टि नहीं करते ॥ २८ ॥

विधेहि सदृशं कृत्यं निधेहि करुणादृशम् ।
जानीहि मां निजं प्रेष्यमनुजानीहि सत्वरम् ॥ २९ ॥

बा० बु० प्र० हे ब्रह्मन्! करुणादृशं निधेहि, सदृशं योग्यं कृत्यं विधेहि, मां निजं प्रेष्यं दासं जानीहि, अतः सत्वरं शीघ्रमनुजानीहयाज्ञापय ॥ २९ ॥

पताका—कृपादृष्टि करिये मेरे योग्य कार्य बताइये, मुझे अपना दास जानिये अतः शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥ २९ ॥

अब्जयोनेर्निशम्यैतां भारतीं पाकशासनीम् ।
मुखेभ्यः प्रसृताः शब्दाश्चतस्रःश्रुतयो यथा ॥ ३० ॥

बा० बु० प्र० पाकशासनीमैन्द्रीमेतां वाचं निशम्याब्जयोनेर्ब्रह्मणो मुखेभ्यश्च-तुर्भ्यश्चतस्रः श्रुतयो यथेव शब्दाः प्रसृताः प्रसस्रुः ॥ ३० ॥

पताका—इन्द्रके इस वचनको सुनकर ब्रह्माजीके चारों मुखसे चारों वेदोंकी तरह शब्द निकलने लगे ॥ ३० ॥

बलाराते ! सुरारातिभायदुर्जनदूषिता ।
अवनिर्भारती खिन्ना विद्यते धरणीमणिः ॥ ३१ ॥

बा० बु० प्र० हे बलाराते ! सुरेन्द्र ! सुरारातयोऽसुरास्तत्प्रायैस्तत्तुल्यैर्दुर्जनैर्दूषिता धरणीमणिः सर्वभूमिमहालङ्कारभूता भारत्यवनिर्भूमिःखिन्ना विद्यते ॥ ३१ ॥

पताका—हे देवराज ! राक्षस समान दुष्टोंसे पीडित होकर सब भूमियोंमें श्रेष्ठ भारतभूमि आज अत्यन्त दुःखित हो रही है ॥ ३१ ॥

धर्मसंस्थाविनाशाय प्रवर्तन्ते दुराशयाः ।
ततो धर्मधियो विप्राः खिद्यन्ते तेऽध्वराध्वगाः ॥ ३२ ॥

बा० बु० प्र० धर्मस्य संस्था मर्यादा तस्या विनाशाय दुराशया दुष्ट आशयो येषां ते दुर्जना इत्यर्थः प्रवर्तन्ते प्रवृत्ताः सन्ति । तस्माद्धर्मे धीर्येषां ते धर्मधियो धर्मध्यानवन्तोऽध्वरो यज्ञस्तस्याध्वा पन्थास्तद्गा यागानुष्ठानवन्तस्ते प्रसिद्धा विप्राः खिद्यन्ते॥३२॥

पताका—हे प्रभो ! दुष्ट पुरुष धर्मकी मर्य्यादाका नाश करनेके लिये प्रवृत्त हो रहे हैं । इससे धर्मप्रिय और यज्ञादिका निरन्तर अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण दुःखित हो रहे हैं ॥ ३२ ॥

श्रौतधर्मे समुत्सन्ने निरुद्धे यागकर्मणि ।
क्रतुभुक्त्वं क्रतुभुजां भज्येत क्रतुभुक्पते ॥ ३३ ॥

बा० बु० प्र० हे सुरेन्द्र ! श्रौतधर्मे समुत्सन्ने विनष्टे सति तथा यज्ञादिकर्मणि निरुद्धेऽवरुद्धे च सति क्रतुभुजां देवानां क्रतुभुक्त्वं यज्ञांशाशित्वं भज्येत विपर्येत ॥ ३३ ॥

पताका—हे सुरेन्द्र ! वैदिक धर्मके नष्ट हो जानेपर तथा यागादि कर्मोंके रुक जानेपर देवोंको यज्ञका भाग मिलना बन्द हो जायगा ॥ ३३ ॥

तेन सर्वान्सुरांस्तूर्णमादाय जगतीपतेः ।
रघुनाथस्य सान्निध्यं सुरनाथ विधीयताम् ॥ ३४ ॥

बा० बु० प्र० तेन हेतुना हे सुरनाथ ! सर्वान् सुराना दाय तूर्णं शीघ्रं जगतीपते रघुनाथस्य सान्निध्यं सामीप्यं विधीयतां, तत्समीपे गम्यतामिति भावः ॥३४॥

पताका–इसलिये हे देवेन्द्र ! अखिल ब्रह्माण्डके नायक श्रीरामचन्द्रजी महाराजके समीप सब देवोंको लेकर शीघ्र चलिये ॥३४॥

ततो वृन्दारकाः सर्वे प्रजापतिपुरस्सराः ।
सर्वानुकूलतोपेतं साकेतमभि वव्रजुः ॥ ३५ ॥

वा० वु० प्र० ततः प्रजापतिपुरस्सराः सर्वे वृन्दारका देवाः सर्वाभिरनुकूलताभिरुपेतं साकेतमभिवव्रजुर्ययुः ॥ ३५ ॥

पताका–तदनन्तर ब्रह्मा प्रभृति सब देवता सम्पूर्ण अनुकूलताओंसे युक्त—सर्वसुखप्रद साकेतलोकमें गये ॥ ३५ ॥

हनुमद्गरुडानन्तयुक्तध्वजसुभूषितम् ।
विविधाकारसमारब्धप्राकारपरिवेष्टितम् ॥ ३६ ॥

वा० वु० प्र० एकेन साकेतं विशिनष्टि । हनुमद्गरुडानन्तयुक्तैर्ध्वजैः सुभूषितं विविधैर्बहुप्रकारैराकारैः प्राकारैः समारब्धैर्निर्मितैः परिवेष्टितम् ॥ ३६ ॥

पताका–साकेत लोकका एक श्लोकमें वर्णन करते हैं । वह साकेत हनुमान्, गरुड और अनन्त आदिसे युक्त पताकाओंसे शोभायमान तथा बहुत प्रकारकी नगररक्षिका भित्तियोंसे घिरा हुआ था ॥ ३५ ॥

ते गोपुरमतीत्यैरम्मदामृतसरस्तथा ।
सोमाश्वत्थं परिक्रम्य चेलुरग्रेऽमृतान्धसः ॥ ३७ ॥

वा० वु० प्र० तेऽमृतान्धसो देवा गोपुरं पुरद्वारमतीत्यैरम्मदाख्यममृतसरः (पा. ५।४।९४) इति टच् नेह, जातिसंज्ञयोरभावात् । तथा सोमाख्यमश्वत्थं परिक्रम्याग्रे चेलुश्चलितवन्तः ॥ ३७ ॥

पताका–वे देवता लोग गोपुर–नगरके प्रधान द्वारको पार करके ऐरम्मद नामवाले अमृतसरोवर तथा सोमनामवाले अश्वत्थकी परिक्रमा करके आगे चले ॥ ३७ ॥

महामणिसमाकीर्णं महाकायं मनोहरम् ।
ब्रह्मादयोऽखिला देवा उपसेदुश्च मण्डपम् ॥ ३८ ॥

बा० बु० प्र० ब्रह्मादयोऽखिला देवा महामणिभिर्वैडूर्यादिभिः समाकीर्णं व्याप्तं महाकायं विशालं मनोहरं मण्डपमुपसेदुःप्रापुः ॥ ३८ ॥

पताका—ब्रह्मादि सब देवता वैडूर्य आदि महामणियोंसे खचित, विशाल और मनोहर मण्डपमें पहुंच गये ॥ ३८ ॥

तत्रानन्तसहस्रांशुसमानांशुप्रकाशितम् ।
शङ्खचक्रधनुर्बाणदिव्यायुधपरिग्रहम् ॥ ३९ ॥

बा० बु० प्र० पञ्चभिर्भगवन्तं विशिनष्टि । तत्र मण्डपेऽनन्तानां सहस्रांशूनां सूर्याणां समानैरंशुभिः किरणैः प्रकाशितं तथा शंखचक्रधनुर्बाणादीन्यायुधानि परिग्रहो यस्य तं श्रीरामं ददृशुरिति दूरेणान्वयः ॥ ३९ ॥

पताका—उस मण्डपमें अनन्तसूर्यके किरणोंके समान प्रकाशित तथा शंख, चक्र, धनुष् और बाण आदि आयुधोंसे सुशोभित— ॥ ३९ ॥

जाज्वल्यमानसंतेजःकिरीटमकरादिभिः ।
हारकेयूरकटकश्रीवत्सादिभिरन्वितम् ॥ ४० ॥

बा० बु० प्र० जाज्वल्यमानानि सम्यक् तेजांसि येषां तैः किरीटमकरादिभि-र्हारकेयूरकटकश्रीवत्सादिभिरन्वितं संयुक्तम् ॥ ४० ॥

पताका—अत्यन्त प्रकाशमान तेज वाले किरीट मकरादि तथा हार, केयूर, कटक और श्रीवत्सादि दिव्य विभूषणोंसे युक्त— ॥ ४० ॥

कौस्तुभप्रभयाक्रान्तं मुक्तादामादिशोभितम् ।
पीताम्बरधरं काञ्चीगुणनूपुरराजितम् ॥ ४१ ॥

बा० बु० प्र० कौस्तुभमणेः प्रभया कान्त्याऽऽक्रान्तं व्याप्तं मुक्तादामादि-भिश्च शोभितं पीताम्बरधरं कांचीगुणैर्नूपुरैश्च राजितम् ॥४१॥

पताका—कौस्तुभमणिकी प्रभासे व्याप्त, मुक्तादामादिसे शोभित, पीताम्बर धारण किये हुये तथा काञ्चीगुण—कटिसूत्र और नूपुर आदिसे सुशोभित— ॥ ४१ ॥

लौकिकालभ्यसौन्दर्यमदाभाभिनिभालितैः ।
विमलादिजनैः शुद्धैश्चलच्चामरहस्तकैः ॥ ४२ ॥
सेव्यमानमधिष्ठानं दिव्यानां सर्वसम्पदाम् ।
ददृशुर्नयनारामं रामं राजीवलोचनम् ॥ ४३ ॥

वा० नु० प्र० लौकिकैरलभ्यमप्राप्यं यत्सौन्दर्यं तदस्ति यासां ताभिराभाभिः कान्तिभिर्निभालितैर्वीक्षितैर्लोकोत्तररूपवद्भिरित्यर्थः, चलन्ति चामराणि येषु तादृशाः सुकुमारा हस्ता येषां तैः शुद्धैर्विमलादिजनैः सेव्यमानं दिव्यानां सर्वसम्पदां निखिलैश्वर्याणामधिष्ठानं नयनाभिरामं चक्षुरानन्ददं राजीवलोचनं कमलनयनं श्रीरामं ददृशुर्देवा इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

पताका—जिनके हाथोंमें चामर शोभायमान थे तथा जिनका सौन्दर्य अन्य साधारण स्त्रीजनोंको दुर्लभ था ऐसे विमलादिजनोंके द्वारा सेव्यमान समस्त दिव्य विभूतियोंके अधिष्टान, कमलनयन, नयनाभिराम श्रीरामजीका उन लोगोंने दर्शन किया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

साष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्य जगदीश्वरम् ।
उत्तस्थुर्युगपद्देवाः शिक्षिताः सैनिका इव ॥ ४४ ॥

वा० नु० प्र० ते देवा युगपत्समकालमेव साष्टांगप्रणिपातेन जगदीश्वरं सर्वलोकपरमेश्वरं श्रीरामं प्रणम्याधिगतशिक्षाः सैनिका इवोत्तस्थुरुत्थितवन्तः ॥ ४४ ॥

पताका—जिस प्रकारसे सीखे हुये सैनिक लोग एक साथही हस्त पादादि संचालन करते हैं वैसेही सब देवता एक साथही सर्वेश्वर श्रीरामजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके उठ खड़े हुये ॥ ४४ ॥

मस्तकन्यस्तहस्तास्ते निरस्तवदनश्रियः ।
अथोपस्थातुमादीशं श्रीशमारेभिरे सुराः ॥ ४५ ॥

वा० नु० प्र० अथ प्रणामानन्तरं मस्तकन्यस्तहस्ताः शिरःसमर्पिताञ्जलयो निरस्तवदनश्रियो व्यस्ताननलक्ष्मीकास्ते सुरा आदीशं श्रीजानकीपतिमुपस्थातुं स्तोतुमारेभिर आरब्धवन्तः ॥ ४५ ॥

पताका—प्रणाम करनेके पश्चात् दुःखसे मलिन मुखवाले, हाथ जोड़े हुये वे देवता आदिनाथ श्रीरामजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥

नमोऽस्तु सुरसंघातद्वेषिणे सर्वशेषिणे ।
मायिनेऽपि च मायातः सुदूरमथितस्थुषे ॥ ४६ ॥

चा० बु० प्र० असुरसंघातद्वेषिणे सर्वशेषिणे मायाया अध्यक्षतया व्यापक-तया च तद्युक्तेऽपि मायातः सुदूरमथितस्थुषे तद्गतदोषाकरस्पर्शाय तुभ्यमिति शेषः नमोऽस्तु ॥ ४६ ॥

पताका—असुर समूहके द्वेषी, सर्वशेषी अर्थात् सर्वाध्यक्ष तथा माया के अधिष्ठाता होकरभी उससे पृथक् रहने वाले आपको नमस्कार हो ॥४६॥

चराचरमिदं सर्वं जगत्त्वत्तः प्रवर्तते ।
त्वयि सन्तिष्ठते पश्चात्त्वय्येव च विलीयते ॥ ४७ ॥

चा० बु० प्र० इदं सर्वं चराचरं चेतनात्मकं जगत्त्वत्तो नामरूपविभागानर्हतया स्वविशेषणीभूतसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टादुपादानकारणात्प्रवर्तते उत्पद्यते । ननु भगवत उपादानकारणत्वे तस्य सविकारत्वेन श्रुतिस्मृत्याद्युपपादितं निर्विकारत्वं विरुध्येतेति चेन्न । चिदचिद्रूपविशेषणविशिष्टस्य तस्य जगद्रूपेण परिणामेऽपि विशेष्ये स्वरूपे न विकारसम्भवः । विशेषणं द्वारीकृत्यैव परिणामप्रवृत्तिस्वीकारात् । उत्पन्नं सर्वं जगत्सर्वाधारे सर्वरक्षके परमदयानिधौ त्वयि सन्तिष्ठते स्थितिं प्राप्नोति, पश्चात्प्रलयकाले त्वय्येव विलीयते ॥ ४७ ॥

पताका—हे भगवन् ! यह समस्त चर और अचर जगत् आपसेही उत्पन्न होता है । उत्पन्न होकर आपमेंही रहता है तथा पश्चात् आपमेंही लीन हो जाता है ॥ ४७ ॥

सर्गावस्थितिसंहारक्रियाभिः स्वत्रिरूपताम् ।
द्योतयन्द्योतते नित्यं वस्तुतः केवलो भवान् ॥ ४८ ॥

चा० बु० प्र० भवान्वस्तुतः केवलोऽपि सृष्टिस्थितिसंहाररूपाभिः क्रियाभिः स्वस्य त्रिरूपतां ब्रह्मविष्णुरुद्रतां द्योतयन्द्योतते ॥ ४८ ॥

पताका–हे प्रभो ! यद्यपि आप 'केवल' हैं तथापि सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि क्रियाओंसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप अपने तीन रूपोंको प्रकाशित करते हुये प्रकाशमान हैं ॥ ४८ ॥

स्वाभाविकं बलं ज्ञानं सामर्थ्यं चावभासयन् ।
सङ्कल्पमात्रमास्थाय निर्मिमीषेऽखिलं जगत् ॥ ४९ ॥

व्या० बु० प्र० 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचे' (श्वे० ६।८) त्याद्युक्तप्रयोगेण स्वाभाविकं बलं ज्ञानं सामर्थ्यं चावभासयन्, प्रकटयन् 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयमि (छा० ६।६।२।३) तिश्रुत्यभिहितसङ्कल्पमात्रमास्थायाखिलं जगन्निर्मिमीषे ॥ ४९ ॥

पताका–हे प्रभो आप अपने स्वाभाविक ज्ञान, बल और सामर्थ्यका प्रकाश करते हुये सङ्कल्प मात्रसे निखिल जगत्का निर्माण करते हैं ॥४९॥

दिवा भानौ निशीथिन्यां शीतभानौ समीरणे ।
कृशानौ च जगन्नाथ तेजस्तव विभासते ॥ ५० ॥

व्या० बु० प्र० दिवा दिवसे भानौ दिवाकरे, निशीथिन्यां रात्रौ शीतभानौ सुधांशौ, समीरणे वायौ. कृशानावग्नौ च हे जगन्नाथ ! तव तेजो विभासते प्रकाशते । 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाती (मु० २।२।१०) तिश्रुत्युक्तदिशा सर्व एव तेजस्विनः पदार्थास्त्वत्तेजःप्रकाशका इत्यर्थः ॥ ५० ॥

पताका–हे जगन्नाथ ! आपका तेज दिनमें सूर्यमें और रात्रिमें चन्द्रमामें, तथा अग्नि और वायुमें प्रकाशित हो रहा है ॥ ५० ॥

हिमालयमहौन्नत्यमौन्नत्यं सन्नुतस्य ते ।
पारावारस्य गाम्भीर्यं गाम्भीर्यं प्राथयत्यपि ॥ ५१ ॥

व्या० बु० प्र० हिमालयस्य पर्वतस्य यन्महौन्नत्यं विशालता तत्सद्भिर्नुतस्य स्नुतस्य ते तवौन्नत्यं प्राथयति प्रकाशयति तथा पारावारस्य सागरस्य यद्गाम्भीर्यं तदपि तवैव गाम्भीर्यं प्राथयतीत्यन्वयः । त्वद्वत्ततद्गुणवन्ति सर्वाण्येव वस्तुनि तत्रैव तद्गुणवत्तां सूचयन्तीत्याशयः ॥ ५१ ॥

पताका—हे प्रभो ! हिमालयकी ऊंचाई और समुद्रकी गम्भीरता सत्पुरुषोंसे प्रशंसित आपकी ऊंचाई—विशालता और गम्भीरताको प्रकट कर रही है ॥ ५१ ॥

पत्रपुष्पफलक्षीरसस्यपूर्णा वसुन्धरा ।
सर्वसहत्वमपि ते सदाविष्कुरुते प्रभो ॥ ५२ ॥

बा० बु० प्र० हे प्रभो ! पत्रैः, पुष्पैः, फलैः, क्षीरैः, सस्यैश्च पूर्णा वसुन्धरा ते परमकृपानिधेः सर्वसहत्वं सदाऽऽविष्कुरुते ॥ ५२ ॥

पताका—हे प्रभो ! पत्र, पुष्प, फल, दुग्ध और नाना प्रकारके अन्नादिसे परिपूर्ण पृथिवी आपकी सर्व विषयक उदारताको प्रकट कर रही है ॥५२॥

महतोऽपि महीयांस्त्वं लघीयांल्लघुतोऽपि वा ।
परतोऽपि परश्चासि गुरूणामपि वा गुरुः ॥ ५३ ॥

बा० बु० प्र० त्वं महतोऽपि महीयांल्लघुतोऽपि लघीयान् (श्वे० ३।२०) परतः परस्मादपि परो गुरूणामपि गुरुश्चासि ॥ ५३ ॥

पताका—हे नाथ ! आप बड़ेसेभी बड़े, छोटेभी छोटे, परसेभी पर और गुरुओंकेभी गुरु हैं ॥ ५३ ॥

त्वमेवोपायभूतोऽसि तथोपेयोऽपि शाश्वतः ।
सर्वेशश्च निरीशोऽसि वेदवेद्योऽसि राघव ॥ ५४ ॥

बा० बु० प्र० हे राघव त्वमेवोपायभूतोऽसि । शाश्वतोऽस्यत उपेयोऽप्यसि । सर्वेषामीशोऽसि । निरीशो नियमाकान्तरशून्योऽसि । वेदैर्वेद्यश्चापि त्वमेवासि ॥ ५४ ॥

पताका—हे प्रभो ! आपही सबके उपायभूत हैं । नित्य होनेसे उपेयभी आपही हैं । सबके अधिष्ठाता आपही हैं । आपका कोई नियामक नहीं है । वेदोंके द्वारा ज्ञेयभी आपही हैं ॥ ५४ ॥

इति तेषां स्तवं श्रुत्वा सर्वश्रुतिकृतस्तवः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा तरसा वचसा हरिः ॥ ५५ ॥

बा० बु० प्र० तेषां देवानामित्युक्तप्रकारेण स्तवं श्रुत्वा सर्वाभिः श्रुतिभिः कृतः स्तवो यस्य स प्रसन्नात्मा हरिः सर्वपापहारः श्रीरामस्तरसा बलेन गभीरेणेत्यर्थः, वचसा प्रत्युवाच ॥ ५५ ॥

पताका—देवताओंकी इस प्रकार स्तुति सुनकर, समस्त वेद जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे सर्वपाप निवर्तक भगवान् श्रीरामजी प्रसन्न होकर गम्भीर वाणीसे बोले ॥ ५५ ॥

कल्याणनिलया देवा अपास्तासुरशत्रवः ।
कथं सुमनसो यूयं युगपत्समुपस्थिताः ॥ ५६ ॥

बा० बु० प्र० कल्याणां निलया अपास्ता विध्वस्ता असुरा एव शत्रवो येषां ते तथा शोभनं मनो येषामेवं भूता हे देवा यूयं युगपत्कथं केन हेतुना समुपस्थिताः ? ५६ ॥

पताका—हे कल्याणपात्र ! हे शत्रुहीन, हे शुद्धान्तःकरण वाले देव-गण ! आज आप लोग एकही समयमें मिलकर किस कारणसे आये? ५६

धनुष्पाणेश्च कल्याणीं वाणीमाकर्ण्य सस्पृहम् ।
आनन्दोद्रेकसम्मिश्रा निलिम्पाः प्रत्यचीकथन् ॥ ५७ ॥

बा० बु० प्र० धनुष्पाणेः श्रीरामस्य कल्याणीं वाणीं सस्पृहमाकर्ण्याऽऽनन्दस्योद्रेकेणाधिक्येन सम्मिश्राः संप्लुता निलिम्पा निर्जराः प्रत्यचीकथन् ॥ ५७ ॥

पताका—धनुर्धारी भगवान् श्रीरामकी कल्याण कारिणी सुन्दर वाणीको अत्यन्त उत्कण्ठासे सुनकर परमानन्दित होकर देवता लोग पुनः बोले ।

नाथ ! त्वत्पादसँस्पर्शधन्यायां भारतावनौ ।
पुना रक्षःपिशाचाद्या नररूपैरवातरन् ॥ ५८ ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! त्वत्पादयोः संस्पर्शेन धन्यायां भारतावनौ भारतभूमौ पुना रक्षःपिशाचाद्या नररूपैर्मानवीं तनुमाश्रित्यावातरन् ॥ ५८ ॥

पताका—हे नाथ ! आपके चरणकमलके स्पर्शसे धन्य, भाग्यशालिनी भारतभूमिमें पुनः राक्षस पिशाचादि मनुष्यका शरीर धारण करके उत्पन्न हुये हैं ॥ ५८ ॥

यत्र तत्र निहन्यन्ते हिन्दवो धर्मसिन्धवः ।
धर्मध्वंसः समुत्पन्नो दिक्षु सर्वासु सुव्रत ॥ ५९ ॥

वा० बु० प्र० यत्र तत्र धर्मसिन्धवो हिन्दवो निहन्यन्ते । सर्वासु दिक्षु हे सुव्रत ! धर्मध्वंसः समुत्पन्नः ॥ ५९ ॥

पताका—जहां तहां परमधार्मिक हिन्दुओंका वध हो रहा है । हे राक्षसोंके वध करनेके सुन्दर संकल्प वाले प्रभो ! चारो दिशाओंमें धर्मका नाश हो रहा है ॥ ५९ ॥

सर्वत्र यवना नाथ ! संवर्तपवना इव ।
देवालयाँल्लयप्रायान्नित्यं कुर्वन्ति दुर्ग्रहाः ॥ ६० ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! दुर्ग्रहा अतिप्रबला यवनाः संवर्तपवनाः प्रलयवायव इव नित्यं सर्वत्र देवालयान्देवतायतनानि नष्टप्रायान् कुर्वन्ति ॥ ६० ॥

पताका—हे नाथ ! अति प्रबल यवन प्रलयकालके वायुकी तरह सब जगह सर्वदा देवमन्दिरोंको नष्ट कर रहे हैं ॥ ६० ॥

वर्णाश्रमसदाचारद्वेषलोलुपबुद्धयः ।
बहवः किन्नरा जाता यथा प्रावृषि दर्दुराः ॥ ६१ ॥

बा० बु० प्र० वर्णानामाश्रमाणां च सदाचाराणां द्वेषे लोलुपा सस्पृहा बुद्धिर्येषामेवंभूता बहवः किन्नराः कापुरुषाः प्रावृषि दर्दुरा इव जाता उत्पन्नाः ॥ ६१ ॥

पताका—वर्षाऋतुमें दादुरकी तरह इस समय वर्णाश्रम धर्मके बहुतसे द्वेषी उत्पन्न हो गये हैं ॥ ६१ ॥

श्रुतीतिश्रुतिमात्रेण वञ्चकाःकेशलुञ्चकाः ।
श्रुतिसन्तापकैर्वाक्यैः सतां दुन्वन्ति मानसम् ॥ ६२ ॥

बा० बु० प्र० वञ्चकाः केशलुञ्चका जैनाः 'श्रुति' इतिश्रुतिमात्रेण श्रवणमात्रेण श्रुतिसन्तापकैः कर्णक्लेशदैर्वाक्यैः सतां वैदिकानां मानसं दुन्वन्ति पीडयन्ति।

पताका—केश नोचनेवाले वञ्चक जैन लोग वेद शब्दके श्रवण मात्रसे कर्णकटु वाक्योंसे वेदनानुयायियोंके हृदयको पीडित कर रहे हैं ॥ ६२ ॥

अचारुवाकाश्चार्वाका मूर्छयन्ति वचोविषैः ।
वेदाध्वप्रतिपन्नानां ब्राह्मणानां परम्पराम् ॥ ६३ ॥

चा० वृ० प्र० अचारुवाका अरमणीयवचनाश्चार्वाका वचोविषैर्वेदाध्वप्रतिपन्नानां वेदमार्गप्रगातानां ब्राह्मणानां परम्परां श्रेणीं समाजमितियावन्मूर्छयन्ति विगतचेतनां कुर्वन्ति ॥ ६३ ॥

पताका—कठोर वचन बोलने वाले चार्वाक लोग वचनरूप विषसे वेदमार्गानुयायी ब्राह्मणोंके समाजको मूर्छित कर रहे हैं ॥ ६३ ॥

स्वर्गं गच्छन्ति चेद्यज्ञे पशवः! पशवो हताः ।
स्वेषां निहत किंनाऽथ मातरं पितरं सुतान् ॥ ६४ ॥

चा० वृ० प्र० जैनचार्वाकादीनामुक्तिरनूद्यते । हे पशवो वैदिकाश्चेद्यज्ञे हताः पशवः स्वर्गं गच्छन्ति, अथ स्वेषां मातरं पितरं सुतांश्च किं न निहत मारयत ? ॥ ६४ ॥

पताका—जैन और चार्वाकके कठोर वचनोंका अनुवाद करते हैं । हे पशुतुल्य वेदानुयायियो ! यदि यज्ञमें मरे हुये पशु स्वर्गमें जाते हैं तो तुम लोग अपनी माता, पिता और पुत्रोंको क्यों नहीं मारते हो ॥ ६४ ॥

स्वीकरोति यदा देही शरणं मरणं तदा ।
पिण्डोदकादिकं दत्तमादत्ते तत्र का प्रमा ॥ ६५ ॥

चा० वृ० प्र० यदा देही प्राणी मरणमेव शरणं स्वीकरोति मृतो भवतीत्यर्थस्तदा स पिण्डोदकादिकं दत्तमादत्ते गृह्णाति, तत्र तस्मिन् विषये का प्रमा? ॥६५॥

पताका—जब प्राणी मर जाता है तब तुम्हारे दिये हुये पिण्डदान और जलदानको ग्रहण करता है, इसमें क्या प्रमाण है ? ॥ ६५ ॥

यदि तीर्थोदकस्पर्शात्पापाच्छापाच्च मुच्यते ।
मीनादिका न मुच्यन्ते ते कथं पापयोनयः ॥ ६६ ॥

चा० वृ० प्र० यदि तीर्थोदकानां सरयूप्रभृतिजलानां स्पर्शात्कश्चित्पापाच्छापाच्च मुच्यते तर्हि पापयोनयस्ते मीनादिकाः कथं न मुच्यन्ते ? तत्र सततनिवासशीलत्वादित्याशयः ॥ ६६ ॥

पताका—यदि सरयू आदि तीर्थ नदियोंके जलोंके स्पर्शसे कोई पाप और शापसे छूटता हो तो उन नदियोंमें सर्वदा निवास करने वाली पापयोनिवाली मछली आदि क्यों नहीं मुक्त हो जाती हैं ? ॥ ६६ ॥

मृच्छिलाधातुदार्वादिनिर्मितां प्रतिमामिमाम् ।
पूजयित्वा स्वरीप्सा चेदरयो गिरयःकथम् ॥ ६७ ॥

वा० बु० प्र० मन्मृत्तिका शिला पाषाणखण्डो धातवः सुवर्णादयो दारु काष्ठमित्यादिभिर्निर्मितामिमां प्रतिमां पूजयित्वा स्वरीप्सा स्वर्गलिप्सा चेद्गिरयः पर्वताः कथमरयः शत्रवः? ते कथं न पूज्यन्त इत्याशयः ॥ ६७ ॥

पताका—यदि मृत्तिका, पाषाण, सुवर्णादि धातु और काष्ट आदिकी बनी हुई इन मूर्तियोंको पूजकर स्वर्ग प्राप्तिकी इच्छा हो तो इन बड़े २ पर्वतोंके साथ क्यों शत्रुता है कि जिससे इनको नहीं पूजते हो ? ॥ ६७ ॥

जर्फरीतुर्फरीत्यादिवचसां चेत्प्रमाणता ।
कालिदासकृतेस्तर्हि कोऽपराधो निरीक्ष्यते ॥ ६८ ॥

वा० बु० प्र० यदि जर्फरीतुर्फरीत्यादिवचसां वेदानामसम्बद्धवाक्यानां प्रमाणता प्रामाण्यं तर्हि कालिदासस्य कृतेःकोऽपराधोनिरीक्ष्यते ? तस्याःसम्बद्धवाक्यत्वेऽपि कथं न प्रामाण्यमङ्गीक्रियत इति भावः ॥ ६८ ॥

पताका—यदि जर्फरी तुर्फरी आदि वेदोंके असम्बध वाक्योंकोभी प्रामाणिक मानते हो तो महाकवि कालिदासके सम्बद्धवाक्योंका प्रामाण्य क्यों नहीं स्वीकार करते ? ॥ ६८ ॥

अक्रमं विक्रमं वाक्यं श्रुतीनां चेत्प्रमा भवेत् ।
तदोन्मत्तप्रलापेषु पुरोभागी कथं भवान् ॥ ६९ ॥

वा० बु० प्र० चेच्छ्रुतीनामक्रमं क्रमरहितं विक्रमं विरुद्धक्रमं वाक्यं प्रमा भवेत्तदोन्मत्तानां प्रलापेषु भवान् कथं पुरोभागी दोषदर्शी ? ॥ ६९ ॥

पताका—यदि वेदोंके क्रम रहित तथा विरुद्धक्रम वाले वाक्य प्रामाणिक हों तो उन्मत्तोंके प्रलापमें आपको क्यों दोष दीख पड़ता है ? अर्थात्

अक्रम, विक्रम बोलना उन्मत्तोंका कार्य है। वेदोंमेंभी अक्रम, विक्रम है अतः वहभी उन्मत्त प्रलाप है अतएव त्याज्य है ॥ ६९ ॥

ईश्वरो यदि सर्वज्ञो दयालुर्वा कथं तदा।
मोहशोकभयव्याधिवह्नौ जीवान् क्षिपत्यलम् ॥ ७० ॥

चा० वृ० प्र० यदीश्वरः सर्वज्ञो दयालुर्वाऽऽस्ति तदा कथं स जीवान् मोहशोकभयव्याधिवह्नावलमत्यन्तं क्षिपति? ॥ ७० ॥

पताका–यदि ईश्वर सर्वज्ञ और दयालु है तो जीवोंको मोह, शोक, भय और व्याधिरूप अग्निमें क्यों सदा डालता रहता है? ॥ ७० ॥

स्वस्वकर्मफलं भुङ्क्ते देही देहीति याचितः।
न प्रदत्तेऽधिकं तर्हि केश्वरस्य दयालुता ॥ ७१ ॥

चा० वृ० प्र० देही प्राणी स्वस्वकर्मफलं भुङ्क्ते। 'देही' इतियाचित ईश्वरोऽधिकं कर्मफलादित्यर्थः, न दत्ते तर्हीश्वरस्य का दयालुता?॥ ७१ ॥

पताका–प्राणीमात्र अपने २ कर्मोंके फलका भोग करता है। 'हे भगवान् मुझे अधिक दो' इस प्रकार प्रार्थना करने परभी यदि ईश्वर अधिक नहीं देता है तो उसकी दयालुताही क्या है? ॥ ७१ ॥

सन्ध्या स्वाभाविकी जाता यूयं तां किं करिष्यथ।
इत्येवमादिहास्योक्त्या श्रद्धारत्नममूमुपन् ॥ ७२ ॥

चा० वृ० प्र० सन्ध्योपासनमाक्षिपति। सन्ध्या तु स्वाभाविक्येव जाता, तां यूयं किं करिष्यथ? इत्येवमादिहास्योक्त्या श्रद्धारत्नममूमुपन्नचूचुरन् ॥ ७२ ॥

पताका–सन्ध्योपासन पर आक्षेप करता है। सन्ध्या तो स्वयं हो गई है, उसे तुम क्या करोगे? इस प्रकारके हास्योक्तिके द्वारा श्रद्धारूप रत्नको नास्तिकोंने चुरा लिया है ॥ ७२ ॥

वैष्णवागमसिद्धेषु धनुर्बाणाङ्कनादिषु।
कुतर्कधूलिसम्पातं कुर्वन्ति मुखमुष्टिभिः ॥ ७३ ॥

बा० बु० प्र० वैष्णवानामागमे सिद्धेषु धनुर्बाणाङ्कनादिषु ते मुखरूपाभिर्मुष्टिभिः कुतर्का एव धूल्यस्तासां सम्पातं प्रक्षेपं कुर्वन्ति ॥ ७३ ॥

पताका—वैष्णवोंके आगममें धनुष् बाण आदिके धारण करनेकी जो सिद्ध विधि है, उसके ऊपर वे सब अपने मुखरूप मुट्ठीसे कुतर्करूप धूलि को फेंक रहे हैं ॥ ७३ ॥

धर्मकल्पतरोर्मूलं पन्नगैःपन्नगैरिव ।
सङ्कुलं तेन दुष्प्राप्यं तदभूद्धर्मसेविनाम् ॥ ७४ ॥

बा० बु० प्र० पन्नगैः सर्पैरिव पन्नगैर्दुष्टैर्धर्मकल्पतरोर्मूलं सङ्कुलं व्याप्तं तेन तद्धर्मसेविनां धर्मात्मनां दुष्प्राप्यमभूत् ॥ ७४ ॥

पताका—सर्पके समान कुटिलमार्गगामी दुष्टोंसे धर्मरूप कल्पवृक्ष व्याप्त हो गया है—घिर गया है, इससे धर्मात्माओंके लिये वह दुष्प्राप्य हो गया है ॥ ७४ ॥

यागादयः प्रवर्तन्ते नावनौ यज्वनां गृहे ।
वर्षाकाले व्यतीतेहि वृष्टेरीशा कुतस्तराम् ॥ ७५ ॥

बा० बु० प्र० अवनौ पृथिव्यां यज्वनां याज्ञिकानां गृहे यागादयो न प्रवर्तन्ते । हि यतो वर्षाकाले व्यतीते कुतस्तरां वृष्टेराशा ? ॥ ७५ ॥

पताका—पृथ्वीपर याज्ञिकोंके घरमें यज्ञ आदि नहीं होते हैं। क्यों कि वर्षाकालके बीत जानेपर वृष्टिकी आशा कहांसे हो ? तात्पर्य यह है कि श्रद्धारूप रत्नके चुराये जानेके पश्चात् अब कहीं यज्ञ नहीं होता है ॥

वयं हन्त हताः सर्वे यागांशपरिसेविनः ।
हविर्भुजामिदानीं नो हविर्दुर्भिक्षताऽऽक्षता ॥ ७६ ॥

बा० बु० प्र० हन्तेति खेदे, यागांशानां परिसेविनो वयं सर्वे हताः । इदानींनोऽस्माकं हविर्भुजां हविराशिनां देवानां हविर्दुर्भिक्षताऽऽक्षताऽऽप्रतिबद्धा ॥७६॥

पताका—यज्ञांशके सेवन करने वाले हम लोग मारे गये । हविर्भोजी हम देवताओंके लिये अक्षत दुष्काल पड़ रहा है ॥ ७६ ॥

ततो रक्षा भवेद्येन स उपायःप्रवर्त्यताम् ।
इत्यभिधाय तेऽमर्त्या मौनमुद्रां जगाहिरे ॥ ७७ ॥

वा० बु० प्र० ततस्तस्माद्येनोपायेन रक्षाभवेत्स उपायः प्रवर्त्यताम् । इत्यभिधायोक्त्वातेऽमर्त्या देवा मौनमुद्रां जगाहिरे तूष्णीं स्थितवन्तः ॥ ७७ ॥

पताका–अतः हे प्रभो ! जैसे हम लोगोंकी रक्षा हो वैसा उपाय आप करिये । ऐसा कहकर वे सब देवता चुप हो कर बैठ गये ॥ ७७ ॥

निशम्येति वचो दैवं देवोऽवादीदरिन्दमः ।
अहं रक्षां विधास्यामि यूयं मा भैष्ट निर्जराः ॥ ७८ ॥

वा० बु० प्र० इति दैवं देवसम्बन्धि वचो निशम्य श्रुत्वा अरिन्दमः शत्रुनिषूदनो देवःश्रीरामोऽवादीत् । हे निर्जराः ! देवाः ! यूयं मा भैष्ट भयं मा गात । अहं रक्षां विधास्यामि ॥ ७८ ॥

पताका–देवताओंके इस वचनको सुनकर शत्रुओंका वध करनेवाले भगवान् श्रीरामजी बोले कि हे देवगण आप लोग मत डरिये । मैं रक्षा करूंगा ॥ ७८ ॥

तीर्थराजे प्रयागेऽहं ब्राह्मणस्य महौजसः ।
सदने वतरिष्यामि श्रीपुण्यसदनस्य वै ॥ ७९ ॥

वा० बु० प्र० तीर्थराजे प्रयागे महौजसो महाप्रतापस्य ब्राह्मणस्य श्रीपुण्यसदनस्य सदने गृहेऽवतरिष्यामि ॥ ७९ ॥

पताका–तीर्थराज प्रयागमें महा प्रतापी ब्राह्मणकुलोत्पन्न श्रीपुण्यसदन शर्माके घरमें मैं अवतार लूंगा ॥ ७९ ॥

सुशीलातनयो भूत्वाकुशीलान्वयशालिनाम् ।
रामानन्दाभिधस्तेषां हनिष्याम्यासुरीं गतिम् ॥ ८० ॥

वा० बु० प्र० सुशीलादेव्यास्तनयो रामानन्दाभिधो रामानन्दनामा भूत्वाऽऽहं कुशीलान्वयशालिनां निकृष्टकुलोत्पन्नानां तेषां वैदिकधर्मविरोधिनामासुरीं गतिं हनिष्यामि॥

पताका–सुशीलादेवीके पुत्र होकर, रामानन्द नाम धारण करके मैं उन नीच–वैदिक धर्मविरोधियोंकी आसुरी गतिका नाश करूंगा ॥ ८० ॥

दुर्दम्य दानवदलानि निराकरिष्णो-
विष्णोर्वचःसुरसरिज्जलशीतलाङ्गा ।
आनन्दिताऽपरिमिता परमेश्वरस्य,
द्वारादगादखिलदैवतमण्डली स्वः ॥ ८१ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये प्रथमः सर्गः

वा० बु० प्र० दुर्दम्यानि यानि दानवदलानि तानि निराकरिष्णोर्विष्णोर्व्यापकस्य परमेश्वरस्य श्रीरामस्य वचांस्येव सुरसरिज्जलानि तैः शीतलान्यङ्गानि यस्याः साऽऽपरिमिताऽऽनन्दिताऽऽखिलदैवतानां मण्डली द्वाराद्भगवत इत्यर्थात् स्वरगात्स्वर्गमगमत् । वसन्ततिलकाछन्दः ॥ ८१ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यां प्रथमः सर्गः ।

पताका–दुर्दमनीय दानव दलका नाश करनेवाले सर्वव्यापक भगवान् श्रीरामजीके वचन रूपी गङ्गाजलसे सर्वाङ्ग शीतल तथा आनन्दित होकर वह देवताओंकी अपार मण्डली स्वर्गको गई ॥ ८१ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां प्रथमः सर्गः

द्वितीयः सर्गः

महीगतान्सर्वजनान् पवित्रीकर्तुं निकामं तरलोत्तरङ्गा ।
त्रैलोक्यनाथाङ्घ्रिनखप्रसूता, विराजते यत्र पवित्रगङ्गा ॥१॥

वा० बु० प्र० अथाष्टादशभिरवतारभूमिं प्रयागं वर्णयति । यस्मिन्स्थाने महीगतान् पृथिवीस्थितान् सर्वजनान्निकाममत्यन्तं पवित्रीकर्तुं तरलाश्चञ्चला उत्कृष्टा-

स्तदा यस्याः सा त्रैलोक्यनाथःश्रीरामस्तस्याङ्घ्रिनखप्रसूता पवित्रजस्तस्मात्रायत इति पवित्रा सा चासौ गङ्गा च पवित्रगङ्गा विराजते । उपजातिश्छन्दः ॥ १ ॥

पताका—अब अठारह श्लोकोंमें श्रीरामानन्दस्वामीजीकी अवतारभूमि प्रयागका वर्णन करते हैं। जहांपर पृथिवीके सर्व प्राणियोंको अत्यन्त पवित्र करनेके लिये चञ्चल और सुन्दर तरङ्गवाली, श्रीरामजीके चरण नखसे निकली हुई पवित्र गङ्गाजी विराजमान हैं— ॥ १ ॥

श्रीकृष्णपादाम्बुजरेणुपूता स्वभावपूताममरस्रवन्तीम् ।
सङ्गन्तुकामा गगनाभिरामा चकास्ति यत्रैव कलिन्दकन्या ॥२॥

व्या० सु० प्र० यत्रैव च गगनाभिरामा श्यामवर्णेति यावत्, श्रीकृष्णचरण-कमलरेणुभिः पूता निष्पापा कलिन्दकन्या यमुना स्वभावेनैव, पूतां पवित्राममरस्रवन्तीं गङ्गां सङ्गन्तुकामा 'तुं काममनसोरपि' इतिमकारलोपः, चकास्ति दीप्यते ॥ २ ॥

पताका—जहांपर आकाशके समान नीलवर्णवाली श्रीकृष्णजीके चरण कमल रेणुसे पवित्र हुई श्रीयमुनाजी, स्वभावसेही पवित्र श्रीगङ्गाजीको मिलनेके लिये शोभित हो रही हैं— ॥ २ ॥

उभे समेतुं सुषमासमेता पवित्रितानन्तमनोनिशान्ता ।
सरस्वती व्यस्तसमस्तपापा प्रकाशते यत्र विमोक्षदापा ॥३॥

व्या० सु० प्र० यत्र चोभे गङ्गायमुने समेतुं सङ्गन्तुं सुषमया परमशोभया समेता पवित्रितान्यनेकानि मनांस्येव निशान्तानि गृहाणि यया सा व्यस्तानि दूरीकृतानि समस्तानि पापानि यया सा विमोक्षदा मोक्षप्रदा आपो यस्याः सा (पा० ५।४।७४) सरस्वती प्रकाशते ॥ ३ ॥

पताका—जहांपर गङ्गा और यमुनाको मिलनेके लिये परम शोभावालीं, अनेक मनोमन्दिरोंको पवित्र करनेवालीं समस्त पापोंको दूर करने वालीं और मोक्षप्रद पवित्रजलवालीं श्रीसरस्वतीजी विराज रही हैं— ॥ ३ ॥

तत्रैव सन्दीप्यति दिव्यशोभा प्रागनाम्नी त्रिजगत्प्रसिद्धा ।
सिद्धाधिवासाहितपुण्यकीर्तिरेका समर्च्या सकलातिगा पूः ॥४॥

बा० बु० प्र० तत्रैव दिव्या शोभा यस्याःसा सिद्धानामधिवासेन हेतुनाऽऽहिता पुण्या कीर्तिर्यया सा समर्च्या समर्चनीया सकलातिगा सर्वंकषा त्रिषु जगत्सु प्रसिद्धा प्रयागनाम्न्येका पूरस्ति ॥ ४ ॥

पताका—वहांपरही एक परम सुन्दर, सिद्धजनोंके निवाससे पवित्र कीर्तिवाला, पूजनीय, सर्वश्रेष्ठ और तीनोंलोकमें प्रसिद्ध प्रयाग नामका एक नगर है ॥ ४ ॥

महार्घ्यरत्नावलिरश्मिराशिविभूषितानि प्रतिभान्वितानि ।
गृहाणि यस्यामयुतानि मेरोः शिरःप्रमाणानि लसन्ति सन्ति ॥५॥

बा० बु० प्र० यस्यां पुर्यां महार्घ्याणां वहुमूल्यानां रत्नावलीनां रश्मिराशिभिः किरणकलापैर्विभूषितान्यतएव प्रतिभान्वितानि मेरोःशिरःप्रमाणान्यतिविशालानि सन्त्युत्तमानि गृहाणि लसन्ति स्मेति शेषः ॥ ५ ॥

पताका—जिस नगरमें वहुमूल्य रत्नोंके किरणोंसे सुशोभित अतएवं परम शोभायुक्त मेरु पर्वतके शिखर समान ऊंचे ऊंचे उत्तम गृह शोभा दे रहे थे ॥ ५ ॥

समस्तवेदार्थविचारपारावारावगाहे कुशलाः सुशीलाः ।
स्वधर्मसंरक्षणजागरूका यस्यां द्विजाग्राःकिल यायजूकाः ॥ ६ ॥

बा० बु० प्र० यस्यां पुर्यां समस्तवेदानामर्थविचार एव पारावारः सागरस्तत्रावगाहे कुशलाःसुशीलाःशोभनशीलवन्तः स्वधर्मसंरक्षणे जागरूका जागरणशीला यायजूका यजनशीला द्विजाग्रा ब्राह्मणा आसन्निति शेषः ॥ ६ ॥

पताका—जिस नगरमें सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ विचाररूप महासागरमें अवगाहन करनेवाले निपुण, सर्वप्रिय शीलवाले, स्वधर्मकी रक्षामें जागृत रहनेवाले और निरन्तर यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण निवास करते थे ॥ ६ ॥

स्वकीयसौन्दर्यमदप्रमोपीण्यालोक्य यस्यां नरसुन्दरीणाम् ।
कलङ्कशून्यानि मुखारविन्दान्यलज्जतालं सकलङ्क इन्दुः ॥ ७ ॥

बा० बु० प्र० यस्यां पुर्यां सकलङ्क इन्दुश्चन्द्रः स्वकीयसौन्दर्यमदस्य प्रमोषीणि कलङ्कशून्यानि नरसुन्दरीणां मुखारविन्दान्यालोक्याऽऽलमत्यन्तमलज्जत लज्जां प्राप्तः

पताका—जिस नगरमें अपने सौन्दर्यके अभिमानको अपहरण करने वाले रमणीजनोंके निष्कलङ्क मुखारविन्दका दर्शन करके कलङ्की चन्द्र लज्जित हो गया था ॥ ७ ॥

यस्यां हि घण्टापथपार्श्वमार्गच्छायातरुश्रेणिषु संव्रजन्तः ।
पूषातितप्तांशुभिरप्यदृष्टा जनाः प्रयासं न विजानते स्म ॥ ८ ॥

वा० नु० प्र० यस्यां नगर्यां घण्टापथो राजमार्गस्तस्य पार्श्वमार्गेषु ये च्छायाप्रधानास्तरवस्तेषां श्रेणिषु संव्रजन्तो गच्छन्तोऽतएव पूष्णः सूर्यस्यातितप्तैरं-शुभिरप्यदृष्टा अस्पृष्टा जनाः प्रयासं गमनश्रमं न विजानते स्म ॥ ८ ॥

पताका—जिस नगरमें राजमार्गके पार्श्वमार्ग (पटरी)के ऊपर लगे हुये छायावाले वृक्षोंके नीचे २ जानेवाले लोग सूर्यभगवान्‌के प्रखर किरणों से अस्पृष्ट होकर चलनेके श्रमको नहीं जानते थे ॥ ८ ॥

यस्यां मृगाङ्काश्मचयाञ्चितेषु मार्गेषु सर्वेषु कृतप्रयाणाः ।
मध्याह्नकाले न जना अवेयुस्त्विषाम्पतेर्दीधितिकर्कशत्वम् ॥ ९ ॥

वा० नु० प्र० यस्यां पुर्यां मृगाङ्काश्मनां चन्द्रकान्तमणीना चयैःसमूहैरञ्चितेषु जटितेषु सर्वेषु मार्गेषु मध्याह्नकालेऽपीतिशेषः, कृतप्रयाणा जनास्त्विषाम्पतेःसूर्यस्य दीधितिकर्कशत्वं किरणकार्कश्यं नावेयुर्नविदुः ॥ ९ ॥

पताका—जिस नगरमें चन्द्रकान्तमणियोंसे जड़े हुये समस्त मार्गोंपर मध्याह्नकालमेंभी चलनेवाले लोग सूर्यके किरणोंकी उष्णताको नहीं जानते हैं । क्यों कि चन्द्रकान्तमणि तेजका प्रतिबन्धक है ॥ ९ ॥

सुकेशिनो गन्धसुवासिताङ्गाः प्रफुल्लनेत्रा हसिताननाश्च ।
गृहीतवेत्रा धृतपुष्पमालाः सदा युवानो व्यहरन्त यत्र ॥ १० ॥

वा० नु० प्र० यत्र पुर्यां सुकेशिनःकमनीयकेशा गन्धैरामोदद्रव्यैः सुवासिताङ्गाः प्रफुल्लनेत्रा हसितानना गृहीतवेत्रा धृतपुष्पमाला युवानस्तरुणाःसदा व्यहरन्त ॥१०॥

पताका—जिस नगरमें सुन्दर केशोंवाले इत्र आदि सुगन्धित वस्तुओं से सुगन्धित शरीरवाले, प्रसन्न नयन, प्रसन्न मुख, हाथमें छड़ी लिये हुये

पुष्पोंकी माला धारण किये हुये युवा पुरुष सर्वदा विलास करते थे ॥१०॥

यस्यां जना नाप्रजसो भवन्ति दुर्मेधसो दुष्प्रजसोऽपि नो वा ।
अशक्तयो दुर्हृदया न चापि नवाऽऽक्षरज्ञानविसारशून्याः ॥११॥

वा० बु० प्र० यस्यां नगर्यां जना अप्रजसः प्रजाहीना न भवन्ति । दुष्प्रजसो दुष्टसन्ततयो दुर्मेधसः (पा०५।४।१२२) कुबुद्धयश्च न भवन्ति। अशक्तयः (का० ५।४।१२२) शक्तिहीना दुर्हृदयास्चापि न भवन्ति । अक्षरज्ञानस्य विसारेण प्रसरेण शून्या अपि नाभवन् ॥ ११ ॥

पताका–जिस नगरमें मनुष्य सन्तानहीन, दुष्टसन्तानवाले, दुर्बुद्धि, शक्तिहीन, और मूर्ख नहीं होते थे ॥ ११ ॥

यस्यां हि सायं गृहवाटिकासु प्रफुल्लपुष्पानतगुल्मिनीषु ।
चन्द्राननानां रमणीजनानां क्रीडाविनोदाधिरसाः प्रसस्रुः ॥ १२ ॥

वा० बु० प्र० यस्यां नगर्यां प्रफुल्लपुष्पैरानता गुल्मिन्यो वीरुधो यासु तासु गृहवाटिकासु गृहोद्यानेषु सायं चन्द्राननानां रमणीजनानां क्रीडाविनोदस्याधिरसा रमणीयरसाः प्रसस्रुः ॥ १२ ॥

पताका–जिस नगरमें खिले हुये पुष्पोंसे झुकी हुई लतावाली गृह-वाटिकाओंमें सायंकाल चन्द्रसमान मुखवाली रमणियोंके नाना प्रकारके विलासके सुन्दर रस झरते थे ॥ १२ ॥

प्रतिष्कशैर्यत्र पवित्रवृत्तैर्दिनान्तरम्येषु चतुष्पथेषु ।
श्यामाभिरामाणि गृहाणि दृष्ट्वा जना मनोमोदमुपार्जिजन्त ॥१३॥

वा० बु० प्र० यत्र पुर्यां दिनान्ते सायङ्काले रम्येषु चतुष्पथेषु शृङ्गाटकेषु श्यामाभिस्तरुणीभिरभिरामाणि मनोहराणि गृहाणि दृष्ट्वा पवित्रवृत्तैःशुद्धाचारैःप्रतिष्कशैः सहायैर्जना मनोमोदमुपार्जिजन्तोपार्जितवन्तः ॥ १३ ॥

पताका–जिस नगरमें सायंकाल चौराहों पर षोडश वार्षिकी नवयुवती स्त्रियोंसे भरे हुये मकानोंको देखकर लोग सदाचारी साथियोंके साथ अपने चित्तको अत्यन्त प्रसन्न करते थे ॥ १३ ॥

एलासिताभ्रक्रमुकादिवीटीरसोल्लसद्वक्त्रसरोरुहाणाम् ।
यस्यां नराणां प्रतिनिष्कुटं संजज्ञे हि सायं बहुलो विनोदः ॥१४॥

वा० बु० प्र० एलाश्चन्द्रबालाः सिताभ्रः कर्पूरः क्रमुकः पूगः इत्यादिभिर्निर्मितानां ताम्बूलवीटीनां रसेनोल्लसन्ति वक्त्रसरोरुहाणि मुखारविन्दानि येषां तेषां नराणां सायं प्रतिनिष्कुटं प्रतिगृहारामं बहुलो विनोदः संजज्ञे ॥ १४ ॥

पताका—जिस नगरमें इलायची, कर्पूर, सोपारी आदिसे बने हुये पानके बीड़ाके रससे सुन्दर मुख कमलवाले पुरुषोंके प्रत्येक गृहोद्यानमें सायङ्काल अनेक विनोद होते थे ॥ १४ ॥

भागीरथीतीरसमाश्रितानां यस्यां हि सायं रमणीजनानाम् ।
मुखे गृहादागमनश्रमोत्था अपः सुखं गन्धवहाः पपुश्च ॥ १५ ॥

वा० बु० प्र० यस्यां पुर्यां सायं भागीरथीतीरे समाश्रितानां स्थितानां रमणीजनानां मुखे गृहादागमनस्य श्रमादुत्थाःसंजाता अपः स्वेदजलानि गन्धवहा वायवः सुखं पपुः पीतवन्तः ॥ १५ ॥

पताका—जिस नगरमें सायङ्काल गङ्गाजीके किनारे बैठी हुई ललनाओंके मुखके ऊपरसे, घरसे आनेमें परिश्रमके कारण उत्पन्न हुये पसीनेको वायु सुखसे पान करते थे ॥ १५ ॥

यत्र स्फुटं विष्णुपदीतटेषु चन्द्राननां वीक्ष्य मुदा भ्रमन्तीः ।
तदङ्गसौगन्ध्यमदेन मत्तश्चीनांशुकं मारुत आचकर्ष ॥ १६ ॥

वा० बु० प्र० यत्र पुर्यां विष्णुपद्या गङ्गायास्तटे मुदा भ्रमन्तीश्चन्द्रानना वीक्ष्य तासामङ्गसौगन्ध्याज्जायमानेन मदेन मत्तः सन्मारुतश्चीनांशुकमतीव सूक्ष्मवस्त्रमाचकर्षाकृष्टवान् ॥ १६ ॥

पताका—जिस नगरमें गङ्गाके तटपर भ्रमण करती हुई चन्द्रसमान मुखवाली स्त्रियोंको देखकर उनके अङ्गकी सुगन्धिके मदसे मत्त होकर वायु उनके सूक्ष्मवस्त्रोंको खींचता था ॥ १६ ॥

यस्यां हि सायं सरसीरुहास्या आरुह्य नावो ललनाःसुकेश्यः ।
प्रफुल्लपद्मां तपनात्ययेऽपि समादिशञ्शैवलिनीं सुराणाम् ॥ १७ ॥

वा० बु० प्र० यस्यां पुर्यां सायं सरसीरुहास्याः पद्मानना: सुकेश्यो ललना: सुन्दर्यो नाव आरुह्य तपनस्य सूर्यस्याऽऽस्तयेऽभावेऽपि सुराणां शैवलिनीं नदीं सुरसरितमित्यर्थः, प्रफुल्लपद्मां विकसितजलजां समादिशन् ॥ १७ ॥

पताका—जिस नगरमें कमल समान मुखवाली, सुन्दर केशोंवाली सुन्दर स्त्रियां सायङ्काल नौकामें चढ़कर सूर्यके अस्त हो जानेपरभी श्री गङ्गाजीको फूले हुये कमलोंवाली बना देती थीं। उनके कमल समान मुख लोगोंको सूर्यास्तमेंभी विकसित कमलकी प्रतीति कराते थे ॥१७॥

समस्तकल्याणगुणलयाया दिवं हसन्त्या बहुवैभवायाः।
यस्याश्च पुर्या बहुमानवत्या भातिस्म शीर्षण्य इव त्रिवेणी ॥१८॥

वा० बु० प्र० समस्ताः कल्याणगुणा आलयो यस्या एवंभूताया बहुवैभवाया विपुलसम्पदोऽतएव दिवं स्वर्गं हसन्त्यास्तिरस्कुर्वत्या बहुमानवत्या यस्याःपुर्याःशीर्षण्योऽन्योऽन्यसम्पृक्तःस्नानादिना निर्मलः केश इव त्रिवेणी भातिस्म वभौ ॥ १८ ॥

पताका—अनन्त कल्याण गुणोंवाली, बहुत वैभववाली, अतएव स्वर्गकाभी तिरस्कार करनेवाली, अत्यन्त मानवाली जिस पुरीके सुन्दर केशके समान त्रिवेणी शोभती थी ॥ १८ ॥

उपासितुं यत्र समेत्य सन्ध्ये उभे सहस्राणि तटं पुनीतम्।
जह्नोःसुताया द्विजपुङ्गवानां विरेजिरे माग्रहराणि नित्यम् ॥ १९ ॥

वा० बु० प्र० यत्र पुर्यां जह्नोःसुतायास्त्रिस्रोतसः पुनीतं पवित्रं तटं समेत्य प्राप्योभे सन्ध्ये (पा० १।१।११) उपासितुं द्विजपुङ्गवानां सद्ब्राह्मणानां प्राग्रहराण्यनुत्तमानि सहस्राणि नित्यं विरेजिरे ॥ १९ ॥

पताका—जिस नगरमें श्रीगङ्गाजीके पवित्र तटपर आकर प्रातःकाल और सायङ्काल दोनों सन्ध्याओंकी उपासना करनेके लिये सहस्रों ब्राह्मण प्रतिदिन शोभा देते थे ॥ १९ ॥

आसीद्धि तस्यां पुरि सर्वलोकसमर्चितश्चारुचरित्रशाली।
नाम्ना द्विजाग्रः सदनो धनेशो विद्यानवद्याब्धिरपूर्वपुण्यः ॥२०॥

बा० बु० प्र० यस्यां पुर्यां सर्वलोकैः समर्चितश्चारुचरित्रशाली सदाचारनिष्ठो विद्यानामनंबुधो दोषरहितोऽब्धिः सागरो धनेशो लक्ष्मीवानपूर्वपुण्यो नाम्ना सदनः पुण्यसदननामा द्विजाग्रो ब्राह्मण आसीत् ॥ २० ॥

पताका—उसी नगरमें सर्वलोकोंसे पूजित, सच्चरित्र, सम्पूर्ण विद्याओंके भण्डार, सम्पत्तिशाली और परम धार्मिक श्रीपुण्यसदननामक एक ब्राह्मण रहते थे ॥ २० ॥

विद्वत्तरा पट्वितरा च तस्य विदांवरस्य प्रथिता सुशीला ।
नाम्ना सुशीलाऽथ पतिप्रिया च भार्याप्रमाणस्य बभूवभार्या ॥२१॥

बा० बु० प्र० भार्या प्रमाणी यस्य तस्य (पा० ५।४।११६) विदांवरस्य विद्वद्वर्यस्य श्रीपुण्यसदनशर्मणो विद्वत्तरा परमविदुषी पट्वितरा पटीयसी (पा. ६।३।३५) सुशीला पतिप्रिया प्रथिता मार्दवादिगुणैः प्रख्याता नाम्ना सुशीला सुशीलानाम्नी भार्या बभूव ॥ २१ ॥

पताका—सर्व श्रेष्ठ धर्मपत्नीवाले और विद्वानोंमें श्रेष्ठ उन सदनशर्माकी परम विदुषी, परम निपुण, मार्दवादि गुणोंसे प्रख्यात पतिव्रता, और सुन्दर शीलवाली सुशीला नामकी धर्मपत्नी थीं ॥ २१ ॥

पूर्णेन्दुवक्त्रा च शिरीषमृद्वी लज्जावती पीनकुचा च तन्वी ।
श्यामा सुवर्णा शुभनासिका च देवादिपूजासु रतिं दधाना ॥२२॥

बा० बु० प्र० श्लोकद्वयेन भार्यामेव विशिनष्टि । पूर्णेन्दुवक्त्रा शिरीषमृद्वी लज्जावती पीनकुचा पीवरस्तनी तन्वी श्यामा तरुणी सुवर्णा सुनासिका देवादिपूजासु रतिं प्रेम दधाना— ॥ २२ ॥

पताका—दो श्लोकोंमें भार्याका वर्णन करते हैं। पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, शिरीषके समान कोमल, लज्जावती, मोटे २ स्तनवाली, तन्वी, तरुणी, सुन्दर नासिकावाली, देवादिकी पूजामें प्रेमवाली— ॥ २२ ॥

सम्मानिनी वेषवती च शुक्लपटाभिलाषे मन आदधाना ।
हंसस्वना हंसवधूगतिश्च सुग्रीवयाऽत्यन्तविशोभितासीत् ॥२३॥

वा० बु० प्र० सम्मानिनी मानवती वेषवती शुभ्रवसनाभिलाषिणी मन आदधाना हंसस्वना हंसालापिनी हंसवधूगतिरत्ना शोभनया ग्रीवया विशेषेण शोभिताऽऽसीत् अनेन श्लोकद्वयेन तस्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते ॥ २३ ॥

पताका—मानवाली, सुन्दर वेषवाली, शुभ्रवर्णके वस्त्र धारण करनेकी इच्छावाली, हंसके समान बोलनेवाली, हंसिनीके समान चलनेवाली वह सुशीला देवी अपनी सुन्दर ग्रीवासे शोभायमान थीं ॥ २३ ॥

प्रफुल्लपाथोजमनोहरास्यौ मिथःसदा स्वाननवीक्षणेन ।
अवापतुःकामपि दम्पती तौ मुदं मनोहारिचरित्रकान्तौ ॥ २४ ॥

वा० बु० प्र० मनोहारिभिश्चरित्रैः कान्तौ प्रफुल्लं पाथोजमिव मनोहरे आस्ये ययोस्तौ दम्पती पुण्यसदनसुशीले मिथः सर्वदा स्वाननवीक्षणेन दर्शनेन कामप्यनिर्वचनीयां मुदमवापतुः ॥ २४ ॥

पताका—सुन्दर चरित्रसे मनोहर विकसित कमल समान मुखवाले वे दोनों दम्पती एक दूसरेके मुखको देखकर अनिर्वचनीय आनन्दको प्राप्त होते थे ॥ २४ ॥

भागीरथीतीरमुपेत्य नित्यं मनःप्रसत्तिं परमां दधानः ।
त्रिकालसन्ध्यां महितामुपासाञ्चक्रे समात्ताधिकसंयमः सः ॥२५॥

वा० बु० प्र० समात्तः सम्यग्गृहीतोऽधिकः संयमो येन स श्रीमान्सः परमां मनःप्रसत्तिं मनःप्रसादं दधानो कुर्वन् भागीरथीतीरमुपेत्य नित्यं महितां पूजितां त्रिकालसन्ध्यामुपासाञ्चक्रे ॥ २५ ॥

पताका—परम संयमी श्रीपुण्यसदनशर्मा प्रसन्न मनसे श्रीगङ्गातटपर जाकर प्रतिदिन त्रिकालसन्ध्या करते थे ॥ २५ ॥

अथाधितायं च तनूनपातो महोत्तमं यागगणं विधातुम् ।
अनाहिताग्नेर्नहि शास्त्रसिद्धो यतोऽधिकारोऽस्ति तदुत्तरेषु ॥२६॥

वा० बु० प्र० अथायं श्रीपुण्यसदनो महोत्तमं वेदप्रतिपादितं यागगणं विधातुमनुष्ठातुं तनूनपातोऽग्नीनाधित । यतोऽनाहिताग्नेस्तदुत्तरेषु परमोत्तमेषु यागेषु शास्त्रसिद्धोऽधिकारो नैवास्ति ॥ २६ ॥

पताका–विवाहानन्तर श्रीपुण्यसदनशर्माने बड़े २ यज्ञोंके अनुष्ठानके-लिये गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण इन तीन अग्नियोंका स्थापन किया क्योंकि इनके विना अन्य यज्ञोंके अनुष्ठान करनेका शास्त्र अधिकार नहीं देते हैं ॥ २६ ॥

महाहिरण्यप्रचयादिसाध्याँस्तेने वितानान्विततान् प्रवित्तः ।
द्विजाग्र्यवंशाधिविभूषणानां नैसर्गिको ह्येष परार्ध्यधर्मः ॥२७॥

वा० बु० प्र० प्रवित्तो महासम्पत्तिशाली महता हिरण्यप्रचयादिना साध्यानवुष्ठेयान् विततान् विस्तृतान् वितानान् यज्ञान् स श्रीपुण्यसदनो वितेने । हि यतो द्विजाग्र्यवंशानामधिविभूषणनां सर्वश्रेष्ठानामेव नैसर्गिकः परार्ध्य उत्कृष्टो धर्मः ॥२७॥

पताका–महासम्पत्तिशाली श्रीपुण्यसदनशर्माने पुष्कल द्रव्य व्यय करके बड़े २ यज्ञ किये। क्योंकि अत्युत्तम विद्वान् ब्राह्मणोंका यह सर्वोत्कृष्ट धर्म है ॥ २७ ॥

एवं च देवान् सकलानयष्ट पितॄनतार्प्सीद्विविधोपचारैः ।
श्रुतिप्रसिद्धाञ्छुभकर्मराशीन्राशीचकारायमनन्ततेजाः ॥ २८ ॥

वा० बु० प्र० एवमनन्ततेजाः परमतेजस्व्ययं श्रीपुण्यसदनःसकलान्देवानयष्ट । विविधोपचारैः पितॄनतार्प्सीत्तर्पितवान् । श्रुतिप्रसिद्धाञ्छुभकर्मणां राशीन् राशीचकार संजग्राह ॥ २८ ॥

पताका–इस प्रकारसे श्रीपुण्यसदनशर्माने यज्ञ द्वारा सब देवोंको सन्तुष्ट किया, नाना उपचारोंसे पितरोंको तृप्त किया और अनेक वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान किया ॥ २८ ।

न तेऽर्थिनो भूतलराजराजादस्माद्द्विजेन्द्राच्च महामनीषात् ।
आविष्कृतेच्छा बहुशो निजेच्छं प्रपेदिरे ये न च भूरिरायः ॥२९॥

वा० बु० प्र० तेऽर्थिनो याचका नासन् ये महामनीषान्महाबुद्धेराविष्कृतेच्छाः सन्तो भूतलस्य राजराजात्कुबेरादस्माद्द्विजेन्द्रान्निजेच्छं स्वेच्छानुसारेण बहुशो भूरिरायः पुष्कलधनानि न प्रपेदिरे प्राप्तवन्तः ॥ २९ ॥

पताका–ऐसे कोईभी याचक नहीं थे जिन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की हो और महाविद्वान्, पृथिवीके कुबेरके समान श्रीपुण्यसदनशर्माके पास से यथेच्छ पुष्कल धन प्राप्त न किया हो ॥ २९ ॥

समस्तशास्त्रार्थरहस्यवेत्ता कृपारसापूर्णमनस्सरस्कः ।
कुलव्रतं नैजमहातुमिच्छन् परोपकारान्न पराङ्मुखोऽभूत् ॥ ३० ॥

वा० बु० प्र० समस्तानां शास्त्राणामर्थानां यानि रहस्यानि तेषां वेत्ता कृपाम्भसापूर्णं परिपूर्णं मनःसरो यस्य स श्रीपुण्यसदनो नैजं स्वीयं कुलव्रतं परोपकारव्रतमहातुमिच्छन् परोपकारात्पराङ्मुखो विमुखो नाभूत् ॥ ३० ॥

पताका–समस्त शास्त्रोंके रहस्यके जाननेवाले कृपासे परिपूर्ण हृदयवाले वह श्रीपुण्यसदनशर्मा परोपकार करना रूप अपने कौलिक व्रतके त्याग न करनेकी इच्छासे परोपकारसे कभी विमुख नहीं हुये ॥ ३० ॥

श्रीरामपादाम्बुजचञ्चरीकः श्रुतिस्मृतिप्रोक्तपथैकपान्थः ।
स आर्यया स्वस्य च भार्ययैव निनाय कालान् सहितो द्विजेन्द्रः॥३१॥

वा० बु० प्र० श्रीरामपादाम्बुजयोश्चञ्चरीको भ्रमरः श्रुतिभिः स्मृतिभिश्च प्रोक्तस्य पथ एकपान्थः प्रधानपथिकः स द्विजेन्द्र आर्यया श्रेष्ठया स्वस्य भार्यया सुशीलया सहित कालान्निनाय ॥ ३१ ॥

पताका–श्रीरामजी महाराजके चरण कमलके भ्रमर समान, श्रुति और स्मृति द्वारा बोधित मार्गमें चलने वाले वह श्रीपुण्यसदनशर्मा अपनी परम महनीय धर्मपत्नीके साथ काल व्यतीत करते थे ॥ ३१ ॥

पात्रेषु नित्यं द्रविणं व्ययन्तौ धर्म्येषु कार्येषु सदाऽऽरमन्तौ ।
शनैःशनैःकालवशाज्जरन्तौ न तौ तनूजाननमैक्षिपाताम् ॥ ३२ ॥

वा० बु० प्र० पात्रेषु नित्यं द्रविणं धनं व्ययन्तौ दानं कुर्वाणावित्यर्थः, धर्म्येषु (पा० ४।४।९२) धर्मादनपेतेषु कार्येषु सदाऽऽरमन्तौ (पा० १।३।८३) रममाणावित्यर्थः, शनैः शनैः कालवशाज्जरन्तावायुष्यदिनानि क्षपयन्तावित्यर्थः, तौ दम्पती तनूजस्याननं नैक्षिपातां न दृष्टवन्तौ ॥ ३२ ॥

पताका-सत्पात्रोंको दान देते हुये, धर्मकार्योंमें सर्वदा तत्पर रहते हुये, और धीरे २ कालवश आयुष्यके दिनोंको व्यतीत करते हुये वे दोनों दम्पती पुत्रके मुखको नहीं देखे। अर्थात् उनको पुत्र न हुआ ॥ ३२ ॥

तौ स्वापतेयानि मनुष्यधर्मातिगानि लोकार्हणमप्यपूर्वम् ।
निकेतनान्यह सुकेतनानि प्रासीसदन्नैव सुतेन हीनौ ॥ ३३ ॥

व्या० वृ० प्र० मनुष्यधर्मातिगानि मानवदेहेनाप्राप्यानि स्वापतेयानि (पा० ४।४।१०४) धनानि, अपूर्वं लोकार्हणं लोकसत्कारः शोभनानि केतनानि ध्वजा येषु तानि निकेतनानि गृहाः सुतेन हीनौ तौ न प्रासीसदन् । इमानि तयोःप्रसादाय नालंबभूवुरित्यर्थः ॥ ३३ ॥

पताका--मनुष्योंको दुष्प्राप्य धन, सर्वलोकों द्वारा सत्कारकी प्राप्ति, सुन्दर ध्वज वाले गृह यह सब दोनों दम्पतीको प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं हुये ॥ ३३ ॥

पाथोजसङ्काशमनोहरास्यशयाङ्घ्रि लोकोत्तरमावहन्तीम् ।
क्रमेण वृत्तौ पृथुलौ सदूरू स्मरेषुधी वोपनिधी दधानाम्॥ ३४ ॥

व्या० वृ० प्र० अधिकदा, आस्यं मुखं शयौ करावङ्घ्री पादावेषां समाहारः । लोकोत्तरं पाथोजसङ्काशं कमलतुल्यं मनोहरमास्यशयाङ्घ्रि आवहन्तीं दधतीं तथा क्रमेण वृत्तौ वर्तुलौ पृथुलौ पुष्टौ सदूरू स्मरस्येषुधी तूणीरौ उपनिधी न्यासौ वा इव दधानाम् ॥ ३४ ॥

पताका-सर्वश्रेष्ठ कमल समान मनोहर मुख, कर, चरणों वाली, कामदेवके धरोहर रखे हुये तूणीरके समान गोल और पुष्ट ऊरु वाली ।३४

नितम्वविम्वेन विराजमानां घनेन पीनस्तनभारवाहीम् ।
रेखात्रयान्वीतशिरोधिमद्धा विम्वाधरां क्षामतरोदरीकाम् ॥३५॥

व्या० वृ० प्र० घनेन विपुलेन नितम्वविम्वेन विराजमानां पीनस्तनभारवाहीं रेखात्रयेणान्वीतः शिरोधिर्ग्रीवा यस्यास्तां विम्वाधरां क्षामतरमतिकृशमुदरं यस्यास्ताम् ॥ ३५ ॥

पताका–बृहत् नितम्बवाली, मोटे २ स्तनवाली, तीन रेखाओंसे युक्त ग्रीवावाली, बिम्बफलके समान ओष्ठवाली और अत्यन्त कृश उदर वाली ॥

नेत्राब्जनालद्युतिमाजुषाणां नासां तथा स्वच्छकपोलपालीम् ।
भ्रुवोर्युगं मन्मथचापशोभमलिभ्रमोत्पादिकचान्धानाम् ॥२६॥

बा० बु० प्र० नेत्राब्जयोर्नालद्युतिं नासां नासिकामाजुषाणां स्वच्छकपोलपालीं मन्मथचापयो शोभेव शोभा यस्य तद्भ्रुवोर्युगमलिभ्रमोत्पादिकचान्धानाम् ॥२६॥

पताका–नेत्ररूपी कमलोंके नालदण्डके समान नासिकावाली, स्वच्छ कपोलोंवाली, कामदेवके धनुष् समान भौंहोंवाली, भ्रमरके समान काले केशोंवाली ॥ २६ ॥

प्रियां सुशीलां समुपेत्य विप्रश्रेष्ठःसमो देवगुरोर्मनीषी ।
पुत्राजनिक्लेशविपण्णचेता उवाच तां वाचमथैकदेति ॥ २७ ॥

बा० बु० प्र० तां सुशीलां प्रियां समुपेत्य देवगुरोः समो मनीषी विद्वान् पुत्रस्याजनिर्जन्माभावस्तस्य क्लेशेन विपण्णं चेतो यस्य स विप्रश्रेष्ठ एकदेति वक्ष्यमाणां वाचमुवाच ॥ २७ ॥

पताका–अपनी प्रिया सुशीलाके पास जाकर बृहस्पति समान परम विद्वान् श्रीपुण्य सदनशर्मा पुत्र न होनेके दुःखसे दुःखी होकर एक दिन इस प्रकार बोलने लगे ॥ २७ ॥

प्रिये गतश्चैव वयोऽर्द्धभागःपरं सुतालिङ्गनजं सुखं नौ ।
जातं न तस्मादिति मे विषादःप्रसादशस्याङ्कुरमुच्छिनत्ति ॥ २८ ॥

बा० बु० प्र० हे प्रिये ! वयसोऽर्द्धभागो गत एव । परं नावावयोः सुतस्यालिङ्गनजं सुखं नैव जातम् । तस्मादिति विषादः मे प्रसादशस्यस्याङ्कुरमुच्छिनत्ति॥

पताका–हे प्रिये ! आयुका आधा भाग बीत गया परन्तु हम लोगों-को पुत्रके आलिङ्गन करनेका सुख नहीं मिला । अतः यह चिन्ता मेरी प्रसन्नता रूप सस्यके अङ्कुरका मूलोच्छेद कर रही है ॥ २८ ॥

प्रियोऽस्तु चेदात्मजमन्तरेण प्रयाणमस्मात्किल मर्त्यलोकात् ।
विचारयावामृणिनौ कथं तद्धहा विमुञ्चाव कृतान्तपाशात् ॥ ३९ ॥

बा० बु० प्र० हे प्रिये ! चेदात्मजं पुत्रमन्तरेणैवास्मान्मर्त्यलोकात्प्रयाणमस्तु, तद्विचारय, ऋणिनावावां कृतान्तस्य यमस्य पाशात्कथं विमुञ्चाव ? 'एष ह्वा अनृणी यः पुत्री'ति श्रुतेः सपुत्रस्यैवानृण्यमिति भावः ॥ ३९ ॥

पताका—हे प्रिये ! यदि पुत्रके विनाही हम लोग इस संसारसे चले जावेंगे तो ऋणी होनेसे यमराजके पाशसे कैसे छूट सकेंगे । क्योंकि श्रुति कहती है कि 'पुत्रवान्‌ही ऋणसे छूटता है' और जो ऋण रहित है उसी की गति होती है ॥ ३९ ॥

तृपातुरास्ते पितरो मदीयाःप्रिये कथङ्कारमितः प्रयाते ।
तर्प्स्यन्ति मय्याहतभाग्यभोग्ये दुःखाकरोतीयमतीव चिन्ता ॥४०॥

बा० बु० प्र० आहतं विनष्टं भाग्यस्य भोग्यं यस्य तस्मिन्मयीतः प्रयाते मृते सति तृपा पिपासयाऽऽतुरास्ते मदीयाःपितरःकथङ्कारं तर्प्स्यन्तीतीयं चिन्तातीव दुःखाकरोति (पा० ५।४।६४) पीडयति ॥ ४० ॥

पताका—मैं जब अपने दिन पूरा करके यहांसे उठ जावूंगा तो तृषासे व्याकुल मेरे पितृगण कैसे तृप्त होंगे यह चिन्ता मुझे बहुत दुःख देती है ॥ ४० ॥

अजातपुत्रस्य मृतस्य के मे ह्युदीरयिष्यन्ति कथं सुवंशम् ।
उदारवंशस्य विधेर्विधानादहो भविष्यामि विलोपकोऽहम् ॥४१॥

बा बु० प्र० अजातपुत्रस्य मृतस्य मे मम सुवंशं के कथमुदीरयिष्यन्ति। यदि पुत्रः स्यात्तर्हि तद्द्वारा वंशाख्यानमपि स्यादिति भावः। अहो इति खेदे। विधेर्विधानादहमुदारवंशस्य प्रशस्तान्वयस्य विलोपको भविष्यामि ॥ ४१ ॥

पताका—पुत्र विनाही मेरे मरने पर मेरे वंशका नाम कौन लेगा ? यदि पुत्र होता तो उसके द्वारा वंशका नाम चलता । अहा ! भाग्यवश मैं अपने प्रशस्त कुलका लोप करनेवाला हो जावूंगा ! ॥ ४१ ॥

निपीय वाचं स्वपतेःसुचारु क्षणं विचार्यार्यतमा सुशीला ।
विनम्रभावेण विनिःश्वसन्ती पतिव्रता सा गिरमाजहार ॥ ४२ ॥

वा० वु० प्र० पतिव्रताऽत एवार्य्यतमा सा सुशीला स्वपतेः सुचारुं वाचं निपीय श्रुत्वा क्षणं विचार्य विनिःश्वसन्ती विनम्रभावेण गिरमाजहार वचनमुवाच ॥४२॥

पताका—पतिव्रता अतएव परमश्रेष्ठ वह सुशीलादेवी अपने पतिके सुन्दर वचनामृतका पान करके, क्षणभर विचार करके लम्बी सांस लेती हुई अत्यन्त नम्रभावसे बोलीं ॥ ४२ ॥

तथ्यं च तत्प्राणपते यदुक्तं परं चिधित्सां भगवद्विधातुः ।
अनल्पशक्तेः परमाल्पशक्तिर्जनःकथं स्यात्प्रतिहर्तुमर्हः ॥ ४३ ॥

वा० वु० प्र० हे प्राणपते! यदुक्तं तत्तथ्यम । कथमनल्पा शक्तिर्यस्य तस्य भगवतो विधातुर्विधित्सां विधातुमिच्छां परमाऽल्पा शक्तिर्यस्य स जनः प्रतिहर्तुं दूरीकर्तुं कथमर्हो योग्य स्यात् ॥ ४३ ॥

पताका—हे प्राणनाथ! आपने जो कहा, वह सत्य है। परन्तु अनन्त शक्तिवाले भगवान् विधाताकी चिकीर्षाको अल्पशक्तिवाला मानव किस प्रकारसे हटा सकता है? ॥ ४३ ॥

तथा च जन्मान्तरसञ्चितानि पुण्यानि पापानि च सम्फलन्ति ।
विचार्य्यमेवं हृदयेश्वर त्वं जहीहि चिन्तां विफलामनिन्द्य ॥४४॥

वा० वु० प्र० तथा च जन्मान्तरेषु सञ्चितानि पुण्यानि पापानि च सम्फलन्ति। धर्माधर्मानुसारेणैव सुखदुःखे भवत इत्येवं विचार्य हे अनिन्द्य! हृदयेश्वर! विफलां चिन्तां जहीहि ॥ ४४ ॥

पताका—तथा जन्मान्तरके सञ्चित पुण्य और पापभी फल देते हैं। हे निष्कलङ्क! हृदयेश्वर! ऐसा विचार कर व्यर्थ चिन्ताको आप छोड़ दें ॥ ४४ ॥

किञ्चाधिकां भक्तिमनन्तशक्तिस्फूर्जत्प्रभाभास्वरविष्णुपादे ।
अनन्यचेतस्कतयाशु नाथ! शास्त्रीयमार्गेण समाचराव ॥ ४५ ॥

वा० बु० प्र० किं च हे नाथ! अनन्ता शक्तयो यस्य तस्य स्फूर्जन्तीभिः प्रभाभिर्भास्वरस्य च विष्णोः पादेऽनन्यचेतस्कतया शास्त्रीयमार्गेण शास्त्रनिर्दिष्टं पन्थानमाश्रित्याशु शीघ्रमधिकां भक्तिमावां समाचराव ॥ ४५ ॥

पताका—किंच हे नाथ! अनन्त शक्ति-सम्पन्न परम तेजस्वी भगवान् रामके चरण कमलमें हम लोग अनन्य मन होकर शास्त्रोक्त मार्गके द्वारा शीघ्र अधिक अधिक भक्ति करें ॥ ४५ ॥

सर्वान्तरात्मा पुरुषोत्तमः स कृपासुधाब्धी रघुपुङ्गवेन्द्रः ।
अनन्यभक्त्या मुदितः किलावां पूर्णाभिलाषौ वितनिष्यतीह ॥४६॥

वा० बु० प्र० किलेति निश्चये। सर्वेषामन्तरात्मा कृपासुधाया अब्धिःसागरः पुरुषोत्तमो रघुपुङ्गवेन्द्रो रघुश्रेष्ठतमोऽनन्यया ऽऽव्यभिचारिण्या भक्त्या मुदित आवामिह पूर्णाभिलाषौ प्रतिपन्नकामौ वितनिष्यति ॥ ४६ ॥

पताका—सबके अन्तरात्मा, कृपासागर, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी अनन्य-भक्तिसे प्रसन्न होकर अवश्य हम लोगोंको पूर्ण काम बनावेंगे ॥४६॥

प्राणप्रियायाः स निशम्य वाचं सन्तोषणीं चारुविचारगर्भाम् ।
तुतोष तोकागमवाञ्छनो यन्नेष्टो भवेत्कस्य निजेष्टमार्गः ॥४७॥

वा० बु० प्र० तोकस्यापत्यस्यागमे वाञ्छनं यस्य स द्विजः प्राणप्रियायाः सुशीलायाश्चारुविचारगर्भां रुचिरविचारपूर्णां सन्तोषणीं सन्तोषप्रदात्रीं वाचं निशम्य तुतोष। यद्यस्मान्निजस्येष्टो मार्गः कस्येष्टो न भवति? ॥ ४७ ॥

पताका—पुत्रकी इच्छावाले श्रीपुण्यसदनशर्मा प्राणप्रिया सुशीलाके सुन्दर विचारवाली वाणीको सुनकर सन्तुष्ट हो गये। क्योंकि अपना इष्ट मार्ग किसको प्रिय नहीं होता है? ॥ ४७ ॥

आसीच्च तस्यामुपगङ्गमेकं मनोज्ञमुत्तुङ्गमभिष्टुतं च ।
दशास्यकृन्मन्दिरमन्तरिक्षचलत्पताकं महितोरुकीर्ति ॥ ४८ ॥

वा० बु० प्र० तस्यां प्रयागपुर्यामुपगङ्गं गङ्गासमीपे मनोज्ञं सुन्दरमुत्तुङ्गं विशालमभिष्टुतं प्रख्यातमन्तरिक्षे चलन्ती पताका यस्य तादृशं महितोरुःकीर्तिर्यस्य तद्दशास्यो रावणस्तं कृणोतीति दशास्यकृच्छ्रीरामस्तस्य मन्दिरमासीत् ॥ ४८ ॥

पताका—उस प्रयाग नगरमें गङ्गाजीके समीप सुन्दर, विशाल, प्रख्यात और आकाशमें जिसकी पताका लहरा रहीथी ऐसा श्रीरामजीका एक मन्दिर था ॥ ४८ ॥

विष्णुं समाराधयितुं सभार्यः सपूर्णकामः सुतकामकामी ।
ययौ स्थिरश्रद्ध उदात्तभावस्तन्मन्दिरं भूमिसुराग्रगण्यः ॥ ४९ ॥

बा॰ बु॰ प्र॰ पुत्रादितर प्रपूर्णाःकामा यस्यातएव सुतकामकामी पुत्रप्रार्थी स्थिरा श्रद्धा यस्य स तथोदात्तो भावो यस्यैवंभूतःस भूमिसुराणां ब्राह्मणानामग्रगण्यः श्रीपुण्यसदनो भार्यया सहितो विष्णुं समाराधयितुं तन्मन्दिरं ययौ ॥ ४९ ॥

पताका—पुत्रसे अतिरिक्त जिनकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो चुकीथीं, अतएव केवल पुत्रकी इच्छावाले, स्थिर श्रद्धावाले, उच्च भावनावाले, तथा सर्वब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ श्रीपुण्यसदनशर्मा अपनी धर्मपत्नी सहित विष्णुकी आराधना करनेके लिये उस श्रीराममन्दिरमें गये ॥ ४९ ॥

विष्णवालयं दूरत एव दृष्ट्वा तौ प्रण्यपप्तां सहसा प्रसन्नौ ।
विष्णवागमाचारपरायणानां यतः प्रसिद्धःकिल धर्म एषः ॥ ५० ॥

बा॰ बु॰ प्र॰ दूरत एव विष्णवालयं श्रीराममन्दिरं दृष्ट्वा प्रसन्नौ तौ सहसा प्रण्यपप्तां (पा॰ ७।४।१९) प्रणतौ बभूवतुः । किलेति निश्चये । यतो विष्णवागमानां विष्णुसम्बन्धिशास्त्राणामाचार परमयनं येषां तेषामेष प्रसिद्धो धर्मः ॥ ५० ॥

पताका—उन दोनों दम्पतीने दूरसेही श्रीराममन्दिरको देखकर प्रणाम किया । क्योंकि वैष्णवागमके अनुकूल आचरण करनेवालोंका यह परम धर्म है ॥ ५० ॥

ततःपरं पूर्वमनिन्द्यकीर्ती सुरस्रवन्तीतटमीयतुस्तौ ।
आचम्य पादौ च विशोध्य सम्यगानिन्यतुर्दृष्टिपथं रमेशम् ॥५१॥

बा॰ बु॰ प्र॰ ततः परं तदनन्तरमनिन्द्यकीर्ती प्रशस्तयशस्कौ तौ पूर्वं सुरस्रवन्त्या गङ्गायास्तटमीयतुर्जग्मतुः । तत्राचम्याचमनं कृत्वा पादौ च सम्यग्विशोध्य रमेशं श्रीरामं दृष्टिपथं निन्यतुः ॥ ५१ ॥

पताका—तदनन्तर उत्तम कीर्तिवाले वे दोनों दम्पती प्रथम श्रीगङ्गा-जीके तटपर गये। वहां आचमन तथा पादप्रक्षालन करके मन्दिरमें भगवान्का दर्शन किया ॥ ५१ ॥

प्रणम्य साष्टाङ्गमथो उभौ तौ श्रीजानकीप्राणपतिं द्विजेन्द्रौ।
प्रेम्णा स्थितौ तत्पुर आरभेतां स्तोतुं ग्रहीतुं हि तदीयशास्तिम्॥५२॥

वा० बु० प्र० अथो अनन्तरं तावुभौ द्विजेन्द्रौ श्रीजानकीप्राणपतिं श्रीरामं साष्टाङ्ग प्रणम्य तत्पुरःस्थितौ तदीयशास्तिं तदाज्ञां ग्रहीतुं स्तोतुमारभेताम् ॥५२॥

पताका—दर्शनके अनन्तर दोनों दम्पती भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम करके, सम्मुख खड़े होकर उनकी आज्ञा ग्रहण करनेके लिये स्तुति करने लगे ॥ ५२ ॥

हे नाथ हे सर्वग सर्वपाल सर्वान्तरात्मन् कृपानिधान।
समादिशात्रां परिषेवितुं ते मनोरथानां प्रददौ प्रपादौ ॥ ५३ ॥

वा० बु० प्र० हे नाथ! हे सर्वग! हे सर्वपाल! हे सर्वान्तरात्मन्! हे कृपानिधान! मनोरथानां प्रददौ प्रदातारौ ते प्रकृष्टौ पादौ परिषेवितुमावां समादिशाज्ञापय ॥ ५३ ॥

पताका—हे नाथ! हे सर्व व्यापक! हे सर्व रक्षक! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे कृपासागर! समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले आपके चरणोंकी सेवा करनेकी हम दोनोंको आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥

निलिम्पनद्याः सलिलेषु नित्यं सायं प्रगे तौ च निसर्गपूतौ।
स्नात्वा हरेः पङ्कजपादयुग्मं मुदा समानर्चतुरर्हणार्हम् ॥ ५४ ॥

वा० बु० प्र० निलिम्पानां देवानां नद्या गङ्गायाःसलिलेषु नित्यं प्रगे प्रातः सायं च स्नात्वा निसर्गपूतौ स्वभावपवित्रौ तावर्हणार्हं पूजनीयं हरेः पादयुग्मं मुदा समानर्चतुः ॥ ५४ ॥

पताका—स्वभावसेही पवित्र दोनों दम्पती प्रतिदिन गङ्गाजीमें साय-ङ्काल और प्रातःकाल स्नान करके भगवान्के परम पूजनीय चरणार-विन्दकी पूजा करते थे ॥ ५४ ॥

श्रीराममन्त्रं मनसा जपन्तौ श्रीरामचन्द्रं वचसा गृणन्तौ ।
जायापती दीप्तमती द्विजेन्द्रा एकाशनौ मूलफलाशनौ तौ ॥ ५५ ॥
संक्लेशयन्तौ कुसुमोपमां स्वां तनुं समन्तात्कृशतां व्रजन्तौ ।
तथोन्नयन्तौ बहुलात्मशक्तिं कालान् बहून्निन्यतुरेकनिष्ठौ ॥ ५६ ॥
(युग्मम्)

बा० बु० प्र० मनसा श्रीराममन्त्रं जपन्तौ वचसा श्रीरामचन्द्रं गृणन्तौ स्तुवन्तावेकाशनौ सकृद्भोजिनौ मूलफलाशनावतएव दीप्तमती उद्बुद्धबुद्धी कुसुमोपमां स्वां तनुं संक्लेशयन्तौ समन्तात्कृशतां व्रजन्तौ तथा बहुलात्मशक्तिमुन्नयन्तौ वर्द्धयन्तावेकनिष्ठौ तौ जायापती द्विजेन्द्रौ बहून् कालान्निन्यतुः ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

पताका—मनसे श्रीराममन्त्रको जपते हुये, वाणीसे श्रीरामचन्द्रकी स्तुति करते हुये, एक समय आहार करनेवाले, मूल, फल आदि भोजन करनेवाले अतएव जागृत बुद्धिवाले, पुष्प समान अपने शरीरको क्लेश पहुंचाते हुये, अत्यन्त दुर्बलताको प्राप्त होते हुये तथा आत्मशक्तिको बढ़ाते हुये वे दोनों दम्पती वहां बहुतकाल व्यतीत किये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अनन्तकारुण्यमहासमुद्रः परात्परः श्रीभगवान्रमेशः ।
नीलाम्बुजश्यामसुकोमलाङ्गस्तथा सहस्रांशुसहस्रतेजाः ॥ ५७ ॥
निकाममालोक्य तयोः परार्ध्यां भक्तिप्रियो भक्तितरङ्गिणीं ताम् ।
अनुग्रहीतुं क्षितिमण्डलं स प्रादुर्बभूवार्तजनाधिबन्धुः ॥५८॥ (युग्मम्)

बा० बु० प्र० अनन्तकारुण्यानां महासमुद्रो नीलाम्बुजवच्छ्यामानि सुकोमलान्यङ्गानि यस्य स, सहस्रांशूनां सूर्याणां सहस्रं तस्य तेज इव तेजो यस्य स, आर्तजनानामधिको बन्धुर्भक्तिप्रियः परात्परः स भगवान् रमेशः श्रीरामस्तयोस्तां परार्ध्यामनुत्तमां भक्तितरङ्गिणीमालोक्य क्षितिमण्डलमनुग्रहीतुं प्रादुर्बभूव ॥५७॥५८॥

पताका—अनन्त दयाके महासागर, नील कमल समान श्याम और अत्यन्त कोमल अङ्गवाले, सहस्रों सूर्यके समान तेजवाले, दीनबन्धु, परात्पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी दोनोंके अत्युत्तम भक्तिरूपी नदीको अच्छे प्रकार देखकर भूमण्डलको कृतार्थ करनेके लिये प्रादुर्भूत हुये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

प्रपन्नकल्पद्रुममाशुतोषं भक्त्येकलभ्यं जगतीपतिं तम् ।
पुरः स्वयोर्वीक्ष्य मुदा द्विजेन्द्रावमन्दहर्षौ हि समस्तुवाताम् ॥५९॥

बा० बु० प्र० प्रपन्नानां कल्पद्रुममाशुतोषं भक्त्येकलभ्यं भक्तिमात्रेण प्राप्यं तं जगतीपतिं जगन्नाथं स्वयोरात्मनोःपुरो वीक्ष्यामन्दो बहुलो हर्षो ययोस्तौ द्विजेन्द्रौ समस्तुवातां स्तुतवन्तौ ॥ ५९ ॥

पताका–प्रपन्नोंके लिये कल्पवृक्ष समान, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, भक्ति मात्रसे प्राप्त करने योग्य, त्रिलोकी नाथको हर्षसे अपने सम्मुख उपस्थित देखकर दोनों दम्पती अत्यन्त प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे ॥ ५९ ॥

हे दीनबन्धो ! करुणैकसिन्धो ! हे भक्ततापापनुद ! प्रवीर !
जगद्गुरोऽकिञ्चनदासयोर्नौहस्ताञ्जलिः स्वीक्रियतामनन्त ! ॥६०॥

बा० बु० प्र० हे दीनबन्धो ! हे करुणैकसिन्धो ! हे भक्तानां तापापनुद ! हे प्रकृष्टवीर ! हे जगद्गुरो ! हे अनन्त ! अकिञ्चनदासयोर्नावावयोर्हस्ताञ्जलिस्त्वया स्वीक्रियताम् ॥ ६० ॥

पताका–हे दीनबन्धो ! हे करुणाके एक मात्र सागर ! हे भक्तभय-भञ्जन ! हे प्रकृष्टवीर ! हे जगद्गुरो ! हे अनन्त ! हम दोनों निर्धन दासोंकी प्रार्थनाको स्वीकार करिये ॥ ६० ॥

कृतार्थता स्वीकुरुते पदाब्जं निषेवमाणं पुरुषं हि यस्य ।
देवाधिदेवार्चितपादुकाय तस्मै नमो दीनहिताय तुभ्यम् ॥ ६० ॥

बा० बु० प्र० यस्य पदाब्जं चरणकमलं निषेवमाणं पुरुषं हि निश्चयेन कृतार्थता स्वीकुरुते । यत्पदारविन्दसेवीपुरुषोऽवश्यं कृतार्थो भवतीति भावः । देवाधिदेवैरप्यर्चिते पादुके यस्य तस्मै दीनहिताय तुभ्यं नमः ॥ ६१ ॥

पताका–जिसके कमल चरणकी सेवा करनेवाला पुरुष अवश्य कृतार्थ हो जाता है, देवोंकेभी देवोंसे पूजी गई है चरण पादुका जिसकी ऐसे दीनबन्धु आपको नमस्कार हो ॥ ६१ ॥

किं नाथ तेऽग्रे विनिवेदयाव किं तन्न यत्ते विदितं विभो स्यात् ।
मनोरथं नौ च मनोगतं त्वं सर्वं विजानासि जगच्छरीर॥ ६२ ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! ते तवाग्रे किं विनिवेदयाव ? तत्किं, यत्ते विदितं न स्यात् ? हे जगच्छरीर ! जगद्व्यापिन् ! नावावयोर्मनोगतं मनोरथं सर्वं विजानासि॥

पताका—हे नाथ ! आपके सामने हम क्या निवेदन करें। वह कौन सी वस्तु है जिसे आप नहीं जानते हैं। हे सर्वव्यापी प्रभो ! हमारे मनोरथको पूर्ण करिये ॥ ६२ ॥

उदीर्य वाचं विमलान्तरापस्नातामितीमां सजलेक्षणौ तौ ।
अनेकजन्मार्जितपुण्यलभ्यपदोर्न्यपप्तां कमलेक्षणस्य ॥ ६३ ॥

बा० बु० प्र० विमलैरान्तरैर्भावैरेवापैः स्नातामितीमां वाचमुदीर्योच्चार्य सजलेक्षणौ सवाष्पसलिलौ तौ कमलेक्षणस्य भगवतोऽनेकजन्मार्जितैः पुण्यैर्लभ्ययोः पदोर्न्यपप्तां प्रणतौ बभूवतुः ॥ ६३ ॥

पताका—आन्तरिक भावरूप निर्मल जलसे विशुद्ध इस प्रकारकी वाणी बोलकर रोते हुये वह दोनों दम्पती, अनेक जन्मोंके उपार्जित पुण्योंसे प्राप्तव्य कमलनयन भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ६३ ॥

प्रह्लादसुग्रीवविभीषणाद्यान्ध्रुवं गजं रक्षितवांश्च येन ।
तेनैव हस्तेन दयाञ्चितेन व्युत्थाप्य चाश्लिष्य स तौ जगाद ॥६४॥

बा० बु० प्र० स श्रीरामः प्रह्लादसुग्रीवविभीषणाद्यान् ध्रुवं गजं च येन रक्षितवांस्तेनैव दयाञ्चितेन दयासम्पृक्तेन हस्तेन तौ व्युत्थाप्याश्लिष्य च जगाद गदितवान् ॥ ६४ ॥

पताका—भगवान् श्रीरामजी, जिन हाथोंसे प्रह्लाद, सुग्रीव, विभीषण, ध्रुव और गजकी रक्षा किये थे उन्हीं कृपामय हस्तोंसे दोनों पतिपत्नीको उठाकर, छातीसे लगाकर बोले ॥ ६४ ॥

अहं प्रसन्नोऽस्म्यनया सुभक्त्या वत्सौ विषादं किल मा कृपाथाम् ।
अहं सुशीलातनयो भविष्यन् कृतां प्रतिज्ञां परिपालयामि ॥६५॥

बा० बु० प्र० किलेति निश्चये। हे वत्सौ! अनया सुभक्त्याऽऽहं प्रसन्नोऽस्मि। विषादं चिन्तां मा कृषाथाम्। अहं सुशीलातनयो भविष्यन् पूर्वं देवानां पुरस्तात्कृतां प्रतिज्ञां परिपालयामि ॥ ६५ ॥

पताका—हे वत्स! मैं तुम दोनोंकी इस सुन्दर भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। तुम लोग चिन्ता मत करो। मैं सुशीलादेवीका पुत्र होकर देवताओंके सामनेकी हुई अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूंगा ॥६५॥

असौ महात्मा गतमानसाधिर्गृहं प्रतीयाय तदा सदारः।
तपःश्रमासन्नशरीरकार्श्यं शनैः शनैर्निगमयाम्बभूव ॥ ६६ ॥

बा० बु० प्र० तदा भगवद्दर्शनानन्तरं गतमानसाधिः प्रसन्नमनाः सदारो गृहं प्रतीयाय जगाम। तपसःश्रमेण समासन्नं शरीरकार्श्यं च 'विनाऽऽपि चं चार्थो गम्यत' इति चोऽनुग्राह्यः, शनैः शनैर्निगमयाम्बभूव ॥ ६६ ॥

पताका—भगवान्के दर्शन होनेके अनन्तर प्रसन्न होकर महात्मा श्री-पुण्यसदन अपनी पत्नीके सहित घर लौट आये और तपके श्रमसे शरीर की कृशताको धीरे २ दूर कर दिया ॥ ६६ ॥

उपचितघनदर्पभ्रष्टबुद्धिप्रसार-
प्रसृततिमिरभाराक्रान्तलोकान् विनेतुम्।
अथ सदनरमण्यां वैष्णवं जिष्णु तेजः,
सपदि समयितं यत्किं तपो न प्रसूते ॥ ६७ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये द्वितीयः सर्गः

बा० बु० प्र० अथ गृहागमनानन्तरमुपचितेन वृद्धेन घनेन दर्पेण भ्रष्टो यो बुद्धिप्रसारो मतिविस्तारस्तेन प्रसृतानां तिमिराणामज्ञानसन्तमसानां भारैराक्रान्ताँल्लो-कान्विनेतुं शिक्षयितुं सदनरमण्यां पुण्यसदनपत्न्यां, देवदत्तो दत्त इतिवत्प्रयोगः, सपदि शीघ्रं वैष्णवं विष्णुसम्बन्धि जिष्णु जयनशीलं तेजः समयितं सङ्गतं तद्गर्भे-समागतमित्यर्थः। यद्यतस्तपः किं न प्रसूते? सर्वं प्रसूत इत्यर्थः ॥मालिनीच्छन्दः॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यां द्वितीयः सर्गः

पताका—गृहपर आनेके पश्चात् बढ़े हुये अत्यन्त अभिमानसे भ्रष्ट-बुद्धि होनेके कारण अज्ञानरूप अन्धकारके भारसे पीडित लोगोंको शिक्षा देनेके लिये श्रीपुण्यसदनशर्माकी पत्नी सुशीलादेवीके गर्भमें विजयी वैष्णव तेज शीघ्र आकर प्राप्त हुआ। क्यों कि तप क्या नहीं करता है? अर्थात् सब कुछ करता है ॥ ६७ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य—ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास—विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां द्वितीयः सर्गः ।

अथ तृतीयः सर्गः

अथ त्रिलोकीपतिरात्मयोनिरवातरद्धन्यदुहितृगर्भे ।
यदा तदाऽऽलौकिकभाप्रदीप्राननाभवद्भाग्यवती सुशीला ॥ १ ॥

बा० बु० प्र० अथात्मैव योनिःकारणं यस्य स त्रिलोकीपतिःश्रीरामो यदा धन्यस्य दुहितुःसुशीलाया गर्भेऽवातरत्तदा भाग्यवती सुशीलाऽऽलौकिक्या भया भासा प्रदीप्राननाऽऽभवत् ॥ १ ॥

पताका—गर्भ धारणानन्तर स्वयंभू त्रिलोकीनाथ भगवान् श्रीरामजी जब श्रीरामानन्द रूप धारण करके श्रीधन्यशर्माकी पुत्री सुशीला देवीके गर्भमें पधारे तब उनका मुख अलौकिक कान्तिसे देदीप्यमान हो गया ॥१॥

गर्भेण तेनेयमहीनकान्तिस्तथा सुशीला शुशुभे समन्तात् ।
मुक्ताफलाढ्या च यथा सुशुक्तिःपञ्चाननेनाद्रिगुहा यथा वा ॥२॥

बा० बु० प्र० अहीनकान्तिः परिपूर्णशोभेयं सुशीला तेन गर्भेण समन्तात्तथा शुशुभे शोभितवती यथा मुक्ताफलैराढ्या सम्पन्ना सुशुक्तिः शुक्तिका यथा वा पञ्चाननेन सिंहेन गुहा शोभते ॥ २ ॥

पताका—पूर्ण कान्तिवाली यह सुशीला देवी इस गर्भसे ऐसी शोभा पाने लगीं जैसे कि मुक्ताफलसे पूर्ण शुक्ति अथवा सिंहसे गुहा शोभती है॥

सुवर्णवर्णा सुमनोज्ञरूपा प्रशस्यशीला विमला सुशीला ।
शनैः स्वगर्भोपचयक्रमेण बभूव सम्पाण्डुतयोपपन्ना ॥ ३ ॥

बा० बु० प्र० सुवर्णवर्णा काञ्चनवर्णा सुमनोज्ञरूपा परममनोहराकृति प्रशस्यशीला विमला निर्मला सुशीला शनैः स्वगर्भस्योपचयक्रमेण सम्पाण्डुतयोपपन्ना युक्ता बभूव ॥ ३ ॥

पताका–गौर वर्णवाली, परम मनोहर रूपवाली, सुन्दर शीलवाली, निर्मला सुशीला देवी शनैः २ गर्भकी वृद्धिके क्रमसे पाण्डुतासे युक्त हुई। अर्थात् ज्यों ज्यों गर्भ बढ़ता जाता था त्यों २ मुख पर पीलापनभी बढता जाता था ॥ ३ ॥

तस्या अभूतां शिवशातकुम्भकुम्भोपमौ वृद्धतरावुरोजौ ।
स्तन्यस्य पाता भविताऽऽवयोर्हि त्रैलोक्यपातेतिमुदेव नूनम् ॥४॥

बा० बु० प्र० हीति निश्चये । आवयोः स्तन्यस्य पयसःपाता त्रैलोक्यपाता भवितेति मुदेव नूनं तस्याः सुशीलादेव्याः शिवौ सुन्दरौ शातकुम्भकुम्भौ कनककलशावुपमा ययोस्तावुरोजौ स्तनौ वृद्धतरावतिशयेन वृद्धावभूताम् ॥ ४ ॥

पताका–निश्चयही हम दोनोंके दूधको पीनेवाले त्रिलोकी नाथ होंगे इसी प्रसन्नतासे सुशीलादेवीके सुन्दर सुवर्ण–कलश समान दोनों स्तन अत्यन्त पीन–मोटे हो गये ॥ ४ ॥

प्रफुल्लपाथोजविलोचनाया विलोचने ईयतुरायतत्वम् ।
विशेषतः श्रीभगवन्मुखारविन्दश्रियं द्रष्टुमिवोत्सुके ते ॥ ५ ॥

बा० बु० प्र० श्रीभगवन्मुखारविन्दस्य श्रियं शोभां द्रष्टुमुत्सुके उत्कण्ठिते इव प्रफुल्लपाथोजे इव विलोचनेनेत्रे यस्यास्तस्याः सुशीलायास्ते विलोचने विशेषत आधिक्येनायतत्वं दीर्घत्वमीयतुः प्रापतुः ॥ ५ ॥

पताका–खिले हुये कमलके समान बड़े २ नेत्रवाली सुशीलादेवी के नेत्र मानो श्री भगवान्‌के मुखारविन्दकी शोभा देखनेके लिये उत्कण्ठित होकर विशेष दीर्घताको प्राप्त हो गये ॥ ५ ॥

लावण्यसञ्जीवननिर्झरिण्यास्तस्या हि सौभाग्यजुषो रमण्याः ।
नितम्बबिम्बं ववृधे विशेषात्तटं तटिन्या व घनागमान्ते ॥ ६ ॥

बा० बु० प्र० व इवार्थे । घनागमस्य मेघागमस्यान्ते पश्चाद्वृष्ट्यनन्तर-मित्यर्थः, तटिन्या नद्यास्तटमिव लावण्यं सौन्दर्यं तदेव सच्छ्रेष्ठं जीवनं जलं तस्य निर्झरिण्याः, सौभाग्यं जुषत इति सौभाग्यजुट् तस्या रमण्याः सुशीलादेव्या नितम्ब-बिम्बं विशेषं ववृधे ॥ ६ ॥

पताका—जैसे वर्षा हो जानेके बाद नदीके तट बढ़ जाते हैं वैसेही परम सुन्दरी सौभाग्यवती श्रीसुशीला देवीके नितम्ब बढ़ गये ॥ ६ ॥

सर्वाङ्गसौन्दर्यसरित्प्रवाहदेदीप्यमानापघनाननायाः ।
एकान्तमास्फातिमिता मुखश्रीर्यथोपसि प्राज्ञतमस्य बुद्धिः ॥ ७ ॥

बा० बु० प्र० प्राज्ञतमस्य विद्वद्वरिष्ठस्योपसि ब्राह्मकाले बुद्धिरिव सर्वाङ्ग-सौन्दर्यसरित्प्रवाहेण देदीप्यमानोऽपघन पाणी पादावाननं च यस्यास्तस्याः सुशीला-देव्या मुखश्रीरेकान्तमत्यन्तमास्फातिं वृद्धिमिता गता ॥ ७ ॥

पताका—जैसे ब्राह्म मुहूर्तमें प्राज्ञतम पुरुषकी बुद्धि वृद्धिको प्राप्त होती है वैसेही सर्वाङ्ग सौन्दर्य रूप सरित्के प्रवाहसे सुशोभित कर, चरण और मुखवाली सुशीला देवीके मुखकी शोभा अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई ॥

जगत्त्रयैकामितसारभारं गर्भे वहन्ती न चिखेद देवी ।
सर्वान्तरात्मानुनिविष्टपूर्णश्रीब्रह्मणो ह्येष परःप्रभावः ॥ ८ ॥

बा० बु० प्र० जगत्त्रयस्यैकममितं मानरहितं यत्सारं तस्य भारं गर्भे वहन्ती धारयन्ती सा देवी सुशीला न चिखेद । हिरेवार्थे । सर्वेषामन्तरात्मन्यनुनि-विष्टस्य पूर्णस्य श्रीब्रह्मणःश्रीरामस्यैवैष परः सर्वोत्कृष्टः प्रभावः ॥ ८ ॥

पताका—त्रिलोकीके अमित सार—श्री भगवान्के भारको गर्भमें धारण करती हुई श्रीसुशीला देवी खिन्न नहीं हुई। सबके अन्तरात्मामें अनुप्रविष्ट पूर्ण ब्रह्म श्रीरामजीकाही यह सर्वोत्कृष्ट अलौकिक प्रभाव है। नहीं तो अखिल भुवनके भारको वहन करनेवाले भगवान्के भारको वह कैसे धारण कर सकतीं ॥ ८ ॥

स्वाभाविकी मन्दगतिर्ह्यमुष्या विशेषतो मन्दतरा बभूव।
मदातिमात्रोपहितद्विपस्य भवेद्यथा मन्दतरा च हृद्या ॥ ९ ॥

व्या० बु० प्र० मदेनातिमात्रमत्यन्तमुपहितस्य संयुक्तस्य द्विपस्य गजस्य मन्दगतिर्यथा मन्दतराऽऽतएव हृद्या मनोरमा भवेत्, तथैवामुष्याः सुशीलायाः स्वभाविकी मन्दगतिर्विशेषतो मन्दतरा बभूव ॥ ९ ॥

पताका—जैसे अत्यन्त मदोन्मत्त गजकी गति मन्दतरा हो जाती है वैसेही श्रीसुशीला देवीकी स्वाभाविक मन्दगति विशेष मन्द अतएव मनोरम हो गई ॥ ९ ॥

दिने दिने सम्मदवर्धनानि भाविप्रियावेदनपण्डितानि।
निमित्तजातानि सुमङ्गलानि तस्या विदुष्याश्च समुद्बभूवुः ॥१०॥

व्या० बु० प्र० दिने दिने प्रतिदिनं तस्या विदुष्याःपण्डितायाः सम्मदस्यानन्दस्य वर्धनानि भाविनःप्रियस्यावेदने पण्डितानि चतुराणि सुमङ्गलानि निमित्तजातानि समुद्बभूवुः समुद्भूतवन्ति ॥ १० ॥

पताका—प्रतिदिन विदुषी सुशीला देवीके आनन्दको बढ़ानेवाले, भावि—प्रियको सूचना देनेवाले मङ्गलमय शकुन होने लग गये ॥ १० ॥

समागतास्तत्र निमित्तविज्ञा विज्ञा अनेके युगपत्समेताः।
विनीतभावेन कृतप्रणामा निवेदयाञ्चक्रुरमी अमूदृक् ॥ ११ ॥

व्या० बु० प्र० तत्र प्रयागपुर्यां युगपत्समकालमेव समेताः सङ्गता अनेके निमित्तविज्ञा ज्योतिर्विदो विज्ञा विद्वांसः समागताः समाजग्मुः। विनीतभावेन कृतप्रणामाश्चामी अमूदृगीदृशं (पा० १।१।१२) वक्ष्यमाणं निवेदयाञ्चक्रुः ॥ ११ ॥

पताका—उस प्रयाग नगरमें बहुतसे ज्योतिःशास्त्रके विद्वान् एकही साथ मिलकर वहां आये और नम्रभावसे प्रणाम करके निम्नोक्त प्रकारसे बोलने लगे ॥ ११ ॥

हे देवि ते शास्त्रकलाप्रवीणो मोहान्धजम्बालनिपीडितस्य।
पुत्रो धुरं धर्मरथस्य धर्ता महाप्रभावो भविताऽऽचिरेण ॥ १२ ॥

बा० बु० प्र० हे देवि ! शास्त्रेषु कलासु च प्रवीणो मोहान्धजन्यालेना-ज्ञानान्धकारपङ्केन निपीडितस्यार्दितस्य धर्मरथस्य धुरं धर्ता (पा० ३।३।६९) महाप्रभावस्ते पुत्रोऽचिरेणाल्पेनैव कालेन भविता । लुट् ॥ १२ ॥

पताका—हे देवी तुम्हारे संपूर्ण शास्त्रों और योगादिकी क्रियाओंमें निपुण, अज्ञानान्धकाररूप पङ्कमें फँसे हुये धर्मरथका धारण करनेवाला, महाप्रतापी पुत्र शीघ्रही होगा ॥ १२ ॥

गुरुर्गुरूणां महसां सुधाम धीरः प्रवीरो दृढनिश्चयश्च ।
समस्तकल्याणगुणालयस्ते पुत्रो भवेच्छ्रीपतितुल्य एव ॥ १३ ॥

बा० बु० प्र० ते तव पुत्रो गुरूणां गुरुर्महसां तेजसां सुधाम शोभनं स्थानं प्रकृष्टो वीरो दृढनिश्चयः समस्तैः कल्याणगुणैरुपेतो युक्तः श्रीपतितुल्य एव भवेद्भविष्यति ॥ १३ ॥

पताका—हे देवि ! तुम्हारा पुत्र गुरुओंकाभी गुरु, सम्पूर्ण तेजोंका सुन्दर स्थान, महान् वीर, दृढ निश्चयवाला तथा विष्णुभगवान्के समानही समस्त कल्याण गुणोंसे युक्त होगा ॥ १३ ॥

आबालवृद्धोद्वहनीयशास्तिःपुण्यैकधामाथ सुरेशतेजाः ।
जगत्त्रयानन्दविधायकस्ते भवेत्तनूजोऽतनुशक्तिशाली ॥ १४ ॥

बा० बु० प्र० आबालवृद्धोद्वहनीया शास्तिः शासनं यस्य स पुण्यैकधामा सुरेन्द्र इव तेजस्वी जगत्त्रयस्यानन्दस्य विधायकः, शेषषष्ठ्या समासः, अतनुभिर्महतीभिः शक्तिभिः शालते शोभत एतादृशस्ते तनूजः पुत्रो भवेत् ॥ १४ ॥

पताका—आबालवृद्ध जिसकी आज्ञाका पालन करेंगे, परमपुण्यात्मा, इन्द्र समान तेजस्वी, महाशक्तिसम्पन्न अतएव तीनों लोकोंको आनन्द देनेवाला तुम्हारा पुत्र होगा ॥ १४ ॥

अज्ञानतासन्तमसाधिवृद्ध्याच्छन्नं मुदा विभ्रमदो हि विश्वम् ।
उद्योतयिष्यत्यनघस्तनूजस्ते देवि भानुश्च यथान्धकारम् ॥ १५ ॥

बा० बु० प्र० यथा भानुरन्धकारमुद्योतयति तथैवानघो निष्पापस्ते तनूजो-

ऽज्ञानतासन्तमसस्य (पा० ५।४।७९) अधिवृद्धयाऽऽच्छन्नमदो विश्वं समस्तं विश्वं जगन्मुदा हर्षेणोद्योतयिष्यति प्रकाशयिष्यति ॥ १५ ॥

पताका—जैसे सूर्य अन्धकारका नाश करके प्रकाश करता है वैसेही तुम्हारा धर्मात्मा पुत्र अज्ञानतारूप गाढ अन्धकारसे आवृत इस समस्त जगत्को प्रकाशित करेगा ॥ १५ ॥

अनन्तकालं भुवि ते प्रतिष्ठा प्रशस्यवंशस्य तवाङ्गजेन ।
समग्रतेजोऽतिशयप्रपूर्णपात्रेण संस्थास्यत एव देवि ॥ १६ ॥

चा० बु० प्र० हे देवि ! समग्राणां तेजसामतिशयेनाधिक्येन प्रपूर्णपात्रेण तवाङ्गजेन करणेन भुवि पृथिव्यामनन्तकालं ते तव प्रशस्यवंशस्य प्रतिष्ठा संस्थास्यत एव (पा० १।३।२२) ॥ १६ ॥

पताका—हे देवि ! सम्पूर्ण तेजोंकी अधिकतासे पूर्ण पात्र रूप तुम्हारे पुत्रके द्वारा तुम्हारे प्रतिष्ठित वंशकी प्रतिष्ठा इस भूतलपर अनन्त काल पर्यन्त स्थिर रहेगी ॥ १६ ॥

संसारकान्तारदुरूहमार्गभ्रमिव्यथाव्याकुलितान्तराणाम् ।
तापत्रयीसंयमनाख्यकर्मदक्षोऽङ्गजस्ते भविता नराणाम् ॥ १७ ॥

चा० बु० प्र० संसार एव कान्तारं महारण्यं तस्य दुरूहेषु मार्गेषु भ्रमिर्भ्रमणं तस्या व्यथया व्याकुलितान्यान्तराणि येषां तेषां नराणां तापत्रय्याः संयमनाख्यं यत्कर्म तत्र दक्षो निपुणस्तेऽङ्गजो भविता ॥ १७ ॥

पताका—संसार रूपी घोर जङ्गलके कठिन मार्गमें भ्रमणकी व्यथासे व्याकुल मनवाले मनुष्योंके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों तापोंके दूरीकरण रूप कर्ममें कुशल तुम्हारा पुत्र होगा ॥१७॥

कदापि केनापि न ते तनूजो धृष्यो भवेद्दिव्यगुणे सुशीले ।
न केवलं मानवदेहभृद्भिः सुरैरपि श्रेष्ठतमैश्च पूज्यः ॥ १८ ॥

चा० बु० प्र० हे दिव्यगुणे ! सुशीले न केवलं मानवदेहभृद्भिर्मनुष्यैरपितु श्रेष्ठतमैः सुरैरिन्द्रादिभिरपि पूज्यस्ते तव तनूजः कदापि केनापि धृष्यो धर्षणीयो न भवेत् ॥ १८ ॥

पताका—हे सुशीलादेवि ! केवल मनुष्योंका नहीं प्रत्युत इन्द्रादि देवोंकाभी पूज्य तुम्हारा पुत्र कभी किसीसे पराभव नहीं पावेगा ॥ १८ ॥

तेजस्विनां देवि असौ परेषां तेजोनिपाता भविता तनूजः ।
जगज्जगन्नाथ इवैव सम्यङ् नियन्त्रयिष्यत्यखिलं सलीलम् ॥ १९ ॥

वा० बु० प्र० हे देवि ! (पा० ६।१।२७) असौ तनूजस्तवेति शेषः, परेषां तेजस्विनां तेजोनिपाता तेजसो घातको भविता । लुट् । जगन्नाथ परमेश्वर इवाखिलमेव जगत्सलीलमनायासेन सम्यङ् नियन्त्रयिष्यति नियन्त्रितं करिष्यति ॥१९॥

पताका—हे देवी ! आपका यह पुत्र शत्रुओंके तेजका नाश करने वाला होगा । तथा जैसे परमेश्वर सम्पूर्ण जगत्का नियमन करते हैं वैसेही आपका पुत्रभी अनायास समस्त जगत्को नियममें चलावेगा ॥ १९ ॥

आकर्ण्य दैवज्ञगिरं सुशीला मुदं परामापदनिन्द्यशीला ।
श्रीपुण्यसद्मापि निजं तनूजं गुणावदातं मुमुदे निशम्य ॥ २० ॥

वा० बु० प्र० अनिन्द्यं प्रशस्तं शीलं यस्याः सा सुशीला दैवज्ञानां ज्योतिर्विदां गिरमाकर्ण्य श्रुत्वा परामधिकतरां मुदमानन्दमापदाप्नोत । श्रीपुण्यसद्मा श्रीपुण्यसदनोऽपि निजं भाविनं तनूजं गुणैरवदातं शुद्धं निशम्य मुमुदे प्रसमाद ॥ २० ॥

पताका—परमोत्तम शीलवाली श्रीसुशीलादेवी ज्योतिषियोंके वचनको सुनकर परम हर्षको प्राप्त हुई । तथा श्रीपुण्यसदनशर्माभी अपने भावी पुत्रको उत्तम गुणोंवाला सुनकर प्रसन्न हुये ॥ २० ॥

यथा यथा गर्भ इयाय वृद्धिं तथालसा सा नितरां बभूव ।
प्रसूनमालापि भराय जाता तस्याःकथा कान्यविभूषणानाम् ॥२१॥

वा बु० प्र० यथा यथा गर्भो वृद्धिमियाय प्रापतथा सा सुशीला नितरामलसा बभूव । तस्याः प्रसूनमालापि भराय भाराय जाता; अन्यविभूषणानां का कथा ? ॥ २१ ॥

पताका—ज्यों २ गर्भ बढ़ता गया त्यों २ सुशीलादेवी अलसाती गई । उनको पुष्पोंकी मालाभी भाररूप हो गईथी तो अन्य आभूषणोंकी तो वार्ताही क्या कहनी थी ॥ २१ ॥

प्रियवंदायाः समजायतैव कालोचितं दोहदमिन्दुमुख्याः ।
नैसर्गिकं वस्तु निसर्गतो हि काले भवत्येव किमत्र चित्रम् ॥२२॥

वा० वु० प्र० प्रियवंदायाः प्रियभाषिण्या इन्दुमुख्याः सुशीलायाः कालोचितं दोहदं गर्भाभिलाषः समजायतैव उत्पन्नमेव । ननु सर्वसमृद्धिसमृद्धाया अतएव सन्तृप्तायास्तस्याः कथं दोहदसम्भव इत्यत आह—हि यतो नैसर्गिकं स्वाभाविकं वस्तु निसर्गतः स्वभावतः काले भवत्येव । अत्र किं चित्रम् ? ॥ २२ ॥

पताका—मधुरभाषिणी चन्द्रमुखी सुशीलादेवीको समयोचित दोहद-गर्भ समयकी इच्छा उत्पन्न हुई । कदाचित् कहो कि वह तो पुष्कल धनकी स्वामिनी होनेसे अति तृप्त रही होंगी पुनः उन्हें दोहद क्यों हुआ तो इसका समाधान करते हैं कि स्वाभाविक वस्तु स्वभावतः अपने समयपर होताही है, इसमें क्या आश्चर्य है ॥ २२ ॥

यद्यत्प्रियं वस्तु मनीषितं स्यादानीतमेवाभवदाशु तस्याः ।
पत्या विलम्बं न हि कोऽपि सोढुं क्षमः प्रिये कर्मणि वल्लभानाम्॥२३॥

वा० वु० प्र० तस्याः सुशीलाया यद्यत्प्रियं वस्तु मनीषितमभिलषितं स्यात्तत्तत्पत्या श्रीपुण्यसदनेनाशु शीघ्रमानीतमेवाभवत् हि यतो वल्लभानां प्रियाणां प्रिये कर्मणि विलम्बं सोढुं कोऽपि न क्षमः समर्थः ॥ २३ ॥

पताका—श्रीसुशीला देवीको जिस २ प्रिय वस्तुकी इच्छा होतीथी उसे श्रीपुण्यसदन शीघ्रही मँगा लिया करते थे । क्यों कि स्वप्रियजनोंके प्रिय कार्यमें कोईभी विलम्ब नहीं सहन कर सकता ॥ २३ ॥

निःशेषवस्त्वीश्वरमावहन्त्याः संश्रुत्य तं दोहदखेदमस्याः ।
आदाय नानाविधवस्तुजातं डुढौकिरे बन्धुजनाःस्वभावात् ॥२४॥

वा० वु० प्र० निःशेषाणां वस्तूनामीश्वरं श्रीराममावहन्त्या धारयन्त्या अस्याः सुशीलायास्तं दोहदस्य खेदं संश्रुत्य श्रुत्वा बन्धुजनाः स्वभावान्नानाविधानां वस्तूनां जातं समूहमादाय डुढौकिरे आगतवन्तः ॥ २४ ॥

पताका—समस्त वस्तुओंके ईश्वर भगवान् श्रीरामको श्रीरामानन्दरूपसे

गर्भमें धारण करती हुई सुशीलादेवीके दोहद-खेदको सुनकर बन्धुजन स्वभावतः नाना प्रकारकी वस्तुओंको लेकर उपस्थित हुये ॥ २४ ॥

निद्रादरिद्राम्बुरुहानना सा कठोरगर्भा निशि जातनिद्रा ।
ददर्श बालं विहरन्तमद्धा पुरो धनुष्पाणिमनर्घ्यरूपम् ॥ २५ ॥

वा० बु० प्र० चतुर्भिः सुशीलादेव्याः स्वप्नदर्शनं वर्णयति । कठोरगर्भा परिपूर्णगर्भा निद्रादरिद्रं विकसितमम्बुरुहं कमलमिवाननं यस्याः सा सुशीलादेवी निशि जातनिद्रा सुप्ता सती पुरोऽग्रेऽनर्घ्यरूपमतिप्रशस्तरूपं धनुष्पाणिं बालं विहरन्तमद्धा स्फुटं ददर्श ॥ २५ ॥

पताका—चार श्लोकोंमें सुशीलादेवीका स्वप्नदर्शन वर्णन करते हैं। परिपूर्ण गर्भवाली, विकसित कमल समान मुखवाली श्रीसुशीलादेवीने रातको सोती हुई स्वप्नमें अपने आगे हाथमें *धनु-बाण लेकर खेलते हुये एक परम सुन्दर बालकको देखा ॥ २५ ॥

विद्याधराणां वनितासखानां गणैरपश्यद्वनिता द्विजस्य ।
बालं तमानन्दनिधिं मनोज्ञं सा स्नप्यमानं सलिलैःसुगन्धैः ॥२६॥

वा० बु० प्र० द्विजस्य श्रीपुण्यसदनस्य वनिता पत्नी सा सुशीलादेवी वनितासखानां वनितासहायानां विद्याधराणां गणैरानन्दनिधिं मनोज्ञं मनोहरं तं बालं सुगन्धैः सलिलैः सुगन्धैरित्यत्र "गन्धस्ये" (पा० ५।४।१३५) त्यादावेकान्त-ग्रहणेन मतान्तररीत्या स्वाभाविकत्वाभावेनेत्वं न । स्नप्यमानमपश्यत् । स्नप्यमान-मित्यत्र "ग्लास्नावनुवमांचे" (स्वा० ग० सू० ८३६) तिवैकल्पिकं मित्त्वम् ॥२६॥

पताका—श्रीपुण्यसदनशर्माकी पत्नी श्रीसुशीलादेवीने आनन्दनिधि उस सुन्दर बालकको विद्याधर और उनकी स्त्रियोंके द्वारा सुगन्धित जलसे स्नान कराये जाते हुये देखा ॥ २६ ॥

ब्रह्मादिदेवैःसकलैःसदारैःसुगन्धिपुष्पोपहितैः स्वहस्तैः ।
समर्च्यमानं बहुधा तनूजमपश्यदार्या सदनस्य भार्या ॥ २७ ॥

* यद्यपि ब्राह्मणके गृहमें अवतार लेनेके कारण धनुष्बाण धारण उचित नहीं है तथापि प्रभुने अपने स्वाभाविक रूपका दर्शन दिया ॥

बा० बु० प्र० श्रीसदनस्य पुण्यसदनस्यार्य्या पतिव्रता भार्य्या श्रीसुशीला सदारैः सपत्नीकैर्ब्रह्मादिदेवैः कर्तृभिः सुगन्धिभिः (पा० ५।४।१३५) पुष्पैरुपहितैर्युक्तैः स्वहस्तैः करणैर्बहुधा बहुप्रकारैः समर्च्यमानं पूज्यमानं तनूजमपश्यत् ॥ २७ ॥

पताका—श्रीसुशीलादेवीने स्वस्वास्त्रियों सहित ब्रह्मादिदेवोंको हाथोंमें सुगन्धित पुष्पोंको लेकर अपने पुत्रकी पूजा करते हुये देखा ॥ २७ ॥

अनन्तरत्नांशुविसारिशोभाप्रयुक्तचेतोहरतां दधाने ।
सिंहासनेऽदर्शदमुं सुबालं निवेश्यमानं ससुरेण वृष्णा ॥ २८ ॥

बा० बु० प्र० अनन्तानां रत्नानामंशुभिः किरणैर्विसारिण्या प्रसरणशीलया शोभया प्रयुक्तां चेतोहरतां मनोहरतां दधाने सिंहासने ससुरेण सदेवेन वृष्णा देवेन्द्रेणामुं सुबालं निवेश्यमानं स्थाप्यमानमदर्शत् (पा० ७।४।१६) सेतिशेषः ॥२८॥

पताका—सम्पूर्ण देवों सहित इन्द्रके द्वारा अनन्तरत्नोंके किरणोंकी शोभासे परम मनोहर सिंहासनपर बैठाये जाते हुये उस बालकको सुशीलादेवीने देखा ॥ २८ ।

मुहुर्मुहुःसंसृतिजन्यदुःखे नृणां निपाताय कृतप्रतिज्ञान् ।
एकान्ततो धर्मधुरीणभार्या तत्याज सा वैषयिकान् पदार्थान् ॥२९॥

बा० बु० प्र० धर्मधुरीणस्य श्रीपुण्यसदनस्य भार्या सा सुशीला संसृतिः संसारस्तज्जन्ये दुःखे नृणां मुहुर्मुहुः पुनः पुनर्निपाताय कृता प्रतिज्ञा यैस्तान् वैषयिकान् पदार्थाननेकान्ततः सर्वथैव तत्याज ॥ २९ ॥

पताका—परमधार्मिक श्रीपुण्यसदनशर्माकी पत्नी सुशीलादेवीने जन्म और मरणके दुःखमें पुनः २ मनुष्योंको गिरानेवाले वैषयिक पदार्थोंका सर्वथा त्याग कर दिया ॥* २९ ॥

तस्या मनोवृत्तय आत्मनीनाः स्वभावतः सत्त्वगुणेषु लीनाः ।
सन्तिष्ठमाने जगदेकनाथे गर्भे कथं स्यादितरप्रवेशः ॥ ३० ॥

---

* गर्भिणी माता जिस प्रकारके पदार्थका सेवन करती है उसी प्रकारकी प्रकृतिवाला गर्भस्थ बालक हो जाता है। अतः अपने पुत्रको विषयवासनासे पृथक् रखनेकी इच्छासे सुशीलादेवीने वैषयिक पदार्थोंका त्याग कर दिया ॥

बा० बु० प्र० तस्याः सुशीलाया आत्मनीना (पा० ५।१।९॥६।४।१६९) आत्मने हिता मनोवृत्तयः स्वभावतः सत्त्वगुणेषु लीना । गर्भे जगदेकनाथे भगवच्छ्रीरामे सन्तिष्ठमाने (पा० १।३।२२) इतरेषां रजआदीनां प्रवेशः कथं स्यात् ।।३०।।

पताका—श्रीसुशीलादेवीकी आत्महितकारिणी मनोवृत्तियां स्वभावतः सत्त्वगुणमें लीन हो गईं । गर्भमें परमसात्त्विक भगवान् श्रीरामजीके निवास करते हुये अन्य रजोगुण आदिका प्रवेश कैसे हो सकता ॥ ३० ॥

त्यक्त्वा समस्तामुपभोगयोग्यां श्रियं मदीयस्तनयो विरक्तः ।
भविष्यतीत्येवमवेक्ष्य जाता सर्वेषु भोग्येष्विव सा विरक्ता ॥३१॥

बा० बु० प्र० मदीयस्तनयःपुत्र उपभोगस्य योग्यां समस्तां श्रियं त्यक्त्वा विरक्तो भविष्यतीत्येवमवेक्ष्य विचार्येव सा सुशीला सर्वेषु भोगेषु विरक्ता बभूव ।।३१।।

पताका—'मेरा पुत्र उपभोगके योग्य समस्त वैभवका परित्याग करके विरक्त होगा' मानो ऐसा मानकरही श्रीसुशीलादेवी सब भोगोंसे विरक्ता हो गईं ॥ ३१ ॥

वैमानिकाद्या अमराःसमीयुर्विज्ञाय जिष्णोर्जगतीपतेश्च ।
पुनर्धरित्र्यामवतीर्य लोकोद्धारस्य चेच्छोःसमयं समीपम् ॥ ३२ ॥

बा० बु० प्र० वैमानिकाद्या अमरा धरित्र्यां पुनरवतीर्यावतारं गृहीत्वा लोकानामुद्धारस्येच्छोरभिलाषुकस्य जिष्णोर्जयनशीलस्य जगतीपतेः श्रीरामस्य समयमवतारस्येति शेषः, समीपं विज्ञाय समीयुराजग्मुः ॥ ३२ ॥

पताका—पृथ्वीपर पुनः अवतार लेकर लोकोद्धारकी इच्छावाले, विजयी स्वभाववाले त्रिलोकीनाथ श्रीरामजीके अवतारका समय समीप जानकर वैमानिक आदि देवता वहां आये ॥ ३२ ॥

आयोजनं देवगणैः सहस्रैः स्तम्भैर्युतं रत्नचयावदातैः ।
अरिष्टमच्छच्छवि निर्ममे तैर्यथा द्वितीयं पुरुहूतधाम ॥ ३३ ॥

बा० बु० प्र० तैर्देवगणैरायोजनं योजनपर्यन्तं रत्नचयैर्मुक्तादिसमूहैरवदातैः प्रशस्तैः सहस्रैः स्तम्भैर्युतमच्छच्छवि सुशोभं द्वितीयं पुरुहूतस्येन्द्रस्य धामेवारिष्टं सूतिकागृहं निर्ममे ॥ ३३ ॥

पताका—उन देवताओंने एक योजन पर्यन्त सुन्दर रत्नोंसे सुशोभित सहस्रों स्तम्भोंसे युक्त दूसरी इन्द्रपुरीके समान अत्यन्त सुन्दर प्रसूतिका गृहका निर्माण किया ॥ ३३ ॥

रसेषुकालेन्दुयुते प्रतापिश्रीविक्रमाब्दे तपसोऽसितस्य ।
पक्षस्य शोभातिशयेन जुष्टस्तिथिः स षष्ठ्याःपर आस्त यस्मिन् ॥३४॥

वा० बु० प्र० रसेषुकालेन्दुयुते षट्पञ्चाशदधिकत्रयोदशशततमे प्रतापिनः श्रीविक्रमस्याब्दे सँवत्सरे तपसो माघमासस्यासितस्य कृष्णस्य पक्षस्य शोभातिशयेन जुष्टः सहितः षष्ठ्याः परः स तिथिः सप्तमीत्यर्थं आस्त यस्मिन्— ॥ ३४ ॥

पताका—श्रीविक्रम संवत् १३५६ के माघ मास, कृष्णपक्षकी वह परम सुन्दर सप्तमी तिथि थी जिसमें— ॥ ३४ ॥

रवौ धनस्थे च शनौ तुलास्थे चन्द्रे तथा कोणगते बुधे च ।
केन्द्रे गुरौ दैत्यगुरौ च राहौ मेषस्थिते भूमिसुते तथैव ॥ ३५ ॥
कुम्भे च लग्नेऽथ च सिद्धयोगे रवावुदीते किल सप्तदण्डे ।
त्वाष्ट्रे च ऋक्षे जगतामधीशः सुशीलयासावि सुखेन सूनुः ॥३६॥

वा० बु० प्र० रवौ धनस्थे, मन्दे चन्द्रे च तुलास्थे, बुधे कोणगते, गुरौ दैत्यगुरौ च केन्द्रे, राहौ भूमिसुते च मेषस्थिते सति; कुम्भे लग्ने, सिद्धयोगे, त्वाष्ट्रे त्वष्टृदेवत्ये ऋक्षे चित्रानक्षत्र इति यावत्, रवौ सप्तदण्ड उदीते सति च सुशीलया देव्या जगतामधीशस्त्रिलोकीनाथः सूनुरसावि पुत्र उदपादि ॥ ३५ ॥ ॥३६॥

पताका—जब सूर्य धन राशिमें थे, शनि और चन्द्र तुला राशिमें थे, बुध कोणमें थे, गुरु और शुक्र केन्द्रमें थे, राहु और मङ्गल मेषराशिमें थे; तथा जब कुम्भ लग्न, सिद्धयोग, चित्रा नक्षत्र था और सप्त दण्ड सूर्य उगे थे उस समय श्रीसुशीलादेवीने तीनों लोकोंके स्वामी पुत्र—श्रीरामानन्द-स्वामीको अवतार दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अनाहता दुन्दुभयो विनेदुः स्वर्गे तथाभूत्सुमनोऽतिवृष्टिः ।
दिशः प्रसन्नाः सकला बभूवुर्जगत्समग्रं सुखमापदग्र्यम् ॥ ३७ ॥

बा० बु० प्र० स्वर्गेऽनाहता अताडिता दुन्दुभयो विनेदुस्तथा सुमनसां पुष्पाणामतिवृष्टिर्बभूव । सकला दिशः प्रसन्ना निर्मला बभूवुः । समग्रं जगदग्रमुत्कृष्टं सुखमापत्प्राप्नोत् ॥ ३७ ॥

पताका—स्वर्गमें विना बजायेही दुन्दुभि बाजने लगी । पुष्पोंकी पुष्कल वृष्टि होने लगी । सम्पूर्ण दिशाएँ निर्मल हो गईं । समग्र जगत् परम सुखको प्राप्त हुआ ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वावतारं जगदीश्वरस्य तूर्णं समस्ता अमराःसदाराः ।
उपागमन् भूमितलं विधातुं त्रिविष्टपं सर्वसुखैकसारम् ॥ ३८ ॥

बा० बु० प्र० सदाराः सपत्नीकाः समस्ता अमरा देवा जगदीश्वरस्य श्रीरामस्य श्रीरामानन्दरूपेणावतारं ज्ञात्वा भूमितलं पृथ्वीं सर्वसुखैकसारं त्रिविष्टपं स्वर्गं विधातुं कर्तुं तूर्णं शीघ्रमुपागमन्नुपायुः ॥ ३८ ॥

पताका—परब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका श्रीरामानन्दस्वामीके रूपमें अवतार लेना जानकर, पृथिवीको सम्पूर्ण सुखोंका परम निधान स्वर्ग बना देनेके लिये देवगण अपनी २ स्त्रियोंके साथ शीघ्र वहां आये । तात्पर्य वह कि 'यत्रामराः सन्त्यमरावती सा' जहां देवता रहें वही अमरावती है । पृथ्वीमें उनके आनेसे पृथ्वीही स्वर्ग बन गई ॥ ३८ ॥

दिक्कन्यकाः पीनपयोधराढ्याऽप्रफुल्लपङ्केरुहपाणिपादाः ।
दिग्भ्यः समस्ताभ्य उदारशोभास्समाययुस्तत्र विना विलम्बम् ॥३९॥

बा० बु० प्र० पीनाभ्यां पयोधराभ्यामाढ्याः प्रफुल्ले पङ्केरुहे कमले इव पाणी पादौ च यासां तथोदारा महती शोभा यासां ता दिक्कन्यका दिक्कुमार्य्यः समस्ताभ्यश्चतसृभ्यो दिग्भ्यो विलम्बं विना झटितीतियावत्समाययुः ॥ ३९ ॥

पताका—मोटे २ स्तनोंवाली, विकसित कमल समान सुन्दर हस्तपादवाली, तथा परम शोभावाली दिक्कुमारियां बहुत शीघ्र चारों दिशाओंसे वहां आईं ॥ ३९ ॥

नत्वा प्रभुं तज्जननीं तथा च प्रदक्षिणं चापि विधाय देव्यः ।
रत्नप्रभोद्दीपितदीपहस्ता गायन्त्य एवास्थुरधीरचित्ताः ॥ ४० ॥

वा० वु० प्र० देव्यो देवाङ्गनाः प्रभुं श्रीरामानन्दस्वामिनं तज्जननीं सुशीलादेवीं च नत्वा तयोः प्रदक्षिणं चापि विधाय, रत्नानां प्रभाभिः कान्तिभिर्दीपिताः प्रकाशिता दीपा हस्ते यासां ता, अधीरचित्ताः अनुरागाधिक्येन चित्तस्याधीरता ज्ञेया, गायन्त्यो गानं कुर्वत्य एवास्थुः स्थितवत्यः ॥ ४० ॥

पताका—देवताओंकी स्त्रियां आकर श्रीरामानन्दस्वामी तथा उनकी माता श्रीसुशीलादेवीको नमस्कार करके तथा उनकी प्रदक्षिणा करके, रत्नोंकी कान्तिसे देदीप्यमान दीपकोंको हाथमें लेकर प्रेमाधिक्यके कारण अत्यन्त अधीरचित्त होकर गाती हुई वहां खड़ी थीं ॥ ४० ॥

काञ्चीगुणाशोभितसन्नितम्बा मुखेन लज्जीकृतचन्द्रविम्बाः ।
विचित्ररत्नाभरणाञ्चिताङ्ग्यः समाययुश्चाप्सरसः कृशाङ्ग्यः ॥ ४१ ॥

वा० वु० प्र० काञ्चीगुणैरा समन्ताच्छोभितौ सन्तौ नितम्बौ यासां, तथा लज्जीकृतं चन्द्रविम्बं याभिस्तास्तथा विचित्रै रत्नाभरणैरञ्चितानि पूजितान्यङ्गानि यासां तथा कृशाङ्ग्योऽप्सरसः समाययुः ॥ ४१ ॥

पताका—मेखलाओंसे सुशोभित सुन्दर नितम्बोंवाली, चन्द्रमाकोभी लज्जित करनेवाली विचित्र रत्नोंके आभूषणोंसे परिष्कृत अङ्गोंवाली, तथा कृश शरीरवाली अप्सराएँ वहां आईं ॥ ४१ ॥

आसन् समस्ता धृतदीपहस्तास्तथा शिरोन्यस्तसुवर्णकुम्भाः ।
सुरद्रुमोद्भूतसुगन्धिपुष्पमालासमुद्गांश्च तथा दधानाः ॥ ४२ ॥

वा० वु० प्र० समस्तास्ता अप्सरसो धृतदीपहस्ता हस्तेन दीपं दधाना इत्यर्थ शिरसि न्यस्तः सुवर्णकुम्भो याभिस्ताः, शिरसि सौवर्णं कुम्भं दधाना इत्यर्थः, तथा सुराणां द्रुमाः कल्पवृक्षास्तेषां सुगन्धीनां पुष्पाणां मालानां समुद्गान् सम्पुटकांश्च दधाना आसन् ॥ ४२ ॥

पताका—वे सब अप्सराएँ हाथोंमें दीपक ली हुईथीं, मस्तक ऊपर सुवर्णके कलश ली हुईथीं, तथा कल्पवृक्षके सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंके डव्बे ली हुईं थीं ॥ ४२ ॥

विधाय रूपाणि मनोहराणि मनुष्यतुल्यानि सुभान्वितानि ।
गायन्त्य आगुः प्रभुपादपद्मान्यालोकितुं तत्र च तीर्थनद्यः ॥ ४३ ॥

बा० बु० प्र० तीर्थनद्यो गङ्गायमुनाप्रभृतयः शोभनया भया कान्त्यान्वितानि मनुष्यतुल्यानि मनोहराणि रूपाणि विधाय कृत्वा प्रभोः श्रीरामानन्दस्य पादपद्मानि चरणसरोजान्यालोकितुं वीक्षितुं तत्र गायन्त्यो गानं कुर्वन्त्य आगुः ॥ ४३ ॥

पताका–गङ्गा यमुना आदि तीर्थ नदियां अत्यन्त सुन्दरता युक्त मनुष्य समान मनोहर रूप धारण करके भगवान् श्रीरामानन्दस्वामीजीके चरण कमलोंके दर्शनके लिये गाती हुई वहां प्रयागमें उनके भवनमें आईं ।

पौराः समस्ताः श्रुतितत्त्वविज्ञा घनक्रमादिष्वतिचातुरीज्ञाः ।
अधीतिनो व्याकरणे द्विजेन्द्रास्तस्थुश्च वेदध्वनिमारचय्य ॥४४॥

बा० बु० प्र० श्रुतीनां वेदानां तत्त्वविज्ञास्तत्त्ववेत्तारो घनक्रमादिष्वतिचातुरीज्ञा अतिनिपुणा व्याकरणेऽधीतिनोऽधीतव्याकरणशास्त्राः समस्ताः पौराः प्रयागनिवासिनो द्विजेन्द्रा ब्राह्मणा वेदध्वनिमारचय्य कृत्वा वेदमन्त्रानुच्चार्येत्यर्थस्तत्र तस्थुः स्थितवन्तः ॥ ४४ ॥

पताका–वेदोंके तत्त्वको जाननेवाले, घन, क्रम, जटा आदिमें अत्यन्त निपुण, तथा व्याकरण शास्त्रके अध्येता प्रयाग निवासी समस्त ब्राह्मण आकर वेदमन्त्रोंको बोलकर बैठ गये ॥ ४४ ॥

ततःपरं दिक्तनया विधिज्ञा अरिष्टमागत्य विशुद्धचित्ताः ।
तन्नाभिनालं चतुरङ्गुलोर्द्ध्वं शनैः शनैस्ता निचकर्तुरङ्ग ॥ ४५ ॥

बा० बु० प्र० अङ्गेति हर्षे । ततःपरं विशुद्धचित्ताःकुमारीत्वान्निर्मलान्तःकरणा विधिज्ञा विदितविधयस्ता दिक्तनया दिक्कुमार्योऽरिष्टं सूतिकागृहमागत्य चतुरङ्गुला (पा० ५।४।८६) चतस्रोऽङ्गुलयःप्रमाणं यस्य तस्मादूर्द्ध्वं तस्य कुमारश्रीरामानन्दस्य नाभेर्नालं चर्मरज्जुविशेषं शनैःशनैर्निचकर्तुश्चिच्छिदुः ॥ ४५ ॥

पताका–उसके पश्चात् पवित्र हृदयवाली तथा विधिको जाननेवाली उन दिक्कन्यकाओंने सूतिकागृहमें जाकर कुमार श्रीरामानन्दकी नाभिके नालको चार अङ्गुल छोड़कर धीरे धीरे काट दिया ॥ ४५ ॥

कराञ्जलौ ता उपवेश्य नाथं तन्मातरंचापि दिशातनूजाः ।
गृहे परस्मिन् सुसुखं निवाते शनैःशनैर्निन्युरथो अमुष्मात् ॥ ४६ ॥

वा० वु० प्र० अथो (पा० १।१।१५) अनन्तरं ता दिशातनूजा दिक्कन्यका नाथं श्रीरामानन्दं तन्मातरं सुशीलादेवीं चापि कराञ्जलावुपवेश्यामुष्माद्गृहात्परस्मिन्निवाते वायुप्रवेशरहिते गृहे सुसुखं यथा तथा शनैःशनैर्निन्युः प्रापयामासुः ॥ ४६ ॥

पताका—तदनन्तर वह दिक्कन्यकाएँ श्रीरामानन्दस्वामीजी तथा उनकी माता सुशीलादेवीको हाथकी अञ्जलिपर बैठाकर उस घरसे दूसरे पवनप्रवाह शून्य गृहमें सुखपूर्वक धीरे २ ले गईं ॥ ४६ ॥

सिंहासने तत्र निवेश्य पूर्वमुभौ कुमार्य्यो नवपद्महस्तैः ।
तैलेन पक्केन सुगन्धिना ता आञ्जन्छनैःसंभृतसंभ्रमोदाः ॥ ४७ ॥

वा० वु० प्र० तत्र गृहे कुमार्यो नवैः पद्मैरिव हस्तैः पूर्वमुभौ मातापुत्रौ सिंहासने निवेश्य स्थापयित्वा संभृतः सम्प्रमोद आनन्दो याभिरेवंभूतास्ताः सुगन्धिना सुगन्धवता पक्केन तैलेन शनैर्लघुहस्तैराञ्जन् ॥ ४७ ॥

पताका—उस नवीन गृहमें कुमारिकाएँ अपने नवीन कमल समान सुकुमार हस्तोंसे दोनों—माता और पुत्रको सिंहासनपर बैठकर परम प्रसन्न होकर सुगन्धित पके हुये तेलसे धीरे २ मालिस करने लगीं ॥ ४७ ॥

दिव्येन सद्वर्तनवस्तुना ता उद्वर्तयाञ्चक्रुरितः परं च ।
ततः परं गन्धविमिश्रिताभिरद्भिःसयत्नं स्नपयाम्बभूवुः ॥ ४८ ॥

वा० वु० प्र० इतः परं दिव्येन दिवि भवेन सद्वर्तनवस्तुना देहमर्दनद्रव्य-विशेषेण ताः कन्यका उद्वर्तयाञ्चक्रुः । ततः परं गन्धैरामोदैर्विमिश्रिताभिरद्भिर्जलैः सयत्नं यत्नसहितं स्नपयाम्बभूवुः ॥ ४८ ॥

पताका—इसके पश्चात् देवलोकके सुन्दर उबटनसे कन्याओंने बालक के शरीरमें उबटन लगाया । तदनन्तर सुगन्धित जलसे यत्नपूर्वक स्नान कराया ॥ ४८ ॥

सच्छीलचारित्र्यनमस्यवर्या महीसुरा वेदविदां वरिष्ठाः ।
नानौषधामिश्रितहोमयोग्यद्रव्यैरहौषुः श्रुतिमन्त्रजातैः ॥ ४९ ॥

बा० बु० प्र० सच्छीलेन चारित्र्येण सदाचारेण च नमस्यवर्य्या नमस्कार-हेंषु श्रेष्ठा वेदविदां वरिष्ठा उत्कृष्टा महीसुरा ब्राह्मणाः श्रुतिमन्त्राणां वेदमन्त्राणां. जातैः समूहैर्नानौषधैरा सम्यङ्मिश्रितैर्होमयोग्यद्रव्यैरहौषुर्होमं कृतवन्तः ॥ ४९ ॥

पताका—सुन्दर शील और सुन्दर चारित्र्यसे नमस्कार करने योग्य-व्यक्तियोंमेंसे श्रेष्ठ तथा वेदज्ञोंमेंसे परमोत्कृष्ट ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके नाना प्रकारकी ओषधियोंसे मिश्रित होमके योग्य पदार्थोंसे होम किया ॥ ४९ ॥

गते समाप्तिं सविधि प्रशस्ते तज्जातकर्मण्यथ पुण्यसद्मा ।
ददौ द्विजेभ्यःकिल भूरि वित्तं तथानुजीविष्वपि तद्व्यतारीत् ॥५०॥

बा० बु० प्र० अथ प्रशस्ते तस्य श्रीरामानन्दस्य जातकर्मणि तदाख्य-संस्कारविशेषे सविधि विधिपूर्वकं समाप्तिं गते पुण्यसद्मा श्रीपुण्यसदनः द्विजेभ्यो भूरि वित्तं ददौ । तथानुजीविषु पोष्यवर्गेष्वपि तद्भूरि वित्तं व्यतारीद्वितीर्णवान् ॥५०॥

पताका—तदनन्तर विधिपूर्वक सुन्दर जातकर्म संस्कार समाप्त होनेके पश्चात् श्रीपुण्यसदनशर्माने ब्राह्मणोंको पुष्कल दान दिया तथा सेवक आदिकोभी पूर्ण द्रव्य बांटा ॥ ५० ॥

अवाकिरद्दीनजनेषु वित्तमनन्तपारं स उदारचेताः ।
प्रायेण लोके प्रथमं मतं तच्चिह्नं प्रशस्तं हि कृतार्थतायाः ॥५१॥

बा० बु० प्र० उदारं चेतो यस्य तथाभूतः स श्रीपुण्यसदनो दीनजनेष्वनन्त-पारमपरिमेयमसंख्येयं वा वित्तं धनमवाकिरत् । हि यतः प्रायेण लोके तत्परमोदा-रतया दीनेषु धनवितरणं कृतार्थतायाः कृतकृत्यतायाः प्रशस्तमतएव प्रथमं चिह्नं मतमस्ति ॥ ५१ ॥

पताका—उदारहृदयवाले श्रीपुण्यसदनशर्माने दीन जनोंको अनन्त सम्पत्ति बांटी । क्योंकि प्रायःलोकमें दीनोंको उदारतासे धन लुटाना कृत-कृत्यताका मुख्य अतएव प्रथम चिह्न गिना जाता है ॥ ५१ ॥

पुनःसमानीय विभुं सुशीलां चारिष्ट आशातनयास्तथैव ।
गायन्त्य एवास्थुरथो समन्तात्सार्द्धं सुरीभिश्च मुदा नरीभिः ॥५२॥

व्या० सु० प्र० आशातनया दिक्कुमारिका विभुं श्रीरामानन्दं सुशीलदेवींच पुनस्तथैवारिष्टे सूतिकागृहे समानीय समन्तात्सुरीभिर्देवाङ्गनाभिर्नरीभिर्नराङ्गनाभिःसार्द्धं गायन्त्य एवास्थुः स्थितवत्यः ॥ ५२ ॥

पताका–दिक्कन्यकाएँ श्रीरामानन्दस्वामी तथा सुशीलादेवीको जैसे ले गईथीं उसी प्रकारसे पुनः सूतिकागृहमें ले आईं। और देवताओंकी स्त्रियों तथा मनुष्योंकी स्त्रियोंके साथ मिलकर गाती हुईं वहां बैठ गईं।५२॥

ततःपुरस्तात्परिभुग्नजानुमूर्द्धान आगत्य सुराःसमस्ताः।
स्तुत्यं हि सन्तुष्टुवुरात्मयोनिं संन्यस्ततन्मस्तकपञ्चशाखाः॥५३॥

व्या० सु० प्र० ततः सूतिकागृहागमनानन्तरं परिभुग्ने जानुनी मूर्द्धा च येषां तथाभूतास्तथा संन्यस्तौ तन्मस्तके पञ्चशाखौ पाणी यैस्ते समस्ताःसुराः पुरस्तादागत्य स्तुत्यं स्तुतियोग्यमात्मयोनिं श्रीरामानन्दं सन्तुष्टुवुः स्तुतवन्तः॥५३॥

पताका–जब कुमार श्रीरामानन्द तथा सुशीलादेवी पुनः सूतिकागृहमें आ गईं तब हाथ जोड़कर, घुटना टेककर, मस्तक झुकाकर समस्त देवता आकर स्वयम्भू तथा स्तुतिके परम पात्र, भगवान् श्रीरामानन्दजीकी स्तुति करने लगे॥ ५३ ॥

अथ विनयमहिम्ना लघूभवन्तः प्रभुपदपद्मपरायणाः समस्ताः।
सजलनयनयुग्माः प्रणम्य पुण्यमनिमिषनयना गताः स्वलोकम्॥५४॥

व्या० सु० प्र० अथ स्तुत्यनन्तरं विनयस्य महिम्ना लघूभवन्तः प्रणामादिकरणेन मस्तकं नमयन्तः प्रभोः श्रीरामानन्दस्य पदपद्मपरायणाः सजलं नयनयुग्मं येषां ते समस्ता अनिमिषनयना देवाः पुण्यं श्रीपुण्यसदनं प्रणम्य स्वलोकं दिवं गताः॥ चन्द्रिकाच्छन्दः॥ ५४ ॥

पताका–स्तुति करनेके पश्चात् अत्यन्त विनयसे प्रणामादिके द्वारा मस्तकको नमाते हुये, भगवच्छ्रीरामानन्दजीके चरण-कमल-परायण, भगवद्विरहसे आंखोंमें आंसू भरकर श्रीपुण्यसदनशर्माको प्रणाम करके सब देवता देवलोकको चले गये॥ ५४ ॥

संयातेष्वथ सकलेषु पुण्यसद्मा पुत्राप्तिजसुखतो विलीनदुःखः ।
तत्रातिष्ठिपदनघं स आप्तवर्गं रक्षायै निजतनयस्य साम्बकस्य ॥५५॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये तृतीयः सर्गः

बा० बु० प्र० अथ सकलेषु संयातेषु प्रयातेषु पुत्राप्तिजसुखतः पुत्रस्याप्त्या प्राप्त्या जातेन सुखेन विलीनदुःखो विनष्टचिन्तः स पुण्यसद्मा श्रीपुण्यसदनः साम्बकस्याम्बया श्रीसुशीलया सहितस्य निजतनयस्य श्रीरामानन्दस्य रक्षायै तत्र सूतिकागृहेऽनघं निर्मलमाप्तवर्गमतिष्ठिपत् स्थापयामास ॥ प्रहर्षिणीच्छन्दः ॥ ५५ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यां तृतीयः सर्गः

पताका-सब देवतादिकोंके चले जानेके पश्चात् पुत्रोत्सवके आनन्दसे जिनका दुःख नष्ट हो गया था ऐसे श्रीपुण्यसदनशर्माने श्रीसुशीलादेवी तथा कुमारश्रीरामानन्दकी रक्षाके लिये वहां पवित्र आप्तवर्गको नियत कर दिया ॥ ५५ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामा-
नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां तृतीयः सर्गः ।

अथ चतुर्थः सर्गः

आगताथ गुणरूपशालिनी तत्र सा भगवती सरस्वती ।
यत्कृपालववशाज्जगज्जना भुञ्जतेऽमरपदं गता इतः ॥ १ ॥

बा० बु० प्र० अथ सर्वेषां गमनानन्तरं गुणै रूपैश्च शालते शोभते इति गुणरूपशालिनी सा भगवती सरस्वती तत्रागता यस्याः कृपाया लववशाज्जगतो जना मानवा इतोऽस्माद्भूलोकाद्गताः सन्तोऽमरपदं देवपदं भुञ्जतेऽनुभवन्ति ॥रथोद्धताछन्दः॥

पताका-सब लोगोंके चले जानेके पश्चात् जिनकी कृपाके लेशमात्रसे संसारके मनुष्य इस लोकसे जाकर अमरपदका भोग करते हैं वह गुण और रूपसे शोभित भगवती सरस्वतीजी वहां आईं ॥ १ ॥

वक्तुमारभत दीर्घकालतोऽसह्यदुःखमपि निर्गतप्रभा ।
येन केन विधिना सहन्त्यहो कस्य वा चलति दैवसन्निधौ ॥२॥

वा० बु० प्र० दीर्घकालतश्चिरेणासह्यदुःखमपि येन केन विधिनोपायेन सहन्ती, अतएव निर्गतप्रभा वीतकान्तिर्वक्तुमारभत । अहो इतिखेदे । दैवसन्निधौ कस्य चलति? न कस्यापीतिभावः ॥ २ ॥

पताका—अनन्त समयसे असह्य दुःखकोभी जिस किसी प्रकारसे सहन करती हुई अतएव शोभाहीन वह सरस्वती देवी बोलने लगीं । खेदका विषय है कि दैवके आगे किसीकाभी नहीं चलता है ॥ २ ॥

नाथ दैववशतः समागता भूतलं च किल देवगीरहम् ।
अन्वभूवमिह यां च यातनां तां न वक्तुमलमुत्सहेऽधुना ॥ ३ ॥

वा० बु० प्र० हे नाथ ! दैववशतो भाग्यवशाद्भूतलं समागताऽहं देवगीर्यां यातनामन्वभूवं तामलं साकल्येन वक्तुमधुना नोत्सहे ॥ ३ ॥

पताका—हे नाथ ! दैववश पृथ्वी पर आकर मैंने जिस यातनाका अनुभव किया है उसे पूर्ण रूपसे इस समय कहनेमें मैं असमर्थ हूं ॥३॥

व्यास देव इह नास्ति साम्प्रतं गोतमोऽपि कपिलोऽथ जैमिनिः ।
नो कणाद इह विद्यतेऽधुना वासुदेव मम हृद्यसेवकः ॥ ४ ॥

वा० बु० प्र० हे वासुदेव ! सर्वसत्वाधार ! इह भारते साम्प्रतमधुना व्यासदेवो गौतमोऽथ च जैमिनिरपि नास्ति । अधुना मम हृद्यसेवकः प्रियकिङ्करः कणादोऽपि न विद्यते ॥ ४ ॥

पताका—हे सर्व वस्तुओंके स्थानप्रद सर्वाधार प्रभो ! इस समय इस भारतमें न तो व्यास हैं न गौतम, न जैमिनि हैं न कणाद ॥ ४ ॥

पाणिनिर्न न ऋषिः पतञ्जलिर्नैव तेऽपि वसुधासुराःप्रभो ।
यैश्च तथ्यमनुवासरं पुरा गीयते स्म मम नाम सर्वथा ॥ ५ ॥

वा० बु० प्र० तथा, न पाणिनिरस्ति न ऋषिः (पा० ६।१।१२८) पतञ्जलिः । हे प्रभो ! ते वसुधासुरा ब्राह्मणा अपि न सन्ति यैस्तथ्यं वस्तुतोऽनुवासरं प्रतिदिनं पुरा मम नाम गीयते स्म ॥ ५ ॥

पताका—तथा न पाणिनि हैं और न पतञ्जलि हैं। हे प्रभो! वे ब्राह्मणभी नहीं हैं जो वस्तुतः प्रथम प्रतिदिन मेरा नाम स्मरण किया करते थे ॥ ५ ॥

ब्रह्मवंशरसनैव मे प्रभो स्थानमत्र परिनिष्ठितं मतम्।
साऽऽधुना च सततं निषेवते वैरिणीं मम तुरुष्कभारतीम् ॥ ६ ॥

बा० बु० प्र० हे प्रभो! ब्रह्मवंशस्य ब्राह्मणवंशस्य रसना जिह्वैव भूतले मम परिनिष्ठितं निश्चितं स्थानं मतम्। सा च वाणी रसनाऽऽधुना सततं मम वैरिणीं तुरुष्कभारतीं निषेवते ॥ ६ ॥

पताका—हे प्रभो! ब्राह्मणवंशकी जिह्वाही इस पृथ्वीपर मेरा सुनिश्चित स्थान है। सो वह इस समय मेरी वैरिणी तुर्कभाषाका निरन्तर सेवन कर रही है ॥ ६ ॥

क्षत्रिया अपि च वेदनां विभो नो विदन्ति मम बोधिता मुहुः।
प्रातिकूल्यमुपयाति वै विधौ नैव कोऽपि दधतेऽनुकूलताम् ॥ ७ ॥

बा० बु० प्र० हे विभो! मुहुः पुनः पुनर्बोधिताः क्षत्रिया अपि मम वेदनां पीडां नो विदन्ति न जानन्ति। वै इति निश्चये। विधौ विधातरि प्रातिकूल्यं वैपरीत्यमुपयाति सति कोऽप्यनुकूलतां न दधते। दध धारणे ॥ ७ ॥

पताका—हे नाथ! पुनः २ कहने परभी क्षत्रिय लोग मेरी पीडाको नहीं जानते हैं। सत्य है, विधाताके प्रतिकूल होने पर कोईभी अनुकूल व्यवहार नहीं करता ॥ ७ ॥

ये विशः खलु विशन्ति तेऽनिशं केवलं च धनसङ्ग्रहे प्रभो!
हन्त भाग्यविपरीतता नु मां पादघातमवहन्ति निर्दया ॥ ८ ॥

बा० बु० प्र० हे प्रभो! ये विशो वैश्याः सन्ति तेऽनिशं सर्वदा धनसङ्ग्रहे खलु विशन्ति न मया तेषामस्ति प्रयोजनमिति भावः। हन्तेति खेदे। निर्दया भाग्यविपरीतता विधिप्रातिकूल्यं मां पादघातमवहन्ति (पा० ३।४।३७) पादेनावहन्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥

पताका—हे प्रभो! जो वैश्य हैं वह तो सर्वदा धनके संग्रहमेंही लगे

रहते हैं। अर्थात् उन्हेंभी मुझसे कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रभो बहुत दुःख है; निष्करुणा भाग्यकी विपरीतता मेरे ऊपर पाद प्रहार कर रही है ॥८॥

किं च ये त्वनधिकारिणो मता मद्ग्रहे शरण शूद्रसंज्ञिताः।
तेऽधुना च बहुलाग्रहेण सम्पीडयन्ति किल मामिकां तनुम् ॥ ९ ॥

वा० बु० प्र० किं च, हे शरण! ये तु मद्ग्रहे मद्ग्रहणविषये शूद्रसंज्ञिता अनधिकारिणो मतास्तेऽधुना बहुलाग्रहेण महाग्रहेण मामिकां तनुं देहं सम्पीडयन्ति। अनधिकारिणां स्पर्शोऽपि मम दुःखावह इति भावः ॥ ९ ॥

पताका—और हे शरण देनेवाले नाथ! मेरे ग्रहणमें अनधिकारी जो शूद्र हैं वह इस समय बड़े आग्रहके साथ मेरे शरीरको पीडा पहुंचा रहे हैं। अर्थात् वह मेरा ग्रहण करते हैं जिससे मुझे औरभी अधिक दुःख होता है ॥ ९ ॥

यानि कुत्र करवाणि किं प्रभो रौमि सौम्य पुरतस्तवाधुना।
उद्धराशु करुणैकभाजनं मामसह्यतमदुःखविह्वलाम् ॥ १० ॥

वा० बु० प्र० हे प्रभो! कुत्र यानि गच्छानि? किं करवाणि? हे सौम्य! अधुना तव पुरतोऽग्रे रौमि रोदिमि। असह्यतमदुःखैर्विह्वलां व्याकुलां करुणाया एकं प्रधानं भाजनं मामाशु शीघ्रमुद्धर ॥ १० ॥

पताका—हे प्रभो! कहां जाऊं? क्या करूं? हे सौम्य! अब तो आपकेही आगे रोती हूं। असह्य दुःखोंसे व्याकुल, दयाके प्रधान पात्र मेरा शीघ्र उद्धार करिये ॥ १० ॥

यावदेव विकला सरस्वतीत्यात्मदुःखमभिधाय निर्गता।
तावदाययुरनन्तसन्निधौ वन्दिताः श्रुतय आत्मसंयमैः ॥ ११ ॥

वा० बु० प्र० विकला व्याकुला सरस्वती इत्युक्तप्रकारेणात्मनः स्वस्या दुःखमभिधाय यावदेव यदेव निर्गता तावदेव तदैवानन्तस्य श्रीरामानन्दस्य सन्निधावात्मसंयमैर्जितन्द्रियैर्वन्दिता आदृताः श्रुतय आययुरागताः ॥ ११ ॥

पताका—व्याकुल सरस्वती उक्त प्रकारसे अपना दुःख निवेदन करके

पताका—हे नाथ स्वकल्याणके अभिलाषी जनोंको जिस प्रकारसे जब तक संसार है तब तक आप वन्दनीय हैं, वैसेही आपके जन्मसे पवित्रित यह आजका शुभ दिनभी आसृष्टि सबका वन्दनीय है ॥ १४ ॥

देवदेव करुणानिधे विभो दोषलेशपरिवर्जित प्रभो !
अस्मदर्थकृतगर्भसंस्थिते भक्तवत्सल हरे नमोऽस्तुते ॥ १५ ॥

वा० बु० प्र० हे देवदेव ! हे करुणानिधे ! हे विभो व्यापक ! हे दोषलेशपरिवर्जित ! हे प्रभो समर्थ ! हे अस्मदर्थं कृता गर्भे संस्थितिर्येन तथाभूत ! हे भक्तवत्सल ! हे हरे सर्वपापहारिँस्ते नमोऽस्तु ॥ १५ ॥

पताका—हे देवोंके भी देव ! हे कृपासागर ! हे सर्व व्यापक ! हे नितान्त निर्दोष ! हे समर्थ ! हे हमारे लिये गर्भमें निवास करनेवाले ! हे भक्तवत्सल ! हे सर्व पापोंके हरनेवाले आपको नमस्कार हो ॥ १५ ॥

नास्ति ते ह्यविदितं प्रभो किमप्येवमस्ति तव नाप्यशक्तिता ।
वेत्सि सर्वमयि सर्वदेहिनां कर्मतुल्यफलसंविभाजक ॥ १६ ॥

वा० बु० प्र० अयि सर्वदेहिनां सर्वप्राणिनां कर्मतुल्यफलविभाजक ! कर्मानुगुणफलप्रदातः ! प्रभो ! ते किमप्यविदितं नास्ति । एवं तवाशक्तिताऽऽक्षमतापि नास्ति । त्वं सर्वं वेत्सि ॥ १६ ॥

पताका—हे सर्व प्राणियोंको कर्मानुकूल फलदेनेवाले प्रभो ! आपसे कुछभी छिपा नहीं है। आपमें असामर्थ्य भी नहीं है। आप सब जानते हैं।

किं वदाम तत एव सर्वग त्वत्पुरो निजकथां व्यथाप्रदाम् ।
दुष्टसङ्गजनिताधिसंस्मृतौ तत्स्मृतिर्भवति तच्च दुःखदम् ॥ १७ ॥

वा० बु० प्र० हे सर्वग ! सर्वव्यापिन् ! तत एव तस्मादेव हेतोस्त्वत्पुरो व्यथाप्रदां निजकथां किं वदाम ? दुष्टसङ्गजनिताधीनां संस्मृतौ सत्यां तत्स्मृतिस्तस्य दुष्टस्य स्मरणं भवति तच्च दुःखदं भवति । प्रधानपरामर्शकेन तदितिसर्वनाम्नाऽऽप्रधानस्यापि दुष्टस्य बुद्ध्या प्रविभागात्परामर्शः । राजपुरुष इत्यत्र कस्य राज्ञ इतिवत् ।

पताका—हे सर्व व्यापिन् ! अतः आपके सामने हम अत्यन्त दुःख-

प्रद अपनी कथा क्या कहूँ। दुष्टोंके सङ्गसे जायमान दुःखके स्मरणमें दुष्टोंकाभी स्मरण हो जाता है और वह दुःखद है ॥ १७ ॥

ब्राह्मणास्तव मुखाद्विनिस्सृता रक्षणाय किल नः सदोद्यताः।
हन्त दुर्यवनशासकेन ते घातिताश्च यवनीकृतास्तथा ॥ १८ ॥

बा० बु० प्र० तव मुखाद्विनिस्सृता एतेन ब्राह्मणानामतिशुचित्वमुच्यते। ब्राह्मणा नोऽस्माकं रक्षणाय सदोद्यता आसन्निति शेषः। हन्तेति खेदे। दुर्यवनशासकेन दुष्टयवनराजेन ते सर्वे घातितास्तथा यवनीकृताः ॥ १८ ॥

पताका—हे प्रभो आपके मुखसे उत्पन्न हुये अतएव पवित्र ब्राह्मण हमारी रक्षाके लिये सर्वदा उद्यत थे परन्तु दुष्ट यवन बादशाहने सबको मार डाला तथा यवन बना लिया ॥ १८ ॥

क्षत्रियाश्च निजराज्यरक्षणे हिन्दुधर्मपरिरक्षणे रताः।
यावनीभिरधिवीरशालिनीभिश्चमूभिरधिजन्यमाहताः ॥ १९ ॥

बा बु० प्र० निजराज्यरक्षणे हिन्दुधर्मपरिरक्षणे च रता॰ क्षत्रिया अधिवीरैरुत्कृष्टवीरैः शालन्ते शोभन्त इत्यधिवीरशालिनीभिर्यावनीभिस्तौरुष्कीभिश्चमूभिः सेनाभिरधिजन्यं युद्ध आहताः ॥ १९ ॥

पताका—अपने राज्यके रक्षण करनेमें तथा हिन्दुधर्मके रक्षण करने में लगे हुये क्षत्रियोंको बड़े २ वीरोंवाली मुसलमानी सेनाने युद्धमें मार डाला ॥ १९ ॥

केवलं न पुरुषाः पतङ्गतां भेजिरे हि समरानलेऽखिलाः।
किन्तु हन्त ललना॰ पतिव्रता॰प्राप्नुवन्नपि च भस्मशेषताम् ॥२०॥

बा० बु० प्र० समर एवानलोऽग्निस्तस्मिन्न केवलं पुरुषा एव पतङ्गतां भेजिरे; किन्तु पतिव्रता ललना अपि भस्मशेषतां प्राप्नुवन् ॥ २० ॥

पताका—समर रूपी अग्निमें केवल पुरुषही पतङ्गके समान भस्म हो गये हों सो नहीं; किन्तु पतिव्रता महिलाएँ भी भस्म होकर राखकी ढेर हो गईं ॥ २० ॥

नाममात्रपरिशेषिता वयं नष्टपूर्वविचिताततर्द्धयः ।
भाग्यदुर्विलसितैर्धिताधयो यातनामिह सहामहे प्रभो ॥ २१ ॥

बा० बु० प्र० हे प्रभो! नष्टाः पूर्वं विचिताः सञ्चिता आतता विस्तृता ऋद्धयो यासां तास्तथा भाग्यस्य दुर्विलसितैरेधिता वृद्धा आधयो यासां ता नाममात्रेण परिशेषिता वयमिह यातनां सहामहे ॥ २१ ॥

पताका—हे प्रभो! हमारी पूर्वकी सञ्चित महती ऋद्धियां नष्ट हो गईं, भाग्यके दुर्विलाससे दुःख बढ गये, नाम मात्रकी बची हुईं हम लोग यहां नरककी पीडा सह रही हैं ॥ २१ ॥

कं प्रयाम शरणं त्वया विना नाथ सन्दिश च किं प्रकुर्महे ।
पाहि पाहि परमेश्वराधुना ता वदन्त्य इति मूर्छनामगुः ॥ २२ ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ! त्वया विना कं शरणं प्रयाम? सन्दिशाज्ञापय च किं प्रकुर्महे? हे परमेश्वर! अधुना पाहि पाहि न इति शेषः, इति वदन्त्यस्ता मूर्छनां मूर्छामगुः प्रापुः ॥ २२ ॥

पताका—हे नाथ आपके अतिरिक्त हम लोग किसकी शरणमें जावें? हम लोग क्या करें सो आज्ञा कीजिये। हे परमेश्वर! इस समय हम लोगोंको बचाइये। इस प्रकारसे बोलतीं हुईं वह श्रुतियां मूर्छित हो गईं।

उत्थिता पुनरवाप्तचेतना दर्शिताखिलमहेद्धवेदनाः ।
नाथ तत्कुरु यथोचितं शनैरित्युदीर्य निरयुर्नताननाः ॥ २३ ॥

बा० बु० प्र० अवाप्तचेतनाः प्राप्तचैतन्या दर्शिता अखिला महत्य इद्धाः प्रदीप्ता वेदना याभिस्ता उत्थिता हे नाथ यथोचितं तत्कुर्विति शनैरुदीर्योक्त्वा नताननाः सत्यो निरयुर्निरगच्छन् ॥ २३ ॥

पताका—जब मूर्छा गई और चेतना प्राप्त हुई तब उठकर अपनी महती और प्रदीप्त अपनी सब वेदनाओंका वर्णन किया। पश्चात् हे नाथ! 'जैसा उचित हो वैसा करिये' ऐसा धीरेसे कहकर मुख नीचेकी हुईं वह सब श्रुतियां चली गईं ॥ २३ ॥

निर्गतासु विकलासु तासु वै तत्क्षणं श्रुतिसतीषु विह्वलाः ।
गाव आर्तवदना विलोकितास्तेन सर्वजगदेकबन्धुना ॥ २४ ॥

वा० बु० प्र० विकलासु तासु श्रुतिसतीषु निर्गतासु तत्क्षणमविलम्बेन सर्वजगतामेकबन्धुना तेन परमेश्वरेण श्रीरामानन्देन विह्वला आर्तवदना गावो विलोकिताः ॥ २४ ॥

पताका—व्याकुल उन पवित्र श्रुतियोंके चले जाने पर निखिल-जगद्बन्धु श्रीरामानन्दने विह्वल दुःखित-वदनवाली गौओंको देखा ॥ २४ ॥

एत्य तत्र सुकरा महेशि ताः सादरं च विदधुर्नमस्क्रियाम् ।
क्षीणकान्तिवदनास्ततः परं निगलत्सलिलचक्षुषोऽवदन् ॥ २५ ॥

वा० बु० प्र० क्षीणा कान्तिर्येषां तानि वदनानि यासांतं भूताः सुकराः सुशीलास्ता गावस्तत्रैत्य ईष्टे इति ईट् महांश्चासावीट् च महेट् तस्मिन्महेशि परमेश्वरे सादरं नमस्क्रियां विदधुः । ततः परं निगलत्सलिलचक्षुषो स्रवदश्रुनयनाः, अवदन् ॥ २५ ॥

पताका—कान्ति शून्य मुखवाली उन सीधी गौओंने वहां आकर आदर सहित परमेश्वर श्रीरामानन्दको प्रणाम किया। पश्चात् सजलनयन होकर बोलने लगीं ॥ २५ ॥

दीनरक्षणविधौ सदोद्यतौ नाथ दुष्टदलनक्षमौ तव ।
अप्रधृष्यबलशालिनावुभौ सर्वमोक्षद भुजौ भजामहे ॥ २६ ॥

वा० बु० प्र० हे नाथ ! हे सर्वमोक्षद ! दीनानां रक्षणविधौ सदोद्यतौ बद्धपरिकरौ दुष्टानां दलने क्षमा अप्रधृष्येण बलेन शोभमानौ तवोभौ भुजौ भजामहे ।

पताका—हे नाथ ! हे सबको दुःखोंसे छुड़ानेवाले ! दीनोंकी रक्षाके-लिये सर्वदा उद्यत, दुष्टोंके दलन करनेमें समर्थ, अधर्षणीय बलसे शोभायमान आपकी दोनों भुजाओंको हम भजती हैं ॥ २६ ॥

दुर्दशा भवति याधुनेहनो नाथ पश्य करुणादृशा च ताम् ।
त्वद्विना न जगदीश कोऽपि नो रक्षणं खलु गवां विधास्यति ॥२७॥

वा० वु० प्र० हे नाथ! अधुना इह भारते नोऽस्माकं या दुर्दशा भवति तां करुणादृशा कृपादृष्ट्या पश्य । हे जगदीश! त्वद्विना नोऽस्माकं गवां कोऽपि रक्षणं न विधास्यति ॥ २७ ॥

पताका—हे नाथ यहां पर आजकल हम लोगोंकी जो दुर्दशा हो रही है उसका कृपादृष्टिसे अवलोकन कीजिये। हे जगदीश! आपके बिना हम गौओंकी कोईभी रक्षा नहीं करेगा॥ २७ ॥

वन्यमेव तृणमत्र भुज्यते पल्वलस्थसलिलं च पीयते ।
याच्यते किमपि नैव कर्हिचिद्दीयते च पयसां चयः सदा ॥२८॥

वा० वु० प्र० अस्माभिर्वन्यं वने भवं तृणमेवात्र भुज्यते । पल्वलस्थम-ल्पसरस्थं सलिलं च पीयते । कर्हिचित्किमपि नैव याच्यते प्राथ्यते । पयसां दुग्धानां चयश्च दीयते ॥ २८ ॥

पताका—हम लोग जङ्गलकी घास खाती हैं। तालाबका जल पीती हैं। कभी कुछ मांगती नहीं हैं और पुष्कल दूध देती हैं॥ २८ ॥

घ्नन्ति नः कुलमथापि घातुका हस्तपादमभिवध्य निर्दयम् ।
क्रन्दनं च तदरण्यरोदनं रुध्यते च नहि कण्ठकर्तनम् ॥ २९ ॥

वा० वु० प्र० अथाप्येतावदुपकारसम्पादनेऽपि घातुका हिंसका हस्तपादम-भिवध्य बद्ध्वा नोऽस्माकं कुलं निर्दयं घ्नन्ति हिंसन्ति। अस्माभिः कृतं तत्क्रन्दनं चारण्यरोदनं निष्फलं भवति । कण्ठकर्तनं च नहि रुध्यते ॥ २९ ॥

पताका—हमारे इतना उपकार करनेपरभी हिंसक लोग हाथ और पैर बांध कर निर्दयताके साथ हमारे वंशकी हिंसाकर रहे हैं। हमारा दीनतापूर्ण रोदन अरण्य रोदनके समान व्यर्थ हो जाता है और हमारा गला कटना बन्द नहीं होता है॥ २९ ॥

नः सदैव किल दुग्धपायिनो हिन्दवोऽपि न भवन्ति रक्षकाः ।
स्वार्थसाधनपरा हि ते परं वन्धुता हि समये परीक्ष्यते ॥ ३० ॥

वा० वु० प्र० सदैव नोऽस्माकं दुग्धपायिनो दुग्धपातारो हिन्दवोऽपि-रक्षका रक्षणकर्तारो न भवन्ति । ते सर्वे परं केवलं स्वार्थसाधनपरा हि एव । हि

यतो बन्धुता बन्धुत्वं समयेऽवसरे परीक्ष्यते ॥ ३० ॥

पताका—सदा हमारे दूध पीने वाले हिन्दुभी हमारी रक्षा नहीं करते हैं। वह सब केवल स्वार्थी हैं। क्यों कि बन्धुकी परीक्षा समयपर ही होती है। यदि वह सच्चे बन्धु होते तो इस विपत्तिके समयमें मेरी रक्षा करते।

दीनमेव किल गोकुलं च ते दुष्टमर्दि भुबलं प्रतीक्षते।
लोकतो हि गमिता निराशतामाश्रयन्ति परदैवतं जनाः ॥ ३१ ॥

बा० बु० प्र० किलेति निश्चये। दीनं गोकुलं ते तवैव दुष्टमर्दिनं बलं प्रतीक्षते। हि यतो लोकतो निराशतां गमिताः प्रापिता जनाः परदैवतं त्वामाश्रयन्ति॥

पताका—हम दीन गौएँ दुष्टोंके नाश करनेवाले आपकेही बलकी प्रतीक्षा कर रही हैं। क्यों कि संसारका नियम है कि जब लोग संसार और संसारिक बलसे निराश हो जाते हैं तभी प्रभुकी शरणमें आते हैं॥

शृण्वतो हृदयवेधनक्षमां वेदनां श्रुतिसरस्वतीगवाम्।
पुञ्जमेकमुदियाय तेजसो व्यापदाशु च भवे हरेर्मुखात् ॥ ३२ ॥

बा० बु० प्र० श्रुतेः सरस्वत्या गवां च हृदयवेधने क्षमां समर्थां वेदनां शृण्वतो हरेः श्रीरामानन्दस्य मुखादेकं तेजःपुञ्जमुदियायोदयं प्राप्तम्। तच्चाशु भवे संसारे व्यापद्व्याप्तम् ॥ ३२ ॥

पताका—श्रुति, सरस्वती और गौओंकी हृदयभेदिनी वेदनाको सुनतेही भगवान्—श्रीरामानन्दके मुखसे एक तेज निकला और वह संसारभरमें व्याप्त हो गया ॥ ३२ ॥

तच्च सर्वजनकौतुकं दधत्सूर्यकोटितुलितप्रभं महः।
सूचयत्तदवतारमग्रिमं वैष्णवं च परितो जगद्बभौ ॥ ३३ ॥

बा० बु० प्र० सर्वजनानां कौतुकं दधत्सूर्यकोटिभिस्तुलिता समिता प्रभा यस्य तन्महस्तेजो जगत्परितो "अभितः परितः" इति द्वितीया। अग्रिममनुत्तमं वैष्णवं विष्णुसम्बन्धिनं तदवतारं सचासाववतारश्च तं सूचयज्ज्ञापयद्बभौ ॥ ३३ ॥

पताका—सर्व जनोंको आश्चर्यित कराता हुआ करोड़ों सूर्योंकी कान्तिके समान वह तेज, संसारमें चारों ओर इस श्रेष्ठ विष्णु अवतारकी सूचना देता हुआ शोभित होने लगा ॥ ३३ ॥

रायि वृद्धिरतुलाऽभवन्मयाऽऽनर्थ कीर्तिरपि पुण्यसद्मनः ।
तेन तेन विदधे च रामयाऽऽनन्द इत्यथ सहास्य नाम सः ॥३४॥

वा० बु० प्र० अथ तेन पुत्रेण हेतुना पुण्यसद्मनः श्रीपुण्यसदनस्य रायि धनेऽतुला वृद्धिरभवत्। मया लक्ष्म्या तस्य कीर्तिरप्यानर्ध ववृधे। तेन हेतुना स श्रीपुण्यसदनः रामया रा—मा—इतिवर्णद्वयेन सहानन्दो रामानन्द इत्यर्थः, इति अस्य पुत्रस्य नाम विदधे चक्रे ॥ ३४ ॥

पताका—इस पुत्रके कारण श्रीपुण्यसदनशर्माकी सम्पत्तिमें अतुल वृद्धि हुई तथा लक्ष्मीसे उनकी कीर्तिभी बढ़ गई। अर्थात् पुष्कल लक्ष्मीसे उनका कोप पूर्ण हो गया। अतएव उन्होंने रा—मा इन दो अक्षरोंके साथ आनन्द जोड़कर उस बालकका 'रामानन्द' नाम रखा ॥ ३४ ॥

किं च राम इह मानवीं तनुं स्वीचकार कृपयेति तत्पिता ।
तस्य नाम दशमोत्तरे मुदाऽऽनन्दयुक्तमकृत श्रुतश्रुतिः ॥३५॥

वा० बु० प्र० किंचेत्यादिना नामनिर्धारणे पक्षान्तरं दर्शयति । इह मद्गृहे रामः कृपया मानवीं मनुष्यसम्बन्धिनीं तनुं शरीरं स्वीचकाराङ्गीकृतवानिति हेतोः श्रुतश्रुतिर्ज्ञातवेदार्थस्तत्पिता श्रीपुण्यसदनो दशमोत्तरे एकादश इत्यर्थः, दिने इति शेषः, तस्य रामस्य नवजातसूनोरानन्दयुक्तं रामानन्द इति नामाकृताकार्षीत् ॥ ३५ ॥

पताका—नामकरणमें पक्षान्तर दिखाते हैं । *वेदार्थज्ञ श्रीपुण्यसदनशर्माने यह विचार कर कि "भगवान् श्रीराम कृपाकरके मेरे गृहमें मानुष

* वेदार्थज्ञ लिखनेका तात्पर्य यह है कि ऋग्वेदमें एक मन्त्र है—

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥ †

म० १० अ० ३ सू० ३१ मं० ४ ॥

शरीर धारण करके पधारे हैं" अतः प्रसन्नतासे इग्यारहवें दिन रामके साथ आनन्द जोड़कर "रामानन्द" उस बालकका नाम रखा ॥ ३५ ॥

मातुरप्यथ पितुः सुखं ददत्संविदान इह सर्वमप्यसौ ।
हन्त जातिमनुसृत्य मानवीं बालको विचरति स्म नित्यशः ॥३६॥

बा० बु० प्र० हन्तेति हर्षे । अथ मातुः श्रीसुशीलादेव्याः पितुः श्रीपुण्यसदनस्य सुखं ददत्, सर्वमपि संविदानो (विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानमित्यात्मनेपदम्) जानन्निह भूमौ स बालकः श्रीरामानन्दो मानवीं जातिमनुसृत्य नित्यशो विचरति स्म ॥ ३६ ॥

पताका—तदनन्तर माता और पिताको सुख देतेहुए और सब कुछ जानतेहुये भी वह श्रीरामानन्द मनुष्य जातिके समान बालक होकर विचरते थे

प्रत्नरत्ननिचयप्रपञ्चिते मञ्चके स च शयान आत्मभूः ।
नैजपादकमलं क्रमेण संचालयँश्च विभिदे सतामरीन् ॥ ३७ ॥

बा० बु० प्र० प्रत्नानामभिनशानां रत्नानां निचयैः प्रपञ्चिते व्याप्ते मञ्चके शयानः स आत्मभूः श्रीरामानन्दः क्रमेण नैजं पादकमलं सञ्चालयन् 'चलेः कम्पनार्थे एव घटादित्वादत्र क्षेपणार्थे न मित्त्वम्' प्रक्षिपन् सतां वैदिकानामरीन् शत्रून् विभिदे ।

पताका—सुन्दर रत्नराशिसे सुशोभित पर्यङ्कके ऊपर सोते हुये आत्मभू—श्रीरामानन्द बाल स्वभावके कारण जो अपने कमल चरणोंको क्रमसे पछाड़ते थे—पटकते थे; उस बहानेसे वह वैदिक मार्गानुयायी जनोंके शत्रुओंके नाशकी सूचना दे रहे थे। अर्थात् यह सूचित करते थे कि इसी प्रकारसे शत्रुओंके मस्तकपर मैं अपना चरण पटकूंगा ॥ ३७ ॥

‡ **अर्थ**—जन्म देनेवाले देव—ब्राह्मणदेव श्रीपुण्यसदनशर्मा जिन रामानन्द स्वामीको उत्पन्न किये, उनकी हनूमदादि नित्यजीव तथा राजा अथवा इन्द्र तथा दातालोग सबही इच्छा करें । तथा भग देवता, अर्यमा देवताभी अपनी स्तुतिरूप वाणीसे प्रशंसा करके उन्हें प्रख्यात करें । अन्य सुन्दर देवताभी उनकी कामना करें । इस वेदमन्त्रके द्वारा श्रीपुण्यसदनशर्माको विदित था कि मेरा पुत्र साक्षात् रामका अवतार है । इस मन्त्रकी अन्य व्याख्या वाल्मीकि संहितामें मैंने की है । वहां देखें ।

उद्गतं नवसरोरुहानने तस्य दन्तयुगलं क्रमाच्छुभम् ।
तत्प्रभा च हरिदश्वसत्प्रभाऽद्वैतवादमतिदूरमक्षिपत् ॥ ३८ ॥

बा० बु० प्र० क्रमात्कालक्रमेण तस्य श्रीरामानन्दस्य नवसरोरुह इवानने मुखे शुभं मनोहरं दन्तयुगलमुद्गतं प्रकटितम् । हरिदश्वस्य सूर्यस्य सती प्रभेव तत्प्रभा दन्तयुगलकान्तिरद्वैतवादमतिदूरमक्षिपत्प्रैरयत् ॥ ३८ ॥

पताका—क्रमसे—धीरे २ समय ऊपर श्रीरामानन्दके कमल समान मुखमें परम मनोहर दो दाँत निकले। सूर्यकी प्रभाके समान उन दाँतोंकी प्रभाने अद्वैतवादको अत्यन्त दूर फेंक दिया ॥ ३८ ॥

हास्यमस्य वदने विलोकयन् संजहर्ष जनकः स्वभार्यया ।
वीक्ष्य तस्य पतनं विसर्पतः संजहास स च सा च सोपि च ॥३९॥

बा० बु० प्र० अस्य श्रीरामानन्दस्य वदने हास्यं विलोकयञ्जनकः श्रीपुण्यसदनः स्वभार्यया श्रीसुशीलया सह संजहर्ष प्रससाद । विसर्पतस्तस्य शिशोः पतनं वीक्ष्य स श्रीपुण्यसदनः सा सुशीलादेवी सोऽपि शिशुः श्रीरामानन्दोऽपि संजहास॥३९॥

पताका—श्रीरामानन्दके मुख ऊपर हँसीको देखकर श्रीपुण्यसदन और माता सुशीला दोनों प्रसन्न होते थे। घिसक घिसक कर चलते हुये जब वह गिर जाते थे तब श्रीसुशीलादेवी और श्रीपुण्यसदन हँसने लग जाते थे और श्रीरामानन्द स्वयंभी हँस देते थे ॥ ३९ ॥

तन्मुखात्त्रिचतुराणि शोभनान्यक्षराणि निरगुर्यदक्रमात् ।
तानि वादिगजविक्रमेऽक्रमं सन्दधे क्रमश एव नूतनम् ॥ ४० ॥

बा० बु० प्र० यत् अक्रमात्क्रमराहित्येन तन्मुखाच्छ्रीरामानन्दमुखात्त्रिचतुराणि (पा० ५।४।७७ का० वा०) शोभनान्यक्षराणि निरगुर्निरगच्छँस्तानि वादिन एव गजास्तेषां विक्रमे पराक्रमे क्रमशो नूतनमेवाक्रमं गतिराहित्यं सन्दधे । तद्विक्रमस्य गत्यभावान्नैष्फल्यमेव जातमित्यर्थः ॥ ४० ॥

पताका—श्रीरामानन्दके मुखमेंसे बाल्यावस्थामें जो प्रारम्भिक क्रम विनाके टूटे फूटे शब्द निकलते थे उन्होंने वादिरूपी हस्तियोंके पराक्रममें नवीन जडता पैदा कर दी थी। अर्थात् उनके सब पराक्रम व्यर्थ हो गये थे

कोकिलानपि च मूकयँस्तथा वल्लकीमपि विलज्जयञ्छिशुः ।
संजगाद विमलां मनोहरां सं क्रमेण मधुरां गिरावलिम् ॥ ४१ ॥

बा० बु० प्र० कोकिलानपि मूकयन्मूकान् कुर्वन् वल्लकीमपि विलज्जयँल्लज्जां प्रापयन् स शिशुः श्रीरामानन्दः क्रमेण विमलां विस्पष्टां मधुरां कर्णसुखावहां गिरावलिं संजगादोच्चारयामास ॥ ४१ ॥

पताका—कोकिलोंकोभी चुप कराते हुये, वीणाकोभी लज्जित करते हुये स्तनन्धय श्रीरामानन्द क्रमशः कर्णसुखावह सुस्पष्ट वाणी बोलने लग गये

पादचारमपि चन्द्रशोभनस्सन्ततान शनकैर्मनोरमम् ।
एवमेव ववृधे द्विजात्मजो नन्दयन्निजगुरुं च मातरम् ॥ ४२ ॥

बा० बु० प्र० चन्द्रवच्छोभनः श्रीरामानन्दः शनकैर्मनोरमं पादचारं पादेन चलनमपि सन्ततान । निजगुरुं पितरं मातरं चैवमेव नन्दयन् द्विजात्मजः स ववृधे वृद्धिं गतः ॥ ४२ ॥

पताका—चन्द्र समान सुन्दर श्रीरामानन्द शनैः २ सुन्दर पादविक्षेप भी करने लगे । इस प्रकारसे अपनी माता और पिताको आनन्दित करते हुये वृद्धिको प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥

यत्तेजःपटलैर्निरन्तरशिखैः सर्वा दिशो भासिता-
श्चेतोहारियदीयकान्तिलहरीभिः क्षालिताः सद्दृशः ।
यत्कीर्तेर्निचयेन स्वर्गतवता चन्द्रः कृतः पाण्डुरः,
सोऽयं ब्रह्मकुमारतामधिगतः सर्वेश्वरोऽवर्द्धत ॥ ४३ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये चतुर्थः सर्गः

बा० बु० प्र० निरन्तरा अन्तरशून्याः शिखा येषां तैर्यस्य तेजसां पटलैः समूहैः सर्वा दिशो भासिता दीपिताः, चेतोहारिण्या यदीयायाः कान्त्या लहरीभिः सतां दृशः क्षालिताः पवित्रिताः, स्वर्गतवता यस्य कीर्तेर्निचयेन समूहेन चन्द्रः पाण्डुरो धवलः कृतः, ब्रह्मकुमारतां ब्राह्मणकुमारतामधिगतः प्राप्तः सोऽयं सर्वेश्वरः श्रीरामानन्द-रूपो रामोऽवर्द्धत वृद्धिमध्यगच्छत् ॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ४३ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यां चतुर्थः सर्गः

पताका–जिसके सघन शिखावाले तेजः–समूहसे सब दिशाएँ प्रकाशित हो गई थी, जिसकी मनोहर कान्तिके लहरियोंसे सज्जनोंकी आंखें स्वच्छ हो गई थी, अर्थात् सज्जन जिनका निरन्तर दर्शन करते थे, स्वर्ग पर्यन्त गई हुई जिनकी कीर्तिने चन्द्रको धवलित कर दिया वही सर्वेश्वर श्रीरामजी महाराज ब्राह्मणकुमार बन कर बढने लगे ॥ ४३ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते श्रीमद्भगवद्रामा-
नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां चतुर्थः सर्गः ।

अथ पञ्चमः सर्गः

श्रीवैष्णवागमरहस्यविदो महान्तो,
ब्रह्मादयोपि भुवि मानुषदेहवन्तः ।
संजज्ञिरे विविधदेशविशेष एव,
धर्मप्रचारकरणाय समुद्यतास्ते ॥ १ ॥

वा० बु० प्र० श्रीवैष्णवानामागमानां रहस्यवेत्तारो महान्तः पूज्या धर्मप्रचारकरणाय धर्मं प्रचारयितुं समुद्यताः समुत्सुकास्ते ब्रह्मादयो मानुषदेहवन्तो मानवशरीरिणो विविधदेशविशेषे संजज्ञिर उत्पन्ना एव ॥ १ ॥

पताका–श्री वैष्णवोंके आगमोंके तत्वोंको जाननेवाले पूजनीय, धर्म प्रचार करनेके लिये समुत्सुक, वे ब्रह्मादिभी* मनुष्य शरीर धारण करके नाना देश विशेषमें उत्पन्न हुये ॥ १ ॥

---

* तेऽथाप्यवतरिष्यन्ति भगवन्मतकोविदाः ।
स्वयम्भूप्रमुखाः सर्वे महान्तो नित्यसूरयः ॥ २५ ॥
इङ्गितज्ञा हरेराज्ञां वहन्तः शिरसा मुदा ।
नाना देशेषु वर्णेषु तत्तत्कालेऽर्कसन्निभाः ॥२६॥ अगस्त्यसंहिता, अ० १३२ ॥

ब्रह्मापि यं परमबुद्धिसमृद्धियुक्तं,
ब्रह्माणमेव विरचय्य भुवीह पूर्वम् ।
पात्रं बभूव परमं च कृतार्थतायाः
सोऽनन्तदेव इति नामभृदाविरासीत् ॥ २ ॥

वा० बु० प्र० ब्रह्म श्रीरामोऽपि यं परमया बुद्धिसमृद्धया युक्तं ब्रह्माणमेव भूमौ पूर्वं विरचय्य निर्माय कृतार्थतायाः परमं पात्रं बभूव कार्तार्थ्यं गतमिति भावः । स ब्रह्मा अनन्तदेव इति नामभृत् आविर्बभूव ॥ २ ॥

पताका–ब्रह्म–भगवान् श्रीराम परमबुद्धिमान् जिन ब्रह्माजीको इस भूतल पर सर्व प्रथम उत्पन्न करके परम कृतार्थ हुये थे वही विद्वान् ब्रह्माजी *अनन्तदेव अर्थात् अनन्तानन्द नामसे प्रकट हुये ॥ २ ॥

साकेतपार्श्वभुवि सारयवप्रदेशे,
ह्यासीन्महेशपुरसंवसथः प्रसिद्धः ।
तत्र द्विजप्रवर एक उदारवित्त–
श्चास्त त्रिपाठ्युपपदः किल विश्वनाथः ॥ ३ ॥

वा० बु० प्र० सारयवप्रदेशे सरयूसमीपदेशे साकेतस्यायोध्यायाः पार्श्वभुवि निकटभूभागे प्रसिद्धो महेशपुरसंवसथो महेशपुरग्राम आसीत् । तत्र उदारवित्तो विपुलधनस्त्रिपाठीत्युपपदो विश्वनाथो द्विजप्रवर आस्त ॥ ३ ॥

पताका–सरयूपार–सरवारमें अयोध्याके पासही महेशपुर नामक एक प्रसिद्ध ग्राम था । उसमें श्रीविश्वनाथत्रिपाठी नामवाले एक बड़े धनाढ्य ब्राह्मण रहते थे ॥ ३ ॥

राशौ धने च शुभकार्तिकमासि पौर्ण-
मास्यां शनैश्चरदिनेऽथ च कृत्तिकायाम् ।
तस्यैव भाग्यभुजि सोमसुतो द्विजस्य,
गेहे प्रजापतिरगच्छदयं सुतत्वम् ॥ ४ ॥

* आयुष्मन् कृत्तिकायुक्तपूर्णिमायां धने शनौ ।
स्वयंम्भूः कार्तिकस्याद्धाऽनन्तानन्दो भविष्यति ॥ २७ ॥ अ० सं०, १३२ ॥

वा० बु० प्र० धने राशौ शुभे कार्तिकमासि पौर्णमास्यां शनिवासरे कृत्तिका-नक्षत्रे तस्यैव सोमपुतः सोमयाजिनः श्रीविश्वनाथत्रिपाठिनो भाग्यभुजि सौभाग्यवति गेहे गृहेऽयं प्रजापतिर्ब्रह्मा सुतत्वमगच्छत्प्राप्त् ॥ ४ ॥

पताका—धन राशि, कार्तिक मास, पौर्णमासी तिथि, शनिवार और कृत्तिका नक्षत्रमें सोमयाग करनेवाले उन्हीं श्रीविश्वनाथ त्रिपाठीके भाग्यशाली गृहमें श्रीब्रह्माजी अनन्तानन्दजी होकर पधारे ॥ ४ ॥

अस्तीह लक्ष्मणपुरं नगरं प्रसिद्धं,
तत्र द्विजोऽवसदतीव विवेकशाली ।
पूज्यः सतामथ सुरेश्वर एव नाम्ना,
विद्याविनोदगमितात्मसमस्तकालः ॥ ५ ॥

वा० बु० प्र० इह भारते लक्ष्मणपुरं प्रसिद्धं नगरमस्ति । तत्रातीव विवेकशाली सतां पूज्यो विद्याविनोदेनैव गमितो यापितः समस्तः कालो येन स सुरेश्वरनामा द्विजो ब्राह्मण आसीत् ॥ ५ ॥

पताका—भारतवर्षमें लक्ष्मणपुर—लखनऊ नामक प्रसिद्ध नगर है। वहां परम विवेकी, सज्जनोंके पूज्य विद्याके विनोदमेंही समस्त समय व्यतीत करनेवाले सुरेश्वर नामवाले एक ब्राह्मण थे ॥ ५ ॥

तस्यैव सर्वसुखदे परमे पवित्रे
वैशाखमासि च वृषे च गुरौ नवम्याम् ।
पक्षे सितेतर उदीतमहाप्रभावो
जातः सुतः सुरसुरो महनीयकीर्तिः ॥ ६ ॥

वा० बु० प्र० तस्यैव सुरेश्वरस्य सर्वसुखदे परमे पवित्रे वैशाखमासि सितेतरे कृष्णे पक्षे नवम्यां तिथौ वृषे राशौ गुरौ वासरे उदीतः प्रकटितो महान् प्रभावो यस्य स तथा महनीयाः कीर्तयो यस्य स सुरसुरः सुतः पुत्रो जातः ॥ ६ ॥

पताका—उन्हीं श्रीसुरेश्वरशर्माके घर सर्व सुखद तथा पवित्र वैशाख मास, कृष्ण पक्ष, नवमी तिथि, वृष राशि और गुरुवासरमें महान् प्रभाववाला तथा प्रशस्त कीर्तिवाला सुरसुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

श्रीनारदो मुनिवरो हरिधर्मतत्त्व-
वेदी विदांवर उदारमना विजज्ञे ।
तापत्रयं च विनिवार्य सुखं प्रदातुं
भूमौ महान् सुरसरो जगतः कृपालुः ॥ ७ ॥

बा० बु० प्र० हरिधर्मस्य तत्त्ववेदी तत्त्ववेत्ता विदांवरो महापण्डित उदारमनाः कृपालुर्मुनिवरः श्रीनारदो जगतस्तापत्रयं विनिवार्य दूरीकृत्य सुखं प्रदातुं भूमौ महान् श्रेष्ठः सुरसुरो विजज्ञे जातः ॥ ७ ॥

पताका—भगवद्धर्मके तत्त्वको जाननेवाले, विद्वच्छिरोमणि, उदार मन वाले, दयालु श्रीनारदमुनि* संसारके तीनों तापोंको दूर करके सुख देनेके लिये श्रीसुरसुर होकर पृथ्वी पर पधारे ॥ ७ ॥

येनामिषेण रचितं वटकं भ्रमेण,
धूर्तेन दत्तमिदमस्ति हरिप्रसादः ।
इत्येव खादितमथोद्वमनेन सर्वं
पुष्पं तथा च तुलसीदलमाशु चक्रे ॥ ८ ॥

बा० बु० प्र० इदं हरिप्रसादो भगवत्प्रसादोऽस्तीति धूर्तेन केनचित्काषायाम्बरेण गोसाईंतिप्रसिद्धेन वैष्णवरूपधारिणा दत्तमामिषेण मांसेन रचितं कृतं वटकं खाद्यविशेषं येन भ्रमेण हरिप्रसादं मत्वा खादितमथ ज्ञानानन्तरमाशु शीघ्रमुद्वमनेन सर्वं वटकं पुष्पं तुलसीदलं च चक्रे— ॥ ८ ॥

पताका—भगवत्प्रसाद कहकर किसी धूर्तसे दिये हुये मांससे बने हुये बड़े-रामचकरेको भगवत्प्रसादके भ्रमसे जिन्होंने खा लिया था और पश्चात् ज्ञात होने पर शीघ्रही वमन करके जिन्होंने उन वड़ोंको पुष्प और तुलसीदल बना दिया था—‡ ॥ ८ ॥

---

* जातः सुरसुरानन्दो नारदो मुनिसत्तमः ।
वैशाखासितपक्षस्य नवम्यां स वृषे गुरो ॥ २९ ॥ अ० सं०, ॥अ० १३२॥

‡ कहा जाता है कि एक समय श्रीसुखानन्दस्वामीजी धर्मोपदेशार्थ किसी ग्राममें जाते थे, मार्गमें एक गोसाईं वैष्णवका वेष बनाये हुये मिला । उसने×

भक्ताग्रणीः परमसाधुवरः स शम्भु-
नाम्ना सुखः सुखकरः सकलत्रिलोक्याः ।
कोपप्रसारितफणाविकरालदृश्य-
संसारभोगिविषवैद्य इवाजनीह ॥ ९ ॥

व्या० बु० प्र० स एव भक्ताग्रणीर्भक्तश्रेष्ठः परमसाधुवरः कोपेन प्रसारितया फणया विकरालं भयङ्करं दृश्यं यस्य स चासौ संसारभोगी संसारसर्पश्च तस्य विष-वैद्य इव शम्भुः शम्भुरूपस्तदवतार इत्यर्थः, सकलत्रिलोक्याः सुखकर आनन्दप्रदो नाम्ना सुखः सुखानन्दनामेत्यर्थ इहाजनि प्रादुर्बभूव ॥ ९ ॥

पताका—वही भक्तश्रेष्ठ, साधुश्रेष्ठ, क्रोधसे फैलाई गई विकराल फणासे भयङ्कर दृश्यवाले संसाररूप सर्पके विषवैद्य समान, त्रिलोकीके सुख देनेवाले शम्भुजीके अवतार श्रीसुखानन्दजी *प्रकट हुये ॥ ९ ॥

आसीत्पुरा विविधबुज्जनसम्परीतो,
ग्रामो मनोज्ञतम उज्जयिनीसमीपे ।
नाम्ना किरीटपुरमध्यवसद्द्विजस्तं
विद्वान् बृहस्पतिसमस्त्रिपुरारिनामा ॥ १० ॥

व्या० बु० प्र० पुरा प्राक् विविधैर्बहुप्रकारैर्बुद्धिर्विद्वद्भिर्जनैः सम्परीतो व्याप्त उज्जयिनीसमीपे नाम्ना किरीटपुरं किरीटपुरनामा मनोज्ञतमः परममनोहरो ग्राम

×इनको भ्रष्ट करनेके लिये मांसका बना हुआ बडा—भगवत्प्रसाद कह कर खानेको दिया। स्वामीजी इसे वैष्णव जानकर उस बडेको खा गये। पीछे जब ज्ञात हुआ कि उस दुष्टने इनको भ्रष्ट करनेके लिये उसे खिलाया था तब उन्होंने शीघ्रही वमन किया और सब बडे जो खानेसे टुकडे २ हो गये थे—पुष्प और तुलसीदल हो गये। इस आश्चर्यको देखकर वह गोसाईं इनके चरणोंमें आकर गिर पडा। क्षमा मांगी और शिष्य हो गया॥

* शुक्रे वरुणभे योगे शीलरत्नाकरो महान्।
मन्त्रमन्त्रार्थसन्निष्ठो गुरुभक्तिपरायणः॥ ३० ॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥
तस्यामेव तुलालग्ने तादृशीन्दुरिवोग्रधीः।
शम्भुरेव सुखानन्दः पूर्वाचार्यार्थनिष्ठकः॥ ३१ ॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥

आसीत्। तं (पा० ११४।१८) ग्रामं बृहस्पतिसमो विद्वाँस्त्रिपुरारिनामा द्विजो ब्राह्मणोऽध्यवसत् ।। १० ।।

पताका—पूर्व समयमें नाना प्रकारके विद्वानोंसे परिपूर्ण उज्जैनके समीप किरीटपुर नामक एक परम सुन्दर ग्राम था। उसीमें बृहस्पतिके समान विद्वान् त्रिपुरारि नामवाले एक ब्राह्मण रहते थे ॥ १० ॥

राधे सिते शतभिषज्यथ कर्मवाट्यां,
लग्ने तुलाभिध उपात्तयशा नवम्याम् ।
तस्य द्विजस्य भवने भवतापहारी,
जातः सुखाय च सतां नितरां सुखोऽसौ ॥११॥

बा० बु० प्र० राधे वैशाखमासे सिते शुक्लपक्षे नवम्यां तिथौ शतभिषजि नक्षत्रे तुलाभिधे लग्ने कर्मवाट्यां संसारे तस्य त्रिपुरारेर्द्विजस्य भवने भवतापहारी जगदुःखापहारकः सतां नितरामत्यन्तं सुखाय सुखं प्रदातुमसौ सुखः सुखानन्दो जातः

पताका—वैशाख मास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, शतभिषा नक्षत्र और तुला लग्नमें इस संसारमें उन त्रिपुरारि ब्राह्मणके घर संसारके दुःखको हरण-करनेवाले वह सुखानन्दजी सज्जनोंको सुख देनेके लिये प्रकट हुये ॥११॥

आयातवान्नरहरिः करुणार्द्रचित्तो,
भूमौ हिरण्यकशिपुं न्विव दुष्टवृन्दम् ।
हन्तुं तथा श्रुतिवचःपरिरक्षणार्थं,
सर्वं जगद्धवलयन्निजकीर्तिपुञ्जैः ॥ १२ ॥

बा० बु० प्र० निजकीर्तीनां पुञ्जैः समूहैः सर्वं जगद्धवलयन् धवलीकुर्वन् करुणयार्द्रचित्तो यस्य स नरहरिर्नृसिंहो भगवान् हिरण्यकशिपुं दैत्यमिव दुष्टवृन्दं हन्तुं तथा श्रुतिवचसां वेदाक्षराणां परिरक्षणार्थं भूमावायातवानागतवान् ॥ १२ ॥

पताका—अपनी अनन्तकीर्तिसे संसारको धवलित करते हुये परम कृपालु श्रीनरहरिजी हिरण्यकशिपु समान दुष्टोंका वध करनेकेलिये तथा वेदोंकी रक्षा करनेके लिये पृथ्वीपर प्रकट हुये ॥ १२ ॥

विद्याविलासिपरिशीलितधर्ममार्गं,
वृन्दावनस्य सविधे पुरमेकमासीत् ।
तत्र द्विजप्रवर एक विशालबुद्धि-
र्नाम्ना महेश्वर उदारयशाश्चकाशे ॥ १३ ॥

वा० बु० प्र० विद्याविलासिभिर्विद्वद्भिः परिशीलितोऽभ्यस्तो धर्ममार्गो यत्र तद् वृन्दावनस्य सविधे समीप एकं पुरमासीत् । तत्र पुरे विशालबुद्धिः सूक्ष्मदर्शी उदारचेता उन्नतमना नाम्ना महेश्वरो महेश्वरनामेत्यर्थ एको द्विजप्रवरो ब्राह्मणश्चकाशे दीप्यते स्म ॥ १३ ॥

पताका—वृन्दावनके समीपमें एक नगर था । जिसमें विद्याविलासी लोग धर्मका अनुष्ठान कर रहे थे । उसी नगरमें बड़े बुद्धिशाली उदार चित्तवाले महेश्वर नामक एक उत्तम ब्राह्मण निवास करते थे ॥ १३ ॥

तस्याधिगेहमिह माधवमासि शुक्रे,
मैत्र्यां तथा च शुभदे व्यतिपातयोगे ।
कृष्णे दले शुभमये च तिथौ हराक्षे,
जातः सुतो नरहरिः स सनत्कुमारः ॥ १४ ॥

वा० बु० प्र० इह तस्य महेश्वरशर्मणोऽधिगेहं गृहे, विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । माधवमासि वैशाखमासे कृष्णे दले पक्षे शुक्रे शुक्रवासरे शुभमये हराक्षे तृतीयायां तिथौ मैत्र्यां मनुराधानक्षत्रे शुभदे व्यतिपातयोगे स सनत्कुमारो नरहरिः सुतो जातः । सनत्कुमारो नरहरिनाम्ना सुतत्वेनोत्पन्न इत्यर्थः ॥ १४ ॥

पताका—उन महेश्वरशर्माके गृहमें वैशाख मास, कृष्णपक्ष, शुक्र वासर, सुन्दर तृतीया तिथि, अनुराधानक्षत्र और व्यतीपात योगमें श्रीसनत्कुमारजी नरहरि नामसे* पुत्र होकर उत्पन्न हुये ॥ १४ ॥

---

* व्यतीपातेऽनुराधाभे शुक्रे मेषे गुणाकरे ।
वैशाखकृष्णपक्षस्य तृतीयायां महामतिः ॥ ३२ ॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥
कुमारो नरहरियानन्दो जात उदारधीः ।
वर्णाश्रमकर्मनिष्ठः शुभः कर्मरतः सदा ॥ ३३ ॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥

यस्याङ्गणे प्रतिदिनं जनताधिपूज्या,
देवी च काचिदचरद्बहु किङ्करत्वम् ।
कस्यापि तस्य नृहरेर्विमलः प्रतापो
वाचो नरस्य विषयोऽल्पधियः कथं स्यात् ॥१५॥

बा० बु० प्र० यस्याङ्गणे जनताया अधिपूज्या परममाननीया काचिदनिर्वचनीया देवी लक्ष्मीः प्रतिदिनं बहु किङ्करत्वमचरदकरोत्, तस्य नृहरेर्विमलः विशुद्धः प्रतापः कस्यापि कस्यचिदल्पधियो मन्दबुद्धेर्नरस्य वाचो वाण्या विषयः कथं स्यात् ?

पताका—जिनके आंगनमें जनताकी परम माननीया अनिर्वचनीय लक्ष्मी कैङ्कर्य करती थी उन श्रीनरहरिजीका विशुद्ध प्रताप किस पुरुषके वाणीका विषय हो सकता है—उसे कौन वर्णन कर सकता है ? ॥ १५ ॥

मूले बुधे च परिघेऽथ च कर्कलग्ने,
वैशाखमासि च ऋपौ बहुले तिथौ च ।
श्रीमन्मुनिः कपिलदेव उदग्रवर्चा,
योगोऽभवद्भुवि पुनः प्रियभक्तियोगः ॥ १६ ॥

बा० बु० प्र० वैशाखमासि बहुले कृष्णपक्षे ऋपौ (पा० ६।१।१२८) सप्तम्यां तिथौ बुधे वासरे मूले नक्षत्रे परिघे योगे कर्कलग्ने उदग्रवर्चाः प्रशस्ततेजाः श्रीमन्मुनिः कपिलदेवो पुनर्भुवि पृथिव्यां प्रियभक्तियोगो योगो योगानन्दोऽभवत् ॥ १६ ॥

पताका—वैशाखमास, कृष्ण पक्ष, सप्तमी तिथि, बुध वासर, मूल नक्षत्र, परिघ योग और कर्क लग्नमें परम तेजस्वी श्रीमान् कपिल मुनि पुनः भक्तियोगके प्रेमी योगानन्द * होकर पृथिवी पर अवतार लिये ॥१६॥

क्षेत्रं च सिद्धपुरमस्ति समस्तशोभा-
धामाथ धाम परमं बुधतल्लजानाम् ।
तत्रैव वेदविदुषां प्रथमस्य योगा-
नन्दो व्यजायत गृहे मणिशङ्करस्य ॥ १७ ॥

* वैशाखकृष्णसप्तम्यां मूले परिघसंयुते ।
बुधे कर्केऽथ कपिलो योगानन्दो जनिष्यति ॥ ३४ अ० सं०, अ० १३२ ॥

वा० बु० प्र० बुधतल्लजानां विद्वत्प्रकाण्डानां समस्तानां शोभानां धाम निवासस्थानं सिद्धपुरं तदाख्यं क्षेत्रं परमं धाम स्थानमस्ति। तत्रैव सिद्धपुरे वेदविदुषां वेदज्ञानां प्रथमस्याग्रेसरस्य मणिशङ्करस्यार्थाद्ब्राह्मणस्य गृहे योगानन्दो व्यजायत समुत्पन्नः ॥ १७ ॥

पताका—बड़े अच्छे २ विद्वानोंके रहनेका स्थान, परम रमणीक सिद्धपुर नामक प्रसिद्ध क्षेत्र है। उसी क्षेत्रमें वैदिक विद्वानोंमें श्रेष्ठ पण्डित मणिशङ्करशर्माके गृहमें श्रीयोगानन्दजी उत्पन्न हुये ॥ १७ ॥

चैत्रे ध्रुवे बुधदिनेऽथ च पौर्णमास्यां,
लग्ने धने सुखद उत्तरफाल्गुनीषु।
श्रीमान्मनुः प्रथमभारतभाग्यशास्ता,
पीपाभिधो भुवमहो अपुनीतयिष्ट ॥ १८ ॥

वा० बु० प्र० अहो इत्यानन्दे। चैत्रे मासे पौर्णमास्यां बुधदिने उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रे ध्रुवे योगे सुखदे धने लग्ने भारतस्य भाग्यं भारतभाग्यं तस्य शास्ता शासको भारतभाग्यशास्ता प्रथमश्चासौ भारतभाग्यशास्ता च प्रथमभारतभाग्यशास्ता भारतस्यादिराज इत्यर्थः श्रीमान्मनुः पीपाभिधः सन् भुवमपुनीतयिष्ट पवित्रयति स्म ॥ १८ ॥

पताका—चैत्र मास, पौर्णमासी तिथि, बुध वासर, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, ध्रुव योग, और सुन्दर धन लग्नमें भारतके आदि राजा श्रीमान् मनु महाराज पीपा* नामसे पृथ्वी पर पधारे ॥ १८ ॥

श्रीगाङ्गरौनगढ इत्यभिधे गुणौघो,
जातः प्रतापविदितो नगरे सुकीर्तिः।
सर्वं स्वराष्ट्रमभितो हि पपीरिवायं,
सम्यक् चिराय स बुभोज महीपपीपः ॥ १९ ॥

वा० बु० प्र० श्रीगाङ्गरौनगढ इत्यभिध इतिनामके नगरे गुणौघः, प्रतापेन विदितः प्रख्यातः सुकीर्तिः सुयशा जात उत्पन्नः सोऽयं महीपपीपः पीपराजः पपीः

* मनुः पीपाभिधो जात उत्तराफाल्गुनीयुजि।
पूर्णिमायां ध्रुवे चैत्र्यां धन वारे बुधस्य च ॥ ३६ ॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥

सूर्य इव सर्वं स्वराष्ट्रमभितः सर्वथा सम्यक् चिराय बुभोज ररक्ष ॥ १९ ॥

पताका—सर्वगुण सम्पन्न, महा प्रतापी, सुन्दर कीर्तिवाले गाङ्गरौनगढ नामक नगरमें उत्पन्न हुये वह पीपाराज सूर्यके समान अपने सम्पूर्ण राज्यका अच्छे प्रकारसे चिरकाल तक रक्षण किये ॥ १९ ॥

देवो हि कश्चन वियोगकशाविधूत,
आसीन्नभस्यतितरां तरसा विधावन् ।
स्मृत्वा प्रियां स्मरशराहत एव तस्मिन्,
कालेऽभवत्स्खलितवीर्य इताधिधैर्यः ॥ २० ॥

बा० बु० प्र० कश्चन देवो भार्याया इतिशेषः, वियोग एव कशा तया विधूतस्ताडितो नभस्याकाशेनितरां तरसा वेगेन धावन्नासीत्। स्मरस्य कामस्य शरैराहत इतं गतमधिधैर्यं यस्य स प्रियां स्मृत्वा तस्मिन्नेव काले स्खलितवीर्योऽभवत

पताका—कोई देवता अपनी भार्याके वियोगरूपी चाबुकसे मारा गया हुआ आकाशमें बड़े वेगसे दौड़ा जा रहा था। उस समय कामके बाणसे व्यथित होनेसे उसका धैर्य छूट गया अतएव उसका वीर्यभी स्खलित हो गया ॥ २० ॥

तद्वीर्यविन्दुरपतद्भुवि तीव्रतेजाः
कस्मिँश्चनापि सरसि प्रहसत्सरोजे ।
गर्भो बभूव सहसा कमले च तस्मिन्,
वार्यं च केन हि फलं तदमोघतायाः ॥ २१ ॥

बा० बु० प्र० तीव्रं तेजो यस्यैतादृशस्तद्वीर्यस्य विन्दुर्भुवि कस्मिँश्चनापि सरसि तटाके प्रहसद्विकसच्च तत्सरोजं च तस्मिन्नपतत्। चो हेतो। तस्मात्तस्मिन् कमले सहसा गर्भो बभूव। हि यतस्तस्य वीर्यस्यामोघताया अव्यर्थताया फलं गर्भ-भवनरूपं केन वार्यं ? न केनापीति भावः ॥ २१ ॥

पताका—उसके वीर्यका एक बिन्दु पृथ्वीपर किसी तालाबके खिले हुये एक कमलमें आकर पड़ा और उसमें गर्भ रह गया। क्यों कि देवोंका वीर्यतो अमोघ होता है। उसको निष्फल कौन कर सकता है ? ॥ २१ ॥

सम्भासयत्यपि समस्तसरोजवृन्द-
सन्नायके दिनपतौ विशदप्रभासे ।
जातं च तत्कमलपुष्पमनूनतेज-
स्तस्मिन् क्षणे च सहसैव गृहीतमौनम् ॥ २२ ॥

बा० बु० प्र० विशदः प्रभासो यस्य तस्मिन् समस्तानां सरोजवृन्दानां कमलसमूहानां सन्नायके सत्पतौ दिनपतौ दिवाकरे सम्भासयत्यपि प्रकाशमानेऽप्यनून-तेजो महाकान्ति तत्कमलपुष्पं तस्मिन् क्षणे सहसैव गृहीतं मौनं येन तथाभूतं जातम्

पताका—निर्मल प्रकाशवाले, समस्त कमलोंके सुन्दर पति, सूर्य भगवान्‌के प्रकाशित रहते हुयेभी महान् तेजवाला वह कमल-पुष्प उसी समय अकस्मात् सम्पुटित हो गया ॥ २२ ॥

वृद्धिं गतं च शनकैः कमलोदरं त-
द्रूपातिशय्यमपि तस्य किमप्यपुष्यत् ।
तस्माच्च सुन्दरसरोजसुमाद्धि काले,
प्रह्लाद एव समभूत्सुभगः कबीरः ॥ २३ ॥

बा० बु० प्र० तत्कमलोदरं शनकैः शनैर्वृद्धिं गतम् । तस्य रूपस्यातिशय्य-माधिक्यमपि किमप्यनिर्वचनीयमपुष्यत् । तस्मात्सुन्दरसरोजस्य सुमात्प्रसूनात्काले समये प्रह्लाद एव सुभगो भाग्यवान् कबीरः समभूत् ॥ २३ ॥

पताका—उस कमलका पेट धीरे २ वृद्धिको पाने लगा । उसके रूपका आधिक्यभी अनिर्वचनीय रूपसे बढ़ने लगा । उस सुन्दर कमलके पुष्पमेंसे प्रह्लादजी कबीर होकर उत्पन्न हुये ॥ २३ ॥

चैत्रेऽसिते शुभतिथौ च गिरौ कुजे च,
सिंहे च शोभनपदप्रतिपाद्ययोगे ।
जातः सुखं मृगशिरस्यरविन्दमध्या-
त्काश्यां सदा हरियशःप्रसितः कबीरः ॥ २४ ॥

बा० बु० प्र० चैत्रे मासेऽसिते कृष्णे पक्षे गिरावष्टम्यां तिथौ मृगशिरसि नक्षत्रे कुजे मङ्गलवासरे सिंहे लग्ने शोभनपदेन प्रतिपाद्ये वक्तव्ये योगे शोभनयोग

इत्यर्थः, अरविन्दस्य कमलस्य मध्यात्काश्यां काशीसन्निकटे सदा हरियशःसु प्रसितोऽनुबद्ध कबीरः सुखं यथा स्यात्तथा जातः ॥ २४ ॥

पताका—चैत्र मास, कृष्ण पक्ष, अष्टमी तिथि, मृगशिरा नक्षत्र, मङ्गलवार, सिंह लग्न और शोभन नामक योगमें कमलके बीचमेंसे काशीके पास भगवत्कीर्ति गायनमें सदा तत्पर श्रीकबीरजी* सुख पूर्वक उत्पन्न हुये ॥२४॥

के वेति यो भवति सोऽपि कबीरनामा,
वा के पतन्नजति कं क्षिपतीति वार्थात् ।
जातं च तं सुमसमेतमथानिनाय,
कोऽपि स्वकीयभवने किल तन्तुवायः ॥ २५ ॥

वा० बु० प्र० यः के जले वेति गर्भवासग्रहणं करोति, अथवा के भवति जायते, के पतन् सन्नजति गच्छति अथवा कं सुखं क्षिपति दूरं त्यजतीत्यर्थः, इत्यर्थादित्यर्थमादाय एवं स कबीरनामाऽऽभवदिति शेषः । अथ जातमुत्पन्नं तं कबीरं सुमेन पुष्पेण समेतं कोऽपि तन्तुवायः स्वकीयभवने आनिनाय ॥२५॥

पताका—जो जलमें गर्भवास ग्रहण करता है, अथवा जो जलमें उत्पन्न होता है, अथवा जो जलमें पड़ता हुआ चलता है, अथवा जो सुखको दूर त्याग कर देता है—इत्यादि अर्थको लेकर वह कबीर नामवाले उत्पन्न हुये। उत्पन्न हुये उनको फूल समेत कोई जोलाहा अपने घर ले आया ॥ २५ ॥

दृष्ट्वा च तं सुरसमप्रतिभं सुबालं,
भार्या च तस्य मुमुदे यदजातपुत्रा ।
भाग्यादयं मिलित इत्यसकृद्वदन्ती,
स्नेहादपीपलदमुं सुमनःकुमारम् ॥ २६ ॥

* निष्ठा तदीयकैङ्कर्ये सतस्तस्य महात्मनः ।
नक्षत्रे शशिदैवत्ये चैत्रे कृष्णाष्टमीतिथौ ॥२७॥ अ० सं०, अ०, १३२ ॥
प्रह्लादः कबीरस्तु कुजे सिंहे च शोभने ।
जातो वेदान्तसन्निष्ठः क्षेत्रवासरतः सदा ॥ २८ ॥

वा० बु० प्र० यस्यात्तस्य भार्याऽजातपुत्राऽऽसीदतस्तं सुरसमप्रतिमं देव-तुल्यकान्तिं सुबालं मनोहरं बालकं दृष्ट्वा मुमुदे । अयं बालो भाग्यान्मिलित इत्यस-कृन्मुहुर्मुहुर्वदन्ती साऽमुं सुमनःकुमारं देवसुतं स्नेहात्प्रेम्णाऽपीपलत् पालयाञ्चकार ॥

पताका—उस जोलाहेकी स्त्रीको पुत्र नहीं था अतएव देव तुल्य कान्तिवाले उस सुन्दर बालकको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। "यह बालक भाग्यसे मिला" ऐसा पुनः २ कहती हुई प्रेमसे उसने उस बालकका पालन किया ॥ २६ ॥

जातैकदा वियति गीरिति हे कबीर !
पुण्ड्रं विधाय निजभालतटे त्वमूर्द्ध्वम् ।
कण्ठे प्रधार्य तुलसीमणिकाश्च रामा-
नन्दार्यपादजलजं शरणं कुरुष्व ॥ २७ ॥

वा० बु० प्र० एकदा वियत्याकाश इति गीर्वाणी जातोत्पन्ना—"हे कबीर ! त्वं निजभालतटे मस्तक ऊर्द्ध्वं पुण्ड्रं विधाय कण्ठे तुलसीमणिकास्तुलसी-मालामितियावत्, प्रधार्य रामानन्दार्याणां पादजलजं चरणकमलं शरणं कुरुष्व" ॥२७॥

पताका—एक समय आकाशवाणी हुई कि "हे कबीर तुम अपने मस्तकमें ऊर्द्ध्वपुण्ड्र करके, गलेमें तुलसीमाला धारण करके श्रीरामानन्द स्वामीके चरण कमलकी शरणमें जावो ॥ २७ ॥

स प्रत्युवाच च मया श्रुतमेतदत्रा-
सौ मादृशं स्पृशति नो न निरीक्षते वा ।
तत्केन तस्य चरणं शरणं करोमी-
त्यादेशमादिशतु शीघ्रमये कृपालो ! ॥ २८ ॥

वा० बु० प्र० स कबीरः प्रत्युवाच । मयैतच्छ्रुतम्, असौ श्रीरामानन्दार्यो मादृशं म्लेच्छं न स्पृशति न वा निरीक्षते पश्यति । तत्तस्मात् केनोपायेन तस्य चरणं शरणं करोमीत्यादेशमये कृपालो शीघ्रमादिशतु ॥ २८ ॥

पताका—कबीर बोले। मैंने सुना है कि वह यहां मेरे जैसे म्लेच्छोंको न तो छूते हैं और न देखतेही हैं। तब बताओ कि किस उपायसे मैं

उनके चरणको अपना शरण बनाऊं? हे आकाशवाणी करनेवाले दयालो! आप शीघ्र मुझे आज्ञा करें ॥ २८ ॥

जाता पुनर्नभसि वागशरीरिणी य-
द्गङ्गातटे त्वमुषसि प्रसृतो भवेति ।
स्नातुं गतस्य किल तस्य पदं तवोरः-
स्पर्शं करिष्यति कवीर महादयाब्धेः ॥ २९ ॥

बा० बु० प्र० नभसि पुनरशरीरिणी वाग्जाता, यत्त्वमुषसि प्रातःकाले गङ्गातटे प्रसृतो हस्तपादादि विस्तीर्य स्थितो भवेति । स्नातुं गतस्य तस्य महादयाब्धेः कृपासागरस्य श्रीरामानन्दस्वामिनः पदं तवोरसः स्पर्शं करिष्यति ॥ २९ ॥

पताका—आकाशमें पुनः आकाशवाणी हुई कि हे कवीर! तुम प्रातःकाल गङ्गातट पर जाकर लेट जाओ। जब श्रीस्वामीजी महाराज स्नान करनेके लिये आवेंगे तब उनका चरण तुम्हारी छातीका स्पर्श करेगा। अर्थात् अन्धेरा होनेके कारण अकस्मात् तुम्हारी छातीपर उनका चरण पड़ जावेगा ॥ २९ ॥

रामेतिशब्दमपि द्विः स दयापरीत,
उच्चारयिष्यति कवीर तमेव मन्त्रम् ।
ज्ञात्वा गृहं सपदि तात निवृत्य नित्यं,
कालं नयस्व मनसा तमलं जपँस्त्वम् ॥ ३० ॥

बा० बु० प्र० अथ चरणनिपातानन्तरं दयापरीतः कृपापरिपूर्णः सन्नाचार्यो राम इतिशब्दमपि द्विरुच्चारयिष्यति । हे तात! कवीर! त्वं तमेव रामशब्दं मन्त्रं ज्ञात्वा सपदि शीघ्रं गृहं निवृत्य नित्यं मनसा तमेव जपन् कालं नयस्व ॥ ३० ॥

पताका—हे तात! कवीर! चरण पड़नेके पश्चात् वह श्रीस्वामीजी महाराज 'राम राम' ऐसा शब्द उच्चारण करेंगे। तुम उसीको मन्त्र जान कर शीघ्र घर लौट आना और सदा मनसे उसीका जप करते हुये काल व्यतीत करना ॥ ३० ॥

कृत्वा तथैव स च भक्तकुलाग्रयायी,
शिष्यत्वमाप यतिराजपदाम्वुजस्य ।
यस्यास्ति येन सह यन्त्रित एव धात्रा,
सम्वन्धवन्धनविधिर्भवति ध्रुवं सः ॥ ३१ ॥

बा० बु० प्र० स च भक्तकुलाग्रयायी कवीरः तथैव कृत्वा यतिराजपदाम्बुजस्य श्रीस्वामिरामानन्दचरणकमलस्य शिष्यत्वमाप प्रापत् । धात्रा ब्रह्मणा येन सह यस्य सम्बन्धबन्धनस्य विधिर्यन्त्रितो नियमितोऽस्ति स ध्रुवमवश्यं भवति॥३१॥

पताका—वह भक्तराज कवीरजी वैसाही करके श्रीस्वामीजीके शिष्य हो गये । सत्य है, ब्रह्माने जिसका जिसके साथ सम्वन्ध होनेका निर्माण किया है वह अवश्य होता है ॥ ३१ ॥

जातः पुनश्च मिथिलावनिपालकोऽयं,
तत्रैव भाव इतिसंज्ञक उद्दिधीर्षुः ।
लोकान् भवाब्धिपतितानधिशोकतप्ता-
न्नाकार्य्यमस्ति किमपीह दयालुतायाः ॥ ३२ ॥

बा० बु० प्र० भवः संसार एवाब्धिः समुद्रस्तं पतितानधिशोकैस्तप्तांल्लोका-नुद्दिधीर्षुरुद्धर्तुमिच्छुरयं मिथिलावनिर्मिथिलाभूमिस्तस्याः पालको जनकराजो भावो भावानन्द इतिसंज्ञकः पुनर्जात उत्पन्नः । ननु मुक्तिं गतस्य जनकस्य कुतः पुनरागतिरित्याह—इह दयालुतायाः किमप्यकार्यं नास्ति । दयापरवशेन पुनर्जात इतिभावः

पताका—संसार सागरमें पड़े हुये, महान् शोकसे सन्तप्त प्राणियोंके उद्धार करनेकी इच्छावाले श्रीजनकजी महाराज श्रीभावानन्द होकर पुनः यहां पधारे । यदि यह शङ्का हो कि वह तो मुक्त थे; मुक्तिसे कैसे लौट आये तो इसका उत्तर करते हैं कि—दयालुताके लिये कुछभी कार्य अकार्य नहीं है । अर्थात् दयाके अधीन होकर स्वसुखका त्याग करके अन्योंको सुखी करानेके लिये वह यहां पुनः पधारे ॥ ३२ ॥

आसीत्पुराधिमिथिलं वहुवर्हनामा,
ग्रामो वभूवुरमिता विवुधा हि यत्र ।

तत्रैव विप्रकुलजो रघुनाथमिश्रः,
सन्तिष्ठते स्म रघुनाथपदाब्जसेवी ॥ ३३ ॥

बा० बु० प्र० पुरा प्रागपि मिथिलं मिथिलायां बहुवर्हनामा ग्राम आसीत्। यत्रामिता असंख्याता विबुधा विद्वांसो बभूवुः। तत्रैव ग्रामे विप्रकुलजो रघुनाथस्य श्रीरामस्य पदाब्जसेवी चरणकमलकिङ्करो रघुनाथमिश्रः सन्तिष्ठते (पा० १।३।२२) स्म ॥ ३३ ॥

पताका–पहले मिथिलामें बहुवर्ह नामक एक ग्राम था। जहां बड़े२ असंख्य विद्वान् हो चुके हैं। उसी ग्राममें ब्राह्मणवंशावतंस, श्रीरामजीके चरण कमलानुरागी एक रघुनाथमिश्र रहते थे ॥ ३३ ॥

पत्न्यं च तस्य किल माधवमासि षष्ठ्यां,
कृष्णे दले शशिदिने परिघे च योगे।
मूले च विष्णुसरणौ निपुणो हि भावा-
नन्दो व्यजायत जगद्विदितानुभावः ॥ ३४ ॥

बा० बु० प्र० तस्य रघुनाथमिश्रस्य पत्न्यं गृहे माधवमासि वैशाखमासे कृष्णे दले पक्षे षष्ठ्यां तिथौ शशिदिने सोमवासरे मूले नक्षत्रे परिघे च योगे विष्णुसरणौ विष्णुमार्गे वैष्णवमार्गे इत्यर्थः, निपुणो जगति विदितोऽनुभावस्तेजो यस्य स भावानन्दो व्यजायत समुत्पन्नः ॥ ३४ ॥

पताका–उन्हीं रघुनाथमिश्रके घरमें वैशाखमास, कृष्णपक्ष, षष्ठी तिथि, सोमवार, मूल नक्षत्र, परिघ योगमें विष्णुमार्ग–वैष्णवधर्ममें निपुण, जगद्विख्यात तेजवाले, भावानन्दजी* उत्पन्न हुये ॥ ३४ ॥

वैशाखमासि बहुले च तिथौ रवौ च,
वारे रवावजपदाभिधभे तुलायाम्।
भीष्मोऽभवद्भुवनभक्तकुलावतंसः,
श्रीमान् कृपापरवशोऽधिधरं स सेनः ॥ ३५ ॥

* भावानन्दोऽथ जनको मूले परिघसंयुते।
वैशाखकृष्णषष्ठ्यां तु कर्के चन्द्रे जनिष्यति ॥
रामसेवापरो नित्यं स महात्मा महामतिः ॥३९॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥

वा० बु० प्र० वैशाखमासि बहुले कृष्णे पक्षे तिथौ रवौ द्वादश्यामितियावत्, वारे रवौ, अजपदाभिधभे पूर्वाभाद्रपदनक्षत्रे तुलालग्ने भुवने लोके यानि भक्तकुलानि तेषामवतंसः कृपापरवशः श्रीमान् भीष्मोऽधिधरं धरायां सेनोऽभवत् ॥ ३५ ॥

पताका—वैशाखमास, कृष्णपक्ष, द्वादशी तिथि, रविवार, पूर्वा भाद्रपद नक्षत्र, और तुला लग्नमें संसारके भक्तकुलोंमें श्रेष्ठ, श्रीमान् भीष्म कृपाके अधीन होकर पृथ्वी पर सेन—सेनाभक्त* होकर प्रकट हुये ॥ ३५ ॥

वैशाखमासि बहुले च गिरौ तिथौ च,
वारे शनावथ शिवेऽपि च वृश्चिके हि।
आप्यां बलिर्बलवदिष्टविरोधिरोधी,
नाम्ना बभूव भुवि भव्यगुणो धनेशः ॥ ३६ ॥

वा० बु० प्र० वैशाखमासि बहुले कृष्णपक्षेऽष्टम्यां तिथौ शनौ वारे आप्यां पूर्वाषाढानक्षत्रे शिवे शुभे वृश्चिके लग्ने बलवतामिष्टविरोधिनामिष्टव्याघातिनां रोधी निवारको बलिर्भुवि भव्याः सुन्दरा गुणा यस्मिन् स धनेशो धनो बभूव ॥ ३६ ॥

पताका—वैशाखमास, कृष्णपक्ष, अष्टमी तिथि, शनिवार, पूर्वाषाढा नक्षत्र, सुन्दर वृश्चिक लग्नमें बलवान् इष्ट—विरोधियोंको निवारण करनेवाले श्रीबलिजी पृथ्वीपर सुन्दर गुणोंवाले धन—श्रीधना‡ होकर प्रकट हुये॥३६॥

चैत्रे सिते शशिदिने च तिथौ शुभैका-
दश्यां शुकस्त्ववततार पुनः पृथिव्याम्।
श्रीगालवेतिशुभनामधरो धरायां,
सोऽभूदनन्यहरिवल्लभ ऊर्जितार्थः ॥ ३७ ॥

---

* भीष्मः सेनाभिधो नाम तुलायां रविवासरे।
द्वादश्यां माधवे कृष्णे पूर्वाभाद्रपदे च भे ॥
तदीयाराधने सक्तो ब्रह्मयोगे जनिष्यति ॥४०॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥

‡ वैशाखस्यासिताष्टम्यां वृश्चिके शनिवासरे।
धनाभिधो बलिः साक्षात्पूर्वाषाढ्युते शिवे ॥४१॥ अ० सं०, अ०, १३२ ॥

बा० बु० प्र० चैत्रे मासे सिते पक्षे शशिदिन एकादश्यां तिथौ पृथिव्यां शुकः पुनरवततार। श्रीगालवो गालवानन्द इति शुभनामधरः स शुको धरायामूर्जिता वलवन्तोऽर्था जगति धर्मप्रचाराद्यो यस्य सोऽनन्यश्चासौ हरिवल्लभश्चाभूत् ॥३७॥

पताका—चैत्रमास, शुक्लपक्ष, सोमवार, एकादशी तिथिमें पृथ्वीपर पुनः शुकजीने अवतार ग्रहण किया। श्रीगालवानन्द नाम धारण करके संसारमें धर्म प्रचार आदि महान् मनोरथवाले वह शुकदेवजी—श्रीगालवानन्दजी* अनन्य हरिभक्त हुये ॥ ३७ ॥

चैत्रे सिते कविदिने च तिथौ द्वितीया-
यां हर्षणे विदितधर्मसमस्ततत्त्वः।
भक्ताग्रणीर्दुरितजातविनाशकारी,
जातो यमोऽपि खलु दास ऋजू रमायाः ॥ ३८ ॥

बा० बु० प्र० चैत्रे मासे कविदिने शुक्रवासरे द्वितीयायां तिथौ हर्षणे योगे विदितं धर्मस्य समस्तं तत्त्वं यस्य स दुरितजातविनाशकारी सर्वाघध्वंसको भक्ताग्रणी-र्यमोऽपि ऋजुर्नम्रो रमाया दासो रमादास इतियावज्जातः ॥ ३८ ॥

पताका—चैत्र मास, शुक्रवार, द्वितीया तिथि, हर्षण योगमें धर्मके समस्त तत्त्वोंके जाननेवाले, सर्व पापोंके नाश करनेवाले, भक्तश्रेष्ठ श्रीयम जी नम्र रमादास× होकर प्रकट हुये ॥ ३८ ॥

इति देवसमाज आगते विनतिमाशु तस्य,
समयश्च कृतो निशम्य रावणरिपूत्तमेन।
प्रथमं स्वपदे यथा तथा च हरिधर्मवेदि-
विबुधा अवनौ समागता द्विदशकाः क्रमेण ॥३९॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये पञ्चमः सर्गः

* वासवो गालवानन्दो जात एकादशी तिथौ।
चैत्रे वैयासकिश्चन्द्रे कृष्णे लग्ने वृषे शुभे ॥४३॥ अ० सं०, अ०, १३२ ॥

× चैत्र शुक्लद्वितीयायां शुक्रे मेषेऽथ हर्षणे।
यम एव रमादासस्त्वाष्ट्रे प्रादुर्भविष्यति ॥४५॥ अ० सं०, अ० १३२ ॥

वा० बु० प्र० देवसमाजे आगते साकेते इत्यर्थः, तस्य देवसमाजस्य विनतिं भारतोद्धाराय प्रार्थनां च निशम्य रावणरिपूणामुन्नतेन श्रेष्ठेन भगवता श्रीरामचन्द्रेण स्वपदे साकेतलोके आशु इति उपर्युक्तः प्रथमं यथा समयः कृतः 'अहमवतरिष्यामि' इति, तथा तेन प्रकारेण द्विदशका द्वादश हरिधर्मवेदिनो भगवद्धर्मकोविदा विबुधा देवाः क्रमेणावनौ समागताः ॥ अतिशायिनीवृत्तम् ॥ ३९ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये वालबुद्धिप्रसादिन्यां पञ्चमः सर्गः

पताका—साकेतलोकमें जब देवसमाजने आकर भारतोद्धारकी प्रार्थना प्रभुसे कीथी, उस समय प्रभुने प्रतिज्ञा कीथी कि मैं प्रयागमें अवतार लूंगा। उसीके अनुसार द्वादश भगवद्धर्मकोविद देवताभी क्रमसे पृथ्वीपर अवतार लेकर प्रकट हुये ॥ ३९ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामा-नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां पञ्चमः सर्गः ।

अथ षष्ठः सर्गः

अथामेयमहाकीर्तिकायस्य सुमहौजसः ।
शनैः शनैः प्रववृधे तनयः पुण्यसद्मनः ॥ १ ॥

वा० बु० प्र० अथामेयो मातुमयोग्यो महाकीर्तिकायो यस्य, तथा सुमहदोजो यस्य तस्य पुण्यसद्मनस्तनयः श्रीमद्रामानन्दः शनैः शनैः प्रववृधे ॥ १ ॥

पताका—सुन्दर कर्मोंसे शोभित था कीर्तिकाय जिनका, ऐसे महा-प्रतापी श्रीपुण्यसदनशर्माके पुत्र श्रीरामानन्दस्वामी धीरे २ बढ़ने लगे ॥१॥

सृष्ट्यादिनित्यलीलो यो रामानन्दः शिशुर्भवन् ।
संचिक्रीडे स भूपृष्ठे लौकिकैर्बालकैः सह ॥ २ ॥

बा० बु० प्र० सृष्ट्यादिः सृष्टिः स्थितिः प्रलयो नित्यलीला यस्य स भगवान् रामानन्दः शिशुर्भवन् सन् भूपृष्ठे लौकिकैः प्राकृतैर्बालैः सह संचिक्रीडे (पा० १।३।२१) रमे ॥ २ ॥

पताका—सृष्टि, स्थिति, प्रलय जिनकी नित्यलीला है ऐसे भगवान् श्रीरामानन्दरूप बालक होकर पृथ्वीपर साधारण बालकोंके साथ क्रीडा कर रहे थे ॥ २ ॥

नानारत्नसमाकीर्णसिंहासनमहासनः ।
धूरिधूसरगात्रोऽसौ विजयीत द्विजात्मजः ॥ ३ ॥

बा० बु० प्र० नानारत्नैः समाकीर्णं सिंहासनमेव महासनं यस्य सोऽसौ धूरिधूसरगात्रो रजोरुषितशरीरो द्विजात्मजः श्रीरामानन्दो विजयीत (पा० १।३।१९) ॥

पताका—नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त—परिपूर्ण सिंहासनपर बैठने वाले ब्राह्मणकुमार भगवान् श्रीरामानन्द, बालकोंके साथ खेलनेसे धूरभरे शरीरवाले होकर विजयको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

जयताज्जानकीशोऽसौ साकेतावासलम्पटः ।
स्वभक्तपारतन्त्र्येण सनाथीकृतभूतलः ॥ ४ ॥

बा० बु० प्र० साकेतावासलम्पटः साकेतस्थितिप्रियः स्वभक्तानां पारतन्त्र्येण पारवश्येन सनाथीकृतं भूतलं येन सोऽसौ जानकीशः श्रीरामानन्दरूपो जयतात् ॥४॥

पताका—साकेत-वास-प्रिय, भक्तोंकी परतन्त्रतासे पृथ्वीको सनाथ करनेवाले, श्रीरामानन्दस्वामी विजयको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

यत्पादपङ्कजस्पृष्टं भारतं वर्षमुच्छ्रितम् ।
स्वर्गं च स्पर्द्धते जीयात्स पुण्यसदनात्मजः ॥ ५ ॥

बा० बु० प्र० चोऽप्यर्थे । यस्य पादपङ्कजैः स्पृष्टं भारतं वर्षमुच्छ्रितं सुवृद्धं सत्स्वर्गमपि स्पर्द्धते स पुण्यसदनात्मजो भगवाञ्छ्रीरामानन्दो जीयात् ॥ ५ ॥

पताका—जिनके चरणकमलसे स्पृष्ट होकर सु—वृद्ध भारतवर्ष स्वर्गकी स्पर्द्धा करता है वह श्रीरामानन्द विजयको प्राप्त हों ॥ ५ ॥

स्वपादाम्भोजनिक्षेपैर्वज्राङ्कुशध्वजादिभिः ।
प्रभुः भूषयामास शनैश्च वसुधातलम् ॥ ६ ॥

वा० बु० प्र० प्रभुः श्रीरामानन्दः स्वपादाम्भोजानां शनैर्निक्षेपैः हेतुभिर्वज्राङ्कुशध्वजादिभिः करणैः वसुधातलं संभूषयामास चलितुमारब्धवानिति भावः ॥६॥

पताका—प्रभु श्रीरामानन्द अपने चरणकमलको शनैः २ पृथ्वीपर रखनेके कारण चरणस्थ वज्र, अङ्कुश और ध्वज आदि चिह्नोंसे पृथ्वीको शोभित करने लगे अर्थात् चलने लगे ॥ ६ ॥

समये समये देवाः समागत्य त्रिविष्टपात् ।
तं प्रभुं क्रीडयामासुर्विविधैः क्रीडनकैर्मुदा ॥ ७ ॥

वा० बु० प्र० देवाः समये समये, वीप्सायां द्विर्भावः, त्रिविष्टपात्स्वर्गात्समागत्य विविधैर्नानाप्रकारैः क्रीडनकैः क्रीडासाधनैर्मुदा तं प्रभुं क्रीडयामासुः ॥ ७ ॥

पताका—देवता लोग समय २ पर स्वर्गसे आकर नाना प्रकारके खिलौनोंसे प्रभु—श्रीरामानन्दको खेलाते थे ॥ ७ ॥

केकीभूय प्रभोरग्रे षड्जस्वरनिनादिनः ।
गायन्तो ननृतुः सम्यक्केचनादितिनन्दनाः ॥ ८ ॥

वा० बु० प्र० केचनादितिनन्दना देवाः केकीभूय केकिनो मयूरा भूत्वा षड्जस्वरनिनादिनो गायन्तः सन्तः प्रभोरग्रे सम्यङ् ननृतुः ॥ ८ ॥

पताका—कितनेही देवता मोर बनकर, षड्ज स्वर बोलनेवाले होकर, गाते हुये, प्रभुके सम्मुख अच्छे प्रकारसे नाचते थे ॥ ८ ॥

अन्ये हंसस्वरूपेण मनोज्ञेन दिवौकसः ।
कमले इति विज्ञाय तस्य पादाम्बुजे दधुः ॥ ९ ॥

वा० बु० प्र० अन्ये दिवौकसो देवा मनोज्ञेन मनोहरेण हंसस्वरूपेण तस्य श्रीरामानन्दस्य पादाम्बुजे कमले (पा० १।१।११) इति विज्ञाय दधुर्दध्रुः ॥९॥

पताका—अन्य देवता सुन्दर हंसका रूप धारण करके स्वामीजीके चरणको कमल समझकर पकड़ लेते थे ॥ ९ ॥

उपप्रभु सुराः केचित्कोकिलालापकारिणः ।
हरिन्मणिमयस्तम्भेषूज्जगुः पञ्चमं स्वरम् ॥ १० ॥

बा० बु० प्र० केचित्सुरा उपप्रभु (पा० २।१।६) प्रभोः समीपे कोकिलालापकारिणः कोकिलस्वरभाषिणो हरिन्मणिमया ये स्तम्भास्तेषु पञ्चमं स्वरमुज्जगुः॥

पताका—कितनेही देवता कोकिलालापी होकर हरे रंगके मणियोंके बने हुये स्तम्भों पर बैठकर प्रभुके समीपमें पञ्चम स्वर बोलने लगे ॥१०॥

केचिच्च कन्दुकीभूय पतन्तश्च प्रभोः पुरः ।
विलुठन्तोऽदसीयं ते ऽरञ्जयन्नितरां मनः ॥ ११ ॥

बा० बु० प्र० केचित्ते देवाः कन्दुकीभूय कन्दुकरूपाणि गृहीत्वा प्रभोः पुरः पतन्तो विलुठन्तश्चादसीयं मनोऽमुष्य श्रीरामानन्दस्य चेतो नितरामरञ्जयन॥११॥

पताका—कितनेही देवता गेंद बन कर प्रभुके सम्मुख पड़ते हुये और लुढ़कते हुये उनका मनोरञ्जन करते थे ॥ ११ ॥

एवं नानाविधक्रीडानिचयैर्लालितः प्रभुः ।
पितरौ हर्षयन् पञ्च नीतवान् हायनानि सः ॥ १२ ॥

बा० बु० प्र० स प्रभुरेवं नानाविधानां क्रीडानां निचयैः समूहैर्लालितः सन् पितरौ मातरं पितरं च हर्षयन् पञ्च हायनानि वर्षाणि नीतवान् व्यतीतवान्॥

पताका—प्रभु श्रीरामानन्द इस प्रकारसे नाना प्रकारके खेलोंसे लालित होकर माता पिताको प्रसन्न करते हुये पांच वर्ष व्यतीत किये। अर्थात् पांच वर्षकी अवस्था हुई ॥ १२ ॥

षष्ठे च वत्सरे प्राप्ते पुण्यसद्मा द्विजोत्तमः ।
तं विहितान्यसंस्कारमुपनेतुं व्यचारयत् ॥ १३ ॥

बा० बु० प्र० द्विजोत्तमः पुण्यसद्मा श्रीपुण्यसदनः षष्ठे वत्सरे प्राप्ते सति विहिता अन्ये चौलादिसंस्कारा यस्य तं श्रीरामानन्दमुपनेतुं व्यचारयद्विचारितवान् ॥१३॥

पताका—श्रीपुण्यसदनशर्मा छठें वर्षके प्राप्त होने पर, चूडाकर्मादि संस्कार जिनके हो चुके थे ऐसे श्रीरामानन्द स्वामीजीका उपनयन संस्कार करनेके लिये विचार किये ॥ १३ ॥

मौहूर्तिकैः स चादिष्टे मुहूर्ते ह्यतिपावने ।
उपनेतुं जगन्नाथं ब्राह्मणान्समजूहवत् ॥ १४ ॥

बा० बु० प्र० स श्रीपुण्यसदनः मौहूर्तिकैर्ज्योतिर्विद्भिरादिष्टेऽतिपावने पवित्रतमे मुहूर्ते जगन्नाथं श्रीरामानन्दमुपनेतुमुपनयनसंस्कारेण संस्कर्तुं ब्राह्मणान् समजूहवदाहूतवान् ।। १४ ॥

पताका—ज्योतिषियोंसे बताये गये हुये परम पवित्र मुहुर्तमें जगन्नाथ भगवान् श्रीरामानन्द स्वामीजीका उपनयन संस्कार करनेके लिये श्रीपुण्यसदनशर्माने ब्राह्मणोंको बुलाया ॥ १४ ॥

तदुत्सवसमारम्भे कर्तुं च विधिमुत्तमम् ।
विमानानि समारुह्य दिवो देवाः समाययुः ॥ १५ ॥

बा० बु० प्र० तस्योत्सवस्योपनयनसंस्काररूपस्य समारम्भे प्रारम्भे उत्तमं विधिं कर्तुं सम्पादयितुं विमानान्यारुह्य दिवः स्वर्गाद्देवाः समाययुः समागतवन्तः॥१५॥

पताका—उस उपनयन संस्काररूप उत्सवके आरम्भमें उत्तम विधि सम्पादन करनेके लिये विमानोंपर चढ़ कर स्वर्गसे देवता सब आये ॥१५॥

प्रभोरग्रे न गन्तव्यं रिक्तहस्तैस्तु किङ्करैः ।
इति देवाः समादाय वस्तु स्वर्गीयमागताः ॥ १६ ॥

बा० बु० प्र० प्रभोः स्वामिनोऽग्रे रिक्तहस्तैः शून्यहस्तैः किङ्करैः सेवकैर्न गन्तव्यमिति हेतोर्देवाः स्वर्गीयं वस्तु समादाय गृहीत्वा आगताः ॥ १६ ॥

पताका—स्वामीके सम्मुख सेवकोंको रिक्त हस्त होकर नहीं जाना चाहिये ऐसा विचार कर देवता लोग स्वर्गीय वस्तुको लेकर आये ॥१६॥

स्वर्णप्राकारसंयुक्तं मणिस्तम्भसुशोभितम् ।
नानारत्नसमाजुष्टं चक्रुस्ते मण्डपं शुभम् ॥ १७ ॥

बा० बु० प्र० ते देवाः स्वर्णनिर्मितैः प्राकारैर्दुर्गैः संयुक्तं मणीनां स्तम्भैः सुशोभितं नानारत्नैः समाजुष्टं सुसज्जितं शुभं सुन्दरं मण्डपं चक्रुः ॥ १७ ॥

पताका—देवताओंने सोनेके दुर्गसे युक्त, मणियोंके स्तम्भोंसे शोभित, नानारत्नोंसे सुसज्जित सुन्दर एक मण्डप बनाया ॥ १७ ॥

जानुदघ्नी कृता वृष्टिः सुमनोभिरनन्तरम् ।
तस्यां पुरि सुमनसां कल्पवृक्षभुवामहो ॥ १८ ॥

व्या० चु० प्र० अनन्तरं मण्डपनिर्माणानन्तरमिन्द्रैः, सुमनोभिर्देवैस्तस्यां पुरि प्रयागे कल्पवृक्षभुवां कल्पवृक्षोत्पन्नानां सुमनसां पुष्पाणां जानुदघ्नी जानुपरिमाणवती वृष्टिः कृता ॥ १८ ॥

पताका–मण्डप निर्माण करनेके पश्चात् देवताओंने उस प्रयाग नगरमें कल्पवृक्षके पुष्पोंकी जानु पर्यन्त पुष्कल वृष्टि की ॥ १८ ॥

अम्भःकुम्भान् समादाय क्षीणमध्याः सुराङ्गनाः ।
परितो मण्डपागारं रेजिरे बद्धपङ्क्तयः ॥ १९ ॥

व्या० चु० प्र० क्षीणमध्यास्तनुमध्याः सुराङ्गना अम्भःकुम्भाञ्जलकलशान् समादाय मण्डपागारं परितः मण्डपस्य चतसृषु दिक्षु बद्धपङ्क्तयः सत्यो रेजिरे शुशुभिरे

पताका–पतली कमरवाली देवाङ्गनाएँ, जलके कलशोंको लेकर मण्डपके चारों ओर पंक्ति बांध कर खड़ी हुई शोभती थीं ॥ १९ ॥

रूपलावण्यसम्पद्भिर्हारिण्यो ब्राह्मणाङ्गनाः ।
दिदीपिरे नितम्बिन्यो गृहीताक्षतदीपिकाः ॥ २० ॥

व्या० चु० प्र० रूपलावण्यस्य रूपसौन्दर्यस्य सम्पद्भिर्हारिण्यो मनोहारिण्यो गृहीता अक्षतदीपिका याभिस्ता नितम्बिन्यो बृहन्नितम्बा ब्राह्मणाङ्गना ब्राह्मण्यो दिदीपिरे दिद्युतिरे ॥ २० ॥

पताका–रूपकी सुन्दरतासे मनको हरण करनेवालीं, मोटे नितम्ब-वालीं, हाथोंमें अक्षत-दीपिका ली हुई ब्राह्मणियां शोभायमान थीं ॥२०॥

कर्मठाः सुपठा नित्यं नित्यकर्मविधायिनः ।
तेन वर्णाग्रजास्तत्र समाहूताः समागताः ॥ २१ ॥

व्या० चु० प्र० कर्मठाः (पा० ५।२।३५) कर्मणि कुशलाः सुपठाः शोभनाध्ययनवन्तो नित्यं नित्यकर्मणां सन्ध्यावन्दनादीनां विधायिनः कर्तारो वर्णाग्रजा ब्राह्मणास्तेन श्रीपुण्यसदनशर्मणा समाहूताः सन्तः समागताः ॥ २१ ॥

पताका—कर्मोंमें निपुण, सुन्दर अध्ययन करनेवाले, नित्य नित्यकर्म—सन्ध्योपासनादि करनेवाले ब्राह्मण, श्रीपुण्यसदनशर्मासे बुलाये गये हुये वहां पर आये ॥ २१ ॥

लीलासद्म श्रियः पादपद्मयुग्ममतिप्रभम् ।
स्वस्तिकृत्स्वस्तिकोपेतं कलशादिसमन्वितम् ॥ २२ ॥

वा० बु० प्र० श्रियो लक्ष्म्या लीलासद्म क्रीडास्थलं स्वस्तिकृता स्वस्तिकेनोपेतं युक्तं कलशादिभिः सल्लक्षणैः समन्वितमतिप्रभं प्रभूतशोभं पादपद्मयुग्मं दधतमिति दूरेणान्वयः ॥ २२ ॥

पताका—लक्ष्मीजीका लीला स्थान कल्याणकारक स्वस्तिक आदि चिह्नोंसे युक्त, कलशादि लक्षणोंसे युक्त, अत्यन्त शोभित चरणवाले—॥२२॥

अङ्गुष्ठं च यवोपेतं दण्डचक्राङ्कुशध्वजैः ।
मत्स्यश्रीवत्ससिंहाश्वैश्चिह्नैः पाणी विशोभितौ ॥ २३ ॥

वा० बु० प्र० यवेनोपेतमङ्गुष्ठं दण्डचक्राङ्कुशध्वजैर्मत्स्यश्रीवत्ससिंहाश्वैश्चिह्नैर्विशोभितौ पाणी हस्तौ च दधतम्— ॥ २३ ॥

पताका—यवसे युक्त अंगूठेको तथा दण्ड, चक्र, अङ्कुश, ध्वज, मत्स्य, श्रीवत्स, सिंह और अश्व आदि चिह्नोंसे युक्त हस्तको धारण करते हुये—

रेखात्रययुतं कण्ठं वर्तुलं कम्बुशोभनम् ।
विमलं वदनं पूर्णचन्द्रकान्तिविडम्बनम् ॥ २४ ॥

वा० बु० प्र० रेखात्रयेण युक्तं कम्बुवच्छोभनं वर्तुलं गोलं कण्ठं पूर्णचन्द्रकान्तितुल्यं विमलं निर्मलं न तु चन्द्रवच्छ्यामतायुक्तं वदनं मुखं च दधतम्—॥२४॥

पताका—तीन रेखाओंसे युक्त, शंख समान सुन्दर, गोल कण्ठ तथा पूर्णचन्द्रमाके समान सुन्दर निर्मल वदनको धारण करते हुये— ॥ २४ ॥

शोभाश्रेष्ठावुभावोष्ठौ पक्वबिम्बसहोदरौ ।
कुन्दामन्दच्छवीन्दन्ताञ्जिह्वां रक्ताम्बुजप्रभाम् ॥ २५ ॥

व्या० सु० प्र० पक्वबिम्बसदृशावरक्तावतिरक्तावित्यर्थः, शोभया श्रेष्ठ उभा ओष्ठौ तथा कुन्दानां पुष्पविशेषाणाममन्दमत्यर्थं विशिष्टां ... शोभां ... प्रभेव प्रभा यस्यास्तां जिह्वां च दधतम्— ॥ २५ ॥

पताका—पके हुये बिम्बफलके समान लाल २ रमणीक ओष्ठ, कुन्द पुष्पके समान परम मनोहर दांत और रक्त कमल समान जिह्वाको धारण करते हुये— ॥ २५ ॥

दधतं तं श्रियः कान्तं रामानन्दं जगद्गुरुम् ।
सविधि स्नपयामास बिडौजाश्च महौजसम् ॥ २६ ॥

व्या० सु० प्र० महौजसं जगद्गुरुं तं श्रियः कान्तं श्रीपतिं श्रीरामानन्दं बिडौजा इन्द्रः सविधि स्नपयामास (म० व्याख्यानुसारं च) ॥ २६ ॥

पताका—परम तेजस्वी जगद्गुरु श्रीरामानन्द स्वामीजीको इन्द्रने विधि पूर्वक स्नान कराया ॥ २६ ॥

श्वेताम्बरं परिधाप्य प्रसन्नवदनाम्बुजम् ।
सानिनाय तमाम्नायसारं तं मण्डपं ततः ॥ २७ ॥

व्या० सु० प्र० ततः स (पा० ३।१।१३४) इन्द्रः प्रसन्नवदनाम्बुजं विहसितमुखकमलमाम्नायस्य वेदस्य सारं सारभूतं तं श्रीरामानन्दं श्वेताम्बरं परिधाप्य तं मण्डपमानिनायानीतवान् ॥ २७ ॥

पताका—तदनन्तर वह इन्द्र हँसते हुये मुखवाले, वेदोंके सारभूत, उन श्रीरामानन्द स्वामीको श्वेत वस्त्र पहिराकर उस मण्डपमें ले आये॥२७॥

नीलरत्नमये तत्र तिष्ठन् स च शुभासने ।
नभोमध्यविराजीन्दुरिवशोभामशिश्रियत् ॥ २८ ॥

व्या० सु० प्र० तत्र मण्डपे नीलरत्नमये शुभासने तिष्ठन् स श्रीरामानन्दो नभस आकाशस्य मध्ये विराजी शोभीन्दुः शशीव शोभामशिश्रियच्छ्रितवान् ॥२८॥

पताका—उस मण्डपमें नीलरत्नोंके बने सिंहासनके ऊपर बैठे हुये श्रीस्वामीजी आकाशके मध्यमें शोभित चन्द्रमाकी शोभाको प्राप्त कर रहे थे।

वेदत्रयीसरिद्धारा पुनरप्यत्र भूतले ।
अप्रतिहतसंचारा पापिनः प्रपविष्यति ॥ २९ ॥
आवेदयितुमित्येवं निःशङ्कं निखिलं जगत् ।
गुरुणा लोकगुरुणा सुतः सूत्रेण योजितः ॥ ३० ॥ युग्मम् ॥

व्रा० बु० प्र० पुनरप्यत्र भूतलेऽप्रतिहतोऽनिषिद्धः सञ्चारो यस्याः सा वेदत्रयीरूपायाः सरितो नद्या धारा पापिनो जनान् प्रपविष्यतीत्येवं निखिलं जगन्निश्शङ्कमावेदयितुं ज्ञपयितुं गुरुणा महता लोकगुरुणा श्रीपुण्यसदनेनेत्यर्थः, सूत्रेण यज्ञोपवीतेन सुतो योजितः ॥ २९ ॥ ३० ॥

पताका—'पुनः इस पृथ्वीपर अप्रतिहत प्रवाहवाली श्रुतिरूपी नदीकी धारा पापियोंको पवित्र करेगी' इस वस्तुको सब लोगोंको विदित करानेके-लिये महान् लोकगुरु—श्रीपुण्यसदनशर्माने अपने पुत्रका यज्ञोपवीत संस्कार कराया ॥ २९॥३० ॥

ब्राह्मणैः पठ्यमानासु श्रुतिषु श्रुतिपारगैः ।
गीयमानेषु गीतेषु गीतिविद्याविशारदैः ॥ ३१ ॥
त्रैलोक्यगुरुतां तस्य ज्ञपयन्ती त्रयी यथा ।
सूत्रत्रयी च तद्वक्षःस्थल आलोकिता जनैः ॥ ३२ ॥ युग्मम् ॥

व्रा० बु० प्र० श्रुतिपारगैर्ब्राह्मणैः श्रुतिषु पठ्यमानासु सतीषु गीतिविद्याविशारदैर्गायनकलानिपुणैर्गीतेषु गीयमानेषु सत्सु तस्य श्रीरामानन्दस्य त्रैलोक्यगुरुतां ज्ञपयन्ती बोधयन्ती सूत्रत्रयी यज्ञोपवीतस्येतिभावः, त्रयीव श्रुतित्रयीव तद्वक्षःस्थले जनैरालोकिता ॥ ३१॥३२ ॥

पताका—श्रुतिपारंगत ब्राह्मण जिस समय वेदध्वनि कर रहे थे, तथा परम चतुर गवैया लोग गीत गा रहे थे, उस समय "रामानन्दजी तीनों लोकके गुरु हैं" इस वस्तुको बोधन कराते हुये यज्ञोपवीतके तीनों सूत्रों-को तीनों वेदोंके समान उनके वक्षःस्थल पर सब लोगोंने देखा॥३१॥३२॥

अहोदुर्जनकान्तारदुर्गमाध्वातिखेदिता ।
वेदत्रयीव तं नाथं सूत्रत्रय्याशु शिश्रिये ॥ ३३ ॥

बा० बु० प्र० अहो इति हर्षे । दुर्जना एव कान्तारो जङ्गलस्तस्य दुर्गमेणाध्वना मार्गेणातिनिर्विदिता खिन्ना मानिता वेदत्रयीव तं नाथं यज्ञसूत्री आशु शीघ्रं शिश्रिये श्रितवती ॥ ३३ ॥

पताका--नास्तिकादि दुर्जनरूप जङ्गलके दुर्गम मार्गद्वारा पीडित वेद-त्रयी जैसे भगवान्का आश्रय करती है उसी प्रकार यज्ञोपवीतकी सूत्रत्रयीने शीघ्रही उनका-श्रीरामानन्दजीका आश्रयण किया ॥ ३३ ॥

पच्छः शशंस सावित्रीं सवित्रीं सर्वसम्पदाम् ।
श्रीमान् पुण्यसदनोऽसौ ततो लोकम्पृणं सुतम् ॥ ३४ ॥

बा० बु० प्र० ततो यज्ञोपवीतदानानन्तरमसौ श्रीमान् श्रीपुण्यसदनो लोकम्पृणं (बा० लोकस्य पृणे) लोकानन्दप्रदं सुतं श्रीरामानन्दं सर्वसम्पदां सवित्रीमुत्पादयित्रीं सावित्रीं पच्छः (पा० ५।४।४३) पादं पादमिति गायत्र्यंशं । शंसिर्द्विकर्मकः ॥ ३४ ॥

पताका–यज्ञोपवीत देनेके पश्चात् श्रीमान् श्रीपुण्यसदनशर्माने सबको आनन्द देनेवाले अपने पुत्र श्रीरामानन्दको; सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करने वाली गायत्रीके पाद २ का उपदेश किया ॥ ३४ ॥

त्रिपदां स च गायत्रीं महाव्याहृतिपूर्विकाम् ।
सरहस्यां रहस्याप्य तत्त्वत्रयमिवावभौ ॥ ३५ ॥

बा० बु० प्र० स श्रीरामानन्द सरहस्यां रहस्ययुक्तां महाव्याहृतिपूर्विकां भूर्भुवःस्वरितिमहाव्याहृतयस्तत्पूर्विकां त्रिपदां गायत्रीं रहस्येकान्ते आप्य प्राप्य तत्त्वत्रयमिवावभौ शुशुभे ॥ ३५ ॥

पताका–वह श्रीरामानन्दजी रहस्य युक्त तथा महाव्याहृतिपूर्वक त्रिपदा गायत्रीको एकान्तमें प्राप्त करके तत्त्वत्रयके समान शोभित होने लगे ॥३५॥

सर्वशास्त्रमहाम्भोधितरणिर्विदुषां मणिः ।
राघवानन्द इत्याह्व आसीद्यतिपतिः सुधीः ॥ ३६ ॥

बा० बु० प्र० सर्वशास्त्राण्येव महाम्भोधिस्तस्य तरणिर्नौरिव विदुषां मणिः प्रधानं राघवानन्द इत्याह्वः सुधीः शोभनध्यानवान् यतिपतिरासीत् ॥ ३६ ॥

पताका—सम्पूर्ण शास्त्ररूपी महासागरकेलिये नौका समान विद्वानोंमें श्रेष्ठ, सुन्दर विचारवाले श्रीराघवानन्द नामक एक सन्यासी थे ॥ ३६ ॥

हर्यङ्घ्रिनखसंस्पृष्टपूतगङ्गादिदृक्षया ।
सर्वजननमस्यायां वाराणस्यामुवास सः ॥ ३७ ॥

वा० बु० प्र० हरेरङ्घ्र्योर्नखैः संस्पृष्टाया अतएव पूतायाः पवित्राया गङ्गाया दिदृक्षया दर्शनेच्छया स यतिपतिः सर्वजननमस्यायां वाराणस्यामुवास ॥ ३७ ॥

पताका—भगवान्के चरण-नखसे संस्पृष्ट अतएव पवित्र गङ्गाजीके दर्शनकी इच्छासे वह श्रीराघवानन्दजी सर्व जनोंके नमस्कार करने योग्य वाराणसीमें निवास करते थे ॥ ३७ ॥

सविधे तस्य सविधि विद्यालाभाय स द्विजः ।
अजीहयच्च तं बालं रामानन्दं महामतिम् ॥ ३८ ॥

वा० बु० प्र० स द्विजः श्रीपुण्यसदनः सविधि ब्रह्मचर्यादिपुरस्सरं विद्यालाभाय महामतिं विद्याग्रहणसमर्थं तं बालं रामानन्दं तस्य श्रीराघवानन्दस्य सविधेऽजीहयदजीगमत् । हि गतौ वृद्धौ च (पा० धा० स्वा० ११) ॥ ३८ ॥

पताका—वह श्रीपुण्यसदनशर्मा विधिपुरस्सर ब्रह्मचर्यादि धारण करके विद्याध्ययन करानेके निमित्त महाबुद्धिवाले बालक श्रीरामानन्दको श्रीराघवानन्दके समीप ले गये ॥ ३८ ॥

बालकोऽपि स गृह्णानोऽजिनाषाढकमण्डलून् ।
पूज्यान् सर्वान् प्रणम्याथ प्रतस्थे शाङ्करीं पुरीम् ॥ ३९ ॥

वा० बु० प्र० अथ वेदाध्ययनयोग्यतासम्पादकयज्ञोपवीतसंस्कारानन्तरं स बालकोऽपि सर्वान् पूज्यान् प्रणम्याजिनं मृगचर्माषाढं दण्डं कमण्डलुं च गृह्णानः शाङ्करीं पुरीं काशीं प्रतस्थे ॥ ३९ ॥

पताका—यज्ञोपवीत होनेके पश्चात् बालक श्रीरामानन्दभी घरके सब पूज्य जनोंको प्रणाम करके मृगचर्म, दण्ड, कमण्डलु ले कर काशीकेलिये प्रस्थान किये ॥ ३९ ॥

सुशीलाहृदयाविष्टापत्यसुस्नेहतन्तुभिः ।
पित्रा सह निरक्राम्यद्गृहात्स जगतः पिता ॥ ४० ॥

बा० बु० प्र० सुशीलाया हृदय आविष्टो योऽपत्यसुस्नेहस्तत्तन्तुभिः सह, पित्रा च सह जगतः पिता श्रीरामानन्दो गृहान्निरक्राम्यत् ॥ ४० ॥

पताका—माता सुशीलाके हृदयमें स्थित अपत्य—स्नेहरूप तन्तुओं तथा पिताके साथ, निखिल जगत्के पिता श्रीरामानन्द घरसे निकले ॥४०॥

विमानानि विमानानि वायुवेगातिगानि च ।
द्युसदस्ते समादाय प्रभोरग्रे समाययुः ॥ ४१ ॥

बा० बु० प्र० ते द्युसदो देवेन्द्रप्रमुखा देवा विमानांनि विविधमानयुक्तानि वायुवेगातिगानि वायुमप्यतिक्रम्य गमनसमर्थानि विमानानि समादाय प्रभोरग्रे समाययुः ॥ ४१ ॥

पताका—इन्द्र प्रभृति देवता वायुके वेगकोभी उल्लङ्घन करनेवाले छोटे बड़े अनेक विमानोंको लेकर प्रभु श्रीरामानन्दके आगे उपस्थित हुये ॥४१॥

नारोहत्स परं तानि ब्रह्मचर्यव्रताग्रही ।
स च्छिन्द्याद्वेदमर्यादां चेत्परः कोनुपालयेत् ॥ ४२ ॥

बा० बु० प्र० परं स तानि विमानानि नारोहन्नारुरोह । यतः स ब्रह्मचर्यव्रताग्रही आसीत् । चेत्स वेदमर्यादां छिन्द्यात्, परोऽन्यः को नु पालयेत् ? ॥४२॥

पताका—परन्तु वह श्रीरामानन्द उन विमानोंपर चढ़े नहीं । क्योंकि वह ब्रह्मचर्यव्रतके आग्रहवाले थे । ब्रह्मचारीको यानादिका आरोहण निषिद्ध है । यदि वही वेद मर्यादाका छेदन करते तो अन्य कौन पालन करता ? ।

अनावृताभ्यां पादाभ्यां पृथिव्यां गच्छति प्रभौ ।
स्वामिसेवकधर्मज्ञा खेचरा अपि भूचराः ॥ ४३ ॥

बा० बु० प्र० अनावृताभ्यां पादाभ्यां पृथिव्यां भूमौ प्रभौ श्रीरामानन्दे-गच्छति सति स्वामिसेवकयोर्धर्मस्य ज्ञा ज्ञातारः खेचरा देवा अपि भूचरा जाताः॥

पताका—श्रीरामानन्द नंगे पदसे पृथ्वीपर चल रहे थे इसे देखकर स्वामी और सेवकके धर्मके जाननेवाले देवताभी पृथ्वीपर चलने लगे॥४३॥

अनुजग्मुस्तथा देवास्तं प्रभुं पादचारिणम् ।
उष्णार्ताविभ्रकीटा नूनं यथार्बुदधराधरे ॥ ४४ ॥

बा० बु० प्र० देवाः पादचारिणं तं प्रभुं श्रीरामानन्दं तथा तेन प्रकारेणा-नुजग्मुर्यथोष्णार्तौ निदाघकालेऽर्बुदधराधरेऽर्बुदपर्वतेऽभ्रकीटा आकाश उड्डयमाना अत्यल्प-जीवा नूनमनुगच्छन्ति । अर्बुदाचले सहस्रशस्तेऽल्पकीटाः संभूय गच्छतां मनुष्याणां मस्तकमनुधावन्ति । तद्वद्देवा आचार्यमनुधावन्ति स्म ॥ ४४ ॥

पताका—देवगण प्रभुके पीछे २ उस प्रकारसे मिलकर चलने लगे जैसे आबू पहाड़के उड़नेवाले छोटे २ जीव ग्रीष्मऋतुमें मनुष्योंके मस्तकके पीछे दौड़ते हैं । आबूमें एक प्रकारके घासके समान अत्यल्प जीव होते हैं जो मनुष्योंको देखतेही उनके पीछे पड़ जाते हैं । और सहस्रों मिलकर बहुत दूरतक चले जाया करते हैं ॥ ४४ ॥

तेऽशृण्वन् पथि गच्छन्तः कोकिलामधुरस्वरम् ।
विरहानलसंतप्ततरुणीवाचिकं यथा ॥ ४५ ॥

बा० बु० प्र० ते देवा गच्छन्तः पथि मार्गे विरहानलेन संतप्तानां तरुणीनां वाचिकं सन्देशं यथा इव कोकिलानां मधुरस्वरमशृण्वन् श्रुतवन्तो वसन्तस्य प्रवृत्तत्वात्॥

पताका—उन देवगणने मार्गमें विरहानलसे सन्तप्त युवती स्त्रियोंके सन्देशके समान कोकिलाओंके मधुरस्वरका श्रवण किया । 'वसन्ते ब्राह्मण-मुपनीयत' । वसन्त ऋतुमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत होता है अतः उस समय जब श्रीरामानन्द उपनीत हुये- वसन्तका प्रारम्भ हो चुका था । अतएव मार्गमें वासन्तिक दृश्यको देवोंने देखा ॥ ४५ ॥

पुँस्कोकिलकुलाक्रान्तकमनीयाम्रमञ्जरीः ।
उन्मनस्का अभूवँस्ते वीक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥

बा० बु० प्र० पुँस्कोकिलानां कुलैराक्रान्ताः परिपूर्णा इति यावत्, अतएव कमनीयाः सुन्दरीराम्रमञ्जरीर्वीक्षमाणास्ते देवा मुहुर्मुहुः पुनः पुनरुन्मनस्का व्यग्रमानसा अभूवन् ॥ ४६ ॥

पताका—पुंस्कोकिलके समूहसे आक्रान्त अतएव सुन्दर आम्रकी मञ्जरियोंको देखते हुये वह देवगण पुनः २ व्याकुल चित्तवाले हो जाते थे

पालाशकलिकालीनं केसरं वीक्ष्य ते मुदा ।
चन्द्राननां प्रियां सर्वेऽस्मरन्स्मरशराहताः ॥ ४७ ॥

बा० बु० प्र० पलाशकलिकासु लीनं स्थितं केसरं मुदा वीक्ष्य स्मरशरैराहताः सन्तस्ते सर्वे चन्द्राननां प्रियामस्मरन् ॥ ४७ ॥

पताका—पलाशकी कोढियोंमें स्थित केसरको प्रसन्नता पूर्वक देखकर कामके बाणोंसे आहत होकर उन सब देवोंने चन्द्रमुखी अपनी २ प्रियाका स्मरण किया ॥ ४७ ॥

सुवर्णान् कर्णिकारांस्ते दृष्ट्वा निर्गन्धमात्मनाम् ।
दौर्भाग्यं तोलयामासुर्दहतां विरहानले ॥ ४८ ॥

बा० बु० प्र० ते देवा सुवर्णान् शोभनवर्णसंयुक्तान् कर्णिकारान्निर्गन्धान् गन्धशून्यान्दृष्ट्वा विरहानले दहतामात्मनां दौर्भाग्यं तोलयामासुः ॥ ४८ ॥

पताका—सुवर्ण समान सुन्दर वर्णवाले कणिकार—कनेरके पुष्पोंको निर्गन्ध देखकर उन देवताओंने विरहानलमें भस्म होते हुये अपने दौर्भाग्यकी तुलना की ॥ ४८ ॥

विलीनं षट्पदं दृष्ट्वा प्रफुल्लसरसीरुहे ।
फुल्लपद्मायताक्षीणां कस्य जाता न च स्मृतिः ॥ ४९ ॥

बा० बु० प्र० प्रफुल्लसरसीरुहे विलीनमन्तःस्थितं षट्पदं भ्रमरं दृष्ट्वा कस्य फुल्लपद्मे इवायते दीर्घे अक्षिणी यासां तासां स्मृतिर्न जाता ? ॥ ४९ ॥

पताका—विकसित कमलपुष्पमें अन्तःस्थित भ्रमरको देखकर किसे कमल समान नेत्रवाली स्व २ प्रियाका स्मरण न हुआ ॥ ४९ ॥

लतासुमरसास्वादवाञ्छया मधुपावलीम् ।
वीक्ष्यायान्तीं च ते विभ्युः स्मरबाणावलीमिव ॥ ५० ॥

वा० बु० प्र० लतानां सुमानां रसस्यास्वादवाञ्छयाऽऽयान्तीं मधुपावलीं स्मरस्य कामस्य बाणावलीमिव वीक्ष्य ते सुरा विभ्युर्भीतवन्तः ॥ ५० ॥

पताका—लताओंके पुष्पोंके रसका आस्वाद लेनेके लिये आती हुई भ्रमर पंक्तिको देखकर, उसे कामके बाणोंकी पंक्ति समझ कर सब देवता डर गये ॥ ५० ॥

सुमनःसुमनःपुञ्जे शृण्वन्तः षट्पदध्वनिम् ।
समीषुस्ते प्रियासङ्गं सुराः सुरतलम्पटाः ॥ ५१ ॥

वा० बु० प्र० सुमनःसुमनःपुञ्जे प्रतिपुष्पपुञ्जमित्यर्थः. षट्पदध्वनिं भ्रमर-गुञ्जनं शृण्वन्तः सुरतेषु लम्पटास्ते सुराः प्रियासङ्गं समीषुर्वाञ्छितवन्तः ॥ ५१ ॥

पताका—प्रत्येक पुष्पके गुच्छोंमें भ्रमरके गुंजारको सुनते हुये उन विषयी देवताओंने स्त्रियोंके सङ्गकी इच्छा की ॥ ५१ ॥

अविकासिपलाशानि लोहितानि निरीक्ष्य ते ।
निकामं कामयामासुर्वल्लभानां नखक्षतम् ॥ ५२ ॥

वा० बु० प्र० लोहितानि रक्तवर्णान्यविकासीन्यफुल्लानि च तानि पलाशानि पलाशपुष्पाणि निरीक्ष्य ते देवा वल्लभानां प्रियाणां सम्बन्धि नखक्षतं निकामं कामयामासुः ॥ ५२ ॥

पताका—विना फूले हुये रक्तवर्णोंके पलास-पुष्पोंको देखकर उन देवोंने अपनी प्रियाओंके स्तनादि अङ्गोंमें नख क्षत करनेकी इच्छा की॥५२॥

मनोमुक्तापहाराय शरैः पञ्चशरेण ते ।
अत्यन्तं पीडिता देवा बभूवुरपचेतनाः ॥ ५३ ॥

वा० बु० प्र० मनांस्येव मुक्तास्तासामपहाराय पञ्चशरेण कामेन शरैरत्यन्तं पीडिताः खेदितास्ते देवा अपचेतना मूर्छिता बभूवुः ॥ ५३ ॥

पताका—मनरूपी मुक्ताका हरण करनेके लिये कामके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर वे देवता मूर्च्छित हो गये ॥ ५३ ॥

असमर्थ्यं हि जराजीर्णशीर्णदीर्णकलेवरैः ।
मन्मथानीकमुन्मथ्य मुक्ताः स्युर्निर्जराः कथम् ॥ ५४ ॥

बा० बु० प्र० जीर्णानि गलितानि शीर्णानि स्फुटितानि दीर्णानि द्वैधीभूतानि च तानि कलेवराणि च जीर्णशीर्णदीर्णकलेवराणि जरया न जीर्णशीर्णदीर्णकलेवराणि जराऽजीर्णशीर्णदीर्णकलेवराणि तैरित्थंभूतैरतिनवैरित्यर्थः शरीरैरमथ्यं मथितुमयोग्यं मन्मथस्य कामस्यानीकं सैन्यं कथमुन्मथ्य तिरस्कृत्य निर्जरा देवाः मुक्ताः स्युः ॥ ५४ ॥

पताका - कामकी सेनाको वृद्ध शरीरही जीत सकता है, तरुण नहीं। अतः वृद्धावस्थासे जो शरीर न जीर्ण हुये हैं, न शीर्ण हुये हैं और न दीर्ण हुये हैं, ऐसे शरीरोंसे—अर्थात् जवान शरीरसे न मथन करने योग्य कामकी सेनाको कैसे मथन करके वे देवता मुक्त हो सकते थे ॥ ५४ ॥

एकां गिरिणदीं प्राप्य विश्रम्य व्यथितात्मनः ।
दृष्ट्वा निवर्तयामास देवान्स्वः सर्ववित्प्रभुः ॥ ५५ ॥

बा० बु० प्र० सर्ववित्सर्वज्ञः प्रभुरेकां गिरिणदीं (पा० वा० ८।६।१०) प्राप्य, विश्रम्य श्रमं दूरीकृत्य देवान् व्यथितात्मनो व्याकुलचित्तान्दृष्ट्वा स्वः स्वर्गं प्रति निवर्तयामास ॥ ५५ ॥

पताका—मार्गमें एक पहाड़ी नदी आयी। वहां विश्राम करके सर्वान्तर्यामी प्रभु श्रीरामानन्दने देवताओंको विकल देखकर स्वर्गके प्रति लौटा दिया ॥ ५५ ॥

सानुचरेण तातेन ततो गच्छन्महाप्रभुः ।
पत्काषी जगत्काशी चोपकाशि समाययौ ॥ ५६ ॥

बा० बु० प्र० ततः सानुचरेणानुचरैः सह विद्यमानेन तातेन पित्रा सह पत्काषी (पा० ६।३।५४) पादचारी जगत्काशी जगत्प्रकाशको महाप्रभुर्गच्छन्नुपकाशि (पा० २।१।६) काश्याः समीपं समाययौ ॥ ५६ ॥

पताका—सेवक वर्ग तथा श्रीपुण्यसदनशर्माजीके साथ, संसार मात्रको प्रकाश देनेवाले महाप्रभु पैदल चलते हुये काशीके समीप आये ॥५६॥

अभ्रंलिहा गृहास्तत्र सर्वर्तुषु सुखाकराः ।
तरलाभिः पताकाभिराह्वयन्निव तं प्रभुम् ॥ ५७ ॥

बा० बु० प्र० तत्र काश्यां सर्वर्तुषु सर्वेष्वृतुषु सुखाकराः अभ्रंलिहा नभश्चुम्बिनो गृहास्तरलाभिश्चञ्चलाभिः पताकाभिस्तं प्रभुमाह्वयन्निवाहूतवन्त इव ॥५७॥

पताका—उस काशीमें सर्व ऋतुओंमें सुख देनेवाले ऊंचे २ गृह अपनी चञ्चल पताकाओंसे मानों श्रीरामानन्दप्रभुको बुला रहे थे ॥ ५७ ॥

गङ्गाया मन्द्रनिर्घोषो दूरादेव विशुश्रुवे ।
स्वच्छवारां ततः पश्चाद्धारा संददृशे क्षणात् ॥ ५८ ॥

बा० बु० प्र० दूरादेव गङ्गाया मन्द्रो गभीरो निर्घोषः शब्दो विशुश्रुवे श्रुतः । ततः पश्चात्क्षणेन स्वच्छवारां निर्मलजलानां धारा संददृशे ॥ ५८ ॥

पताका—दूरसेही श्रीगङ्गाजीका गम्भीर शब्द सुनाई पड़ा और पश्चात् निर्मल जलकी धारा दिखाई पड़ी ॥ ॥ ५८ ॥

सुरासुरनमन्मौलिलालिताब्जपदद्वयीम् ।
महापापनगेन्द्राणां वज्रधारामिवोत्कटाम् ॥५९॥

बा० बु० प्र० सुरासुरैर्नमद्भिर्मौलिभिर्लालिता सेविताब्जपदद्वयी यस्यास्तथा महान्ति च पापानि तान्येव नगेन्द्रा महापर्वतास्तेषां वज्रधारामिवोत्कटां तीक्ष्णाम्, दृष्ट्वेति दूरेणान्वयः ॥ ५९ ॥

पताका—सुर और असुर सबही जिसके चरणकी सेवा करते हैं तथा जो बड़े २ पापरूपी पहाडोंको काटनेके लिये वज्रकी धाराके समान तीक्ष्ण है— ॥ ५९ ॥

कपिलोच्छापसंपातप्राप्ता ये सगरात्मजाः ।
तेषां सुरपुरारोहे निश्रेणिमिव राजिताम् ॥६०॥

बा० बु० प्र० कपिलस्य मुनेरुच्छापेनोग्रेण शापेन सम्पातं सम्यक्पतनं भस्मावशेषभवनरूपं प्राप्ता ये सगरात्मजास्तेषां सुरपुरारोहे स्वर्गगमने निश्रेणिं सोपानमिव राजिताम् ॥ ६० ॥

पताका—कपिल मुनिके उग्र शापसे सगरराजाके जो पुत्र भस्मताको प्राप्त हुये थे उनके स्वर्ग जानेके लिये सोपानके समान— ॥ ६० ॥

भारतक्ष्मामणीभूततत्पुरीरमणीजनैः ।
पीनस्तनसमाहत्योत्तुङ्गीकृततरङ्गिकाम् ॥६१॥

बा० बु० प्र० भारतक्ष्मा भारतभूस्तस्यां मणीभूतायाः प्रधानीभूतायास्तस्याः काश्याः पुर्य्या रमणीजनैः पीनस्तनयोराहत्याऽऽघातेनोत्तुङ्गीकृतास्तरङ्गिका यस्याः सा ताम् ॥ ६१ ॥

पताका–भारतभूमिमें प्रधान उस काशीपुरीकी युवती स्त्रियोंने मोटे २ स्तनोंके आघातसे जिसके तरङ्गको ऊंचा किया है– ॥ ६१ ॥

नितम्बिनीस्तनतटप्रहारत्रुटितस्रजाम् ।
पुष्पकिञ्जल्कनिचयव्याप्त्यारक्तीकृताम्बुकाम् ॥६२॥

बा० बु० प्र० नितम्बिन्याः स्तनतटप्रहारैस्त्रुटितानां स्रजां मालानां पुष्पाणां किञ्जल्कानां केसराणां निचयस्य व्याप्त्या आरक्तीकृतान्यम्बूनि यस्याः सा ताम्॥६२॥

पताका–मोटे २ नितम्बवाली स्त्रियोंके स्तन तटके प्रहारोंसे टूटी हुई मालाओंके पुष्पोंके केसरके फैल जानेसे थोड़ा २ रक्त हो गया था जल जिसका– ॥ ६२ ॥

दृष्ट्वा च मातरं गङ्गां सर्वाघौघविभञ्जिकाम् ।
शिरसा प्रणनामासौ द्विजः सतनयो मुदा ॥६३॥

बा० बु० प्र० सर्वेषामघानामोघस्य विभञ्जिकां विमर्दिकां शेषषष्ठ्या समासः । गङ्गां मातरं दृष्ट्वा सतनयः श्रीरामानन्देन सहासौ द्विजः श्रीपुण्यसदनो मुदा शिरसा प्रणनाम ॥ ६३ ॥

पताका–सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाली गङ्गामाताको देखकर श्री रामानन्दस्वामीजीके सहित श्रीपुण्यसदनशर्मा प्रसन्नतापूर्वक शिर झुकाकर प्रणाम किये ॥ ६३ ॥

श्रुतिस्मृत्यादिसच्छास्त्रविद्यारत्नप्रकाशिका ।
अचिरादजिरे चाक्ष्णोस्तयोरैत्काशिकापुरी ॥६४॥

बा० बु० प्र० श्रुतयो वेदाः स्मृतयो मन्वादिधर्मशास्त्राणि तद्रूपेषु सच्छास्त्रेषु

यानि विद्यारत्नानि तेषां प्रकाशिका काशिका काशी पुरी अचिराच्छीघ्रं तयोरक्ष्णो-र्नेत्रयोरजिरे प्राङ्गण ऐदागता ॥ ६४ ॥

पताका—वेद तथा धर्मशास्त्रादिरूप सच्छास्त्रोंमें जो विद्यारूपी रत्न है उनका प्रकाश करनेवाली वह काशीपुरी श्रीपुण्यसदनशर्मा तथा श्रीरामानन्दके नेत्रोंके सामने आ गई ॥ ६४ ॥

यया सौभाग्यभाजिन्या जनन्याद्यापि सर्वथा ।
वात्सल्यादात्मकन्येव त्रायते सुरभारती ॥६५॥

बा० बु० प्र० सौभाग्यभाजिन्या सौभाग्यवत्या यया जनन्या काश्याऽऽद्यापीदानीमपि सुरभारती संस्कृतभाषा वात्सल्यादात्मकन्येव त्रायते रक्ष्यते ॥ ६५ ॥

पताका—सौभाग्यवती जो काशीपुरी—जैसे वात्सल्यसे माता अपनी कन्याकी रक्षा करती है—वैसेही आज भी देवभाषा—संस्कृतभाषाकी रक्षा कर रही है ॥ ६५ ॥

सद्धर्ममर्मधौरेयाममेयां तां पुरीं मुदा ।
प्रणम्य सादरं मूर्ध्ना चेलतुर्जनकात्मजौ ॥६६॥

बा० बु० प्र० जनकः श्रीपुण्यसदन आत्मजः पुत्र श्रीरामानन्दस्तौ द्वौ सद्धर्मस्य मर्मणां धौरेयां धुरन्धराममेयां मातुमयोग्यां तां काशीं पुरीं मुदा प्रसन्नतया सादरं मूर्ध्ना प्रणम्य चेलतुः ॥ ६६ ॥

पताका—श्रीपुण्यसदनशर्मा तथा श्रीरामानन्द दोनों पितापुत्र सत्य-धर्मके मर्मधुरन्धर उस काशीपुरीको आनन्दपूर्वक मस्तक झुकाकर सादर प्रणाम करके आगे चले ॥ ६६ ॥

सम्प्राप्तपरमानन्दं विद्यारत्नाम्भसां निधिम् ।
समित्पाणिर्वटुः प्रापत्पित्रा तं ब्रह्मपारगम् ॥६७॥

बा० बु० प्र० विद्या एव रत्नानि तानि चाम्भांसि तेषां निधिं, ब्रह्म-पारगं याथार्थ्येन ब्रह्मवेत्तारमतएव सम्प्राप्तः परमानन्दो येन तथाभूतं तं श्रीराघवा-नन्दं पित्रा सह समित्पाणिर्वटुः श्रीरामानन्दः प्रापत् ॥ ६७ ॥

पताका—विद्यारत्न निधान, ब्रह्मतत्त्ववेत्ता अतएव प्राप्तपरमानन्द श्रीराघवानन्दस्वामीजीके समीप अपने पिताके सहित वटु-ब्रह्मचारी श्रीराघवानन्द हाथमें समित् लेकर उपस्थित हुए ॥ ६७ ॥

साष्टाङ्गप्रणिपातेन सन्मनीषः प्रणम्य तम् ।
उवाच सरलां वाणीं गुरो मां शरणं नय ॥६८॥

बा० बु० प्र० सती मनीषा यस्य स सन्मनीषः सद्बुद्धिः श्रीरामानन्दस्तं श्रीराघवानन्दं साष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्य सरलां विनम्रां वाणीमुवाच—हे गुरो ! मां शरणं नय ॥ ६८ ॥

पताका—उत्कृष्ट बुद्धिवाले वह श्रीरामानन्द उन श्रीराघवानन्द स्वामीजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करके नम्र वचन बोले कि हे गुरो ! मुझे शरणमें लीजिये ॥ ६८ ॥

पुण्यसद्माप्युवाचैवं सादरं हे मुनीश्वर !
कान्यकुब्जान्वये जातोऽध्याप्यतामङ्गजो मम ॥६९॥

बा० बु० प्र० पुण्यसद्मा श्रीपुण्यसदनोऽपि सादरमेवमुवाच—'हे मुनीश्वर मननशीलोत्कृष्ट कान्यकुब्जस्यान्वये वंशे जातो ममाङ्गजः पुत्रोऽध्याप्यताम्' ॥६९॥

पताका—श्रीपुण्यसदनशर्माजीने भी कहा कि हे मुनिनाथ कान्यकुब्जवंशमें उत्पन्न हुये इस मेरे बालकको आप कृपया पढ़ाइये ॥ ६९ ॥

ओमिति स्वीकृते तेन पुण्यसद्मा न्यवर्तत ।
रामानन्दोऽपि पितरं विससर्ज प्रणम्य तम् ॥७०॥

बा० बु० प्र० तेन मुनिनाथेनोमिति स्वीकृते सति पुण्यसद्मान्यवर्तत । श्रीरामानन्दोऽपि पितरं तं श्रीपुण्यसदनं प्रणम्य विससर्ज विसृष्टवान् ॥ ७० ॥

पताका—जब श्रीराघवानन्दजीने उस महान् ब्रह्मचारीको पढ़ाना स्वीकार कर लिया तब श्रीपुण्यसदनशर्मा पीछे लौटे। और श्रीरामानन्दने भी उन्हें प्रणाम करके विदा किया ॥ ७० ॥

ततो गुरुकुले तिष्ठन् गुरुनिष्ठः स सद्वटुः ।
मेधया सेवया चापि कृपापात्रमभूद्गुरोः ॥ ७१ ॥

वा० बु० प्र० ततः पितृप्रत्यागमनानन्तरं गुरुनिष्ठो गुरुभक्तः स सद्ब्रह्मचारी मेधया नवनवोन्मेषशालिन्या बुद्धया सेवया चापि गुरोः कृपापात्रमभूत् ॥ ७१ ॥

पताका-पिताके चले आनेके पश्चात् वह गुरुभक्त श्रेष्ठ ब्रह्मचारी अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा शुश्रूषाके द्वारा गुरुकी कृपाके पात्र बन गये ॥७१॥

सकृच्छ्रवणमात्रेण गुरूक्तं सकलं हृदा ।
धारयन् स्वगुरोः क्लेशकारणं न बभूव सः ॥७२॥

वा० बु० प्र० सकृदेकवारं श्रवणमात्रेण गुरुणोक्तं सकलं हृदा धारयन् स ब्रह्मचारी गुरोः क्लेशस्य कारणं न बभूव ॥ ७२ ॥

पताका-वह एक वार श्रवणमात्रसे गुरुजीके बताये हुए सम्पूर्ण तत्त्वोंको हृदयमें धारण कर लेते थे अतः गुरुजीको क्लेश नहीं होता था ॥७२॥

अल्पेनानेहसाऽशिक्षि सशिक्षं शब्दशास्त्रकम् ।
तस्य किं नाम काठिन्यं गुरुणा योऽनुकम्पितः ॥७३॥

वा० बु० प्र० अल्पनानेहसा कालेन सशिक्षं शिक्षया सह शब्दशास्त्रकं व्याकरणशास्त्रं तेनेति शेषः, आशिक्षि शिक्षितम् । यो गुरुणानुकम्पितस्तस्य काठिन्यं किं नाम ? ॥ ७३ ॥

पताका-अल्प समयमें ही उन्होंने शिक्षाके साथ व्याकरणशास्त्रको सीख लिया । जिसपर गुरुकी कृपा हो उसके लिये कठिनता क्या वस्तु है ? ॥ ७३ ॥

सोऽत्यन्तकर्कशे तर्के तूर्णमातलमाविशत् ।
श्रुतिशीर्षशिरोरत्नप्रभाभिर्भूषितस्ततः ॥ ७४ ॥

वा० बु० प्र० अत्यन्तकर्कशे तर्के शास्त्रे स तूर्णमातलं तलपर्यन्तमाविशत् । ततः तर्कशास्त्राध्ययनानन्तरं श्रुतिशीर्षं वेदान्तशास्त्रं तदेव शिरोरत्नं तस्य प्रभाभिर्भूषितः । वेदान्तशास्त्रमधिजग इत्यर्थः ॥ ७४ ॥

पताका-श्रीरामानन्दने अत्यन्त कठिन तर्कशास्त्रका तलस्पर्श-पूर्णतया अध्ययन करके पश्चात् वेदान्त शास्त्रका अवगाहन किया ॥ ७४ ॥

अमीमांसिष्ट मीमांसां मीमांसाकुशलो वटुः ।
पन्नगाधीशसद्वाणीं चुलुकीकृतवान् पुनः ॥ ७५ ॥

वा० बु० प्र० मीमांसाकुशलो विचारपटुः स वटुर्मीमांसाममीमांसिष्ट मीमांसितवान् । पुनः पन्नगाधीशस्य पतञ्जलेर्वाणीं चुलुकीकृतवान् शीघ्रमेवाधिगतवान्॥

पताका—विचार निपुण उस ब्रह्मचारीने जैमिनीय मीमांशास्त्रका भी अध्ययन कर लिया और पुनः योगशास्त्रका पूर्णतया अध्ययन किया॥७५॥

कापिली कापि संभाषा स्वहस्तामलकीकृता ।
गुरुशुश्रूषयाऽऽवाप्तबुद्धिवैशद्ययोगतः ॥ ७६ ॥

वा० बु० प्र० तेनेति शेषः । गुरुशुश्रूषयाऽऽवाप्तं यद्बुद्धिवैशद्यं मतिनैर्मल्यं तस्य योगतः, सम्बन्धात्कापि कैश्चिदादरणीया कैश्चिदनादरणीया कापिली संभाषा कपिलसूत्रं सांख्यशास्त्रमित्यर्थः, स्वहस्तामलकीकृता । याथार्थ्येनावगतेतियावत् ॥७६॥

पताका—गुरु शुश्रूषाके द्वारा बुद्धिनिर्मलताके प्राप्त होनेसे सांख्य-शास्त्रको भी उन्होंने हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष कर लिया ॥ ७६ ॥

विज्ञातधर्ममर्मासौ साङ्गाश्च सकलाः श्रुतीः ।
श्रुतवान्धर्मरक्षायै यतस्ताः साधनं महत् ॥ ७७ ॥

बा० बु० प्र० विज्ञातानि धर्मस्य मर्माणि यस्य सोऽसौ श्रीरामानन्दः साङ्गा व्याकरणज्योतिश्छन्दआदिभिरङ्गैः सह सकलाः श्रुतीः श्रुतवानधीतवान् । यतो धर्मरक्षायै ताः श्रुतयो महत्साधनम् ॥ ७७ ॥

पताका—धर्मके समस्त तत्त्व जाननेवाले श्रीरामानन्दने, शिक्षा, व्याकरण, ज्यौतिष, छन्द, निरुक्त, कल्प आदि छ अङ्गों सहित समस्त वेदोंका अध्ययन किया क्योंकि धर्मकी रक्षाके लिये वे परम साधन हैं ॥ ७७ ॥

अष्टादश पुराणानि सरहस्यानि संयतः ।
सालङ्काराणि काव्यानि ततः सोऽधिजगे वटुः ॥७८॥

बा० बु० प्र० ततः स संयतो जितेन्द्रियो वटुः सरहस्यान्यष्टादश पुराणानि सालङ्काराण्यलङ्कारशास्त्रेण सह काव्यानि चाधिजगे पपाठ ॥ ७८ ॥

पताका—उस जितेन्द्रिय ब्रह्मचारीने रहस्योंके सहित अष्टादश पुराण और अलङ्कारशास्त्र सहित काव्योंका भी अध्ययन किया ॥ ७८ ॥

विद्याः समाप्य सकला अपि सन्मनीषो,
न त्युक्तुमैहत गुरोः कुलमात्मनीनम् ।
तत्र स्थितो गुरुपदाब्जपरागभृङ्गो,
बाल्यात्परं वय इयाय शनैः शनैः सः ॥७९॥

बा० बु० प्र० स सन्मनीषः सन्मतिः सकला विद्याः समाप्य सम्यगाप्यापि आत्मनीनं (पा० ५।१।९) स्वात्महितकारि गुरोः कुलं त्यक्तुं नैहत नेष्टवान् । गुरुपदाब्जपरागाणां भृङ्गः स बटुः शनैः शनैर्बाल्यात्परं वयो यौवनमित्यर्थः, इयाय जगाम ॥ वसन्ततिलकाच्छन्दः ॥ ७९ ॥

पताका—सुन्दर बुद्धिमान् श्रीरामानन्दने सम्पूर्ण विद्याओंको अच्छे प्रकारसे प्राप्त करके भी आत्महितकारी गुरु—कुलको छोड़नेकी इच्छा नहीं की । गुरुजीके चरणकमलके परागके भृङ्गके समान वहांही रहकर धीरे २ युवावस्थाको प्राप्त किया ॥ ७९ ॥

रक्ताम्बुजोदरसहोदरसुन्दराभौ पादावकर्मकठिनौ च करौ दधानः ।
आजानुबाहुरथ रुक्मरुचाञ्चिताङ्गो रक्तोत्पलप्रतिभटाक्ष उदूढमेदाः ॥

बा० बु० प्र० रक्ताम्बुजोदरस्य कोकनदगर्भस्य सहोदरा सुन्दरी आभा ययोस्तौ पादौ चरणौ, अकर्मकठिनौ कर्मकरणमन्तरेणापि कठिनौ करौ हस्तौ च दधानः, अथ आजानुबाहुर्विशालबाहुरित्यर्थः, रुक्मरुचा सुवर्णकान्त्याञ्चितान्यङ्गानि यस्य स तथा रक्तोत्पलस्य प्रतिभटे अक्षिणी यस्य सः, (पा० ५।४।११३) तथा उदूढमेदा मांसलशरीरो बभूव श्रीरामानन्द इति शेषः, । अस्तिभवतिविद्यतयोऽनुक्ता अप्यध्याहार्याः । इमानि सर्वाणि भाग्यशालिनो लक्षणानि ॥ ८० ॥

पताका—वह श्रीरामानन्द रक्तचरण तथा कर्म किये बिना भी कठिन हस्तवाले, आजानुबाहु, सुवर्ण समान गौर शरीरवाले, रक्तनेत्रवाले तथा हृष्ट पुष्टाङ्ग हो गये । यह सब भाग्यशालीके लक्षण हैं ॥ ८० ॥

वादिमत्तगजगण्डदारणोदीयमानसितकीर्तिवल्लरी ।
पुण्यसद्मतनयाख्यशार्ङ्गिणः पुष्पिता हरत मानसं नृणाम् ॥८१॥

बा० बु० प्र० पुण्यसद्मतनय आख्या यस्य च चासौ शार्ङ्गी च तस्य श्रीरामानन्दरूपस्य रामस्य वादिन एव मत्तगजास्तेषां गण्डदारणेनोदीयमाना सिता धवला कीर्तिवल्लरी पुष्पिता सती नृणां (पा० ६।४।६) मानसमहरत ॥ रथोद्धताच्छन्दः ॥ ८१ ॥

पताका—श्रीपुण्यसदनके पुत्र—श्रीरामानन्द नामक भगवान् श्रीरामकी वादी रूप मतवाले हाथियोंके गण्डस्थलके विदारण करनेसे उद्भूत कीर्तिरूप वल्लरी पुष्पित होकर मनुष्योंके मनको हरण करती थी ॥ ८१ ॥

श्रौतशत्रुरणगत्वरत्वराचातुरीचणमवेक्ष्य तं गुरुमः ।
तेन वेदसरणिः पुनर्जगत्तारणाय तरणिर्भवेदिति ॥८२॥
लोकशोकवहलानलज्वलज्ज्वालसंज्वलितहृन्महोत्पलः ।
वेदवित्प्रवरपूज्यराघवानन्द एवमिहनिश्चिकाय सः ॥८३॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचित
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये षष्ठः सर्गः

बा० बु० प्र० इह लोकानां शोक एव बहलानलः प्रभूताग्निस्तस्य ज्वलन् यो ज्वालः शिखा तेन संज्वलितं हृदेव महोत्पलं यस्य स वेदवित्प्रवरोऽतएव पूज्यः श्रीराघवानन्दो गुरुः श्रौतानां वेदसम्बन्धिनां शत्रूणां रणे गत्वरी गमनशीला या त्वरा या च चातुरी ताभ्यां वित्तं (पा० ५।२।२६) तं श्रीरामानन्दमवेक्ष्य ज्ञात्वा एवं निश्चिकाय निश्चयं चकार। एवं किम्? तेन श्रीरामानन्देन हेतुना वेदसरणिः श्रौतो मार्गः पुनर्जगत्तारणाय जगदुद्धाराय तरणिर्नौका भवेदिति ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यां षष्ठः सर्गः

पताका—लोकोंके शोकरूपी महान् अग्निकी जलती हुई शिखासे ज्वलित हृदयकमलवाले, परमवेदज्ञ अतएव पूज्य गुरु श्रीराघवानन्दजीने श्रीरामानन्दको, वेदके शत्रुओंके साथ शास्त्रीययुद्धमें चलनेवाली शीघ्रता और चातुर्यमें परम निपुण जानकर यह निश्चय कर लिया कि श्रीरामानन्दके द्वारा वेदमार्ग पुनः लोगोंके उद्धारके लिये नौका समान होगा ॥८२॥८३॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामा-
नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां षष्ठः सर्गः ।

अथ सप्तमः सर्गः

निखिलशास्त्रपुराणसदागमाध्ययनतो नयतोऽमलमानसः ।
वटुरसौ पटुतासरसीरसै रसिकतामततारिनिवारणे ॥ १ ॥

वा० बु० प्र० निखिलानि शास्त्राणि वेदान्तादीनि पुराणानि सदागमा वेदास्तेषामध्ययनतोऽध्ययनेन नयतो नीत्या चामलमानसो निर्मलचित्तोऽसौ वटुः पटुतैव सरसी तस्या रसैररिनिवारणे शत्रुदूरीकरणे रसिकतामततातनिष्ट ॥ १ ॥

पताका—निखिल शास्त्र, पुराण और वेदोंके अध्ययन करनेसे तथा नीतिमार्गका अनुसरण करनेसे पवित्र मनवाले ब्रह्मचारी श्रीरामानन्दने पटुता—चातुरीरूप सरोवरके रससे शत्रुओंके निवारण करनेमें अपनी रसिकताका विस्तार किया ॥ १ ॥

प्रतिदिनं परिवीक्ष्य समन्ततः श्रुतिसमीक्षणवीक्षणदुर्जनान् ।
प्रतिनिवारयितुं हि तमुत्सुकं परितुतोष गुरुः स गुरूनपि ॥ २ ॥

वा० बु० प्र० स गुरुः श्रीराघवानन्दः प्रतिदिनं गुरूनपि महतोऽपि श्रुतिसमीक्षणे वेदसमीक्षायां दोषग्रहण इति यावद्वीक्षणं दृष्टिर्येषां ते च ते दुर्जनाश्च, तानथवा वेदसमीक्षणे वेदविचारे वीक्षणं विरुद्धं प्रतिकूलं ईक्षणं दृष्टिर्येषां तान् प्रतिनिवारयितुं तं श्रीरामानन्दमुत्सुकमुत्साहवन्तं परिवीक्ष्य हि निश्चयेन परितुतोष सर्वथा सन्तुष्टः ॥ २ ॥

पताका—श्रीराघवानन्द स्वामीजी, प्रतिदिन वेदकी समीक्षा करनेवाले दुष्टजनोंके निवारण करनेमें उत्सुक श्रीरामानन्दजीको देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुये ॥ २ ॥

तदभियुक्तिततिप्रतिहेतिभिः समुदितं दितमेव यशो द्विषाम् ।
रससमुन्नमना अभिवीक्ष्य तं गुरुरुवाच वचो वचसांपतिः ॥ ३ ॥

वा० बु० प्र० तस्य श्रीरामानन्दस्याभियुक्तीनां प्रकृष्टयुक्तीनां ततयस्ता एव प्रतिहेतयः प्रतिशस्त्राणि ताभिर्द्विषां शत्रूणां समुदितं सम्यगुदयं प्राप्तं यशो दितमेव खण्डितमेवाभिवीक्ष्य विचार्य वचसां पतिर्विद्यानिधिर्गुरुस्तं श्रीरामानन्दं वच उवाच॥३॥

पताका—उन श्रीरामानन्दजीके सुन्दर युक्तिरूप प्रतिशस्त्रके द्वारा शत्रुओंके बढ़े हुये यशको खण्डित देखकर परम विद्वान् श्रीराघवानन्दजी स्वामी श्रीरामानन्दजीसे बोले ॥ ३ ॥

हृदयरत्न निरन्तरमेव सद्धृदयहारि विहारि जगत्तले ।
तव यशो विवशं हृदयं मम प्रकुरुते तत एव च वच्म्यहम् ॥ ४ ॥

वा० बु० प्र० हे हृदयरत्न ! सद्धृदयहारि सतां हृदयं हरतीति तच्छीलं जगत्तले च विहारि तव यशो निरन्तरं मम हृदयं विवशं करोति तत एवाहं वच्मि॥

पताका—हे मेरे हृदयके रत्न ! सज्जनोंके हृदयको हरण करनेवाला तथा निखिल जगत्में व्यापक तुम्हारा यश निरन्तर मेरे हृदयको विवश करता है अतः मैं तुम्हें कहता हूं कि— ॥ ४ ॥

त्वमसि वत्स विदांवरतां गतः सकलशिष्यगणाधिपतां श्रितः ।
अधिगतोऽसि तथा व्रतपूर्णतां कलिमलाकलितावलिदुर्दभ ! ॥५॥

वा० बु० प्र० हे कलेर्मलानि रागद्वेषादीनि तैराकलिताभिर्युक्ताभिरवलिभिः पङ्क्तिभिर्दुर्दभ दुःखेन दभ्यते तथा भूत ! वत्स ! श्रीरामानन्द ! त्वं विदांवरतां विदुषां श्रेष्ठतां गतोऽसि । किलेति निश्चये । सकलशिष्यगणस्य ये मे शिष्यास्तेषां गणस्य समूहस्याधिपतां स्वामितां श्रितोऽसि । सर्वेषां त्वमेवोत्कृष्ट इत्यर्थः । तथा व्रतपूर्णतां चाधिगतोऽसि ॥ ५ ॥

पताका—कलिकालके रागद्वेषादि मलोंसे आक्रान्त होनेके अयोग्य अतएव हे वत्स—परम प्रिय ! तुम प्रशस्त विद्वान् हो चुके हो । मेरे सब शिष्योंमें तुमही प्रधान हो। तथा तुम्हारा ब्रह्मचर्यव्रतभी पूर्ण हो गया है॥५॥

समजनिष्ट विशिष्ट विशिष्टता ह्यधिवपुश्च तथाधिसरस्वति ।
अत इतो व्रज ते जनकालयं लयमवापय वैरहवर्हिषम् ॥ ६ ॥

वा० बु० प्र० हे विशिष्ट ! तवाधिवपुः शरीरेऽधिसरस्वति विद्यायां च विशिष्टता वैशिष्ट्यं लोकोत्तरचमत्कारः समजनिष्ट प्रादुरभूत् । हीति निश्चये । अतः कारणादितस्ते जनकालयं पितृगृहं व्रज गच्छ । वैरहवर्हिषं विरहजन्यमनलं लयं शान्तिमवापय प्रापय ॥ ६ ॥

पताका—हे परम सभ्य ! तुम्हारे शरीरमें और तुम्हारी विद्यामें विशिष्टता—सबकी अपेक्षा आधिक्य आ गया है । अतः अब तुम अपने पिताके घर जावो और विरहानलको शान्त करो ॥ ६ ॥

सविधि साधितदारपरिग्रहः श्रुतिसुचोदितधर्मसदाग्रहः ।
महितमेध महामहनीयतां श्रुतिशिरोनिकरस्य निपालय ॥ ७ ॥

वा० बु० प्र० हे महितमेध ! प्रशस्तबुद्धे ! सविधि विधिना सह साधितदारपरिग्रहः कृतोद्वाहः, श्रुतिषु सुचोदितः सम्यक् प्रतिपादितो यो धर्मस्तत्र सन्नुत्कृष्ट आग्रहो यस्यैवंभूतस्त्वं श्रुतिशिरोनिकरस्य वेदान्तसमूहस्य महामहनीयतां परमपूज्यतां निपालय नितरां रक्ष ॥ ७ ॥

पताका—हे प्रशस्त बुद्धिवाले ! विधि पूर्वक विवाह करके, वेदोक्त धर्ममें उत्तम श्रद्धावाले होकर वेदान्तकी सर्वोत्कृष्टताकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

श्रुतिरिदं खलु वक्ति यदाश्रमात्प्रथमतोऽपरमेव समाश्रयेत् ।
उपसुतं वनितामधिवास्य वा वनितयाऽथ नरो वनितां व्रजेत् ॥८॥

वा० बु० प्र० खल्विति दार्ढ्ये । श्रुतिरिदं वक्ति समुपदिशति । इदं किम् ? यत् प्रथमत आश्रमादपरं पश्चाद्भाविनमाश्रमं गृहस्थाश्रममिति यावत् । समाश्रयेत् । अथ वनितां भार्यामुपसुतं पुत्रसमीपेऽधिवास्य वासयित्वा वनितया वा सहार्थे तृतीया । नरो वनितां वानप्रस्थाश्रमितां व्रजेत् ॥ ८ ॥

पताका—दृढ़ताके साथ श्रुति यह उपदेश करती है कि प्रथमाश्रम—ब्रह्मचर्याश्रमके पश्चात् गृहस्थाश्रममें जाना चाहिये । पश्चात् शास्त्रानुसार सन्तान उत्पन्न करके अपनी पत्नीको पुत्रके समीप रखकर अथवा साथही लेकर वनी—वानप्रस्थाश्रमी हो जावे ॥ ८ ॥

परमतः प्रविशेत्कृतसंयमो नियमतो यमिभिर्वरिवस्यिते ।
अवसितत्रिपथोऽमृतलब्धये सुखमये किल पारमहंस्यके ॥ ९ ॥

वा० बु० प्र० अतः परं कृतसंयमस्तथावसितं समापितं त्रिपथं ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थरूपं मार्गत्रयं येनैवंभूतः पुरुषोऽमृतलब्धये परमपुरुषप्राप्तये नियमतो नियमपूर्वकं सुखमये पारमहंस्यके चतुर्थाश्रम इत्यर्थः प्रविशेत् ॥ ९ ॥

पताका—इसके पश्चात् संयमी होकर तीनों आश्रमोंका पालन करके अन्तमें मोक्ष प्राप्तिके लिये परमसुखमय संन्यास आश्रममें प्रवेश करे ॥९॥

स्मृतिवचोऽपि तथैव विराजते प्रियतम त्वमतो ऽनुमतो मया ।
इत इतो जननीजनकाज्ञया ननु कृतार्थय सौम्य गृहस्थताम् ॥१०॥

प्रा० बु० प्र० स्मृतिवचोऽपि तथैव वेदानुकूलमेव विराजते । स्मृतिष्वपि तथैवानुमोदितमिति भावः । अतो हे प्रियतम ! त्वं मयाऽऽनुमतः इतोऽस्माद्गुरुकुलादितो गतः सन् नन्विति निश्चये । जनन्या जनकस्य चाज्ञया हे सौम्य ! गृहस्थतां कृतार्थय ॥ १० ॥

पताका—हे प्रियतम ! हे सौम्य ! स्मृतियांभी ऐसाही कहती हैं। अतः मेरी अनुमतिसे यहांसे गुरुकुलसे जाकर माता पिताकी आज्ञासे गृहस्थाश्रमको कृतार्थ करो ॥ १० ॥

इति वचो गुरुणा गरिमेरितं स च निशम्य वटुर्विकलोऽभवत् ।
चिरतरं पदपद्ममुपासितं कथमहो अधुना तदपास्यताम् ॥ ११ ॥

वा० बु० प्र० गुरुणाति गरिम महत्त्वमर्मीरितमुक्तं वचो निशम्य स वटुः श्रीरामानन्दो विकलोऽभवत् । यत्तदोर्नित्यसम्बन्धाद्यदित्यध्याहार्यम् । यत्पदपद्मं चिरतरमुपासितमहो ! तदधुना कथमपास्यतां त्यज्यताम् ? ॥ ११ ॥

पताका—ब्रह्मचारी श्रीरामानन्द गुरुके इस प्रकार गुरुत्वयुक्त वचनको सुनकर बहुत व्याकुल हुये। जिस चरण कमलकी चिरकाल तक उपासना की हो उसे कैसे छोड़ा जाय ? ॥ ११ ॥

प्रतिजगाद वटुः सकृताञ्जलिर्यदुपदिष्टमिदं भवता मम ।
गुरु वचः शिरसा हि तदुह्यते तदवमानपरो निरयी भवेत् ॥१२॥

वा० बु० प्र० स वटुः कृताञ्जलिर्बद्धाञ्जलिः सन् प्रतिजगाद । भवता यदिदं गुरु वच उपदिष्टं तच्छिरसोह्यते धार्यत इति भावः । हि यतस्तदवमानपरो गुरुवचस्तिरस्कर्ता पुरुषो निरयी नरकगामी भवेत् ॥ १२ ॥

पताका—हाथ जोड़कर श्रीरामानन्दने कहा कि, प्रभो ! आपने जो यह सुन्दरवचनमय उपदेश दिया है उसे मैं शिरपर धारण करता हूं।

क्योंकि गुरुके वचनका अपमान करनेवाला नारकी होता है ॥ १२ ॥

परमिदं शिरसा विनतेन ते किमपि नाथ मया विनिवेद्यते ।
भवदनन्तकृपारसपायिना तदतिधाष्टर्यमिदं क्षमतां मम ॥ १३ ॥

बा० बु० प्र० परं हे नाथ ! भवतोऽनन्तकृपारसपायिनाऽऽनन्तदयारसास्वादिना मया विनतेन नम्रेण शिरसा ते तुभ्यं किमपि विनिवेद्यते । मम तदिदमतिधाष्टर्यं भवान् क्षमताम् ॥ १३ ॥

पताका—परन्तु हे नाथ ! आपकी अनन्त कृपारूपी रसका पान करनेवाला मैं मस्तक झुकाकर आपकी सेवामें कुछ निवेदन करता हूं । मेरी इस धृष्टताको आप क्षमा करें ॥ १३ ॥

भवदुदीरितमस्ति हि यद्यपि श्रुतिशिरःपरिशीलितमेव तत् ।
परमपोह्य वचोऽद इमानि किं यदहरेव वचांसि न जाग्रति ॥ १४ ॥

बा० बु० प्र० हीति निश्चये । यद्भवदुदीरितमस्ति, यद्यपि तच्छ्रुतिशिरःपरिशीलितं वेदान्तानुमतमेव । परमदो वचोऽपोह्यास्य वचसोऽपवादं कृत्वेमानि यदहरेव वचांसि यदहरेव विरज्येत्तदहरेव प्रव्रजेदित्यादिवचनानि न जाग्रति किम् ?॥

पताका—हे प्रभो निश्चयही, आपने जो कुछ कहा है वह श्रुति सम्मत है । परन्तु क्या इस वचनका अपवाद करके 'यदहरेव विरज्येत्तदहरेव प्रव्रजेत्' 'जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन प्रव्रज्या ले लेनी चाहिये । यह सब वचन शास्त्रोंमें विद्यमान नहीं हैं ? ॥ १४ ॥

कथमुपाधिसहस्रसमन्विते विविधकर्मगजेर उदन्वति ।
बहुलपुत्रकलत्रतरङ्गिके क्षिपसि मामवशं नु गृहाश्रमे ॥ १५ ॥

बा० बु० प्र० उपाधिसहस्रेण विपत्तिसमूहेन समन्विते युक्ते विविधानि कर्माण्येव गजेरा नक्रा यस्मिंस्तथा बहुला पुत्रकलत्राण्येव तरङ्गा यस्मिंस्तस्मिन् गृहाश्रमे गृहस्थाश्रमरूप उदन्वति समुद्रे कथं नु अवशं गुर्वधीनं मां क्षिपसि ॥१५॥

पताका—हे महाराज मैं तो आपके स्वाधीन हूं । नाना विपत्तियुक्त, नाना प्रकार के कर्मरूप मगरवाले, पुत्र कलत्र रूप बहुतसे तरङ्गवाले गृहस्थाश्रमरूप समुद्रमें आप मुझे क्यों फेंकते हैं ? ॥ १५ ॥

प्रतिवचोऽवगिरम्मदकान्तिमत्तनुभृतो निशमय्य वटोर्वचः ।
सुरगुरुप्रतिभाप्रतिभा गुरुर्धवलयन्स दिशो दशनत्विषा ॥ १६ ॥

बा० बु० प्र० इरम्मदो विद्युत्तत्कान्तिमत्तच्छटावत्तनुभृतो वटोः श्रीरामानन्दस्य वचो निशमय्य श्रुत्वा सुरगुरुर्बृहस्पतिस्तस्य प्रतिभायाः प्रतिभाः प्रतिभासकः स गुरुः श्रीराघवानन्दो दशनानां त्विषा कान्त्या दिशो धवलयन्धवलीकुर्वन् प्रतिवचः प्रत्युत्तरमवक् अवोचत् ॥ १६ ॥

पताका—विद्युत् समान कान्तिमान् शरीरवाले श्रीरामानन्दका वचन सुनकर बृहस्पतिकी बुद्धिकोभी प्रकाशित करनेवाले गुरु श्रीराघवानन्दजी अपने दशनोंकी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुये बोले ॥ १७ ॥

यदपि विद्यत एतदये वचस्तव समीरितमेव तथापि च ।
वय इदं महतामपि दुःखदं चपलयत्यतियन्त्रितमानसम् ॥ १७ ॥

बा० बु० प्र० अये इति सम्बोधनम् । यदपि तव समीरितमुदाहृतं वचो यदहरेवविरज्येदित्यादि कथमुपाधिसहस्रेत्यादि च, तदेतद्विद्यत एव । तथापि चेदं नूतनं वयो महतामपि दुःखदं भवतीति शेषः । तथातियन्त्रितमानसमपीति शेषः । पुरुषं चपलयति ॥ १७ ॥

पताका—जो तुमने कहा कि 'जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन प्रव्रज्या ले ले' तथा यह गृहस्थाश्रम समुद्र जैसा है। इत्यादि; यह सब सत्य है। परन्तु यह नवीन अवस्था—जवानी महान् पुरुषोंकेभी अतिनियन्त्रित मनको भी चञ्चल कर देता है। अतएव दुःखद है ॥ १७ ॥

अपि च वृद्धतरौ पितरौ तव त्वमसि पुत्रक एकसुतस्तयोः ।
कथमये भविता च विना त्वया जगति जीवनमेव भरायितम् ॥१८॥

बा० बु० प्र० अपि च तव पितरौ माता पिता च वृद्धतरौ । हे पुत्रक ! अनुकम्पार्थे कन् । तयोस्त्वमेव एकसुतः । त्वया विना भरायितं भारीभूतं जीवनमेव जगति कथं भविता स्थास्यतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

पताका—तथा तुम्हारे माता और पिता वृद्ध हैं। हे प्रिय पुत्र ! उनके केवल तुमही एक पुत्र हो। तुम्हारे विना संसारमें भार समान उनका जीवन किस प्रकारसे रहेगा ? ॥ १८ ॥

अधिगतोऽसि नमस्यतपस्यया भगवतोऽब्जपदोर्वरिवस्यया ।
जनिकया जनकेन च वार्द्धके तदवतां कथमत्र निजानसून्॥ १९ ॥

बा० बु० प्र० वार्द्धके वृद्धावस्थायां जनिकया जनन्या जनकेन पित्रा च नमस्यया पूज्यया तपस्यया भगवतोऽब्जपदोः कमलचरणयोर्वरिस्यया सेवया हेतुना त्वमधिगतोऽसि लब्धोऽसि । तत्तस्मात्तौ पितरौ निजानसून् प्राणान् कथमवतां रक्षताम् ? ॥ १९ ॥

पताका–वृद्धावस्थामें महती तपस्या तथा भगवच्चरणारविन्दकी सेवाके कारण तुम्हारे माता पिताने तुमको प्राप्त किया है । तुम्हारे विना वे दोनों ही कैसे प्राणकी रक्षा करेंगे ॥ १९ ॥

अपि च कोऽपिकुले न तवेदृशः स्वरितयोश्च तयोर्जरतोः किल ।
य इह दास्यति पातुमपो वटो तव च पूर्वपितृभ्य उदारहृत् ॥ २० ॥

बा० बु० प्र० अपि च तव कुले कोऽपीदृश उदारहृदुदारहृदयो न य इह तयोर्जरतोः पित्रोः स्वरितयोः स्वर्गं गतयोस्तव पूर्वपितृभ्यः पातुमपो जलानि दास्यति ॥ २० ॥

पताका–किंच तुम्हारे वंशमें दूसरा और कोईभी ऐसा नहीं है जो वृद्ध तुम्हारे माता पिताके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् तुम्हारे पूर्वजोंको जल दे॥

इति निगद्य गुरौ दृढमौनितां व्रजति मङ्क्षु विवक्षुरिवाभवत् ।
स जननीजनकौ च तदागतौ सुतनिपूतयशःपरिचोदितौ ॥ २१ ॥

बा० बु० प्र० इत्युक्तप्रकारेण निगद्योपदिश्य गुरौ श्रीराघवानन्दे दृढमौनितां व्रजति सति स श्रीरामानन्दो मङ्क्षु शीघ्रं विवक्षुर्वक्तुमिच्छुरिवाभवत् । तदा तस्मिन् समये सुतेन श्रीरामानन्देन निपूतेन प्रसूतेन यशसा परिचोदितौ प्रेरितौ जननीजनका आगतौ ॥ २१ ॥

पताका–इस प्रकारसे बोलकर–उपदेश करके जब श्रीराघवानन्द स्वामीजी चुप हुये तो शीघ्रही श्रीरामानन्दभी बोलनेकी इच्छा किये । परन्तु उसी समय उनके दिगन्तव्यापी यशसे प्रेरित होकर उनके माता और पिता वहां आ गये ॥ २१ ॥

विनयवान्नयवाँश्च युवावटुर्नयनयोरतिथी पितरौ निजौ ।
पुलकभृत्तनुरेत्य ससम्भ्रमं चरणयोरपतल्लगुडो यथा ॥ २२ ॥

वा० बु० प्र० विनयवान् विनीतो नयवान्नीतिमान् युवा वटुः श्रीरामानन्दः पुलकभृत्तनुः पुलकितदेहः स्वनयनयोरतिथी निजौ पितरावेत्य ससम्भ्रमं लगुड इव चरणयोरपतत् ॥ २२ ॥

पताका—विनीत और नीतिमान् नवयुवक ब्रह्मचारी श्रीरामानन्द पुलकित देहवाले होकर अपनी आंखोंके अतिथि स्वरूप माता पिताके पास जाकर 'भूतल पर लकुटिकी नाईं' ॥ २२ ॥

चिरवियोगवितप्तहृदावुभौ सजलफुल्लसरोजविलोचनौ ।
उपगतं च सुतं नयनायने पुलकितावुरसा परिरेभतुः ॥ २३ ॥

वा० बु० प्र० चिरवियोगेन वितप्तं हृदयं ययोस्तौ तथा सजले फुल्ल-सरोजे विकसितकमले इव विलोचने ययोस्तौ पुलकितौ रोमाञ्चितौ भूत्वा नयना-यने नेत्रमार्गे उपगतं प्राप्तं सुतं श्रीरामानन्दमुरसा हृदयेन परिरेभतुरालिङ्गितवन्तौ॥२३॥

पताका—चिरकालके वियोगसे सन्तप्त हृदयवाले, तथा सजलनयनवाले दोनों मातापिताने रोमाञ्चित होकर नेत्रके सामने प्राप्त पुत्रको छातीसे लगा लिया ॥ २३ ॥

असकृदप्यधिकं परिचुम्ब्य तं शिरसि चक्षुपि चापि कपोलयोः ।
तुतुषतुर्नहि तौ प्रियतापयोमधुरिमा न तृपः परिशान्तये ॥ २४ ॥

वा० बु० प्र० तौ पितरौ शिरसि चक्षुपि नेत्रयोः कपोलयोश्च तमसकृत्पुनः पुनरधिकं परिचुम्ब्यापि न तुतुषतुः । हि यतः प्रियतारूपं यत्पयस्तस्य मधुरिमा तृपः इच्छायाः परिशान्तये न भवति ॥ २४ ॥

पताका—दोनों माता पिता श्रीरामानन्दके मस्तक, नेत्र और कपोलोंमें अधिकाधिक पुनः २ चुम्बन करकेभी तृप्त नहीं हुये । क्यों कि प्रेमरूप पयकी मधुरतासे कभी इच्छाकी शान्ति होती ही नहीं हैं ॥ २४ ॥

सकुशलं कुशलं च निरीक्ष्य तं प्रमदतो ममतुर्हृदये न तौ ।
सह सुतेन गुरोः सविधे ततः परमुपाययतुर्द्विजदम्पती ॥ २५ ॥

बा० बु० प्र० तौ श्रीसुशीलापुण्यसदनौ तं पुत्रं सकुशलं कुशलेन सह वर्तमानं तथा कुशलं निपुणं च वीक्ष्य प्रमदतो हर्षेण हृदये न ममतुः। अत्यन्तं हृष्टौ बभूवतुरितिभावः। ततः परं सुतेन सह द्विजदम्पती गुरोः सविध उपाययतुः॥२५॥

पताका—दोनों—माता पिता अपने पुत्रको कुशल सहित देखकर तथा निपुण देखकर हर्षसे हृदयमें नहीं समाये। तदनन्तर पुत्रके साथ, जहां श्रीराघवानन्दजी विराजमान थे वहां आये ॥ २५ ॥

लुलुठतुश्चरणेषु गुरोरुभौ सकलशास्त्रविदः समुदौ विदौ।
यदपि तौ भवतो जगतो गुरू यतिरयं हि तयोरपि सद्गुरुः ॥२६॥

बा० बु० प्र० समुदौ सानन्दौ तौ विदौ विद्वांसौ सकलशास्त्रविदो गुरोश्चरणेषु लुलुठतुः। यदपि यद्यपि तावपि जगतो गुरू भवतः परन्त्वयं यतो यस्माद्धेतोर्यतिस्तस्मात्तयोरपि गुरुः॥ २६ ॥

पताका—आनन्द सहित विद्वान् माता पिता श्रीराघवानन्दजीके चरणमें आकर साष्टाङ्ग प्रणाम किये। यद्यपि ब्राह्मण होनेसे यह सबके गुरु थे परन्तु स्वामी राघवानन्दजी वैष्णव संन्यासी थे अतः उनकेभी गुरु थे। अतः उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करना अनुचित नहीं हुआ ॥ २६ ॥

अथ च तज्जनको गुरुणोदितो निजसुतस्य मतिं परिवीक्षितुम्।
सकलशास्त्रचये क्रमशो बुधोऽकृत बहूननुयोगचयान्मुदा ॥ २७ ॥

बा० बु० प्र० अथानन्तरं गुरुणोदितः प्रेरितस्तज्जनको बुधो ज्ञानवान्निजसुतस्य मतिं शास्त्रविषये बुद्धिं परिवीक्षितुं विज्ञातुं क्रमशः सकलशास्त्रस्य चये समूहे बहूननुयोगचयान् प्रश्नसमूहान्मुदाऽकृत कृतवान्॥ २७ ॥

पताका—श्रीराघवानन्द स्वामीजीके कहनेसे विद्वान् श्रीपुण्यसदनशर्माने सम्पूर्ण शास्त्रोंमें अपने पुत्रकी बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये सहर्ष अनेकों प्रश्न किये ॥ २७ ॥

चतसृषु श्रुतिषु श्रुतिपारगो गुरुनयेऽथ नयेऽपि च भाट्टके।
अथ च सांख्यनये कणभुङ्नये बहुतमं तमपृच्छदयं सुतम् ॥ २८ ॥

बा० बु० प्र० चतसृषु श्रुतिषु गुरुनये प्रभाकरमतं भाट्टके नये भट्टमतेऽथच, कणभुङ्नये वैशेषिकशास्त्रे सांख्यनये सांख्यशास्त्रे चायं श्रुतिपारगो वेदविद्वाञ्छ्रीपुण्यसदनस्तं सुतं बहुतमममृच्छत् ॥ २८ ॥

पताका—उन्होंने चारों वेदोंमें, प्रभाकर तथा भाट्टमतानुसार मीमांसामें वैशेषिकमें तथा सांख्यशास्त्रमें बहुतसे प्रश्न पूछे ॥ २८ ॥

विददधे बृहतांपतिसत्प्रभो बहुविधेन समाधिमनुत्तमम् ।
इति निरीक्ष्य पिता मुमुदेतरां भवति कस्य मुखं न सुतैधया ॥२९॥

बा० बु० प्र० बृहतांपतिर्बृहस्पतिस्तस्य सतां प्रभेव प्रभा यस्य स वटुर्बहुविधेनानुत्तमं सर्वोत्कृष्टं समाधिं समाधानं विददधे । दधधारणे । पिता इति निरीक्ष्य मुमुदेतराम् । सुतैधया पुत्रोन्नत्येन कस्य सुखं न भवति ? ॥ २९ ॥

पताका—बृहस्पति समान प्रभाशाली ब्रह्मचारी श्रीरामानन्दने सर्वोत्कृष्ट समाधान सब प्रश्नोंका किया । इसे देखकर पिताके हृदयमें परम हर्ष उत्पन्न हुआ । पुत्रकी अभिवृद्धिसे किसे आनन्द नहीं होता ? अर्थात् सबको होता ही है ॥ २९ ॥

द्विजवरोऽथ गुरुं विहिताञ्जलिः स च विभिक्ष वटुं स्वगृहं प्रति ।
चलितुमित्यतिहृष्टमना मनाक्स हि विचार्य वचो यतिराददे ॥३०॥

बा० बु० प्र० अथ पुत्रेण सह नानाप्रश्नोत्तरानन्तरं विहिताञ्जलिर्बद्धकरः स द्विजवरः श्रीपुण्यसदनो वटुं श्रीरामानन्दं स्वगृहं प्रति चलितुं गुरुं विभिक्ष प्रार्थितवान् हीति निश्चये । स यतिरतिहृष्टमना मनाक् शीघ्रं विचार्य वचो वचनमाददे ॥३०॥

पताका—नाना विध प्रश्नोत्तरके पश्चात् श्रीपुण्यसदनशर्माजीने ब्रह्मचारी श्रीरामानन्दको घर चलनेके लिये गुरुजीसे प्रार्थना की । उन्होंने प्रसन्न होकर, विचारकर शीघ्र उत्तर दिया ॥ ३० ॥

तव सुतो द्विज सर्वगुणालयः सकलशास्त्रविचारचणः सुधीः ।
निखिलवादिवचःसरिताम्पतिं सरति पातुमगस्त्य इवाभवत् ॥३१॥

बा० बु० प्र० हे द्विज ! तव सुतः सर्वेषां गुणानामालयः सकलशास्त्रविचारेण वित्तः प्रख्यातोऽत एव सुधीर्विद्वानतएव निखिलानां वादिनां वचःसरितां

पतिमुक्तिसमुद्रं सरति सप्रेम पातुमगस्त्य इवाभवत् ॥ ३१ ॥

पताका—हे द्विज ! आपका पुत्र सम्पूर्ण गुणोंका भण्डार, सम्पूर्ण शास्त्रमें निपुण, बुद्धिमान् अतएव समस्त वादियोंके वचन रूप समुद्रको सप्रेम पान करनेके लिये अगस्त्यके समान हो गया है ॥ ३१ ॥

न हि परं तनयो वपुषोरुणा तव गृहीतनयो द्विज भूषितः ।
अपि च कीर्तिजुषा किल तेजसा परमतोरुमहीधरदारणः ॥ ३२ ॥

बा० बु० प्र० हे द्विज ! गृहीतो नयो येन तथा परमतान्येवोरवो महीधरास्तेषां दारणस्त वतनयः केवलमुरुणा ब्रह्मचर्यरक्षणेन विशालेन हृष्टेन पुष्टेन च वपुषा न भूषितः, अपि च प्रत्युत कीर्तिजुषा यशःसम्पन्नेन तेजसाऽपि । वपुषा सह यशसा तेजसापि विभूषित इतिभावः ॥ ३२ ॥

पताका—हे द्विज ! नीतिमान् तथा पर—मत रूपी विशाल पर्वतोंको विदारण करनेवाला आपका पुत्र केवल शरीर सम्पत्तिसेही युक्त है ऐसा नहीं प्रत्युत कीर्ति और तेजसेभी अलङ्कृत है ॥ ३२ ॥

अयनमाशु नयस्व तपस्विनं विजयिनी भवतान्मतिरस्य वै ।
सुखकरी च भवेद्गृहमेधिता भवतु नित्यमयं च शमेधिता ॥ ३३ ॥

बा० बु० प्र० तपस्विनं ब्रह्मचर्यादितपःकर्तारं श्रीरामानन्दमाश्वयनं गृहं नयस्व । वै इति निश्चये । अस्य मतिर्विजयिनी भवतात् । गृहमेधिता गृहस्थता चास्य सुखकरी सुखकारिणी भवेत् । अयं नित्यं शमेधिता कल्याणवर्द्धकश्च भवतु॥

पताका—इस ब्रह्मचारीको शीघ्र घर ले जाइये । इसकी बुद्धि विजयशालिनी हो । गृहस्थाश्रमभी सुखकर हो । यह कल्याणका बढ़ानेवाला हो॥

अवददाशु ततो जनकः सुतं व्रज गृहं सुखयान्यजनाँश्चिरम् ।
घृतनिधायमिदं निहितं जलं शमयतु त्वरितं सतृषां तृषम् ॥३४॥

बा० बु० प्र० ततो जनक आशु सुतमवदत् । गृहं प्रति व्रज गच्छ । अन्यजनानस्मदतिरिक्तांश्चिरं सुखय । घृतनिधायं (पा० . ३।४।४५) घृतमिव सुरक्षितमिदं त्वद्रूपं जलं सतृषां पिपासायुक्तानां तृषं त्वरितं शमयतु ॥ ३४ ॥

पताका–पिताने शीघ्रही पुत्रसे कहा कि घर चलो और अन्य सम्बन्धियोंको चिरकाल तक सुखी करो। घृतके समान सुरक्षित जलरूप तुम, तुम्हारे दर्शनकी इच्छारूप पिपासासे पीडित जनोंको तृप्त करो ॥३४॥

व्ययमितं गणरात्रमिहाधुना तव चलेत इति ज्ञपयाम्यहम्।
गुरुगिरं शिरसा वह वत्स ते प्रवयसौ पितरौ च निभालय॥३५॥

वा० बु० प्र० इह गुरुकुले गणरात्रं बह्व्यो रात्र्यो व्ययमितं (पा० ५।४।८७) व्यतीताः। अधुना 'इतश्चल' इत्यहं ज्ञपयामि। हे वत्स गुरुगिरमाचार्यवचनं शिरसा वह। ते प्रवयसौ वृद्धौ पितरौ मां त्वज्जननीं च निभालय पश्य॥ ३५॥

पताका–गुरुकुलमें अनेक वर्ष व्यतीत हो चुके। अब मैं कहता हूं कि यहांसे घर चलो। गुरुजीकीभी ऐसीही आज्ञा है उसे मस्तकपर धारण करो। तथा वृद्ध–हम लोगोंकी ओर देखो॥ ३५॥

पितुरिदं वचनं श्रुतवान् वटुर्गदितवाँश्च ततो विनयानतः।
अयि गुरो गुरु ते वचनं त्विदं हिततमं मधुनोऽपि मधु प्रियम्॥३६॥

वा० बु० प्र० श्रीरामानन्दः पितुरिदं वचनं श्रुतवान्। ततः पश्चाद्विनयेनानतो नम्रीभूतो गदितवानुक्तवान्। अयि गुरो! पितः! ते तवेदं वचनं तु गुरु गुरुत्वयुक्तं, हिततममत्यन्तं हितकारि तथा मधुनोऽपि मधु मधुरमतएव प्रियम्॥३६॥

पताका–ब्रह्मचारी श्रीरामानन्द अपने पिताके वचनको सुनकर विनम्र होकर बोले कि हे पिताजी, आपका वचनतो बहुत गुरु–उत्तम है तथा हितकर और मधुसेभी अधिक मधुर है अतएव प्रिय है॥ ३६॥

नहि मया परमेतुमितो गुरो स्वमनसा पदमात्रमपीष्यते।
गुरुकुले वसता च कृतार्थतां निजजनिः सततं गमयिष्यते॥३७॥

वा० बु० प्र० परं किन्तु हे गुरो! पितः! मयेतः पदमात्रमप्येतुं गन्तुं स्वमनसा नेष्यते नेष्यते। गुरुकुले वसता मया निजजनिः स्वजन्म कृतार्थतां गमयिष्यते। कर्मणि लृट्॥ ३७॥

पताका–किन्तु हे पिताजी! मैं यहांसे पदमात्रभी चलनेकी इच्छा नहीं करता हूं। मैं तो यहांही रहकर अपने जन्मको कृतार्थ करूंगा॥३७॥

जगति सन्तमसं बहु विस्तृतं नहि चकास्ति च वेदरविः क्वचित् ।
तदहमाशु गुरोऽन्धपरम्परां विलयमेव नयामि महीतलात् ।। ३८ ।।

व्या० सु० प्र० जगति सन्तमसं (पा० ५।४।७९) गाढमन्धकारो बहु विसृतम्प्रसृतः । क्वचिद्वेदरविर्वेदसूर्यो न हि चकास्ति दीप्यते । तत्तस्मादहं हे गुरो ! महीतलात्पृथिवीतलादन्धपरम्परामेव विलयं नाशं नयामि प्रापयामि ॥ ३८ ॥

पताका—संसारमें अत्यन्त गाढ अन्धकार व्याप्त हो गया है। वेदरूपी सूर्य कहींभी प्रकाशित नहीं है । अतः हे पिताजी, मैं तो पृथ्वीपरसे इस अन्ध परम्पराका नाश करूंगा ॥ ३८ ॥

पुनरिहाम्रवणे श्रुतिलक्षणे द्विजगणः परिकूजतु कोकिलः ।
लयमहम्मतिरात्रिरुपैतु तद्विकचिता भवताच्छ्रुतिपद्मिनी ॥ ३९ ॥

व्या० सु० प्र० इह श्रुतिलक्षणे वेदरूप आम्रवणे (पा० ८।४।५) द्विजगणो ब्राह्मणरूपः कोकिलः पुनः परिकूजतु । अहम्मतिरहंबुद्धिरूपा रात्रिर्लयमुपैतु । तत्तस्माच्च श्रुतिपद्मिनी विकचिता विकसिता भवतात् ॥ ३९ ॥

पताका—वेदरूपी आम्र-वनमें पुनः ब्राह्मणरूपी कोकिल कूजने लगें, अहंकाररूपी रात्रिका प्रलय हो जावे और श्रुतिरूपी पद्मिनी पुनः विकसित होवे ॥ ३९ ॥

इतिकथाव्यथया परिपीडितौ विदितपुत्रमनोदृढतावुभौ ।
चिरमवापतुरेव च दम्पती अहह ! कश्मलपङ्कनिमग्नताम् ॥ ४० ॥

व्या० सु० प्र० इति उक्तप्रमाणेन कथाया वार्तया व्यथया पीडया पीडितौ, विदिता पुत्रस्य मनसो दृढता याभ्यां ता उभौ दम्पती अहह चिरं कश्मले किंकर्तव्यताविमूढात्मके पङ्के निमग्नतामवापतुः ॥ ४० ॥

पताका—उपर्युक्त प्रकारकी कथाकी व्यथासे पीडित हुये, पुत्रके मनके निश्चयको जानकर दोनों-दम्पती चिरकाल पर्यन्त खेदरूप पङ्कमें निमग्न रहे॥

इति निरीक्ष्य विमोहमुपागतौ द्विजवरावुदगादशरीरिणी ।
नभसि वागयि किं त्वनया शुचा न हि नरोऽयमथो जगदीश्वरः॥४१॥

बा० बु० प्र० द्विजवरौ ब्राह्मणीं ब्राह्मणं चेति एवं विमोहमुपगतौ प्राप्तौ निरीक्ष्य नभस्यशरीरिणी वागुदगादुच्चरिता—'अयि अनया शुचा किं नु'? हीति निश्चये। अयं तव पुत्रो नरो मानवो न। अथो जगदीश्वरः साक्षाच्छ्रीराम एव॥४१॥

पताका—इस प्रकारसे दोनों–दम्पतीको मोहित देखकर आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण और ब्राह्मणी इस शोक करनेसे क्या होगा? यह आपका पुत्र मनुष्य नहीं है किन्तु साक्षात् जगदीश्वर श्रीराम है॥ ४१ ॥

भुवि विलोक्य च धर्महतिं सदाचरणपद्धतितः पतितान्नरान्।
परिणये च पराङ्मुखतां दधज्जगति शं यतिरेष तनिष्यति ॥४२॥

बा० बु० प्र० भुवि पृथिव्यां धर्महतिं धर्मनाशं तथा सदाचरणस्य सदाचारस्य पद्धतितो मार्गान्नरान् पतितांश्च विलोक्य परिणये विवाहे पराङ्मुखतां वैमुख्यं दधदेष यतिः सञ्जगति शं कल्याणं तनिष्यति विस्तारयिष्यति ॥ ४२ ॥

पताका—पृथ्वी ऊपर धर्मकी हानि देखकर, तथा सदाचारके मार्गसे मनुष्योंको पतित देखकर, यह आपका पुत्र गृहस्थाश्रमसे विमुख होकर, संन्यास ग्रहण करके संसारमें कल्याणका विस्तार करेगा॥ ४२ ॥

स्वपितरौ चकितौ च विलोकयन् स्वमुखचन्द्रमसात्तुदजीघटत्।
अगणितानि जगन्ति निरीक्ष्य तौ सुतमुखेऽभवतामतिविस्मितौ ॥४३॥

बा० बु० प्र० असौ श्रीरामानन्दः स्वपितरौ चकितौ विलोकयन् स्वमुखचन्द्रमुदजीघटदुद्घाटितवान्। तौ सुतमुखेऽगणितानि जगन्ति निरीक्ष्यातिविस्मिताश्चर्यितावभूताम्॥ ४३ ॥

पताका—श्रीरामानन्दजीने अपने मातापिताको, आकाशवाणीसे चकित देखकर अपने मुखको उघाड़ा। उस समय वे दोनों–माता पिता पुत्रके मुखमें अगणित संसारको देखकर औरभी अधिक विस्मित हुये॥ ४३ ॥

हरिरदर्शयदात्ममुखे ततः श्रुतितिरस्कृतिमाहननं गवाम्।
द्विजनिराकृतिमाचरणं नृणां पतितमप्यथ नास्तिकतामयम् ॥४४॥

बा० बु० प्र० हरिः श्रीरामानन्दस्ततस्तदनन्तरमात्ममुखे, श्रुतितिरस्कृतिं वेदापमानं गवामाहननं मारणं द्विजानां ब्राह्मणानां निराकृतिं निराकरणं नृणां मनुष्याणां नास्तिकतामयं पतितमाचरणमप्यदर्शयत्॥ ४४ ॥

पताका—भगवान् श्रीरामानन्दने पुनः अपने मुखमें वेदोंका तिरस्कार, गौओंका वध, ब्राह्मणोंका अपमान लोगोंका नास्तिकतामय पतित आचरण आदि दिखाया ॥ ४४ ॥

पुनरुवाच जगज्जनको निजौ सविनयं पितरौ पितरौ युवाम् ।
जगति कीदृगनीतिरवर्द्धत मम मुखे नितरां तददर्शतम् ॥ ४५ ॥

व्रा० वु० प्र० जगज्जनकः श्रीरामानन्दः सविनयं पितरौ पुनरुवाच । हे पितरौ युवां जगति कीदृक्कीदृश्यनीतिरवर्द्धत वृद्धिं गता तन्मम मुखे नितरामत्यन्तमदर्शतमपश्यतम् ॥ ४५ ॥

पताका—संसारमात्रके पिता श्रीरामानन्द सविनय माता पितासे पुनः बोले। हे माताजी! तथा पिताजी! मेरे मुखमें आप लोगोंने अच्छे प्रकारसे देख लिया है कि संसारमें कितनी अनीति वढ़ी हुई है ॥ ४५ ॥

उपकृतिर्जगतोऽथ गृहस्थता वदतमत्र किमत्र करोम्यहम् ।
सहृदयौ सुविचार्य सुतं निजं जगदनुग्रहणे ह्यनुजज्ञतुः ॥ ४६ ॥

व्रा० वु० प्र० वदतमादिशतम्। जगत उपकृतिरथ गृहस्थता गार्हस्थ्यमनयोरहं किं करोमि? जगदुपकृतिं वा गृहस्थतां वेति? हीत्येवार्थे। सहृदयौ तौ सुविचार्य जगदनुग्रहणे जगदुपकार एव निजं सुतमनुजज्ञतुराज्ञापयाञ्चक्रतुः ॥ ४६ ॥

पताका—श्रीरामानन्दने कहा कि संसारका उपकार और गृहस्थाश्रम इन दोनोंमेंसे मैं क्या करूं? उन दोनों दम्पतीने सम्यक् विचार करके संसारके कल्याण करनेकी ही आज्ञा दी ॥ ४६ ॥

सुमनसः सुमवृष्टिमवाकिरन्दिवि ननाद महारुति दुन्दुभिः ।
उदभवञ्शकुनानि सतां परं खलगणेऽशकुनान्युदगुश्चिरम् ॥४७॥

व्रा० वु० प्र० सुमनसो देवा सुमानां पुष्पाणां वृष्टिमवाकिरन्। दिवि महारुति महाशब्दं यथा स्यात्तथा दुन्दुभिर्ननाद। सतां शकुनान्युदभवन्। परं खलगणे दुष्टानामशकुनान्युदगुरुदभवन्। चिरमिति सर्वत्र सम्बध्यते ॥ ४७ ॥

पताका—देवताओंने पुष्पकी वृष्टि की। आकाशमें दुन्दुभिका महान् शब्द होने लगा। सत्पुरुषोंको शकुन और दुष्टोंको अपशकुन होने लग गये

गुरुवरोऽपि निरीक्ष्य सदाग्रहं वटुवरस्य हि संन्यसने विधौ ।
शुभमहः शुभतत्कृतये मुदा सपदि सज्ञपनं निरदीधरत् ॥ ४८ ॥

बा० बु० प्र० गुरुवरः श्रीराघवानन्दोऽपि वटुवरस्य श्रीरामानन्दस्य संन्यसने विधौ संन्यासदीक्षाविधौ, हीति निश्चये । सदाग्रहं दृष्ट्वा, शुभा चासौ तत्कृतिश्च शुभतत्कृतिस्तस्यै संन्यासदीक्षायै सपदि शीघ्रं मुदानन्देन सज्ञपनं ज्ञपनेन बोधनेन सह शुभमहो दिनं निरदीधरन्निर्धारितवान् ॥ ४८ ॥

पताका—श्रीराघवानन्द स्वामीजीभी ब्रह्मचारी श्रीरामानन्दका संन्यास-दीक्षाके लिये अत्यन्त आग्रह देखकर, उस शुभ कर्मके लिये शीघ्र आनन्दके सहित विज्ञप्तिपुरस्सर शुभ दिवस निश्चय कर दिये ॥ ४८ ॥

निखिलकुलगिरीणां मोक्षदानां पुरीणां,
विविधसुरसरित्सोमोद्भवेत्यादिकानाम् ।
परमपतितनॄणां पावनीनां नदीना-
मतिविदितवनानां मण्डली नृस्वरूपा ॥ ४९ ॥

भवजलधिजलौघोल्लोलदोलाश्रितानां,
चिदचिदखिलसृष्टिस्रष्टुराश्वासनाय ।
नरवपुरधिगम्याजग्मुषः पुण्यसद्म-
तनुजनुष इयायावेक्षितुं न्यासदीक्षाम् ॥ ५० ॥(युग्मम्)

बा० बु० प्र० निखिलकुलगिरीणां समस्तकुलपर्वतानां मोक्षदानां पुरीणामयोध्यादीनां विविधसुरसरित्सोमोद्भवेत्यादिकानां परमपतितनॄणां पावनीनां शोधयित्रीणां नदीनामतिविदितानां परमप्रख्यातानां वनानां नृस्वरूपा मानवशरीरधारणी मण्डली— भवजलधिः संसारसागरस्तस्य जलौघस्तत्रोल्लोला दोला आश्रितानामाश्वासनाय चिदचिदखिलसृष्टेः स्रष्टुर्निमातुर्नरवपुर्मानवशरीरमधिगम्याजग्मुष आगतवतः पुण्यसद्मनः पुण्यसदनस्य तनुजनुषस्तनूजस्य श्रीरामानन्दस्य न्यासदीक्षामवेक्षितुं द्रष्टुमियायागतवती ॥ मालिनीच्छन्दः ॥ ४९ ॥ ५० ॥

पताका—समस्त कुल गिरि, मोक्षदा अयोध्यादि पुरी, परमपतित मनुष्योंकोभी पवित्र करनेवाली नदी तथा प्रख्यात वन, यह सब मनुष्यका

रूप धारण करके संसाररूपी सागरके जल समूहमें चञ्चल हिंडोला ऊपर बैठे हुये जनोंको आश्वासन करनेके लिये चित् और अचित् सम्पूर्ण सृष्टिके निर्माता, मनुष्य शरीर धारण करके आये हुये श्रीपुण्यसदनशर्माके पुत्र श्रीरामानन्दजीकी संन्यास दीक्षाके देखनेके लिये वहां आये ॥४९॥५०॥

वाराणसेयाः सकलाः प्रसिद्धा विद्वांस आयन्त विलोकितुं तम् ।
संन्यासदीक्षाविधिमाशु तत्र श्रीपुण्यसद्मात्मजनेरपूर्वम् ॥ ५१ ॥

बा० बु० प्र० वाराणसेयाः काशीस्थाः सकलाः प्रसिद्धा विद्वांसः, श्रीपुण्यसद्मात्मजनेः श्रीरामानन्दस्य तं संन्यासदीक्षाविधिं विलोकितुं तत्राशु आयन्तागतवन्तः । अय गतौ ॥ इन्द्रवज्रा ॥ ५१ ॥

पताका—काशीके सभी प्रसिद्ध २ विद्वान् श्रीरामानन्द स्वामीजीकी अपूर्व संन्यास दीक्षा देखनेके लिये शीघ्र वहां आये ॥ ५० ॥

इतिविदितसमस्तोदन्तजातैरमर्त्यैः,
सपदि पदमधायि क्षोणिपृष्ठे सशक्रैः ।
विशदसदनमेकं निर्मितं तैश्च तत्र,
यतिपतिमठपार्श्वे भीष्मसूनीरतीरे ॥ ५१ ॥

बा० बु० प्र० इति श्रीरामानन्दसंन्यासदीक्षारूपं विदितं समस्तमुदन्तजातं वृत्तसमूहो यैस्तैः सशक्रैरमर्त्यैर्देवैः सपदि शीघ्रं क्षोणिपृष्ठे भूतले पदमधायि भूतले त आगता इत्यर्थः । तैश्च तत्र काश्यां यतिपतिः श्रीराघवानन्दस्तस्य मठस्य पार्श्वे भीष्मसूर्गङ्गा तस्या नीरतीरे जलस्यातिसमीप इत्यर्थः । एकं विशदसदनं निर्मितम् ॥ मालिनीच्छन्दः ॥ ५१ ॥

पताका—श्रीब्रह्मचारी रामानन्दके संन्यासदीक्षाका समाचार सुनकर इन्द्रादि सब देवता शीघ्र मर्त्यलोक—काशीमें आये और उन्होंने यतिपति श्रीराघवानन्द स्वामीजीके मठके पास गङ्गाजीके तट पर एक सुन्दर भवन बनाया ॥ ५१ ॥

सविधि सशिखसूत्रं किल्विषद्रोलवित्र-
मतिमहितचरित्रं पुण्यसद्मैकपुत्रम् ।

अधिगृहमथ तस्मिन् राघवानन्दविद्वा-
नतिमुदितमनस्कोऽग्राहयत्सत्रिदण्डम् ॥ ५२ ॥

बा० बु० प्र० अथ तदनन्तरं तस्मिन्नधिगृहं भवनेऽतिमुदितं मनो यस्य स श्रीराघवानन्दविद्वान् सविधि विधिना सहितं सशिखसूत्रं शिखासूत्राभ्यां सहितं यथा तथातिमहितानि पूजितानि चरित्राणि यस्य तं पुण्यसद्मैकपुत्रं श्रीरामानन्दं किल्बिषरूपस्य द्रोर्वृक्षस्य लवित्रं छेदकं सच्छोभनं त्रिदण्डमग्राहयत् ॥ ५२ ॥

पताका–तदनन्तर उस देवनिर्मित भवनमें अत्यन्त प्रसन्न मनवाले विद्वान् श्रीराघवानन्द स्वामीजीने परमाराधित चरित्रवाले श्रीरामानन्दजीको पापरूपी वृक्षके छेदन करनेवाले त्रिदण्डका ग्रहण कराया ॥ ५२ ॥

सांन्यासिकं विधिमसौ हि समाप्य सर्वं,
श्रीराघवार्य इतिवाचमुवाच तस्मै ।
विद्यायशोनियमसंयमिने च रामा-
नन्दाय मन्मथमथे मुनये प्रयूने ॥ ५३ ॥

बा० बु० प्र० हिः पादपूरणार्थकः । असौ श्रीराघवार्यः सर्वं सांन्यासिकं संन्याससम्बन्धिनं विधिं समाप्य विद्यायशोनियमसंयमिने विद्यावते यशस्विने नियमिने संयमिने मन्मथं कामं मथ्नातीति मन्मथमत्तस्मै प्रयूने तरुणाय श्रीरामा-नन्दायेतिवाचमुवाच ॥ वसन्ततिलकाछन्दः ॥ ५३ ॥

पताका–श्रीराघवानन्द स्वामीजी समस्त सन्यास सम्बन्धी विधिको पूर्ण करके विद्यावान्, यशस्वान्, नियमवान् तथा संयमवान्, कामका मथन करनेवाले तरुण श्रीरामानन्दजीको इस प्रकारसे कहने लगे ॥५३॥

स्वाभाविकी तव च वत्स गिरां प्रवृत्तिः,
सर्वागमेऽप्रतिहता विदुषां मृगेन्द्र ।
वादीन्द्रकुञ्जरघटां विघटय्य नित्यं,
प्राकाश्यमाशु गमय श्रुतिचित्रभानुम् ॥ ५४ ॥

बा० बु० प्र० हे वत्स ! स्वाभाविकी नैसर्गिकी तव गिरां वाचां प्रवृत्तिः सर्वागमेऽप्रतिहताऽनिरुद्धा । हे विदुषां मृगेन्द्र ! वादीन्द्रा वादिमुख्यास्त एव

कुञ्जरा हस्तिनस्तेषां घटां समूहं विघट्य्य विलयं नीत्वाऽऽशु श्रुतिचित्रभानुं वेदसूर्य्यं नित्यं प्राकाश्यं प्राकट्यं गमय ॥ ५४ ॥

पताका–हे वत्स ! स्वाभाविकी तुम्हारी वाणीकी प्रवृत्ति सम्पूर्ण शास्त्रोंमें अप्रतिहत है। अतः हे विद्वन्मृगेन्द्र ! वादीरूपी हस्तियोंके समूहका विघटन करके शीघ्र वेदसूर्यका नित्य प्रकाश करो। तात्पर्य यह है कि जैसे महोन्नत हाथी अपनी विशालतासे सूर्यको आच्छादन कर ले वैसेही दुर्वादियोंने वेदसूर्यका आच्छादन कर लिया है। उस सूर्यका तुम प्रकाश करो ॥ ५४ ॥

श्रीसम्प्रदायपरिपन्थिजनौघसात्या,
श्रीराममन्त्रमपि भूमितले च सम्यक् ।
वत्स प्रचारय भवोद्भवभीति जाल-
विच्छेदनक्षममथ प्रथितप्रभावम् ॥ ५५ ॥

वा० बु० प्र० हे वत्स ! श्रीसम्प्रदायस्य परिपन्थिनां जनानामोघस्य समूहस्य सात्या विनाशेन भूमितले भवोद्भवायाः संसारादुत्पन्नाया भीत्या जालस्य विच्छेदने क्षमं समर्थं प्रथितप्रभावं श्रीराममन्त्रमपि सम्यक् प्रचारय ॥ ५५ ॥

पताका–हे वत्स ! श्रीसम्प्रदायके विघातकोंका नाश करके संसारके भयके नाश करनेमें समर्थ प्रतापी श्रीराममन्त्रका इस पृथ्वी पर अच्छे प्रकारसे प्रचार करो ॥ ५५ ॥

इत्थं गुरुस्तमुपदिश्य च संयमस्य,
साम्राज्यमप्यथ समर्प्य बभावचिन्तः ।
स्थानेसमर्पितनिजाखिलसम्पदोऽलं,
चेतश्चिराय हि निपीडयितुं न चिन्ता ॥ ५६ ॥

वा० बु० प्र० इत्थं गुरुः श्रीराघवानन्दः तं श्रीरामानन्दस्वामिनमुपदिश्य संयमस्य च साम्राज्यं समर्प्य संयमिसम्राजं कृत्वेत्यर्थः। अचिन्तो विगतचिन्तः सन् बभौ। हि यतः स्थाने सत्पात्रे समर्पिता अखिलाः सम्पदो येन तस्य चेतो निपीडयितुं मथितुं चिन्ता चिरायालं न ॥ ५६ ॥

पताका—इस प्रकारसे श्रीराघवानन्द स्वामीजीने श्रीरामानन्द स्वामीजी-को उपदेश देकर, संयमि-सम्राट् बनाकर निश्चिन्त हो गये। क्यों कि सत्पात्रमें अपनी समस्त सम्पत्तिका अर्पण करनेवालेके चित्तको व्यथित करनेमें चिन्ता समर्थ नहीं होती ॥ ५६ ॥

ततः परं तत्र सुरा नराश्च तेऽस्तुवन् प्रभुं गद्गदवाचयानया।
गुणानपारांस्तव नाथ नो वयं प्रवक्तुमीशाः कथमप्यलं विभो॥५७॥

बा० बु० प्र० ततः परं पश्चात् तत्र ते सुरा नराश्चानया गद्गदवाचया प्रभुं श्रीरामानन्दस्वामिनमस्तुवन्। हे नाथ! हे विभो! वयं तवापारान् गुणान् प्रवक्तुं कथमप्यलमत्यन्तमीशा न। सर्वथा समर्था न। त्वद्गुणैकदेशवर्णन एवास्माकं सामर्थ्यमिति भावः। वंशस्थवृत्तम् ॥ ५७ ॥

पताका—उसके पश्चात् देवता और मनुष्य गद्गदवाणीसे प्रभुकी स्तुति करने लगे। हे नाथ! हे विभो! आपके अपार गुणोंको वर्णन करनेके लिये हम लोग सर्वथा समर्थ नहीं हैं ॥ ५७ ॥

महाव्रतानां समितिं च बिभ्रते शमादिषट्सम्पदलङ्कृतात्मने।
स्मरस्मयोन्मन्थनशक्तिशालिने नमोऽस्तु ते सत्यसुधारसाब्धये॥५८॥

बा० बु० प्र० महाव्रतानां समितिं समाजं बिभ्रते धारयते शमादिषट्-सम्पत्तिभिरलङ्कृत आत्मा यस्य तस्मै, स्मरस्य कामस्य स्मयस्य गर्वस्य मन्थने शक्तिशालिने सत्यसुधारसस्याब्धये समुद्राय ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ ५८ ॥

पताका—बड़े २ व्रतोंको धारण करनेवाले, शम दमादि षट् सम्पत्तिसे अलङ्कृत, कामके गर्वके मन्थन करनेमें समर्थ और सत्यामृतके सागर आपको नमस्कार हो ॥ ५८ ॥

अखण्डतेजस्ततिभिः समन्तात्प्रकाशयन्नाथ दिगन्तरालान्।
अपारसंसारसमुद्रमध्ये निमज्जतां कारय धर्मसेतुम् ॥ ५९ ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ! अखण्डानां तेजसां ततिभिः परम्पराभिर्दिगन्तरा-लान्समन्तात्प्रकाशयन्नपारसंसारसमुद्रस्य मध्ये निमज्जतां जनानामिति शेषः, धर्मरूपं सेतुं कारय ॥ उपजातिः ॥ ५९ ॥

पताका—हे नाथ ! अपने अखण्ड तेजकी परम्परासे आप सब दिशाओंका प्रकाश करिये । तथा इस अपार संसार सागरमें डूबते हुओंके लिये धर्मसेतु बनाइये ॥ ५९ ॥

मातः सुशीले किमु वर्णयामस्तवातिमानुष्यविभूतिमद्य ।
कुक्षौ हि यस्याः समजायतार्घ्यो यतिस्त्रिलोकीपतिरेष धन्यः॥६०॥

वा० बु० प्र० हे मातः ! सुशीले ! अद्य तवातिमानुष्यविभूतिं लोकोत्तरैश्वर्यं किमु वर्णयामः । हि यतः, यस्याः कुक्षावुदरेऽर्घ्यः पूज्यो धन्यस्त्रिलोकीपतिरेष यतिः श्रीरामानन्दस्वामी समजायत ॥ ६० ॥

पताका—हे माता सुशीला ! आज आपके लोकोत्तर ऐश्वर्यका हम क्या वर्णन करें ? जिस आपके गर्भमें यह त्रिलोकीनाथ यतिराज श्रीरामानन्द स्वामी प्रादुर्भूत हुये ॥ ६० ॥

हे पुण्यसद्मन्द्विजराज पुण्यसद्मासि सत्यं त्वमिहाद्य यस्मात् ।
जगत्प्रभुः स्वीकृतबालभावः समाश्रयत्त्वां पितरं स्वकीयम् ॥६१॥

वा० बु० प्र० हे द्विजराज पुण्यसद्मन् ! इहाद्य त्वं सत्यं पुण्यसद्मासि । यस्माज्जगतः प्रभुः स्वीकृतबालभावः सँस्त्वां स्वकीयं पितरं समाश्रयत् ॥ ६१ ॥

पताका—हे द्विजराज श्रीपुण्यसदनजी ! इस संसारमें आप सत्यही पुण्यसदन-पुण्यके घर हैं । क्यों कि संसारके स्वामी आपके यहां बालभावसे आपका अपने पितारूपमें आश्रयण किया है ॥ ६१ ॥

ततो विमानेन सुरेशवाचा सुराः प्रभोस्तौ पितरौ प्रयागम् ।
प्रापय्य लोकं निजमभ्ययुस्ते सर्वे जनाश्च स्वगृहं प्रयाताः ॥६२॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये सप्तमः सर्गः

वा० बु० प्र० ततस्तदनन्तरं सुरेशस्येन्द्रस्य वाचा वचनेन सुराः प्रभोः श्रीरामानन्दस्य पितरौ श्रीसुशीलाश्रीपुण्यसदनौ विमानेन प्रयागं प्रापय्य निजं लोकमभ्ययुरगच्छन् । ते सर्वे जनाश्च स्वगृहं प्रयाताः ॥ ६२ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यां सप्तमः सर्गः

पताका–उसके पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वैमानिक देवताओंने श्री सुशीला माता तथा श्रीपुण्यसदनशर्माजीको विमानके द्वारा प्रयाग पहुंचाकर अपने लोकको गये। तथा आये हुये मनुष्यभी अपने २ घर गये ॥६२॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचित श्रीमद्भगवद्रामा-
नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां सप्तमः सर्गः ।

अथाष्टमः सर्गः

एवं याते निजनिजगृहं तर्हि देवे नरे वा,
रामानन्दो यतिपतिरसावाज्ञया श्रीगुरोश्च ।
काश्यामेव प्रतिदिनमथो योगमुद्रां दधानो,
वासं चक्रे यतिपदभृतामग्रिमं स्थानमाप्तुम् ॥ १ ॥

बा० बु० प्र० अथो, तर्हि तस्मिन्त्समय एवमुक्तप्रकारेण देवे नरे च, वेतिचार्थे, निजनिजस्य गृहं याते सति श्रीगुरोः श्रीराघवानन्दस्याज्ञयासौ यतिपतिः श्रीरामानन्दो यतिपदभृतां यतीनामग्रिमं स्थानमाप्तुं प्रतिदिनं योगमुद्रां दधानः काश्यामेव वासं चक्रे ॥ मन्दाक्रान्ता ॥ १ ॥

पताका–उस समय देवता और मनुष्योंके स्व–स्व गृह चले जानेके पश्चात् यतिपति श्रीरामानन्दस्वामीजी श्रीराघवानन्दस्वामीजीकी आज्ञासे सर्वोत्कृष्टता प्राप्त करनेके लिये योगमुद्रा धारण करते हुये काशीमेंही वास करने लग गये ॥ १ ॥

त्यक्त्वा सर्वं वसनमशनं वीतरागस्तपस्वी,
कौपीनं सन्दधदधिमनस्तावतैवातिसौख्यम् ।
मन्वानः श्रीयतिपतिरसौ ब्रह्मनिष्ठप्रतिष्ठो,
जेतुं किञ्चित्पदमिह महद्धन्त सन्तिष्ठते स्म ॥ २ ॥

व्या० बु० प्र० असौ यतिपतिः श्रीरामानन्दस्वामी सर्वमशनं भोजनं वसनं वस्त्रादिकं त्यक्त्वा परित्यज्य कौपीनं सन्दधत्परिदधदित्यर्थः, अधिमनो मनसि तावतैव तावन्मात्रेणैव कौपीनमात्रेणैवेति भावः, अतिसौख्यं मन्वानो वीतरागो रागरहितस्तपस्वी ब्रह्मनिष्ठेषु प्रतिष्ठा यस्यैवंभूतः सन् हन्तेति हर्षे आश्चर्येवा, किमन्महत्पदं जेतुं सन्तिष्ठते स्म (पा० १।३।२२) ॥ २ ॥

पताका–श्रीस्वामी रामानन्दजी महाराज एक कौपीन मात्रसे सन्तुष्ट होकर, वस्त्र तथा भोजनकाभी त्याग कर, वीतराग तथा तपस्वी होकर ब्रह्मनिष्ठ जनोंमें प्रतिष्ठा प्राप्तकर किसी महान् पदको जीतनेके लिये इस मर्त्यलोकमें बैठे थे ॥ २ ॥

विद्यावर्चः सुकृतिनिचयो यस्य दासायतेऽद्धा,
नैतत्तद्यद्भवति न सुखेनापनीयं सदैव ।
साक्षाद्ब्रह्माप्यमितमतिमान्सर्वलोकैकनाथः,
सोऽयं गात्रं क्षपयति गतिर्हि विचित्रा गुरूणाम् ॥३॥

व्या० बु० प्र० विद्या वर्चस्तेजः सुकृतयः सत्कर्माणि सर्वेषामेषां निचयः समूहोऽद्धा सम्यगस्य दासायते दासवदाचरति, तन्न अस्तीतिशेषः, यत्सदैवसुखेनानाया-सेनापनीयं प्राप्तव्यं न भवति । सोऽयममितमतिमान महाबुद्धिमान् सर्वलोकैकनाथः साक्षाद्ब्रह्मापि गात्रं शरीरं क्षपयति व्रतादिना कृशीकरोति । हीत्याश्चर्ये । गुरूणां महतां गतिर्विचित्रा भवतीति शेषः ॥ ३ ॥

पताका–विद्या, तेज, सत्कर्म जिसके दास हैं तथा ऐसी कोई वस्तु नहीं जो अनायास ही जिससे न प्राप्त हो सके सो वह परम विद्वान् त्रिलोकीनाथ साक्षात् ब्रह्म श्रीरामानन्द स्वामीभी व्रतादिके द्वारा अपने शरीरको कृश कर रहे हैं । आश्चर्य है, महान् पुरुषोंकी गति विचित्र होती है ॥ ३ ॥

याश्च प्रोक्ता भुजगपतिना वृत्तयः पञ्चतथ्यो,
निस्त्रिंशाभ्यां यमनियमनाभ्यां हतास्तेन पूर्वम् ।
योगीः सिद्धीर्वशयितुमलं चासमन्ताः समन्ता-
च्छान्तो भूत्वापरमनिपुणोऽधत्त वाचंयमत्वम् ॥ ४ ॥

बा० बु० प्र० भुजगपतिना पतञ्जलिना याः पञ्चतय्यो वृत्तयः प्रोक्तास्तास्तेन पूर्वं प्रथमं यमनियमनाम्भ्यां यमनियमाभ्यां निर्स्त्रिशाभ्यां खड्गाभ्यां हताः यौगीर्योगसम्बन्धनीः सिद्धीरलमत्यन्तं वशयितुं वशीकर्तुं शान्तो भूत्वा परमनिपुणः स समन्तादासममावर्षं वाचंयमत्वं मौनित्वमधत्त ॥ ४ ॥

पताका—पतञ्जलि मुनिने जो पञ्च प्रकारकी वृत्तियां लिखी हैं उनको प्रथम यम और नियम रूप खड्गसे मारकर योगसम्बन्धी सिद्धियोंको अत्यन्त सर्वथा वशमें करनेके लिये एक वर्ष मौन धारण किया ॥ ४ ॥

अह्न्येकस्मिन् यतिपतिरभूत्तन्मयोऽनामयो ऽसौ,
ध्याने तत्रागमदतिखलः कश्चिदन्यो हि योगी ।
श्रीमन्तं श्रीमदभिमतमालोक्य योगे समाधा-
वीर्ष्याविह्नौ ज्वलित इव हन्तैष धर्मः खलानाम् ॥५॥

बा० बु० प्र० एकस्मिन्नहनि अनामयो नीरोगोऽसौ यतिपतिर्ध्याने तन्मयोऽभूत् । श्रीमन्तं श्रीमतामभिमतं योगे समाधावालोक्येर्ष्याविह्नौ ज्वलितो भस्मीभूत इवातिखलः कश्चिदन्यो योगी तत्रागमत् । हन्तेति खेदे । खलानामेष धर्मः ॥५॥

पताका—एक दिन नीरोग स्वामी श्रीरामानन्दजी ध्यानमें तन्मय थे उन श्रीमान्को योगकी समाधिमें देखकर ईर्ष्यारूप अग्निमें जले हुयेके समान अत्यन्त दुष्ट एक दूसरा योगी वहां आया । खलोंका द्रोह करना यह धर्महीं है ॥ ५ ॥

सोऽयं जिह्मोऽनयदपदयो जिह्मगं क्रूरमेकं,
ध्यानावस्थं तमभित इति स्वे मनस्याकलय्य ।
दंशेनास्याप्रतिमगरलस्यायमस्तं गतः स्या-
त्संस्थाप्यारात्तमगमदयं धिग्धि सर्वंकषत्वम् ॥६॥

बा० बु० प्र० सोऽयं जिह्मः कुटिलो योगी एकं क्रूरं जिह्मगं सर्पमनयत् । अप्रतिममनुपममतीवोत्कृष्टं गरलं विषं यस्य तस्यास्य सर्पस्य दंशेनायं श्रीरामानन्दोऽस्तं गतः स्यादिति स्वे मनस्याकलय्य विचार्य ध्यानावस्थं तं श्रीरामानन्दस्वामिनमभितः, 'अभितः परित' इति द्वितीया तं संस्थाप्य स्थापयित्वाऽऽरादूरमगमद्गतः ।

हीति निश्चये । सर्वं कषतीति सर्वंकषः (पा० ३।२।४२) तस्य भावस्तत्त्वं धिक् । "धिगुपर्य्यादिषु" इति द्वितीया ॥ ६ ॥

पताका—वह कुटिल योगी एक क्रूर सांपको ले आया । स्वामीजी ध्यानमें बैठे थे । उसने विचार किया कि इसकेकाटनेसे स्वामीजी मर जायँगे। उसको वहां रखकर वह दूर चला गया । ऐसी दुष्टताको धिक्कार है॥

सर्पः सोऽभूदपगतविषः पूर्वमेवाथ पश्चा-
ज्जाता तूर्णं परमललिता मालतीसूनमाला ।
सर्वत्रायं भवति नियमो नास्तु यत्तत्तदेव,
सर्वेशेच्छामनुगतमिदं ह्यन्यदन्यत्त्वमेति ॥ ७ ॥

बा० बु० प्र० पूर्वं स सर्पोऽपगतविषो निर्विषोऽभूत् । अथ पश्चात्तूर्णं परमललिता परमसुन्दरी मालतीसूनानां मालतीप्रसूनानां माला जाताऽभूत् । यद्यत्स्या-त्सर्वत्रायं नियमो न भवति 'तत् तदेवास्तु' इति । हि यस्मात्सर्वेशः श्रीरामस्त-स्येच्छामनुगतमिदमन्यदन्यत्त्वं प्रकारान्तरत्वमेति ॥ ७ ॥

पताका—प्रथम वह सर्प निर्विष हो गया । पश्चात् मालती पुष्पकी सुन्दर माला बन गया । क्योंकि यह निश्चय नहीं है कि जो वस्तु जैसी है वैसीही रहे । पदार्थमात्र भगवदिच्छाके अनुकूल चल रहा है । उसकी इच्छासे अन्य वस्तु अन्य हो जाती है ॥ ७ ॥

एतद्दृष्ट्वा चकितचकितो दुर्मतिः पीतमद्यो,
वह्निज्वालां धगिति धगिति श्रेयसां स्वस्य हन्ता ।
प्रज्वाल्यासौ पुनरनतिदूरे स्थितोऽदूरदर्शी,
हा हा लोके विलसति कियद्राज्यमज्ञानतायाः ॥ ८ ॥

बा० बु० प्र० एतच्चमत्कारबाहुल्यं दृष्ट्वा चकितचकितोऽत्यन्तचकितः पीतमद्यः स्वस्य श्रेयसां कल्याणानां हन्ता दुर्मतिर्धगिति धगिति वह्निज्वालां प्रज्वाल्य प्रदीप्या-नतिदूरे समीपे पुनः स्थितः । यतः सोऽदूरदर्शी विवेकशून्यः । हा हेत्याश्चर्ये । अज्ञानतायाः कियद्राज्यं विलसति ! ॥ ८ ॥

पताका—इस चमत्कारको देखकर मद्यपान करनेवाला, अपने हितका नाश करनेवाला, दुष्ट बुद्धिवाला, विवेक हीन वह योगी अत्यन्त चकित होकर

प्रलय कालके समान धक्धक् अग्निज्वाला प्रज्वलित करके पुनः वहांही समीपमें खड़ा रहा। अहा! अज्ञानताका कितना बड़ा राज्य फैला हुआ है!

सर्वज्ञस्याविचलितगतेस्तत्तपस्तेजसा सा,
वह्निज्वाला स्वयमुपगता शान्तिमह्नाय सर्वा।
यत्तेजोंशाज्ज्वलति नितरामुज्ज्वलं वीतिहोत्र-
स्तत्तापाय प्रभवतु कथं पारतन्त्र्यापविद्धः॥ ९॥

बा० बु० प्र० अविचलिता गतिर्यस्य तस्य शान्तस्येत्यर्थः, सर्वज्ञस्य भगवतः श्रीरामानन्दस्य तच्च तत्तपश्च तस्य तेजसा सा सर्वा वह्निज्वालाऽऽह्नाय शीघ्रं स्वयं शान्तिमुपगता। पारतन्त्र्येणापविद्धो वीतिहोत्रोऽग्निर्यत्तेजसोंऽशाद्उज्ज्वलं यथा तथा नितरां ज्वलति तत्तापाय तस्य दाहाय कथं प्रभवतु समर्थो भवतु॥ ९॥

पताका—अविचलित गतिवाले सर्वज्ञ श्रीरामानन्दजीके उस (प्रसिद्ध) तपके तेजसे वह सब अग्निज्वाला शीघ्र स्वयं शान्त हो गई। अग्नि जिसके तेजके अंशसे प्रकाशित हो रहा है उसीको ताप पहुंचानेमें वह कैसे समर्थ हो सकता है॥ ९॥

अस्थ्नां खण्डानथ विपथगो वर्षयामास पश्चा-
न्मेदोमांसासृगविरलसंवर्षणं चाप्यकार्षीत्।
किन्त्वेतानि त्रिभुवनपतेरातपत्र्यं गतानि
सर्वं श्रेयः किल विदधते भाग्यभाजां नराणाम्॥१०॥

बा० बु० प्र० अथानन्तरं विपथगः कुमार्गगामी स धूर्तयोगी अस्थ्नां खण्डान् वर्षयामास। पश्चान्मेदो वसा मांसमसृग्रुधिरमित्येतेषामविरलमतिघनं संवर्षणं चाप्यकार्षीत्। किन्त्वेतानि सर्वाणि मेदआदीनि वस्तूनि त्रिभुवनपतेः श्रीरामानन्द-स्वामिन आतपत्र्यं छत्रतां गतानि छायासाधनानि भूतानीति भावः। भाग्यभाजां भाग्यशालिनां नराणां किलेति निश्चये, सर्वं श्रेयः कल्याणं विदधते॥ १०॥

पताका—अग्निके शान्त हो जानेपर वह कुमार्गी हड्डियोंकी वर्षा करने लगा। पश्चात् मेद, मज्जा, रक्तादिकी घनी वृष्टि करने लगा। परन्तु यह सब दूषित वस्तुएँ त्रिभुवनपति श्रीरामानन्दजी स्वामीके लिये छत्र

स्वरूप हो गयीं। अर्थात् ऊपर आकाशमेंही लटकती रह गईं। भाग्यशाली पुरुषोंका सभी कल्याण करते हैं ॥ १० ॥

हन्तुं हन्तारमरिगजतामात्मघातीन्द्रियाती-
तं संसारार्णवगतनृणामेकबन्धुं यतीन्द्रम्।
हस्ते कृत्वाऽऽचलदुपमृतिश्चन्द्रहासं सहासं,
किन्तु प्राणैर्विरहित इतः स प्रयातोऽन्तकान्ते ॥११॥

वा० बु० प्र० स उपमृतिर्मरणासन्न आत्मघाती अरिगजतां शत्रुदन्तावल-समूहं हन्तारमिन्द्रियातीतं संसारार्णवगतानां संसारसागरपतितानां नृणामेकबन्धुं यतीन्द्र श्रीस्वामिचरणं हन्तुं सहासं चन्द्रहासमसिं हस्ते कृत्वाऽऽचलत्। किन्तु प्राणैर्विरहितः सोऽन्तकस्य यमस्यान्ते समीपे प्रयातः॥ ११ ॥

पताका—मरणासन्न वह आत्मघाती कुयोगी शत्रुरूपी गजके मारनेवाले, इन्द्रियातीत, संसार सागरमें पड़े हुओंके एकमात्र बन्धु, यतीन्द्र श्रीस्वामीजी महाराजको मारनेके लिये तलवार हाथमें लेकर हँसता हुआ चला। परन्तु वह स्वयं प्राणोंसे वियुक्त होकर यमपुरीका मार्ग पकड़ा ॥ ११ ॥

काश्यामासीत्सकलजनतामन्दिरे ख्यातिरेवं,
रामानन्दो निखिलसुकलानाथतां गाहतेऽसौ।
अद्यैवासौ प्रणिहत उत ध्यानमात्रेण तेन,
मायाकार्ये प्रथितमहिमा दुर्जनानन्दयोगी ॥ १२ ॥

वा० बु० प्र० काश्यां सकलाया जनताया मन्दिरे गृह एवं ख्यातिः प्रसिद्धिरासीत्—असौ रामानन्दो निखिलानां सु-कलानां सुन्दरविद्यानां नाथतां स्वामितां गाहते। कुत इति ज्ञातं चेदुच्यते। तेन ध्यानमात्रेण मायाकार्ये प्रथितो विख्यातो महिमा यस्यासौ दुर्जनानन्दयोगी अद्यैव प्रणिहतो निहतः। उतेति आश्चर्ये॥

पताका—काशीमें घर २ प्रसिद्धि हो गई कि श्रीरामानन्द स्वामी सम्पूर्ण कलामें प्राप्तैश्वर्य हैं। क्यों कि मायाकार्यमें परम निपुण दुर्जनानन्द योगीको उन्होंने आजही ध्यानमात्रसे मार डाला है ॥ १२ ॥

श्रुत्वा वार्तां गरलसमतां तां दधानां समस्ता,
आयातास्तत्सहचरगणास्तत्क्षणं स्वामिपार्श्वे।

दृष्ट्वा मार्गे मरणशरणं प्राप्तवन्तं निजं तं,
मित्रं मित्रव्ययजविपदा व्याकुला हेति चक्रुः ॥१३॥

बा० बु० प्र० गरलसमतां विषतुल्यतां दधानां तां वार्तां श्रुत्वा समस्ता-स्तत्सहचरगणास्तत्क्षणं तस्मिन्नेव समये स्वामिपार्श्वे दुर्जनानन्दसमीप आयाताः। मार्गे तं निजं मित्रं सखायं, स्वामित्वेऽपि मित्रत्वं न व्यभिचरतीति भावः। मरणशरणं प्राप्तवन्तं गतवन्तं दृष्ट्वा मित्रस्य व्ययो नाशस्तज्जया विपदा व्याकुलास्ते सर्वे हा इति चक्रुः ॥ १३ ॥

पताका—विष समान असह्य इस समाचारको सुनकर दुर्जनानन्दके सब सहचर तत्काल वहां आ गये। उन्होंने मार्गमेंही अपने मित्र—स्वामीको मृत्युके शरणमें पहुंचा हुआ देखकर मित्र—नाश जन्य विपत्तिसे व्याकुल होकर हा हा करने लगे ॥ १३ ॥

क्रुद्धाः सर्वे यतिपतिपुरः प्रापुरभ्यर्णकाला,
वीक्ष्यामुं ते परममहसां राशिमेकं ज्वलन्तम्।
ध्याने मग्नं मुनिवरममुं नूनमुत्थाप्य तस्मा-
न्मध्येगङ्गं विहतमतयः क्षेप्तुमाधुः कुबुद्धिम् ॥ १४ ॥

बा० बु० प्र० अभ्यर्णं समीपं कालो येषां ते मरणासन्नाः क्रुद्धाः सर्वे यतिपतिपुरः श्रीरामानन्दस्वामिसमक्षं प्रापुराजग्मुः। ते परममहसां ज्वलन्तमेकं राशिं समूहममुं श्रीस्वामिनं वीक्ष्य विहतमतयो मूढाः (ते) ध्याने मग्नममुं मुनिवरं तस्मात्स्थानादुत्थाप्य मध्येगङ्गं गङ्गाया मध्ये क्षेप्तुं कुबुद्धिं दुर्मतिमाधुर्धृतवन्तः॥१४॥

पताका—मरणोन्मुख, क्रुद्ध होकर वे सब श्रीस्वामीजीके समीप आये। वहां महान् तेजके जलते हुये एक समूहके समान श्रीस्वामीजीको देखकर उन दुर्बुद्धियोंने विचार किया कि "ध्यानमें बैठे हुये इनको यहांसे उठाकर गङ्गाजीके मध्यमें फेंक दें" ॥ १४ ॥

सर्वैर्यत्नैरमितवलितासंव्ययेनापि सर्वे,
ते नो शक्तास्तिलमपि भुवं स्थामधामानमर्घ्यम्।
रामानन्दं रहयितुमिति ह्रीपदैस्ताडितास्ते,
शोकादुच्चैरपगतमदा आरभन्तास्रपातम् ॥ १५ ॥

वा० बु० प्र० ते सर्वे सर्वैर्यत्नैरुपायैरमितायाः बलितायाः शूरतायाः संव्ययेन सम्यगुपयोगेनापि स्थामधामानं पराक्रमैकनिधिमर्घ्यं पूज्यं श्रीरामानन्दं तिलमपि भुवं रहयितुं, त्याजयितुं नो शक्ताः समर्था बभूवुः । इति हेतो ह्रीपदैर्लज्जाचरणैस्ताडितास्तेऽपगतो मदोऽहङ्कारो येषां तथा भूताः शोकादुच्चैरस्रपातमश्रुविमोचनमारभन्त ॥ १५ ॥

पताका—उन सबोंने सब प्रकारके यत्नसे अपनी शूरताका व्यय किया परन्तु पराक्रमके निधि श्रीस्वामीजी महाराजसे तिल भरभी भूमि छुड़ा नहीं सके। अतः लज्जाके चरण प्रहारसे ताडित होकर जोरसे रोने लगे॥

जाताकाशादियमथ गिरा हापयन्ती समेषां,
खिन्नानां तां शुचमिममरे नैव मर्त्यं मनुध्वम् ।
साक्षाद्ब्रह्माधिभुवि जनतां वीक्ष्य धर्मापरक्तां,
धर्मं भूयो द्रढयितुमलं ह्यागतं मर्त्यलोके ॥ १६ ॥

वा० बु० प्र० खिन्नानां शोकाक्रान्तानां समेषां सर्वेषां शुचं हापयन्ती दूरीकुर्वत्याकाशादियं गिरा जाता—अरे! इमं मर्त्यं मनुष्यं नैव मनुध्वम् । अधिभुवि पृथिव्यां जनतां धर्मापरक्तां धर्मपराङ्मुखीं वीक्ष्य भूयः पुनर्धर्ममलं द्रढयितुं द्रढीकर्तुं मर्त्यलोके साक्षाद्ब्रह्मागतम् । अयं ब्रह्मैव न मनुष्य इति भावः ॥ १६ ॥

पताका—उन सबोंको बहुत शोकाक्रान्त देखकर सबके शोकको दूर करती हुई आकाशवाणी हुई, कि अरे इन्हें तुम लोग मनुष्य नहीं समझना। यह तो साक्षात् ब्रह्म हैं। पृथ्वीपर जनताको धर्मसे विमुख देखकर पुनः धर्मको सर्वथा दृढ़ करनेके लिये इस लोकमें आये हैं ॥ १६ ॥

इत्याकर्ण्य प्रभुपदयुगं सादरं योगिवृन्दा,
नेमुः पश्चान्निजनिजकरेणैव लज्जाहतास्ते ।
कर्णौ छित्वा स्वमठमगमन्स्वापराधान् क्षमाप्य,
तस्मादारभ्य हि जगति ते छिन्नकर्णा भवन्ति ॥१७॥

वा० बु० प्र० योगिवृन्दा इत्याकर्ण्य निशम्य सादरं प्रभुपदयुगं श्रीस्वामिचरणयुग्मं नेमुः प्रणेमुः । पश्चाल्लज्जाहतास्ते निजनिजकरेणैव कर्णौ छित्वा स्वापराधान्

क्षमाप्य स्वमठमगमन् । तस्मादारभ्य ततः प्रभृति ते जगति छिन्नकर्णा जाताः । हीति निश्चये ॥ १७ ॥

पताका—उन योगियोंने यह सुनकर सादर श्रीस्वामीजीके चरण कमलमें प्रणाम किया । पश्चात् लज्जित हुये उन सबोंने अपने २ हाथोंसे अपने २ कान काटकर; अपराध क्षमाकराकर अपने मठमें गये । तबसेही सब कनकटे हो गये ॥ १७ ॥

कश्चिद्विप्रः प्रभुपदसपर्याधिलीनः कदाचि-
त्पूजान्ते स श्रुतिविधिवशाच्छंखनादं प्रचक्रे ।
तच्छ्रुत्वान्तर्मलिनयवनाः कोपनास्तं गृहीत्वा,
हन्तुं निन्युः कलिमलजुषो मस्यचित्ते प्रसह्य ॥१८॥

बा० बु० प्र० कश्चिद्विप्रो ब्राह्मणः कदाचित् प्रभुपदयोः सपर्यायामर्चायामधिलीनोऽधिकलीनः पूजान्ते श्रुतिविधिवशाद्वेदाज्ञानुसारतः शंखनादं प्रचक्रे कृतवान् । तच्छ्रुत्वा कोपनाः कलिमलजुषः कलिदोषग्रस्ता अन्तर्मलिनाः कलुषितहृदयाश्च ते यवनाश्च तं ब्राह्मणं प्रसह्य हठाद् गृहीत्वा हन्तुं मस्यचित्ते मसजिदेतितद्भाषायां निन्युर्नीतवन्तः ॥ १८ ॥

पताका—कोई ब्राह्मण किसी समय प्रभुकी पूजामें तल्लीन था । पूजाके अन्तमें वेदाज्ञाके अनुसार उसने शंख बजाया । इसे सुनकर कलि—दोष—ग्रस्त, क्रोध करनेके स्वभाववाले, मलिन अन्तःकरणवाले यवन उस ब्राह्मणको हठात् पकड़कर मारनेके लिये मसजिदमें ले गये ॥ १८ ॥

आसीद्विप्रः परमसरलश्चैकपुत्रो विदारो,
दीनत्रातः किल मयि मृते का दशा मेऽस्य सूनोः ।
इत्यालोच्यावनितलमपप्तत्तदानीमचेता,
याता वार्ता कथमपि जगत्सद्गुरोः कर्णयोः सा ॥१९॥

बा० बु० प्र० स च विप्रः परमसरलोऽवक्र आसीत् । तथैकपुत्र एकपुत्रवानासीत् । तथा विदारो दाररहित आसीत् । हे दीनत्रातः ! दीननाथ ! मयि मृतेऽस्य सूनोः पुत्रस्य का दशा ? इत्यालोच्य विचार्य तदानीमचेता विचेतनः

सन्नवनितलं पृथिवीतलमपप्तत् । सा वार्ता कथमपि केनापि प्रकारेण जगतां सद्गुरोः श्रीस्वामिमहाराजस्य कर्णयोर्गता ॥ १९ ॥

पताका—वह ब्राह्मण बहुत सरल स्वभाववाला था । उसके एकही पुत्र था । स्त्री मर गईथी । वह विचार करने लगा कि हे नाथ! मेरे मरनेपर मेरे पुत्रकी क्या दशा होगी ? ऐसा विचार कर मूर्छित होकर पृथ्वीपर पड़ गया । उसके वध होनेका समाचर किसी प्रकार जगद्गुरुके पास पहुंच गया ॥ १९ ॥

जातं तूर्णं यतिपतिमहिम्नेति चित्रं हि तत्र,
शंखानां तद्यवनभवने कोटयः सन्निविष्टाः ।
जातोऽकालप्रलयसदृशो दीर्घरावो विराव-
श्चासप्ताहं हृदयभयदो यावनोरोविभेदी ॥ २० ॥

वा० बु० प्र० हीति निश्चये । तत्र यतिपतेः श्रीस्वामिनो महिम्ना तूर्णं शीघ्रमिति चित्रमाश्चर्यं जातम् । इति किम्? तद्यवनभवने मस्यचित्ते शंखानां कोटयः कोटिसंख्या प्रविष्टा आसप्ताहं सप्ताहपर्य्यन्तं च तत्र विरावो विविधो रावः शब्दो यस्मिन् सोऽअकालप्रलयसदृशो हृदयभयदो यावनानामुरसां हृदयानां विभेदी विदारको दीर्घरावो जातः ॥ २० ॥

पताका—श्रीस्वामीजीके माहात्म्यसे वहां एक शीघ्र आश्चर्य हुआ। करोड़ों शंख मन्दिरमें प्रकट हो गये। अकाल-प्रलयके शब्दके समान विविध महान् शब्द होने लग गये। सात दिवस तक हृदयको भय देनेवाले यवनोंके हृदयको फाड़नेवाले यह शब्द होते रहे ॥ २० ॥

किं जातं किं किमिति भविता किं च कार्यं न्विदानीं,
नो निश्चिन्वन् विकलविकलो यावनः सङ्घ एकः ।
यातः पार्श्वे द्विजपदयुगस्यैव तस्यैव सास्रं,
चिन्ताव्यालीग्रसित इव सन्धूनयन्मस्तकं स्वम् ॥२१॥

वा० बु० प्र० किं जातमभूत् । किं किं भविता ? इदानीं च किं कार्यम् ? इति नो निश्चिन्वन् निश्चयं कुर्वन् विकलविकलोऽत्यन्तव्यग्र एको यावनः संघो

यवनानां समूहश्चिन्ताव्याल्या चिन्तासर्पिण्या ग्रसित इव सार्त्तं स्वं मस्तकं धूनयंस्ताडयन्नेव तस्यैव द्विजपद्युगस्य पार्श्वे समीपे यातः ॥ २१ ॥

पताका—यह क्या हुआ? भविष्यमें क्या २ होगा? अब क्या करना चाहिये? यह सब कुछ निश्चय न करते हुये अत्यन्त व्याकुल होकर चिन्तारूप सर्पिणीसे ग्रसे हुयेकी तरह रोता २ यवनोंका एक संघ माथा पीटता २ उसी ब्राह्मणके समीप गया ॥ २१ ॥

ब्रह्मन्नस्माकमिह वहुलो विद्यते चापराधः,
क्षन्तव्यास्ते वयमिह गुरो नम्रचेतस्तथापि ।
आज्ञा या स्यादपि वयमिदानीमनुष्ठातुमर्हा,
इत्युक्त्वा ते सजलनयनाः पेतुरङ्घ्रयोर्द्विजस्य ॥२२॥

बा० बु० प्र० हे हे ब्रह्मन् ब्राह्मणदेव! अस्माकमिहास्मिन् कर्मणि बहुलो महानपराधो विद्यते । तथापि हे नम्रचेतः! गुरो! इहास्मिन् समये वयं क्षन्तव्याः । याऽपि आज्ञा स्यादिदानीमधुना वयमनुष्ठातुं सम्पादयितुमर्हा योग्या स्तामिति शेषः । सजलनयनाः साश्रुनेत्रास्त इत्युक्त्वा द्विजस्याङ्घ्रयोश्चरणयोः पेतुः ॥ २२ ॥

पताका—हे ब्राह्मण देव इस कार्यमें हमारा वड़ा भारी अपराध है। तोभी हे नम्र चित्तवाले गुरु महाराज! आप इस समय हम लोगोंको क्षमा कर दें। इस समय जो आज्ञा हो हम सब लोग करनेको उद्यत हैं। ऐसा कहकर रोते हुये वह सब उस ब्राह्मणके चरणमें गिर पड़े ॥ २२ ॥

ऊचे विप्रोऽहमिह विषये नैव जानामि किञ्चि-
न्नाहं शक्तोऽघटितघटनां संविधातुं किलैताम् ।
अन्यायस्य प्रतिफलमिदं वः प्रदातुं न शक्तो,
नाना नाथं निखिलजगतः सत्यमेतद्ब्रुवेऽहम् ॥२३॥

बा० बु० प्र० विप्र ऊचे । इह विषयेऽहं किञ्चिन्न जानामि । किलेति निश्चये । एतामघटितस्य घटनां रचनां संविधातुं कर्तुं नाहं शक्तः । वो युष्माकमन्यायस्येदं प्रतिफलं प्रदातुं निखिलस्य जगतो नाना नाथं परमेश्वरं विनाऽऽहं न समर्थः । एतत्सत्यं ब्रुवे ब्रवीमि ॥ २३ ।

पताका—ब्राह्मण बोला। इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। इस अघटित वस्तुकी घटना करनेमें मैं समर्थ नहीं हूं। तुम्हारे अन्यायका फलभी निखिल जगत्के स्वामी परमेश्वर विना मैं नहीं दे सकता हूं। यह मैं तुमसे सत्यही कह रहा हूं ॥ २३ ॥

तस्मिन्नेव क्षण उदचरद्गागनी गीः सुघोरा,
रे रे मूर्खा अनयपतिताः किं विधद्ध्वे वितर्कम्।
जातो रामः शमयितुमलं त्वादृशान् सर्वगः श्री-
रामानन्दो व्रजत शरणं तस्य शास्ता हि वः सः ॥२४॥

ब्रा० बु० प्र० तस्मिन्नेव क्षणे समये गागनी नभःसम्बन्धिनी गीर्वागुदचर-दुच्चरिता। रे रे अनयेनान्यायेन पतिता मूर्खा वितर्कं किं विधद्ध्वे कुर्वध्वे? त्वादृशाँस्त्वद्विधानलमत्यन्तं शमयितुं सर्वगः सर्वव्यापको रामः श्रीरामानन्दो जातः। तस्य शरणं व्रजत गच्छत। हीति निश्चये। स वो युष्माकं शास्ता दण्डधरः॥२४॥

पताका—उसी समय आकाशवाणी हुई कि रे अन्यायसे पतित मूर्खो! तुम लोग क्या वितर्क कर रहे हो? तुम्हारे जैसोंको अत्यन्त शमन करनेवाले श्रीराम श्रीरामानन्द होकर प्रकट हुये हैं। उन्हींकी शरणमें जावो। निश्चयही तुम्हारे दण्डप्रदाता वही हैं ॥ २४ ॥

शंखध्वानैर्विदलितमनोवृत्तयो दुर्गतास्ते,
श्मश्वाकीर्णा मलिनवदना निश्शिखास्तालदघ्नाः।
लोकारातीन्दमयितुमलं राजमानं मुनीन्द्रं
प्रापुः सर्वे कुटिलगतयो भग्नमाना अमानाः ॥२५॥

ब्रा० बु० प्र० शंखानां ध्वानैर्विदलिता मनोवृत्तयो येषां ते, दुर्गता दुर्दशा-मापन्नाः श्मश्रुभिराकीर्णा व्याप्ता मलिनवदनाः कान्तिहीनमुखा निश्शिखाः शिखाशून्या-स्तालदघ्नास्तालवदुन्नताः कुटिलगतयो भग्नो मानोऽहङ्कारो येषां त तथाऽमाना अप्रतिष्ठास्ते सर्वे यवना लोकानामरातीनलं दमयितुं राजमानं शोभमानं मुनीन्द्रं श्रीरामानन्दं प्रापुः ॥ २५ ॥

पताका—शंखोंके शब्दोंसे व्याकुल मनोवृत्तिवाले, दुर्दशापन्न, दाढ़ी

वाले, मलिन मुखवाले, शिखासे रहित, ताल समान ऊंचे, कुटिल गतिवाले, टूटे हुये अहङ्कारवाले, नष्ट प्रतिष्ठावाले वे सब यवन; लोकके शत्रुओंका सर्वथा दमन करनेकेलिये विराजमान मुनीन्द्र श्रीरामानन्द स्वामीजीके पास गये ॥ २५ ॥

देवोऽवादीच्छृणुत यवना मस्यचित्तं तदद्य,
त्यक्त्वा यूयं वहिरपगताः स्यात नो चेदिदानीम् ।
मूर्द्धानो वः सपदि तृणराजानुकाराः पतित्वा,
लोकिष्यन्ते भुवि विलुठिताः काशिसंवासिलोकैः॥२६॥

बा० बु० प्र० देवः श्रीरामानन्दस्वाम्यवादीत्, हे यवनाः शृणुत । यूयमद्य तन्मस्यचित्तं त्यक्त्वा वहिरपगता निष्क्रान्ताः स्यात । नोचेदिदानीमधुना तृणराजस्तालस्तदनुकारास्तुल्या वो युष्माकं मूर्द्धानः पतित्वा निपत्य भुवि विलुठिताः काशिसंवासिभिर्लोकिष्यन्ते ॥ २६ ॥

पताका—श्रीरामानन्द स्वामीजी बोले—हे यवनो ! सुनो ! तुम लोग आजही उस मसजिदको छोड़कर बाहर निकल जावो । नहीं तो ताल फलके समान इस समय तुम लोगोंके मस्तक गिरकर पृथ्वीपर लोटते हुये काशीवासियोंसे देखे जायंगे ॥ २६ ॥

आकर्ण्येदं मुनिवरवचः श्रद्धया सम्परीतै-
स्त्यक्तं नूनं न पुनरुपगता मस्यचित्तं च तत्र ।
जातं शोभातिशयसहितं मन्दिरं राघवीयं,
तत्रावासं यतिरकृत वै सर्वसन्तोषणाय ॥ २७ ॥

बा० बु० प्र० श्रद्धया सम्परीतैर्युक्तैस्तैरित्यर्थः, इदं मुनिवरवच आकर्ण्य नूनं मस्यचित्तं त्यक्तम् । तत्र पुनर्नोपगताः । तत्र शोभातिशयसहितमतीवसुन्दरं राघवीयं श्रीरामीयं मन्दिरं जातम् । वै पादपूरणार्थकः । सर्वेषां सन्तोषणाय यतिः श्रीरामानन्दस्तत्रावासं निवासमकृत ॥ २७ ॥

पताका—श्रद्धायुक्त उन यवनोंने निश्चयही उस मसजिदको छोड़

दिया। पुनः नहीं गये। वहां श्रीरामजीका एक सुन्दर मन्दिर बन गया। सबके सन्तोषके लिये स्वामीजी वहां रहने लगे ॥ २७ ॥

नूत्ने तस्मिँल्ललितभवने राघवानन्दशिष्यो,
यौगे पट्टे ज्वलनतुलनोऽसौ च संभासमानः।
अन्तर्ध्यायञ्जनकतनयानाथपादारविन्दं,
जातः स्थानं ह्यणिमगरिमेत्यादिसिद्ध्यष्टकस्य ॥२८॥

बा० बु० प्र० तस्मिन्नूत्ने नूतने ललितभवने रमणीयमन्दिरे ज्वलनस्तुलना यस्य स तेजसाऽऽग्नितुल्य इत्यर्थः, असौ राघवानन्दशिष्यः श्रीरामानन्दस्वामी यौगे पट्टे योगासन इत्यर्थः, संभासमानो विराजमानोऽन्तर्हृदयमध्ये जनकतनयानाथस्य श्रीरामस्य पादारविन्दं ध्यायन् हीति निश्चये, अणिमगरिमेत्यादिसिद्धीनामष्टकस्य स्थानं पात्रं जातः ॥ २८ ॥

पताका—उस नवीन सुन्दर मन्दिरमें अग्नि समान तेजस्वी, श्रीरामानन्दस्वामीजी महाराज योगमुद्रामें बैठे हुये, हृदयमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करते हुये अणिमा गरिमा लघिमादि अष्ट सिद्धियोंको सिद्ध कर लिये ॥ २८ ॥

वेदार्थानां श्रवणमननेत्यादिरीत्या जगत्यां,
जातोऽद्वैतो यमिकुलपतिर्वेदविद्वाननूनः।
नित्यं दान्तं सकलवसुदाराममन्त्रार्थवित्त्या,
वव्रे चैनं परमशमिनं नूनमध्यात्मविद्या ॥ २९ ॥

बा० बु० प्र० वेदार्थानां श्रवणमननेत्यादिरीत्या श्रवणमननिदिध्यासनादिद्वारेत्यर्थः, यमिकुलानां पतिः श्रीरामानन्दोऽद्वैतोऽनूनो महान् वेदविद्वाञ्जातो बभूव। सकलवसुदा निखिलसम्पत्तिप्रदः श्रीराममन्त्रस्तस्य वित्त्या ज्ञानेन नित्यं दान्तं दमयुक्तं परमशमिनं शमयुक्तमेनमध्यात्मविद्या नूनं वव्रे वृतवती ॥ २९ ॥

पताका—वेदार्थके श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि प्रकारसे यतिराज श्रीरामानन्द स्वामी अद्वितीय, महान् वेदविद्वान् हो गये। सकल ऐश्वर्य प्रदाता श्रीराममन्त्रके सम्यग् ज्ञानसे नित्य दान्त, शान्त इन श्रीस्वामीजीको अध्यात्मविद्याने वरण कर लिया ॥ २९ ॥

तत्त्रैलोक्यप्रसरिततमोत्कीर्तिभागीरथीय-
कल्लोलध्वन्यपगतमनोदोषराशिर्निराशी ।
भक्तिश्रद्धाविमलसलिलक्षालितान्तर्महात्माऽ-
नन्तानन्दोऽगमदथ कदाचिच्चिदानन्दरूपम् ॥ ३० ॥

बा० बु० प्र० अथ तस्य श्रीस्वामिनस्त्रैलोक्ये प्रसरिततमाऽऽत्यन्तविस्तृतोत्कीर्तिरुत्कृष्टा कीर्तिः सैव भागीरथी तस्या इमे भागीरथीयास्तेषां कल्लोलानां ध्वनिभिः शब्दैरपगतो मनोदोषाणां राशिर्यस्य स निराशी निःस्पृहो भक्तिश्रद्धारूपैर्विमलैः सलिलैः क्षालितमन्तर्यस्य स चासौ महात्मा चानन्तानन्दः कदाचिच्चिदानन्दरूपं श्रीरामानन्दस्वामिनमगमदागतवान् ॥ ३० ॥

पताका—उन स्वामीजीके तीनों लोकोंमें अत्यन्त विस्तृत सर्वोत्कृष्ट कीर्तिरूपी श्रीगङ्गाजीके कल्लोलोंके शब्दोंसे धुल गया था मनोविकार जिनका, तथा भक्ति और श्रद्धारूप जलसे धुल गया था अन्तःकरण जिनका ऐसे निःस्पृह महात्मा श्रीअनन्तानन्दजी किसी समय श्रीस्वामीजीके पास आये ॥

आगत्य सोऽवनिगतं प्रसरत्प्रभासं,
चण्डद्युतिं मिहिरमण्डलमेव यद्वा ।
दावायितं ज्वलितमेव कृपीटयोनिं,
शान्तं मुनिं स्वनयनातिथितां निनाय ॥ ३१ ॥

बा० बु० प्र० सोऽनन्तानन्दः प्रसरन्त्यः प्रकृष्टाः भासो दीप्तयो यस्य, तथा चण्डा द्युतयो यस्यैवंभूतं मिहिरमण्डलं सूर्यमण्डलमेवावनिगतं भूपृष्ठस्थितं यद्वा दावायितं दावो वनाग्निस्तद्वदाचरितं ज्वलितं प्रकाशमानं कृपीटयोनिमग्निमेव शान्तं मुनिं श्रीरामानन्दं स्वनयनातिथितां स्वनयनयोरतिथिस्तस्य भावस्तत्तां निनाय नीतवान्॥३१॥

पताका—वह अनन्तानन्दजी अच्छे प्रकार फैली हुई कान्तिवाला, प्रचण्ड किरणवाला सूर्यमण्डलही जैसे पृथ्वीपर न आ गया हो, अथवा दवाग्निके समान प्रज्वलित अग्निही न हो, ऐसे मुनि श्रीरामानन्द स्वामीजीको अपने नेत्रोंके अतिथि बनाये। अर्थात् उनका दर्शन उन्होंने किया॥३१॥

तं तेजसां च महसां च निधिं महान्तं,
सूर्यप्रभां स्वमहसा ह्युपबृंहयन्तम् ।

वात्सल्यपूर्णकमलायतलोचनं स,
तुष्टाव गद्गदगिरा प्रपिबन्स्वदृग्भ्याम् ॥ ३२ ॥

वा० वृ० प्र० सोऽनन्तानन्दः तेजसां प्रभावाणां महसामुत्सवानां महान्तं निधिं राशिं, स्वमहसा स्वकान्त्या सूर्यप्रभां, हीतिनिश्चये, उपबृंहयन्तं वर्द्धयन्तं वात्सल्येन पूर्णे कमलवदायते लोचने यस्य तं भगवन्तं श्रीरामानन्दं स्वदृग्भ्यां प्रपिबन् गद्गदगिरा तुष्टाव स्तुतवान् ॥ ३२ ॥

पताका—वह अनन्तानन्दजी, तेज और कान्तिके महान् भण्डार, स्वकीय तेजसे सूर्यकी प्रभाकोभी वढाते हुये, वात्सल्यपूर्ण कमल समान दीर्घ नेत्रवाले भगवान् श्रीरामानन्दजीको नेत्रोंसे पान करते हुये गद्गदवाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३२ ॥

हे नाथ विश्रमभुवः श्रुतिशेखरस्य,
संसारसागरतरेः करुणानिधेस्ते ।
सद्भावसंभृतमना नवपद्मशोभा-
चौरौ पवित्रचरणौ शिरसा वहामि ॥ ३३ ॥

वा० वृ० प्र० स्तुतिमाह । हे नाथ ! श्रुतिशेखरस्य वेदान्तस्य विश्रमभुवो विश्रान्तिस्थानस्य संसार एव सागरस्तस्य तरेस्तरणसाधनस्य करुणानिधेः कृपापारावारस्य ते तव नवानां नूतनानां पद्मानां शोभायाश्चौरावपहर्तारौ पवित्रचरणौ सद्भिरुत्कृष्टैर्भावैः संभृतं पूर्णं मनो यस्य सोऽहं शिरसा वहामि ॥ ३३ ॥

पताका—हे नाथ सद्भावसे पूर्ण हृदयवाला मैं, सम्पूर्ण वेदान्तके विश्रामस्थान, संसार सागरको पार करनेके लिये नौका समान, करुणाके सागर श्रीमान्‌के नवीन कमल समान शोभित पवित्र चरणोंको मैं शिरपर धारण करता हूं । अर्थात् प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वेह भारतभुवि प्रथितं समन्ता-
द्धर्मद्विषामघजुषामयि दीनबन्धो !
सञ्चारमागतवतोः पदयोस्तवैव,
प्रेम्णाश्रयं नतशिरा परमाश्रयामि ॥ ३४ ॥

बा० बु० प्र० हे दीनबन्धो ! भारतभुवि समन्ताच्चतसृषु दिक्षु धर्मद्विषां धर्मद्वेष्टॄणामघजुषां पापात्मनां प्रथितं विस्तृतं सञ्चारं दृष्ट्वाऽऽगतवतोस्तव पदयोश्च-रणयोरेव परं सर्वोत्कृष्टमाश्रयं प्रेम्णा नतशिराः प्रणतेन मूर्ध्नाऽऽश्रयामि ॥ ३४ ॥

पताका—हे दीन बन्धो ! इस भारतभूमिपर चारों ओर धर्मद्वेषियों तथा पापियोंका पुष्कल संचार देखकर यहां पधारे हुये आपके पवित्र चरणोंकाही मैं प्रेमसे, मस्तक झुकाकर सर्वोत्कृष्ट आश्रय लेता हूं ॥ ३४ ॥

त्वत्पादपङ्कजविशोधसरत्प्रवाहा,
हे दीनतापनुदपो ह्यघमर्षणीस्ताः ।
संसारसंज्वरनिपीडनजर्जरोऽहं,
स्नेहातिशय्यसुयुजा शिरसा स्पृशामि ॥ ३५ ॥

बा० बु० प्र० हे दीनतापनुत ! दीनदुःखनिवारक ! संसारसंज्वरस्य निपीडनेन जर्जरोऽशक्तोऽहं स्नेहातिशय्येन प्रेमाधिक्येन भक्त्येत्यर्थः, सुयुजा मन्वद्रेन शिरसा त्वत्पादपङ्कजानां विशोधेन प्रक्षालनेन सरन्तः प्रवाहा यासां ता अघमर्षणीः पापहारिणीरपो जलानि स्पृशामि ॥ ३५ ॥

पताका—हे दीनोंके संतापको दूर करनेवाले प्रभो ! मैं संसाररूप ज्वरकी पीड़ासे जर्जर होकर अत्यन्त प्रेमयुक्त मस्तकसे आपके चरणकमलके धोनेसे बह रहा है प्रवाह जिसका ऐसे उस अघमर्षण—पापनाशक जलका स्पर्श करता हूं ॥ ३५ ॥

हे नाथ प्रक्षिप दृशौ करुणास्पृशौ ते,
मय्याकुले जगति यन्मधुपायमानः ।
श्रुत्यान्तरज्वरशमक्षमवीर्यशालि-
त्वत्पादपङ्कजपरागलवं लिहीय ॥ ३६ ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! जगति संसार आकुले व्यग्रे मयि करुणास्पृशौ दयायुक्ते ते तव दृशौ नेत्रे प्रक्षिप प्रेरय कटाक्षयेत्यर्थः । यद्यस्मान्मधुपायमानोऽहं श्रुतीनां वेदानामान्तरज्वरस्य शमे शान्तौ क्षमेण समर्थेन वीर्येण शालिनां शोभिनां त्वत्पादपङ्कजानां परागाणां रजसां लवमल्पीयांसं भागं लिहीयास्वादयेयम् ॥ ३६ ॥

पताका–हे नाथ ! इस संसारसे मैं व्याकुल हो चुका हूं। करुणाभरी अपनी दृष्टिसे मेरी ओर देखिये। जिससे कि मैं भ्रमरके समान, वेदोंके आन्तरिक ज्वरके शान्त करनेमें समर्थ बलसे शोभित आपके कमल चरणोंके परागके अल्प भागकाभी आस्वादन कर सकूं ॥ ३६ ॥

उत्फुल्लनीलकमलायतलोचनाभ्यां,
स्वामिन्विनिस्सृतकृपासलिलप्रवाहाः ।
सिञ्चन्तु मामनुदिनं भवतापतुङ्ग-
ज्वालाशिखाविकलितापघनं घनाघम् ॥ ३७ ॥

वा० वु० प्र० हे स्वामिन् ! उत्फुल्लाभ्यां विकसिताभ्यां नीलकमलाभ्यामिवायताभ्यां दीर्घाभ्यां लोचनाभ्यां विशेषेण निस्सृता ये कृपासलिलस्य प्रवाहास्ते भवतापस्य संसारसन्तापस्य या तुङ्गा ज्वालास्ताभ्यां शिखाभिर्विकलितान्यपघना (पा० ३।३।८१) न्यङ्गानि यस्य तथा घनानि बहुलान्यघानि पापानि यस्य तं मामनुदिनं प्रत्यहं सिञ्चन्तु शीतलयन्तु ॥ ३७ ॥

पताका–हे नाथ ! विकसित कमल समान दीर्घ नेत्रोंसे निकले हुये कृपारूप जलप्रवाह, संसारके दुःख रूप ज्वालाकी शिखासे व्याकुल शरीरवाले तथा अनेकों पापवाले मुझे प्रतिदिन शीतल करें ॥ ३७ ॥

सद्भक्तिरक्तिरसमिश्रितवाचमेतां,
श्रुत्वा मुनिः परमहर्षमवाप पश्चात् ।
पप्रच्छ कस्त्वमिति कुत्र च यासि साधो !
कौतस्कुतस्त्वमिह चैषि वदेति सर्वम् ॥ ३८ ॥

वा० वु० प्र० एतां सती भक्तिश्च रक्तिश्च तयो रसेन मिश्रितवाचं श्रुत्वा मुनिः परमहर्षमवाप । पश्चादिति प्रप्रच्छ । इति किम् ? हे साधो ! त्वं कः ? कुत्र च यासि ? त्वं कौतस्कुतः कुतः कुत आगत इह एषि इति च सर्वं वद ॥ ३८ ॥

पताका–सुन्दर भक्ति और प्रेम रस मिश्रित इस वाणीको सुनकर श्रीस्वामीजी महाराज परम प्रसन्न हुये। पश्चात् पूछने लगे कि भाई ! तुम

कौन हो? कहां जाते हो? यहां कहां २ से आये हो? यह सब बताओ॥

स प्राह नाथ तव कीर्तिमनन्तपारा-
मावारिधेः परिगतां च निशम्य सम्यक्।
हे हे शरण्य शरणं हि समीहमान-
स्त्वत्पादमूलमिह केवलमागतोऽस्मि ॥ ३९ ॥

ब्रा० बु० प्र० सोऽनन्तानन्दः प्राह। हे नाथ! अनन्तपारामावारिधेः समुद्रपर्यन्तं परिगतां तव कीर्तिं सम्यङ्निशम्य हे हे शरण्य! शरणं समीहमानो वाञ्छन्निह केवलं त्वत्पादमूलमागतोऽस्मि ॥ ३९ ॥

पताका—श्रीअनन्तानन्दजीने कहा कि हे नाथ और हे शरणप्रद! समुद्र पर्यन्त व्याप्त आपकी अनन्त कीर्तिको अच्छे प्रकार श्रवण करके आपके शरणकी इच्छा करता हुआ आपके चरणकमलमें मैं आया हूं

स प्रत्यवोचदतिहृद्यवचः पुनः स-
त्पादारविन्द सरयोस्तट आस्त चैकः।
ग्रामो महेशपुरमित्यभिधो द्विजेन्द्र-
स्तत्रैव राजति पिता मम भूकुबेरः ॥ ४० ॥

ब्रा० बु० प्र० सोऽनन्तानन्दः पुनरतिहृद्यवचो मनोहरवचनं प्रत्यवोचत्। हे सत्पादारविन्द! सरयोस्तटे महेशपुरमित्यभिध इतिनामक एको ग्राम आस्ते। तत्रैव भूकुबेरः परमधनिको मम पिता राजति। सरयुशब्दो ह्रस्वोकारान्तोऽपि॥४०॥

पताका—श्रीअनन्तानन्दजी पुनः बोले कि हे सच्चरणकमल! सरयूजीके तटपर एक महेशपुर नामक ग्राम है। वहां परही पृथ्वीके कुबेर समान मेरे पिताजी निवास करते हैं ॥ ४० ॥

तस्याहमेव किल सूनुरभूवमस्मा-
त्प्राणाधिकः प्रियतमोऽस्मि च तस्य नाथ!
उद्वाहयोग्यवयसं प्रसमीक्ष्य तात-
स्तूर्णं सदारमिह मामदिदृक्षतासौ ॥ ४१ ॥

व्या० बु० प्र० किलेति निश्चये । तस्य स्वपितुरहमेव सूनुः पुत्रोऽभूवम् । अस्मात्कारणाद्धे नाथ ! तस्य प्राणाधिकः प्रियतमोऽस्मि । असौ तातः पितोद्वाहयोग्यं वयो यस्येत्थंभूतं मां प्रसमीक्ष्यावलोक्य तूर्णं शीघ्रं मां सदारं कृतदारपरिग्रहमद्दिदृक्षत (पा० १।३।५७) द्रष्टुमैच्छत् ॥ ४१ ॥

पताका—अपने पिताके मैं एकही पुत्र हूं । अतः प्राणसेभी अधिक उनको प्रिय हूं । उन्होंने मुझे विवाह योग्य देखकर शीघ्र विवाहित कर देनेकी इच्छा की ॥ ४१ ॥

सोऽहं पलायित इतो गृहतो दयालो !
प्राप्तोऽस्मि ते चरणपङ्कजरेणुमद्य ।
तस्मात्कृपाजलनिधे कृपयाशु दीनं,
मामर्थिनं निजपदे शरणे कुरुष्व ॥ ४२ ॥

व्या० बु० प्र० हे दयालो ! इत कारणात्सोऽहं गृहतः पलायितोऽद्य ते तव चरणपङ्कजरेणुं प्राप्तोऽस्मि । तस्मात् हे कृपाजलनिधे ! कृपयाऽऽशु शीघ्रं दीनमर्थिनं याचकं मां निजपदे शरणे कुरुष्व । स्वचरणशरणं नयस्वेति भावः ॥४२॥

पताका—हे दयालो इस कारणसे मैं घरसे भगा हुआ आज आपके चरणकमलमें प्राप्त हुआ हूं । अतः हे कृपासागर ! कृपा करके मुझ दीन याचकको शीघ्र आप अपने चरण शरणमें अङ्गीकार कर लीजिये ॥४२॥

आजूहवद्यतिवरः पितरं च तस्य,
व्याजीहरच्च तव सूनुरयं द्विजेन्द्रः ।
सन्त्यज्य कष्टकलितां गृहमेधितां ता-
मध्येतुमिच्छति वटूचितमार्गयायी ॥ ४३ ॥

व्या० बु० प्र० यतिवरः श्रीस्वामिरामानन्दस्तस्य पितरमाजूहवत् । व्याजीहरदचकथच्च । वटवो ब्रह्मचारिणस्तदुचितमार्गयायी तद्योग्यपथगोऽयं तव सूनुः पुत्रः कष्टकलितां दुःखयुक्तां तां प्रसिद्धां गृहमेधितां गृहस्थतां सन्त्यज्याध्येतुं पठितुमिच्छति ॥ ४३ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराजने उनके पिताको बुलवाया और कहवाया कि ब्रह्मचारियोंके योग्य मार्गमें चलनेवाला यह तुम्हारा पुत्र अनेक

आपत्तिमय गृहस्थाश्रमको छोड़कर विद्याध्ययन करना चाहता है ॥ ४३ ॥

स ब्राह्मणो निजसुतं परिबोध्य सम्य-
ग्दृष्ट्वा च तं दृढतमं निजसद्विचारे ।
श्रान्तः समर्प्य यतये भवनं निवृत्तः,
कः प्रोज्झितुं क्षम इहास्ति हि दैवरेखाम् ॥ ४४ ॥

बा० बु० प्र० स ब्राह्मणो विश्वनाथशर्मा निजसुतमनन्तानन्दं सम्यक् परिबोध्य निजसद्विचारे स्वशुभसङ्कल्पे तं दृढतमं दृष्ट्वा श्रान्तः सन् यतये समर्प्य तमिति भावः, भवनं निवृत्तः । हि यतो दैवरेखां भाग्यलेखां प्रोज्झितुं दूरीकर्तुमिह कः क्षमः समर्थः ? ॥ ४४ ॥

पताका—वह ब्राह्मण श्रीविश्वनाथशर्मा अपने पुत्र अनन्तानन्दको बहुत समझाकर, स्वविचारमें सुदृढ़ देखकर, श्रान्त होकर, श्रीस्वामीजीको पुत्र अर्पण करके अपने घर लौट गये । सत्य है भाग्यके लेखको कोई नहीं मिटा सकता ॥ ४४ ॥

श्रीराममन्त्रमुपदिश्य रहस्यमस्मै,
श्रीमान्मुनीन्द्रचरणः शरणं निनाय ।
क्षिप्रं च वेदविधिना यतिराजराज-
स्तं बालकं किल समस्कृत शिष्यमग्र्यम् ॥ ४५ ॥

बा० बु० प्र० श्रीमान् यतिराजराजो मुनीन्द्रचरणः श्रीस्वामिरामानन्दः क्षिप्रं शीघ्रं वेदविधिना वेदविधानेन तं बालकमग्र्यं प्राथमिकं ज्येष्ठमिति यावत्, शिष्यं समस्कृत (पा० ६।१।१३७) वैष्णवोचितैः, पञ्चभिः संस्कारैः संस्कृतवान् । श्रीराममन्त्रं रहस्यं चास्मा उपदिश्य शरणं निनाय ॥ ४५ ॥

पताका—यतिराजराज श्रीस्वामीजी महाराजने वैदिक विधिसे वैष्णवोचित पञ्च सँस्कारोंसे उस बालक—प्रथम शिष्यको संस्कृत किया । पश्चात् श्रीराममन्त्र और रहस्यका उपदेश करके उन्हें अपने शरणमें ले लिया ॥ ४५ ॥

अध्यापयन्मुनिवरः सकला हि विद्या-
स्तं सोऽपि शीघ्रमुपलेभ उदात्तबुद्धिः ।

संस्कारिणं हि वरितुं गुणकर्षणीया,
विद्या न पश्यति वयो न च दीर्घकालम् ॥ ४६ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचित
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजयेऽष्टमः सर्गः

व्या० बु० प्र० मुनिवरः सकला विद्यास्तमध्यापयत् । उदात्तबुद्धिः प्रशस्त-बुद्धिः सोऽनन्तानन्दोऽपि शीघ्रमुपलेभे प्राप्तवान् । हि यतो गुणैः कर्षणीया विद्या संस्कारिणं पुरुषं वरितुं वयोऽवस्थां दीर्घकालं च न पश्यति ॥ ४६ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचित श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यामष्टमः सर्गः

पताका—मुनिवर्य श्रीरामानन्द स्वामीजीने श्रीअनन्तानन्दजी महाराजको सम्पूर्ण विद्याएँ पढ़ा दीं । उन्होंने भी उन सब विद्याओंको शीघ्र ग्रहण कर लिया क्यों कि बुद्धि बहुतही उत्तमथी । सत्य है—गुणोंद्वारा आकर्षण करने योग्य विद्या किसी संस्कारी पुरुषको वरण करनेमें अवस्था और दीर्घ समयकी ओर नहीं देखती है ॥ ४६ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचित श्रीमद्भगवद्रामा-नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायामष्टमः सर्गः ।

अथ नवमः सर्गः

गाङ्गरौनगढभूपतिपीपा पूजने प्रवृत्ते प्रकृतीनाम् ।
आगताः सकलकिल्बिषकाला एकदाधिगृहमस्य च सन्तः ॥ १ ॥

व्या० बु० प्र० गाङ्गरौनगढस्य भूपती राजा चासौ पीपा च गाङ्गरौनगढ-भूपतिपीपा प्रकृतीनां प्रजानां पूजनेऽनुरञ्जने प्रवृत्ते प्रवृत्त आसीत् । एकदाऽस्याधि-गृहं गृहे सकलकिल्बिषकाला निखिलपापप्रणाशकाः सन्तः साधव आगताः ॥४६॥

पताका—गाङ्गरौनगढके राजा श्रीपीपाजी प्रजाके अनुरञ्जनमें प्रवृत्त थे। उनके घर एक समय सम्पूर्ण पापोंके दूर करनेवाले महात्मा लोग आये॥

धर्मकर्मनिपुणः स च भूप आतिथेयमकरोद्बहु तेषाम् ।
भक्तिभावकलितं नृपतिं तं प्रेक्ष्य ते च मनसा समतुष्यन् ॥ २ ॥

बा० बु० प्र० धर्मकर्मसु निपुणः कुशलः स भूपस्तेषां सत्पुरुषाणां बह्वातिथेय (पा० ४।४।१०४) मातिथ्यमकरोत् । ते च सन्तस्तं नृपतिं भक्तिभावेन कलितं युक्तं प्रेक्ष्य दृष्ट्वा मनसा समतुष्यन् सन्तुष्टा अभवन् ॥ २ ॥

पताका—धर्मकर्ममें कुशल महाराज पीपाने उन सत्पुरुषोंका बहुत अतिथि—सत्कार किया। राजाको भक्तिभावसे युक्त देखकर वह महात्मा लोग हृदयसे सन्तुष्ट हो गये ॥ २ ॥

ते प्रसन्नहृदयाः किल सन्तस्तस्य भूपमुकुटस्य लपन्तः ।
उन्नतिं बहुतमां सुशुभाशीराशिभिश्च परिवेषमकार्षुः ॥ ३ ॥

बा० बु० प्र० किलेति निश्चये। प्रसन्नहृदयास्ते सन्तस्तस्य भूपमुकुटस्य राजशिरोमणेर्बहुतमां परमामुन्नतिं लपन्त इच्छन्तः सुशुभाशिषां परमकल्याणाशीर्वचनानां राशिभिः समूहैः परिवेषं परिमण्डलमकार्षुः । आशीराशिभिस्तमावेष्टितवन्त इत्यर्थः॥

पताका—प्रसन्न हृदयवाले होकर उन महात्माओंने राजाशिरोमणि पीपामहाराजकी परम उन्नतिकी इच्छा करते हुये सुन्दर आशीर्वादसे उनको आच्छादित कर दिया ॥ ३ ॥

साधुभद्रवचनैः शुभदायैर्भूपतेर्मतिरशुध्यदमुष्य ।
सत्यमेतदिति यद्धृदि साधोर्मूर्छति त्वरितमेव गुणश्रीः ॥ ४ ॥

बा० बु० प्र० शुभदायैः मङ्गलकारकैः साधूनां भद्रैर्मङ्गलैर्वचनैरमुष्य भूपतेर्मतिरशुध्यच्छुद्धा बभूव । इत्येतत्सत्यम् । इति किम् ? यत्साधोः साधुपुरुष हृदि हृदये गुणश्रीस्त्वरितं झटित्येव मूर्छति प्रसरति ॥ ४ ॥

पताका—कल्याण करनेवाले महात्माओंके मङ्गलमय आशीर्वादसे पीपामहाराजकी बुद्धि निर्मल हो गई। यह सत्य है कि महान् पुरुषोंके हृदयमें गुण—सम्पत्ति शीघ्र विस्तृत हो जाती है ॥ ४ ॥

जात एव सहसा हृदये तद्भूपतेर्हरिपदार्चनलोभः ।
तत्त्वरे स हरिमाप्तुमुपेक्ष्य श्रीसमां स्वरमणीं धरणीं च ॥ ५ ॥

वा० बु० प्र० तद्भूपतेः पीपाराजस्य हृदये सहसैव हरिपदार्चनलोभो भगवच्चरणपूजनाभिलापो जातः । स राजा श्रीसमां लक्ष्मीतुल्यां स्वरमणीं महाराज्ञीं धरणीं पृथ्वीं चोपेक्ष्य हरिं भगवन्तमाप्तुं प्राप्तुं तत्त्वरे त्वरां कृतवान् ॥ ५ ॥

पताका—श्रीपीपामहाराजके हृदयमें अकस्मात् भगवान्के चरणोंकी सेवाका लोभ उत्पन्न हो गया । वह लक्ष्मी समान अपनी महाराणी तथा पृथ्वीकी उपेक्षा करके भगवान्की प्राप्तिके लिये शीघ्रता करने लगे ॥ ५ ॥

वीक्ष्य दार्ढ्यमदसीयमिदानीमुच्चचार सुवचो नभसीयम् ।
भूपते यदि समिच्छसि तत्त्वं श्रद्धया शृणु गिरामिति तत्त्वम् ॥६॥

वा० बु० प्र० इदानीमदसीयं पीपामहाराजीयं दार्ढ्यं दृढतां वीक्ष्य नभसीयमाकाशीयं सुवचः सुन्दरवचनमुच्चचारोच्चरितं बभूव । हे भूपते ! यदि तत्त्वं समिच्छस्यभिलपसि तत् त्वं श्रद्धया इति वक्ष्यमाणां गिरां वाणीं शृणु ॥ ६ ॥

पताका—इस समय पीपामहाराजकी दृढताको देखकर सुन्दर आकाशवाणी हुई कि हे राजन् ! जो आप तत्त्वकी इच्छा करते हों तो श्रद्धा पूर्वक वक्ष्यमाण वचनको सुनें ॥ ६ ॥

गच्छ शीघ्रमतिहाय समस्तं प्राज्यमेतदधिराज्यमुदारम् ।
काशिकामधिवसन्तमु रामानन्दमद्वयगुरुं शरणं त्वम् ॥ ७ ॥

वा० बु० प्र० त्वं समस्तमेतत्प्राज्यं बहुलमुदारं विस्तृतमधिराज्यमुत्कृष्टराज्यमतिहाय सन्त्यज्य काशिकां काशी (पा० १।४।४८) मधिवसन्तमद्वयगुरुमद्वितीयं गुरुं रामानन्दं शरणं शीघ्रं गच्छ । उः पादपूरणः ॥ ७ ॥

पताका—तुम इस समस्त विस्तृत सुन्दर राज्यको छोड़कर काशीमें निवास करते हुये अद्वितीय गुरुश्रीरामानन्दस्वामीजीकी शरणमें शीघ्र जावो॥

शिष्यतां समधिगत्य च तस्य राममन्त्रमभिलभ्य च लभ्यम् ।
जीवनं सफलयाशु निजं त्वं प्राप्तकाम इति संभवितासि ॥ ८ ॥

वा० बु० प्र० तस्य श्रीस्वामिचरणस्य शिष्यतां समधिगत्य प्राप्य लभ्यं लब्धुं योग्यं राममन्त्रं चाभिलभ्याशु शीघ्रं निजं जीवनं सफलय सफलं कुरु । इतिः प्रकारे । अनेन प्रकारेण प्राप्तकामः पूर्णमनोरथः सम्भवितासि । लुट् ॥ ८ ॥

पताका—उन श्रीस्वामीजीके शिष्य होकर तथा परम प्राप्य श्रीराममन्त्रको प्राप्त करके शीघ्र स्व—जीवन सफल करो। इस प्रकारसे तुम पूर्ण मनोरथ हो जावोगे ॥ ८ ॥

पापिनश्च विपरीतयिता स राज्यभारमधिमन्त्रि समर्प्य ।
एककश्च निरगान्नगरात्सन्मौलिमौलिरधिरुह्य शुभाश्वम् ॥ ९ ॥

बा० बु० प्र० पापिशब्दस्य वैपरीत्ये पीपा भवति पापिनां संशोधनं कृत्वा परिवर्तनमकार्षीदिति कृत्वा पापिशब्दस्य परिवर्तने यद्भवति तत् पीपेति नाम जातम्। तदेवाह पापिनो विपरीतयिता पापिनो धर्मात्मनः कारयिता। सन्मौलि-मौलिः सज्जनशिरोमुकुटः स पीपामहाराजोऽधिमन्त्रि मन्त्रिषु राज्यभारं समर्प्य शुभाश्वमधिरुह्यैकक एकाकी नगराद्गङ्गरौनगढान्निरगात् ॥ ९ ॥

पताका—पापियोंको उलटानेवाले अर्थात् पापियोंको शुद्ध करके धर्मात्मा बनानेवाले सज्जनोंके शिरके मुकुट समान वह श्रीपीपाजी महाराज सुन्दर घोड़े पर चढ़कर अकेले नगरमेंसे निकले। पापीको उलटा करनेसे—धर्मात्मा बनानेसे ही उनका नाम पीपा पड़ा था। पापी शब्दको उलटनेसे पीपाही बनता है ॥ ९ ॥

भोजनेऽथ शयनेऽपि गर्द्धामास्थदात्मबलितां विदधानः ।
आतुरस्त्रिजगदार्यविलोके माप भूपतिरसावधिकाशि ॥ १० ॥

बा० बु० प्र० आत्मबलितां विदधानो विशेषेण गृह्णानः स भोजनेऽथ शयनेऽपि गर्द्धामभिलाषमास्थत (पा० ७।४।१७) पर्यत्यजत्। त्रिजगत्यार्यः श्रेष्ठः श्रीयतिराजस्तस्य विलोके दर्शने आतुरो व्यग्रोऽसौ भूपतिरधिकाशि काश्यां प्राप ॥

पताका—आत्मबलको विशेष रूपसे धारण करनेवाले पीपा महाराजने भोजन और शयनमेंभी अभिलाषको त्याग दिया और तीनों लोकमें श्रेष्ठ श्रीस्वामीजी महाराजके दर्शनके लिये आतुर होकर काशीमें आये ॥ १० ॥

पञ्चगङ्गसविधे गुरुरामानन्दसुन्दरमठं स ददर्श ।
योगिवर्यचरणौ प्रदिदृक्षुराययौ सपदि तोरणमत्र ॥ ११ ॥

व्या० बु० प्र० अत्र काश्यां स पञ्चगङ्गस्य पञ्चानां गङ्गानां समाहारस्तस्य गर्त्तिके समीपे गुरुरामानन्दस्य सुन्दरमठं ददर्श । योगिवर्यस्य श्रीस्वामिनश्चरणौ प्रदिदृक्षुः प्रकर्षेण द्रष्टुमिच्छुः सपदि तोरणं द्वारमाययौ ॥ ११ ॥

पताका—वहां पञ्चगङ्गाके समीपमें गुरु श्रीरामानन्दस्वाजीके सुन्दर मठको उन्होंने देखा । तथा श्रीस्वामीजीके चरणोंके देखननेकी उत्कृष्ट इच्छासे शीघ्र द्वार पर पहुंच गये ॥ ११ ॥

द्वारपाल इति वाचमवोचदाज्ञया न हि विना गमनं स्यात् ।
तेन तेन जगतां गुरुरुचे कश्चिदागत इहास्ति नृपालः ॥ १२ ॥

व्या० बु० प्र० द्वारपालो दौवारिक इति वाचमवोचदब्रवीत् । इति किम् ? हीति निश्चये । आज्ञया विना गमनं न स्यात । तेन हेतुना तेन द्वारपालेन जगतां गुरुः श्रीस्वामिमहाराज ऊचे. इह कश्चिन्नृपालो नरपतिरागतोऽस्ति ॥ १२ ॥

पताका—द्वारपालने कहा कि आज्ञा विना आप आगे नहीं जा सकते। आज्ञा विना नहीं जा सकते इस कारणसे उस द्वारपालने श्रीस्वामीजी महाराजसे निवेदन किया कि कोई राजा आये हैं ॥ १२ ॥

द्रष्टुमिच्छति भवच्चरणाब्जमानयेऽहममुमत्र यदाज्ञा ।
ओमिति प्रतिवचः स गृहीत्वाश्वानिनाय पृथिवीपतिमन्तः ॥१३॥

व्या० बु० प्र० भवच्चरणाब्जं द्रष्टुमिच्छति । यद्यर्थे । यदि आज्ञा स्याद हममुं राजानमत्रानेयं । ओम् इति प्रतिवचः प्रत्युत्तरं गृहीत्वा स भृत्य आशु पृथिवीपतिं श्रीमहाराजमन्तरभ्यन्तरमानिनाय ॥ १३ ॥

पताका—वह श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते हैं । यदि आज्ञा हो तो यहां ले आऊं ? स्वामीजीने कहा कि ले आवो । तब वह द्वारपाल जाकर राजा साहेबको शीघ्र भीतर ले आया ॥ १३ ॥

त्यक्तशर्मगृहरत्नविभूतेः यानमस्ति निकटे यतिमूर्ध्नः ।
इत्यवेक्ष्य हृदये क्षितिपालः स्वात्मवस्तु निखिलं वितताार ॥१४॥

व्या० बु० प्र० क्षितिपालो भूपतिस्त्यक्तानि शर्म सुखं गृहं रत्नानि विभूति-रैश्वर्यं च येन तस्य यतिमूर्ध्नो यतिश्रेष्ठस्य निकटे यानं गमनमस्तीति हृदयेऽवेक्ष्य

विचार्य निखिलं समस्तं स्वात्मनः स्वशरीरस्य वस्तु विततार वितीर्णवान् ॥ १४ ॥

पताका—श्रीपीपाजीने यह विचार कर कि जिन्होंने सुख, गृह, रत्न, और ऐश्वर्यका त्याग कर दिया है उन यति-श्रेष्ठ श्रीस्वामीजीके पास जाना है—अपने शरीरकी समस्त वस्तुओंको बांट दिया ॥ १४ ॥

नम्रवेषवपुषा नरपालः सन्ददर्श यतिराजपदाब्जम् ।
रक्ष रक्ष मुनिपुङ्गव घोरे सम्पतन्तमिह मां भवसिन्धौ ॥ १५ ॥

वा० वृ० प्र० नम्रः साधारणं वेषः प्रसाधनं यस्य तेन वपुषा शरीरेणोपलक्षितो नरपालो यतिराजस्य श्रीस्वामिनः पदाब्जं चरणकमलं सन्ददर्श। हे मुनिपुङ्गव ! मुनिश्रेष्ठ ! इह घोरे भयावहे भवसिन्धौ संसारसागरे सम्पतन्तं मां रक्ष रक्ष॥

पताका-सामान्य वेषवाले शरीरसे उपलक्षित श्रीपीपाजीने श्रीस्वामीजी महाराजके श्रीचरणोंका दर्शन किया। और बोले, हे मुनिश्रेष्ठ ! इस घोर संसाररूप सागरमें पड़ते हुये मेरी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥

पापतापपरितापितमाराल्लोकशोकनदतीव्ररयेण ।
व्याकुलं यतिपते निजदासं रक्ष मामयि गुरो सुहताशम् ॥ १६ ॥

वा० वृ० प्र० हे यतिपते ! हे गुरो ! पापतापनाग्निना परितापितं सन्तापितं तथा लोकस्य जगतः शोक एव नदस्तस्य तीव्रेण रयेण वेगेन व्याकुलं सुहताशं सुष्ठु हता नष्टाऽऽशा यस्य तं निजदासं मां रक्ष ॥ १६ ॥

पताका—हे यतियोंके स्वामी ! हे श्रीगुरुमहाराज ! पापरूप अग्निसे जलाये हुये, जगत्के शोक रूप नदके तीव्र वेगसे व्याकुल तथा सब प्रकारसे हताश, मुझ स्वदासकी रक्षा कीजिये ॥ १६ ॥

न्यायमार्गपरिपन्थिविचारमाररात्रिमटराशिविपण्णः ।
केवलं च तव पादरजोऽणुमाश्रयामि भवभीतिनिवृत्त्यै ॥ १७ ॥

वा० वृ० प्र० न्यायमार्गस्य नीतिपथस्य परिपन्थिनो वैरिणो ये विचारास्तथा मारः काम एत एव रात्रिमटा (पा० ६।३।७२) राक्षसास्तेषां राशिभिः समूहैर्विपण्णो भवस्य भीतेर्भयस्य निवृत्त्यै निवर्तनाय केवलं तव पादरजोऽणुं चरणरजोलवमाश्रयामि ॥ १७ ॥

पताका—नीतिमार्गके विरोधी विचार तथा काम रूपी राक्षसोंके समूहसे दुःखित होकर संसारके भयकी निवृत्तिके लिये केवल श्रीमान्के चरणकमलकी धूरिके कणका आश्रय लेता हूं ॥ १७ ॥

कामदामविनिवद्ध इडायां संभ्रमन्नित इतो भववन्याम् ।
वाधितो यमिपते च तृषाहं त्वत्पदाब्जरसमाशु पिवानि ॥ १८ ॥

वा० वु० प्र० इडायां पृथिव्यां कामस्य दाम्ना रज्ज्वा विनिवद्धो विशेषेण निवद्धो भववन्यां संसाराटव्यामित इतः सम्भ्रमँस्तृषा पिपासया वाधितोऽहं हे यतिपते ! आशु त्वत्पदाब्जस्य तव चरणकमलस्य रसं पिवानि ॥ १८ ॥

पताका—हे यतिनाथ ! इस पृथ्वीपर कामके बन्धनसे बँधा हुआ, संसाररूप जङ्गलमें इधर उधर भटकता हुआ, पिपासासे पीडित हुआ, मैं श्रीमान्के चरणकमलके रसका आस्वादन करूं ! ॥ १८ ॥

लोभमोहमदमत्सरमालभारिणं ह्यशरणं च शरण्य !
दीनहीनमयि दीनदयालो रक्ष रक्ष यतिराज गुरो माम् ॥ १९ ॥

वा० वु० प्र० लोभो गर्द्धा मोहोऽज्ञानं मदोऽहङ्कारो मत्सर ईर्ष्या एतेषां मालां समूहं विभर्तीति (पा० ६।३।६५) तथा भूतं दीनश्चासौ हीनश्च तमशरणं शरणहीनं मां हे शरण्य ! हे दीनदयालो ! हे यतिराज ! हे गुरो ! रक्ष रक्ष॥१९॥

पताका—हे शरणागतकी रक्षा करनेवाले ! हे दीनदयालो ! हे यतिपते ! हे गुरो ! श्रीमान् लोभ, मोह, मद, मत्सर आदिके समूहके भारको ढोनेवाले, अशरण तथा दीन हीन मेरी रक्षा कीजिये ॥ १९ ॥

नाथ ते सरससारसपादयुग्मरेणुकणिकातिविलुब्धम् ।
मामकं सपदि मानसमत्र स्थापयातिचपलं विनिगृह्य ॥ २० ॥

वा० वु० प्र० हे नाथ ! ते तव सरसं रससहितं यत्सारसं कमलं तद्वत्पाद-युग्मं चरणयुगं तस्य रेणवस्तेषां कणिकायामतिविलुब्धमतिं चपलं मामकं मानसं मनोऽत्र सपदि विनिगृह्य विशेषेण निगृह्य स्थापय स्थितं कुरु ॥ २० ॥

पताका—हे नाथ ! सरस कमल समान श्रीमान्के चरणोंके रेणुके

कणके लिये अत्यन्त लुब्ध हुये, अति चञ्चल मेरे मनको पकड़कर आज शीघ्र स्थिर कर दीजिये ॥ २० ॥

अन्यदुत्सुकमिदं मम चेतः कापथाच्च विनिवर्त्य दयालो !
कल्पपादपपदे हि निजस्य संवधान भवबन्धभिदायै ॥ २१ ॥

बा० बु० प्र० हे दयालो ! अन्यदुत्सुक (पा० ६।३।९९) मन्यस्मिन्नुत्सुकमुत्कण्ठितमिदं मम चेतो मनः कापथात् (पा० ६।३।१०४) कुत्सितात्पथो विनिवर्त्य निवृत्तं कृत्वा भवबन्धभिदायै संसारबन्धनोच्छित्त्यै निजस्य कल्पपादपः कल्पवृक्षस्तद्वत्पदे संवधान सम्यग्वधान ॥ २१ ॥

पताका—हे दयालो ! अन्यत्र फँसे हुये मेरे चित्तको कुमार्गमेंसे हटाकर कल्पवृक्ष समान स्वचरणमें बांध लीजिये जिससे संसारका बन्धन टूट जाय ॥ २१ ॥

क्रूरकर्मकरणेन सुदूरं क्रूरतामुपगतौ च करौ मे ।
पादसेवनविधौ विनिवद्धौ तिष्ठतां चिरतरं कमलाक्ष ॥ २२ ॥

बा० बु० प्र० कमले इवाक्षिणी यस्य स कमलाक्षस्तत्सम्बुद्धौ हे कमलाक्ष ! (पा० ५।४।७३) क्रूराणां कर्मणां करणेन सम्पादनेन सुदूरमत्यन्तं क्रूरतामुपगतौ प्राप्तौ मे करौ पादसेवनविधौ चरणपरिचरणविधौ चिरतरं विनिबद्धौ सन्तौ तिष्ठताम् ॥ २२ ॥

पताका—हे कमलनयन ! क्रूर कर्मोंके करनेसे मेरे हाथ अत्यन्त क्रूर हो गये हैं । ये दोनों आपकी चरणसेवामें अनन्त काल तक बंधे हुये रहें॥

नाथ येन च मनो मम नित्यमुत्पथव्रजतिजुड् भवति स्म ।
तेन कोकनदपादयुगेन स्यात्तवैव विनिपीडितमत्र ॥ २३ ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! येन कारणेन मम मन उत्पथव्रजतिजुट् कुमार्गगतिसेवि भवति स्म जातं तेन हेतुना तवैव कोकनदपादयुगेन रक्तकमलचरणयुग्मेनाद्याधुना नित्यं विनिपीडितं स्याद्भवतु । कुमार्गगामी पादताडितो भवतीति उचितः पन्थाः ॥ २३ ॥

पताका—हे नाथ ! यतः मेरा मन कुमार्गसेवी हो गया है अतः नित्य श्रीमान्‌के कमलचरणोंसेही कचराता रहे ॥ २३ ॥

दोषकोषमिदमद्य मदीयमक्षियुग्ममयि मञ्जुलमूर्ते !
दण्डनेन लघु नाथ पिधेहि त्वं च तत्र हि कुरु प्रहरित्वम् ॥ २४ ॥

वा० वु० प्र० अपि मञ्जुलमूर्ते मनोहरमूर्ते ! अद्य दोषकोषं दोषाणां निधिभूतमिदं मदीयमक्षियुगं नेत्रद्वयं लघु शीघ्रं दण्डनेन दण्डकरणेन पिधेहि पिहितं कुरु । हे नाथ ! तत्र हीति निश्चये, त्वं प्रहरित्वं रक्षकत्वं कुरु ॥ २४ ॥

पताका—हे मनोहरमूर्तिवाले प्रभो ! दोषके कोषरूप इन मेरी आंखों-को आप शीघ्र दण्ड करके बन्द कर दीजिये। और हे नाथ आप वहां पहरा दीजिये। जैसे दोषी मनुष्यको जेलमें बन्द कर देते हैं और वह निकलकर भग न जावे अतः पहराभी देते हैं, एसेही हे प्रभो! आपभी करें॥

मा च मे गणय पातकपुञ्जं पातकापनयकर्तरजस्रम् ।
केवलं निजदयापरिवाहं सङ्गणय्य कुरुताच्छरणे माम् ॥ २५ ॥

वा० वु० प्र० पातकानां पापानामपनयो दूरीकरणं तत्कर्तः ! मे मम पातकानां पुंजं समूहं मा गणय संख्याहि । केवलं निजदयायाः परिवाहं संगणय्य विचार्याजस्रं निरन्तरं मां शरणे कुरुतात् ॥ २५ ॥

पताका—हे पापोंके दूर करनेवाले नाथ ! श्रीमान् मेरे पापोंके पुञ्जकी गिनती न करें। केवल अपनी दयाके विस्तारको विचारकर निरन्तर मुझे अपने शरणमें रखें ॥ २५ ॥

संलुनीहि करुणाजलराशे पापपादपममुं मम नित्यम् ।
वर्द्धमानमिह धर्मतनुश्रीमानहानिमभिकामयमानम् ॥ २६ ॥

वा० वु० प्र० हे करुणाजलराशे ! दयासागर ! धर्मस्तनुः शरीरं श्रीर्लक्ष्मी-र्मानः प्रतिष्ठा इत्येतेषां हानिमभिकामयमानमिच्छन्तं नित्यं वर्द्धमानं वृद्धिं प्राप्नुवन्तं चामुं मम पापपादपं पापवृक्षं संलुनीहि सम्यक् छिन्धि ॥ २६ ॥

पताका—हे कृपासागर ! धर्म, शरीर, श्री और मान इन सबका नाश करनेवाले, नित्य वृद्धिको प्राप्त करते हुये मेरे पाप रूप वृक्षको श्रीमान् अच्छे प्रकारसे काट डालें ॥ २६ ॥

अर्पिते च मम वाङ्मनसे ते पादयोः पतितपावन नूनम् ।
अर्हसि त्वमिह ते विनियोक्तुं रोचते च हृदयाय यथा ते ॥ २७ ॥

बा० बु० प्र० हे पतितपावन ! इह लोके मम वाङ्मनसे (पा० ५।४।७७) वाग् मनश्च ते तव पादयोश्चरणयोरर्पिते । ते हृदयाय यथा रोचते (पा० १।४।३३) तथा त्वं ते उभे विनियोक्तुमर्हसि ॥ २७ ॥

पताका–हे पतितपावन ! मैंने इस जन्ममें अपनी वाणी और मन श्रीमान्के चरणोंमें समर्पित कर दिया है । अतः आपकी जैसी इच्छा हो तदनुसार इन दोनों वस्तुओंका विनियोग करिये ॥ २७ ॥

एवमादिवचनैर्नरपालः संस्तुवँस्तमधिभूमि निपातम् ।
निर्ममे च ममतादिकशून्यो भास्वदत्यधिकभास्वरपादे ॥ २८ ॥

बा० बु० प्र० नरपालः श्रीपीपाराज एवमादिभिः पूर्वोक्तैर्वचनैस्तं यतिपतिं संस्तुवन् ममतादिकशून्यः सन् भास्वान् सूर्यस्ततोऽप्यधिके भास्वरे प्रकाशशालिनि पादे, सामीप्यं सप्तम्यर्थः, अधिभूमि पृथिव्यां निपातं निर्ममे कृतवान् ॥ २७ ॥

पताका–श्रीपीपाजी उपर्युक्त वचनोंसे श्रीस्वामीजीकी स्तुति करते हुये ममता अहंतासे शून्य होकर सूर्यसेभी अधिक प्रकाशमान चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥ २८ ॥

त्वं कुतश्च क इहागत एवं पृष्टवान् स जगतीत्रयपूज्यः ।
गाङ्गरौनगढवासिनरेन्द्रः सोऽब्रवीच्च सकलं मुनिनाथे ॥ २९ ॥

बा० बु० प्र० स जगतीत्रयस्य त्रिलोक्याः पूज्यो यतिराज एवं पृष्टवान्–त्वं कः ? कुतश्चेहागतः ? स गाङ्गरौनगढवासिनां नराणामिन्द्रः स्वामी मुनिनाथे सकलं सर्वमब्रवीत् ॥ २९ ॥

पताका–श्रीस्वामीजी महाराजने पूछा कि तुम कौन हो ? कहांसे आये हो ? तब श्रीपीपाजीने स्वामीजीके आगे सब वृत्तान्त निवेदन किया॥

सर्ववृत्तमधिगम्य यतीशः शिष्यतामधिनिनाय स पीपाम् ।
राममन्त्रमुपदिश्य महीपं चादिदेश गमनं नगराय ॥ ३० ॥

बा० बु० प्र० स यतीशः श्रीरामानन्दाचार्यः सर्ववृत्तमधिगम्य ज्ञात्वा राममन्त्रमुपदिश्य पीपां महीपं शिष्यतामधिनिनाय । नगराय गमनञ्चादिदेश ॥३०॥

पताका—श्रीरामानन्द स्वामीजी महाराजने सर्व वृत्तान्त जानकर पीपाजीको श्रीराममन्त्रका उपदेश देकर शिष्य बना लिया और पश्चात् गाङ्गरौनगढ जानेकी आज्ञा दी ॥ ३० ॥

तत्र साधुजनसेवनपुण्यैर्वर्द्धय त्वमनिशं निजकीर्तिम् ।
तां निशम्य शरणं तव राजन्वत्सरेण सुतरां प्रपविष्ये ॥ ३१ ॥

व्या० बु० प्र० हे राजन् ! तत्र स्वनगरे साधुजनानां सेवनजन्यैः पुण्यैस्त्वमनिशं निरन्तरं निजकीर्तिं वर्द्धय वृद्धिं नय । तां त्वत्कीर्तिं निशम्य सुतरां तव शरणं गृहं प्रपविष्ये पुनीतं करिष्ये ॥ ३१ ॥

पताका—हे राजन् ! तुम अपने नगरमें साधु पुरुषोंकी सेवाके द्वारा सर्वदा अपने यशको बढावो। उसे सुनकर मैं तुम्हारे घर आऊंगा ॥३१॥

वैष्णवीं समधिगम्य सुदीक्षां पूर्वतोऽपि बहुलं स बभासे ।
जातरूपमनलं समवाप्य शोभतेऽधिकमयं हि निसर्गः ॥ ३२ ॥

व्या० बु० प्र० स राजा वैष्णवीं दीक्षां समधिगम्य पूर्वतोऽपि पूर्वापेक्षया बहुलं बभासे दिदीपे । हि यतो जातरूपं सुवर्णमनलमग्निं समवाप्याधिकं शोभते, अयं निसर्गः स्वभावः ॥ ३२ ॥

पताका—श्रीपीपाजी वैष्णवी दीक्षा प्राप्त करके पहलेसे भी अधिक प्रकाशमान् हुये। क्यों कि सुवर्ण अग्नि पाकर अधिक चमकता है, यह स्वभाव ही है ॥ ३२ ॥

यद्यपि प्रथममस्य यियासा नोदियाय भवनस्य तथापि ।
नादरेतरदिहार्हति पूज्या पूज्यशिष्टिरिति सा विदिदीपे ॥ ३३ ॥

व्या० बु० प्र० यद्यप्यस्य राज्ञः प्रथमं भवनस्य गृहस्य यियासा जिगमिषा नोदियाय नोत्पन्ना । तथापि पूज्यार्चनीया पूज्यशिष्टिः पूज्यानां महतां शिष्टिः शासनमादरेतरदादरादितरदन्यदनादरमिति भाव नार्हति इति हेतोः स विदिदीपे प्रसन्नो बभूव ॥ ३३ ॥

पताका—यद्यपि श्रीपीपाजीकी घर जानेकी इच्छा नहीं थी तथापि गुरुओंकी आज्ञाका तिरस्कार नहीं करना चाहिये, ऐसा विचार कर वह

प्रसन्न हुये ॥ ३३ ॥

गौरवं च वचनं किल पथ्यं गौरवेण शिरसि प्रणिधाय ।
आशिषां स ततिभिर्यतिराजो रक्षितः स्वभवनं समगच्छत् ॥ ३४ ॥

बु० बा० प्र० किलेति निश्चये । स राजा गौरवं गुरोरिदं, पथ्यं हितकरं वचनं गौरवेणादरेण शिरसि प्रणिधायाङ्गीकृत्येत्यर्थः. यतिराट् श्रीस्वामिमहाराजस्तस्याशिषां ततिभिः पङ्क्तिभिर्बहुलाभिराशीर्भिरित्यर्थः. रक्षितः सन् स्वभवनं समगच्छत्॥

पताका—वह राजा श्रीगुरुमहाराजके हितकर वचनको मस्तकपर धारण करके, उनके आशीर्वादसे सुरक्षित होकर अपने घर गये ॥ ३४ ॥

अन्येप्यासन् ये च शिष्टा विशिष्टा,
नारे देहे सूरयः सन्निविष्टाः ।
सर्वे तेऽप्यागत्य तस्यां हि काश्यां,
प्राप्तास्तस्य श्रेयसे शिष्यतां च ॥ ३५ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये नवमः सर्गः

बा० बु० प्र० अन्ये ऽपि ये विशिष्टा महापुरुषा नारे मानुषे देहे सन्निविष्टाः प्रविष्टाः सूरयो विद्वांसः सुरसुरानन्दप्रभृतयः शिष्टा अवशिष्टा आसँस्ते सर्वेऽपि काश्यामागत्य श्रेयसे कल्याणाय तस्याचार्य्यश्रीरामानन्दस्य शिष्यतां प्राप्ताः ॥ वातोर्मिच्छन्दः ॥ ३५ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य—ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास—विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये बालबुद्धिप्रसादिन्यां नवमः सर्गः

पताका—अन्य श्रीसुरसुरानन्दजी इत्यादि महापुरुषभी जो मनुष्य देहमें अवतार ले चुके थे वे लोगभी काशीमेंही आकर स्वकल्याणार्थ आचार्य श्रीरामानन्द स्वामीजी महाराजके शिष्य हो गये ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य—ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास—विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां नवमः सर्गः ।

अथ दशमः सर्गः

यतीन्द्रपादाब्जवियोगवह्निना ज्वलन् कथञ्चित्समवापयत्समम् ।
नृपः स पीपा परमागतं न तं जगद्गुरुं वीक्ष्य चिखेद मानसे ॥१॥

व्या० वु० प्र० स पीपानृपो यतीन्द्रः श्रीरामानन्दाचार्यस्तस्य पादाब्जवियोगवह्निना चरणकमलवियोगाग्निना ज्वलँस्तपन् कथञ्चिन्महता प्रयासेन समं वर्षं समवापयत् समाप्तमकरोत् । परं तं जगद्गुरुमागतं न वीक्ष्य मानसे चिखेद खेदं प्राप्तवान् ॥ वंशस्थवृत्तम् ॥ १ ॥

पताका--स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजीके चरणकमलके वियोग रूप अग्निसे तपते हुये श्रीपीपाजीने किसी प्रकारसे एक वर्ष समाप्त किया । परन्तु जब देखा कि आचार्य्य चरण नहीं पधारे तो उनके मनमें खेद हुआ

स भूपतिश्चैत्य हि राजधानिकां स्विकां समन्ताच्च सदाऽऽयतां सताम्
निषेवणेनात्मयशोदिवाकरैर्दिशो दशाप्यस्ततमीर्व्यधाच्छनैः ॥२॥

व्या० वु० प्र० स च भूपतिः स्विकां राजधानिकां राजधानीमेत्य सदा समन्ताच्च चतसृभ्यो दिग्भ्य आयतामागच्छतां सतां सत्पुरुषाणां निषेवणेनात्मयशोदिवाकरैर्दशापि दिशोऽस्ततमीर्गतान्धकाराः शनैर्व्यधात् । एकेन सूर्येण क्वचित्प्रकाशस्य क्वचिदन्धकारस्यावलोकनेन मा भूत्कस्यामपि दिशि तमःसाम्राज्यमिति प्रत्येकं दिशि स्वयशःसूर्यं प्राकाशयत् । अतएव दिवाकरैरिति बहुवचनम् ॥ २ ॥

पताका—वह श्रीपीपाजी अपनी राजधानीमें आकर, जो महान् पुरुष उनके यहां आते थे, उनकी सेवा करने लगे । इससे उन्होंने दशों दिशाओंमें स्व-यश रूप सूर्यका स्थापन करके अन्धकारको धीरे २ विदा कर दिया ॥ २ ॥

निजस्य शिष्यस्य निशम्य सर्वतो महानुभावं च सतां प्रपूजनम् ।
गुरौ हरौ भक्तिमथापि पावनीं तुतोष सम्राड्यमिनां विदांवरः ॥३॥

व्या० वु० प्र० अथ विदांवरो विदुषां श्रेष्ठो यमिनां यतीनां सम्राडाचार्यश्रीरामानन्दस्वामी निजस्य शिष्यस्य सर्वतः सर्वेभ्यो महानुभावमुदारं तेजः सतां

सज्जनानां प्रपूजनं हरौ श्रीरामे गुरौ स्वस्मिन्नपि पावनीं शुद्धां भक्तिं च निशम्य तुतोष ॥ ३ ॥

पताका—विद्वानोंमें श्रेष्ठ, यति-सम्राट् श्रीस्वामीजी महाराजने अपने शिष्य पीपाजीका महान् तेज, सज्जनोंकी सेवा, हरि और गुरुमें शुद्ध भक्तिको सबसे सुनकर प्रसन्न हुये ॥ ३ ॥

समस्मरद्योगिवरोऽवधिं स्वयं प्रतिश्रुतं पूर्णमितो नृपालयम् ।
अवश्यमस्ति व्रजितुं वदन्निति पुरः प्रतीहारमवैक्षतागतम् ॥ ४ ॥

बा० बु० प्र० योगिवरः स्वयमात्मना प्रतिश्रुतं प्रतिज्ञानं पूर्णमवधिं समस्मरत् । इतः काश्या नृपालयं गाङ्गरौनगढमवश्यं व्रजितुं गन्तुमस्तीतिवदन् पुर आगतं प्रतीहारं द्वाग्पालमवैक्षतापश्यत् ॥ ४ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराजने स्वयं की हुई पूर्ण प्रतिज्ञाका स्मरण किया । यहांसे अवश्य गाङ्गरौनगढ जाना है ऐसा बोलते हुये उन्हों सामने आये हुये द्वारपालको देखा ॥ ४ ॥

नतेन मूर्ध्ना प्रणिपत्य दर्शको निवेदयामास यतीश्वरं प्रति ।
उपस्थितं वैवधिकं दिदृक्षया नरेन्द्रपीपेत्यभिधस्य पादयोः ॥ ५ ॥

बा० बु० प्र० दर्शको द्वारपालो यतीश्वरं प्रति नतेन प्रणतेन मूर्ध्ना शिरसा पादयोः स्वामिचरणयोर्दिदृक्षया दर्शनेच्छया नरेन्द्रपीपेत्यभिधस्य पीपामहाराजस्येत्यर्थः, उपस्थितं वैवधिकं वार्तावहं निवेदयामास ॥ ५ ॥

पताका—द्वारपालने मस्तक झुकाकर, स्वामीजीके चरणोंके दर्शनकी इच्छासे उपस्थित श्रीपीपाजीके वार्ताहरको स्वामीजीसे निवेदन किया ॥५॥

प्रवेशयेत्याज्ञपितः स दर्शकः प्रवेशयामास नरेन्द्रपूरुषम् ।
प्रणम्य दत्तं यमिने नतेन तद्दलं च तेन प्रहितं क्षमाभुजा ॥ ६ ॥

बा० बु० प्र० प्रवेशयेत्याज्ञपितः स्वामिचरणैरिति शेषः, स दर्शको नरेन्द्रपुरुषं राजपुरुषं प्रवेशयामास । नतेन च तेन दूतेन क्षमाभुजा पीपाराजेन प्रहितं प्रेषितं दलं पत्रं यमिने प्रणम्य दत्तम् ॥ ६ ॥

पताका—ले आवो, ऐसी श्रीस्वामीजीकी आज्ञा पाकर वह द्वारपाल

पीपाजीके वार्ताहरको ले आया। उसने मस्तक झुकाकर स्वामीजीको प्रणाम करके राजाजीके भेजे हुये पत्रको स्वामीजीको दिया ॥ ६ ॥

शुभाभिलाषी यमिनां पतिर्मुदा शुभं हि भूयादिति राशिमाशिषाम्।
प्रदाय चादाय नरेन्द्रपत्रकं स वाचयामास तदेवमादिकम् ॥ ७ ॥

वा० बु० प्र० शुभाभिलाषी शुभेच्छुर्यमिनां पति स आचार्यः शुभं भूयादित्याशिषां राशिं प्रदाय नरेन्द्रपत्रकं पीपाप्रेषितं तत्पत्रं चादाय गृहीत्वा एवमादिकमेवं वक्ष्यमाणमादिर्यस्य तद्वाचयामास ॥ ७ ॥

पताका—शुभाभिलाषी यतिराज श्रीस्वामीजीने 'कल्याण हो' ऐसा आशीर्वाद देकर पीपाजीके पत्रको लेकर इस प्रकारसे बांचा ॥ ७ ॥

शरद्व्यतीता कथमप्ययं गुरो न जातमद्यापि तवाङ्घ्रिकञ्जयोः।
मनोरमं दर्शनमक्षिपावनं जनः कुतो विस्मृतिमापितो न्वयम् ॥८॥

वा० बु० प्र० अयं गुरो! कथमपि महाकष्टेन शरद्वर्षं व्यतीता गतम्, अद्यापि तवाङ्घ्रिकञ्जयोश्चरणकमलयोर्मनोरमं मनःप्रसादकमक्षिपावनं नेत्रशोधनं दर्शनं न जातम्! अयं जनः कुतो नु विस्मृतिमापितो गमितः? ॥ ८ ॥

पताका—हे गुरो! किसी प्रकारसे एक वर्ष वीत गया परन्तु श्रीमान्के कमल चरणोंका मनोहर और नेत्रोंको पवित्र करनेवाला दर्शन नहीं हुआ। किस कारणसे इस जनको आपने विस्मृत कर दिया ॥ ८ ॥

मनोभुवि त्वच्चरणाब्जदर्शनाभिलाषशाखी शरदोऽहरम्बुभिः।
अनेककामैरुदितः प्रशीकितः सुमागमं नो लभतेऽधुनापि ही ॥ ९ ॥

वा० बु० प्र० हीत्याश्चर्ये। मनोभुवि मन एव भूस्तस्यां ममेति शेषः, उदितोऽनेकैः कामैः शरदो वर्षस्याहान्येवाम्बूनि जलानि तैः प्रशीकितः सिक्तस्त्वच्चरणाब्जस्यदर्शनस्याभिलाप इच्छा तद्रूपः शाखी वृक्षोऽधुनापि सुमागमं प्रसूनागमं नो लभते प्राप्नोति। शोभना मा लक्ष्मीर्यस्य स सुमः श्रीमांस्तस्यागमं न लभत इति भावः ॥ ९ ॥

पताका—आश्चर्य है कि मन रूपी भूतलपर उगा हुआ, अनेक कामनाओंसे संवत्सरके ३६० दिवस रूपी जलसे सींचा गया हुआ, श्री-

मान्‌के चरणकमलके दर्शनका अभिलाप रूप वृक्ष, अभीभी आपके शुभा-गमन रूप पुष्पको प्राप्त नहीं होता है ॥ ९ ॥

कियच्चिरं नाथ तवागमाशया विपित्समानांस्तदमूनसूनहम् ।
विभावयन्नारुणधानि भावना विभिन्नजातीरिति मे दिशत्वलम्॥१०॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! विपित्समानान्विपत्तुं विनष्टुमिच्छतस्तानमून् मे ममासून् प्राणान् विभावयन् संतोषयन् विभिन्ना जातिर्यासां ता भिन्नप्रकारा भावनाश्च तवागमस्याशया कियच्चिरमारुणधानीति मे मह्यमलं दिशतूपदिशतु ॥ १० ॥

पताका—हे नाथ ! नष्ट होनेकी इच्छावाले इन मेरे प्राणोंको समझाता हुआ नाना प्रकारके भावनाओंको आपके दर्शनकी आशासे कब तक मैं रोकूं, यह आप बताइये ॥ १० ॥

त्वमेधि सर्वज्ञ सपद्यबोधतामहासमुद्रे विनिमज्जतो मम ।
गतस्य दीनस्य च कान्दिशीकतां कृपामय स्तात्तरणिस्तरस्वती॥११॥

बा० बु० प्र० हे सर्वज्ञ ! हे कृपामय ! अबोधताऽज्ञानतैव महासमुद्रस्त-स्मिन्विनिमज्जतो विशेषेण ब्रुडतः कान्दिशीकतां भयद्रुततां गतस्य दीनस्य मम तरस्वती बलवती तरणिर्नौका स्तात् भवतात् ॥ ११ ॥

पताका—हे सर्वज्ञ ! हे करुणामय अज्ञानतारूपी महासागरमें डूबते हुये, भयभीत हुये मेरे जैसे दीनकी आप बलवती नौका बन जाइये ॥११॥

सुखाय नालं मम राज्यवैभवं सुतः सुता नापि सखाय ईश्वर !
पतिव्रता चेयमपीह भार्यका न तोषयत्यद्य मदीयमान्तरम् ॥ १२ ॥

बा० बु० प्र० हे ईश्वर ! इह राज्यस्य वैभवं सुतः सुता च मम सुखायालं न । नापि सखायोऽलम् । इयं पतिव्रतापि भार्यका धर्मपत्नी महाराज्ञी मदीयमा-न्तरमन्तःकरणमद्य न तोषयति प्रसादयति ॥ १२ ॥

पताका—हे ईश्वर ! इस जगत्‌में राज्य, सम्पत्ति, पुत्र, पुत्री, तथा मित्र भी मुझे सुखी करनेमें समर्थ नहीं हैं । मेरी पतिव्रता भार्याभी आज मुझे सन्तुष्ट नहीं करती है ॥ १२ ॥

त्वदीयपङ्केरुहमञ्जिमच्छटालसत्पदारामविहारमिच्छतः ।
सुखाकराराम इहास्ति नो मम सुखाय कामं यमिनामधीश्वर॥१३॥

व्या० सु० प्र० हे यमिनामधीश्वर ! त्वदीयः पङ्केरुहस्य मञ्जिमच्छटा इव मनोज्ञशोभा इव लसन् शोभमानो यः पदारामश्चरणरूपमुद्यानं तत्र विहारमिच्छतो मम सुखानामाकरः खनिः न चासावारामश्च काममत्यन्तमिह सुखाय नो ॥ १३ ॥

पताका–हे यतीन्द्र ! कमलकी सुषमाके समान शोभित आपके चरण रूप उद्यानमें विहार करनेकी इच्छावाले मुझे, सुखोंका आकर–मेरा उद्यान, कुछभी सुख नहीं देता है ॥ १३ ॥

अतो विधायातिकृपां कृपानिधे तथानुसन्धाय भवद्वचःस्मरम् ।
निधाय पादार्पणमत्र मे गृहे भवाभ्यमित्र्यो मम दीनवत्सल !॥१४॥

व्या० सु० प्र० अतो हे कृपानिधे ! दीनवत्सल ! अतिकृपां परमानुकम्पां विधाय तथा भवद्वचःस्मरं स्ववचनस्मरणमनुसन्धायात्र मे मम गृहे पादार्पणं निधाय कृत्वा ममाभ्यमित्र्यं (पा० ५।२।१७) शत्रूणां कामक्रोधादीनां सम्मुखं गन्ता भव॥

पताका–अतः हे कृपानिधे ! हे दीनवत्सल ! परम कृपा करके अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके मेरे घरमें पधारकर मेरे काम क्रोधादि शत्रुओंका सामना कीजिये । अर्थात् उनका नाश करिये ॥ १४ ॥

ततः प्रतस्थे यमिनां पतिस्ततः समस्तशिष्यैः सह सद्गुणान्वितैः ।
पुराय पीपानृपतेर्गुणस्पृशो यमादिभिः सार्द्धमलं यथा शमः॥ १५ ॥

व्या० सु० प्र० ततस्तदनन्तरं यमिनां पतिराचार्य्यश्रीरामानन्दः सद्भिः श्रेष्ठैर्गुणैरन्वितैर्युक्तैः समस्तशिष्यैः सह ततः काश्या गुणस्पृशो गुणिनः पीपानृपतेः पुराय पुरं गन्तुं तथा प्रतस्थे यथा यमादिभिः सार्द्धं शमोऽलं समर्थं जितेन्द्रियमात्मानमिति भावः, प्रति गच्छति ॥ १५ ॥

पताका–तदनन्तर यतीश्वर आचार्य श्रीरामानन्द स्वामीजी महाराज श्रेष्ठ गुणवाले स्वकीय समस्त शिष्यों सहित गुणशाली श्रीपीपाजीके नगरके प्रति ऐसे प्रस्थित हुये जैसे यमनियमादिके साथ शम जितेन्द्रिय आत्माके प्रति जाता हो ॥ १५ ॥

दिनद्वयानन्तरमध्वनि व्रजन्नपश्यदह्नाय मुनीश्वरः पुरः ।
स्वमाययैवास्थिचयं नभःस्थितं प्रवर्षयन्तं कमपीव योगिनम् ॥१६॥

बा० बु० प्र० अध्वनि मार्गे व्रजन् गच्छन्मुनीश्वरो दिनद्वयानन्तरं पुरः पुरस्तात्स्वमाययाऽऽस्थिचयमस्थिसमूहं प्रकर्षेण वर्षयन्तमधः पातयन्तं नभस्याकाशे स्थितं कमपि योगिनमिवापश्यत् ॥ १६ ॥

पताका—मार्गमें जाते हुये श्रीस्वामीजी महाराजने दो दिवसके पश्चात् सामने आकाशमें रहकर हड्डी वर्षाते हुये जोगीके समान किसी पुरुषको देखा ॥ १६ ॥

विलोक्य तस्येदमरिन्दमो मुनिश्चरित्रमाध्यानमितः क्षणद्वयम् ।
ततो महाश्चर्यमभूदनन्तरं पुरो गुरूणां गुरुताऽऽवरस्य का ॥ १७ ॥

बा० बु० प्र० अरिन्दमः शत्रुघ्नो मुनिः श्रीरामानन्दस्तस्य योगिन इदं चरित्रं विलोक्य क्षणद्वयं ध्यानमितः प्राप्तः । तदस्तदनन्तरमनन्तरं समीप एव महाश्चर्यमभूत् । गुरूणां पुरोऽवरस्य नीचस्य का गुरुता ? ॥ १७ ॥

पताका—शत्रुओंके विनाशक श्रीस्वामीजीने उस धूर्त योगीके इस चरित्रको देखकर दो क्षण तक ध्यान किया । पश्चात् समीपमेंही एक बड़ा आश्चर्य हुआ । भला गुरुओंके सामने नीचोंकी क्या गुरुता चल सकती है॥

समुद्गकाकारमभूदनूनकं मुनेः प्रभावादचिरं हि कैकसम् ।
तदन्तरे प्राविशदात्मना महाखलः स योगी शमनेरितः पुनः ॥१८॥

बा० बु० प्र० हीति निश्चयार्थे । मुनेः श्रीरामानन्दाचार्यस्य प्रभावादनूनकमूनं नेत्यनूनं, स्वार्थे कः । महत्तत्कैकसमस्थिसमूहो समुद्गकाकारं सम्पुटकाकारमभूत् । पुनः पश्चाद् महाखलः स योगी शमनेन मृत्युनेरितः प्रेरितः सन्नात्मना स्वयमेव तदन्तरे सम्पुटकाभ्यन्तरे प्राविशत् ॥ १८ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराजके प्रभावसे वह बड़ा हड्डियोंका समूह एक पेटारीके समान बन गया । पश्चात् कालसे प्रेरित होकर वह महादुष्ट योगी स्वयं उस पेटारीके भीतर प्रविष्ट हो गया ॥ १८ ॥

इते च तस्मिन्नु तदस्थिसम्पुटः क्षणेन नूनं पिहितोऽभवत्स्वयम् ।
ततो नभस्युत्पतितो भ्रमन्नितस्ततोऽपतद्भूमितले मृतश्च सः ॥१९॥

बा० बु० प्र० तत्रेतिशेषः, समुद्गके तस्मिन् धूर्तयोगिनीते गते सति तदस्थिसम्पुटस्तेषामस्थ्नां सम्पुटो नूनं क्षणेन स्वयं पिहितोऽभवत् । ततस्तदनन्तरं नभस्युत्पतितस्तत इतस्ततो भ्रमन् भूमितलेऽपतत् । स च मृतः ॥ १९ ॥

पताका—जब वह जोगी उस पिटारेमें घुस गया तब वह अपने आपही बन्द हो गया । पश्चात् वह पिटारा आकाशमें उड़ा और इधर उधर घूमता हुआ पृथ्वीपर आकर पड़ा जिससे वह धूर्त मर गया ॥१९॥

ततः परं प्रापदयं मुनीश्वरः क्रमेण पीपानृपतेः पुरं मुदा ।
वनानि पश्यँश्च तथा गिरीन्नदीर्हरिन्ति तुङ्गान्सजलाः सपद्मिनीः॥१९॥

बा० बु० प्र० ततः परं तन्मरणानन्तरं हरिन्ति हरिद्वर्णानि वनानि तुङ्गानुच्चान् गिरीन् पर्वतांस्तथा सजलाः सपद्मिनीः सकमलिनीर्नदीश्च पश्यन्नयं मुनीश्वरः क्रमेण मुदा प्रसन्नतया पीपानृपतेः पुरं प्राप्त् ॥ १९ ॥

पताका—उसके मरनेके पश्चात् श्रीस्वामीजी महाराज हरे २ जङ्गलों, ऊंचे २ पहाड़ों और जलवाली तथा कमलोंवाली नदियोंको देखते हुये धीरे २ प्रसन्नता पूर्वक श्रीपीपाजीके नगरमें पहुंच गये ॥ २० ॥

यदाश्रृणोद्भूपतिरागतं मुनिं ममौ न हर्षातिशयो हि तद्धृदि ।
गृहं यतीशं बहुमानमानयत्सहैव सद्भिस्तमपूपुजन्मुदा ॥ २१ ॥

बा० बु० प्र० भूपतिः श्रीपीपाराजो यदा मुनिं श्रीरामानन्दाचार्य्यमागतमश्रृणोच्छ्रुतवांस्तदा, हीति निश्चये । तद्धृदि तस्य राज्ञो हृदये हर्षातिशय आनन्दोद्रेको न ममौ अवकाशं न लेभ इत्यर्थः । मुदा यतीशं बहुमानं यथा तथा गृहमानयत्सद्भिर्विरक्तैस्तच्छिष्यैः सह तमाचार्य्यमपूपुजत्पूजितवान् ॥ २१ ॥

पताका—जब श्रीपीपाजीने सुना कि श्रीस्वामीजी महाराज पधारे हैं तब उनके हृदयमें आनन्द नहीं समाया । प्रसन्न होकर बड़े आदरके साथ उन्हें अपने घरपर ले आये और उनकी तथा अन्य महात्माओंकी भी पूजाकी ॥ २१ ॥

श्रियां निधिं ज्ञाननिधिं दयानिधिं समस्तविद्याम्बुनिधिं तपोनिधिम्।
अनन्तकल्याणगुणैकसन्निधिं पतिं यतीनां शिरसा नमाम्यहम्॥२२॥

बा० बु० प्र० इतः परमासर्गसमाप्तेः प्रत्यश्लोक्यनन्तरं वसन्ततिलकाछन्दः। श्रियामैश्वर्य्याणां निधिं ज्ञानस्य निधिं दयाया निधिं समस्तानां विद्यानामम्बुनिधिं समुद्रं तपसां निधिमनन्तानां कल्याणगुणानामेकः प्रधानं सन्नुत्तमश्चासौ निधिश्च तं यतीनां पतिमहं शिरसा नमामि ॥ २२ ॥

पताका—ऐश्वर्य निधि, ज्ञाननिधि, दयानिधि, समस्त विद्यानिधि, तपोनिधि, अनन्तकल्याण गुणोंके एकमात्र निधि, यतिपति आपश्रीको मस्तक झुकाकर मैं प्रणाम करता हूं ॥ २२ ॥

अपारसंसारविसारिसागरे निमज्जतो नाथ सनाथयञ्जनान्।
तवावतारो जगतीतले प्रभो व्रजेन्न केषामभिवन्दनीयताम् ॥२३॥

बा० बु० प्र० हे नाथ! अपारः संसार एव विसारी विशेषेण सरणशीलो विस्तृत इति यावत्। सागरस्तस्मिन्निमज्जतो बुडतो जनान्सनाथयञ्जगतीतले पृथिव्यां तवावतारः हे प्रभो! केषामभिवन्दनीयतामभिवादनार्हतां न व्रजेत् ॥ २३ ॥

पताका—हे नाथ! हे प्रभो! इस अपार संसार रूप विस्तृत सागरमें डूबते हुये जनोंको सनाथ करते हुये पृथ्वी ऊपर श्रीमान्के इस अवतारको कौन अभिवन्दन नहीं करता है? अर्थात् सबके अभिवन्दनके योग्य है॥

न शेषराजोऽपि सरस्वती न वा न गीर्पतिर्नो च शचीपतिश्च यान्।
गुणांस्त्वदीयानखिलान् समूहितुमपारयँस्तान् कथमावदान्यहम्॥२४॥

बा० बु० प्र० न शेषराजो न सरस्वती नवा गीर्पतिर्बृहस्पतिर्न शचीपतिरिन्द्रस्त्वदीयान् यानखिलान् सकलान् गुणान् समूहितुं वितर्कयितुमप्यपारयँस्तानहं कथमावदानि सम्यग्वर्णयानि ॥ २४ ॥

पताका—हे महाराज! शेष, सरस्वती, बृहस्पति तथा इन्द्र श्रीमान्के जिन समस्त गुणोंकी तर्कणाभी नहीं कर सके उनको मैं किस प्रकारसे वर्णन करूं? ॥ २४ ॥

न यान्समस्ताः श्रुतयोऽप्यशक्नुवन्समीरितुं क्वापि गुणान्हि तावकान्
कथं च ते यान्तु मदीयवाक्पथे धिगस्तु मे बालिशतां महेश्वर॥२५॥

बा० बु० प्र० हे महेश्वर ! समस्ताः श्रुतयोऽपि यांस्तावकांस्त्वदीयान् गुणान् समीरितुं वक्तुं नाशक्नुवन्न समर्था अभवँस्ते मदीयवाक्पथे मम जिह्वायां कथं यान्तु प्राप्नुवन्तु ? मे मम बालिशतां मूर्खतां धिगस्तु ॥ २५ ॥

पताका—हे महेश्वर ! समस्त वेदभी आपके जिन गुणोंका वर्णन नहीं कर सकते वे गुण मेरी जिह्वापर कैसे आवें ? मैं आपकी स्तुति करने चला हूं, इस मेरी मूर्खताको धिक्कार है ॥ २५ ॥

तथापि नामस्मरणेन ते प्रभो पवित्रितोऽहं भवितास्मि तत्क्षणम् ।
विचिन्त्य चेत्येव करोमि साहसं हसन्तु निन्दन्तु च वा बुधा जनाः॥

बा० बु० प्र० तथापि हे प्रभो ! "ते तव नामस्मरणेन तत्क्षणं तत्कालमहं पवित्रितो भवितास्मि" इत्येव विचार्य साहसं करोमि । बुधा जना हसन्तु निन्दन्तु वा ॥ २६ ॥

पताका—हे प्रभो ! तथापि ऐसा विचार कर कि आपके नाम स्मरणसे मैं तत्कालही पवित्र हो जाऊंगा—साहस करता हूं । विद्वान् लोग चाहे मेरा उपहास करें, चाहे निन्दा करें ॥ २६ ॥

जयत्वनन्ताय गुणाय ते प्रभोऽवतारकालः स च यत्र चागताः ।
जिनेश्वराः सार्थवहा भयातुराः समर्पयाञ्चक्रिर आत्मनस्त्वयि॥२७॥

बा० बु० प्र० हे प्रभो ! अनन्ताय गुणाय लाभाय ते तव सोऽवतारकालो जयतु यत्र काले सार्थवहाः सानुयायिनो भयातुरा भयव्याकुलिता जिनेश्वरा अपि त्वयि आत्मनः समर्पयाञ्चक्रिरे ॥ २७ ॥

पताका—हे महाराज अनन्त लाभके लिये आपका वह अवतारकाल विजयी होवे जिसकालमें जिनेश्वरोंनेभी अपने अनुयायियोंके साथ भयसे व्याकुल होकर अपनेको आपको समर्पण कर दिया ॥ २७ ॥

प्रदाय तेषां शरणं शरण्य या प्रदर्शिता तेषु महापराधिषु ।
दया त्वया शोभत एव सा त्वयि महाप्रभौ दीनदयापगापतौ॥२८॥

बा० बु० प्र० हे शरण्य ! तेषां शरणं प्रदाय महापराधिषु वेदवैदिककर्म-देवादिनिन्दापराधकर्तृषु तेषु त्वया या दया प्रदर्शिता सा दीनदयापगापतौ दीनकृपा-समुद्रे महाप्रभौ त्वयि शोभत एव ॥ २८ ॥

पताका–हे शरणागत रक्षक ! वेद, वैदिककर्म और वैदिक देवोंकी निन्दा रूप महापराध करनेवाले उन नास्तिकों पर आपने जो दया प्रकट की वह आप जैसे दीनदयालु और महान् समर्थ महापुरुषको शोभा देताही है ॥ २८ ॥

बुधाः समस्ताः सुगताः समेत्य ते पदारविन्देष्वभयार्थिनो मुहुः ।
प्रसादमादाय तव श्रियः पते त्वदीयपादानुचरत्वमाश्रयन् ॥ २९ ॥

बा० बु० प्र० हे श्रियः पते ! समस्ताः सुगता बौद्धधर्माचारा बुधा विद्वांसो मुहुरभयार्थिनोऽभयप्रार्थनाशीलास्ते तव पदारविन्देषु चरणकमलेषु समेत्यागत्य तव प्रसादं प्रसन्नतामादाय त्वदीयपादयोरनुचरत्वं सेवकत्वमाश्रयन् । २९ ॥

पताका–हे लक्ष्मीनाथ ! समस्त बौद्ध विद्वान्भी अभयकी इच्छासे आपके चरणोंमें आकर, आपको प्रसन्न करके आपके चरणोंके सेवक बन गये ॥ २९ ॥

त्वत्पादमूलमुपसेव्य नृणां स्थितानां
त्वन्नाम चापि जपतां यतिराजराज !
त्वत्पादपङ्कजपरागरसप्रसूता
मन्दाकिनी कलिकलङ्कमपाकरोति ॥३०॥

बा० बु० प्र० हे यतिराजराज ! त्वत्पादमूलं श्रीमच्चरणमुपसेव्य स्थितानां त्वन्नाम जपतां नृणां च कलिकलङ्कं कलिदोषं तव पादपङ्कजपरागाणां चरणकमल-रेणूनां रसात् प्रसूता मन्दाकिनी गङ्गा अपाकरोति दूरी करोति ॥वसन्ततिलकाछन्दः॥

पताका–हे यतिराजराज ! आपके चरणकमलके परागसे निकली हुई मन्दाकिनी–गङ्गा आपके श्रीचरणोंका आश्रय लेकर बैठे हुओं तथा आपके शुभ नामका जप करते हुओंके कलिके दोषोंको दूर कर रही है ॥ ३० ॥

विराजते यस्य जनस्य मानसे त्वदीयनामामृतसंचयश्च तम् ।
क्रुधोद्धतो रक्तविलोचनः शयुर्विषोल्बणोऽप्युत्सहते न बाधितुम्॥३१॥

वा० बु० प्र० यस्य जनस्य मानसे त्वदीयनामामृतस्य संचयः समूहो विराजते तं क्रुधा क्रोधेनोद्धतो रक्तविलोचनो विषेणोल्वणः स्पष्टः फणोन्नयनफूत्कारादिभिः प्रत्यक्षीभूतः शयुः सर्पोऽपि बाधितुं दष्टुं नोत्सहते ॥ ३१ ॥

पताका—जिसके हृदयमें आपका नामरूप अमृत विद्यमान है उसे क्रोधसे उन्मत्त, रक्त नेत्रवाला, विषसे प्रत्यक्ष हुआ सर्पभी काट नहीं सकता

विराजते यत्कमलोपमे करे त्रिदण्डमद्धा यतिराज ते शुभम् ।
स्फुटं हि तद्द्योतयति श्रियः पते तव त्रिलोकीपतितां हि केवलम् ॥

वा० बु० प्र० हे यतिराज ! यत् ते तव कमलोपमे पद्मतुल्ये करे हस्ते शुभं त्रिदण्डमद्धाऽऽत्यन्तं विराजते तद् हे श्रियः पते ! केवलं तव त्रिलोकीपतितां त्रैलोक्यस्वामित्वं स्फुटं द्योतयति प्रकटयति ॥ ३२ ॥

पताका—हे यतिराज ! हे श्रीकान्त ! आपके कमल तुल्य करमें जो त्रिदण्ड विराजमान है वह केवल आपकी स्पष्ट त्रैलोक्यस्वामिताका बोधन कराता है ॥ ३२ ॥

यतीन्द्र सत्कीर्तिकलाकलापतो निशांपतिर्गौररुचिर्बभूव ते ।
प्रतापपुञ्जैश्च तव त्विषाम्पतिर्ज्वलद्धविर्भुक्प्रतिमामशिश्रियत्॥३३॥

वा० बु० प्र० हे यतीन्द्र ! श्रीरामानन्दस्वामिन् ! ते तव सत्कीर्तीनां कलानां कलापतः समूहाद्धेतोः निशांपतिश्चन्द्रो गौररुचिर्धवलकान्तिर्बभूव । तव प्रतापपुञ्जैः प्रतापसमूहैश्च त्विषांपतिः सूर्यो ज्वलतो हविर्भुजोऽग्नेः प्रतिमां सादृश्यमशिश्रियत् ॥ ३३ ॥

पताका—हे श्रीयतीन्द्र ! आपकी सुन्दर कीर्ति—कला—कलापसे चन्द्रमा पाण्डुर हो गया है । तथा आपकेही प्रताप पुञ्जसे सूर्यभी अग्नि समान रक्त वर्णका हो गया है ॥ ३३ ॥

त्वदङ्घ्रिपाथोजमनोज्ञरेणवो न धारिता यैरसकृत्स्वमूर्द्धनि ।
कथं तरीतुं जगदर्णवो हि तैर्मनोरथानां शतकैर्नु वाञ्छ्यते ॥३४॥

वा० बु० प्र० त्वदङ्घ्रिपाथोजयोस्तव चरणकमलयोर्मनोज्ञाः सुन्दरा रेणवो यैरसकृन्मुहुर्मुहुः स्वमूर्द्धनि स्वमस्तके न धारिता गृहीतास्तैर्मनोरथानां शतकैर्जगदर्णवस्समुद्रस्तं तरीतुं कथं नु वाञ्छयत इष्यते ॥ ३४ ॥

पताका—हे स्वामिन्! जिन्होंने आपश्रीके कमलचरणके सुन्दर रेणुको अनेकोंवार अपने शिरपर धारण नहीं किया वे लोग सैकड़ों मनोरथोंके साथ संसार सागरको पार करनेके लिये कैसे इच्छा करते हैं ॥ ३४ ॥

त्वदीयपादाब्जपरागभृङ्गतां न यो गतो निर्ममतो रमापते ।
कथं स उद्घाटयितुं समीहते दृढाररं दुर्गममोक्षमन्दिरम् ॥ ३५ ॥

वा० बु० प्र० हे रमापते! यो निर्ममतो ममताशून्यस्त्वदीयपादाब्जपरागेषु भृङ्गतां न गतः स दृढाररं दृढकपाटं दुर्गमं च तन्मोक्षमन्दिरं मुक्तिभवनमुद्घाटयितुं कथं समीहते वाञ्छति ॥ ३५ ॥

पताका—हे रमापते ! जो पुरुष ममता त्याग कर आपके चरणकमल के परागका भ्रमर नहीं बना वह दृढ कपाटवाले दुर्गम मोक्षमन्दिरको उघाड़नेकी कैसे इच्छा रखता है ? ॥ ३५ ॥

यदीह न स्यात्तव भारतीप्रभा प्रभो प्रभुः स्याज्जनता कथंतराम् ।
उपेतुमद्यापि च वैष्णवं पदं परीतनानाविधदुःखकण्टका ॥ ३६ ॥

वा० बु० प्र० हे प्रभो ! इह संसारे यदि तव भारती सरस्वती तस्या प्रभा ब्रह्मसूत्रभाष्य-वैष्णवमताब्जभास्करादिर्न स्यात्तर्हि परीतानि व्याप्तानि नानाविधदुःखान्येव कण्टकानि यस्यां सा जनताऽद्यापि वैष्णवं पदमुपेतुं कथंतरां प्रभुः प्रभ्वी स्यात् ? ॥ ३६ ॥

पताका—हे प्रभो ! यदि संसारमें आपश्रीका ब्रह्मसूत्रका भाष्यादि तथा श्रीवैष्णव मताब्जभास्करादि न होता तो नाना प्रकारके दुःखरूप कण्टकोंसे भरी हुई जनता आजभी वैष्णव पदको कैसे प्राप्त हो सकती ? ॥

इयं च विष्णो तव भक्तिभीष्मसूर्महाप्रभावा विलसत्यहर्दिवम् ।
यदीयपीयूषपयःप्रपूरके निमज्ज्य लोका विमलीभवन्त्यलम् ॥३७॥

बा० बु० प्र० हे विष्णो ! इयं महाप्रभावा महातेजा तव भक्तिभीष्मसू-भक्तिभागीरथ्यहर्दिवं सततं विलसति । यदीये पीयूषपयसाममृतजलानां प्रपूरके समूहे निमज्ज्य स्नात्वा लोका अलमत्यन्तं विमलीभवन्ति शुद्धा भवन्ति ॥ ३७ ॥

पताका—हे विष्णो ! महाप्रतापवाली आपकी यह भक्तिरूप गङ्गा विलास कर रही है। जिसके अमृत समान जलमें स्नान करके लोग अत्यन्त निर्मल हो रहे हैं ॥ ३७ ॥

शरण्य ये ते शरणं समागता भवन्ति ते क्षेमपरम्पराभुजः ।
तथा च सम्भूय समन्ततश्च तांस्तवोपदिष्टा उपयन्ति सुश्रियः॥३८॥

बा० बु० प्र० हे शरण्य ! ये ते तव शरणं समागतास्ते क्षेमपरम्पराभुजः कल्याणसमूहभाजो भवन्ति। तथा तवोपदिष्टा आज्ञपिताः सुश्रियः समन्ततः सम्भूय मिलित्वा तानुपयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ ३८ ॥

पताका—हे शरण्य ! जो लोग आपकी शरणमें आते हैं वह अनन्त कल्याण पाते हैं। तथा आपकी आज्ञासे सुश्री–सम्पत्ति, ऐश्वर्य आदि सब ओरसे एकत्रित होकर उनको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥

ये त्वत्पदाम्बुजरजः शिरसा स्पृशन्ति
ते निस्तरन्ति भवसागरतोऽश्रमेण ।
जन्मादिदुःखरहितास्तव पादमूले
नित्यं वसन्ति यतिराज सुखानुभूत्या ॥ ३९ ॥

बा० बु० प्र० हे यतिराज ! ये त्वत्पदाम्बुजयोस्तव चरणकमलयो रजः शिरसा स्पृशन्ति तेऽश्रमेण श्रमं विनैव भवसागरतो निस्तरन्ति निस्सृत्य पारं गच्छन्ति । जन्मादिदुःखै रहिताः सन्तः सुखानुभूत्या सुखानुभवेन तव पादमूले नित्यं वसन्ति ॥ ३९ ॥

पताका—हे यतिराज ! जो जन आपके चरणकमलके रजको शिरसे स्पर्श करते हैं वे लोग श्रम विनाही संसार सागरसे पार हो जाते हैं। तथा जन्म मरण आदि दुःखोंसे दूर रह कर सुखका अनुभव करते हुये आपके चरणोंके समीप नित्य निवास करते हैं ॥ ३९ ॥

अनन्तदुःखानुगतं भवोदितं भयं निराकर्तुमनाः प्रभो तव !
शरण्यमासाद्य पदद्वयं पुनर्यदीक्षितस्तेन ततो हतोस्म्यहम् ॥ ४० ॥

बा० बु० प्र० हे प्रभो ! अनन्तदुःखैरनुगतमनुसृतं भवोदितं संसारजन्यं भयं निराकर्तुमना दूरीकर्तुकामस्तव शरण्यं पदद्वयमासाद्य प्राप्य यत्तेन भयेन पुनरीक्षितोऽस्मि ततः कारणादहं हतोऽस्मि ॥ ४० ॥

पताका—हे प्रभो ! अनन्त दुःखोंवाले सांसारिक भयको दूर करनेकी इच्छावाला मैं आपश्रीके शरणागतरक्षक चरणकमलको प्राप्त हुआ। तथापि वह भय मुझे नहीं छोड़ता है। अतः मैं अब मारा गया ॥४०॥

प्रकाशरूपे भवतः पदद्वये निवासमातन्वति मामके हृदि ।
कथं तमस्तिष्ठति तत्र चित्रमित्यहो विधेरेव हि दुर्विलासिता ॥४१॥

बा० बु० प्र० मामके हृदि मम हृदये प्रकाशरूपे भवतः पदद्वये निवासमातन्वति कुर्वति सति तत्र तमोऽन्धकारः कथं तिष्ठतीति चित्रमाश्चर्यम्। हीति निश्चये। अहो इति खेदे विमर्शे वा। विधेरेव दुर्विलासिता। विधिदुर्विलासितयैवैतद्भवति नान्यथा ॥ ४१ ॥

पताका—मेरे हृदयमें प्रकाशस्वरूप आपके कमलचरण निवास करते हैं तथापि आश्चर्य है कि वहां अन्धकार कैसे रहता है? निश्चयही भाग्यकी यह दुष्ट लीला है ॥ ४१ ॥

तवात्र नामापि जपन्सुमन्त्रवन्मनोबिलालीनमहाघभोगिनम् ।
सुखेन निष्काशयितुं समन्ततो जनः समीष्टे प्रणतो भवत्पदे ॥४२॥

बा० बु० प्र० अत्र संसारे तव सुमन्त्रवत् सुन्दरमन्त्रवन्नामजपन्नपि भवत्पदे समन्ततः प्रणतो जनो मनोबिले मनोरूपे बिले आलीनं सम्यग्गुप्तं महाघमेव भोगिनं सर्पं सुखेन निष्काशयितुं समीष्टे समर्थो भवति ॥ ४२ ॥

पताका—इस संसारमें सुन्दर मन्त्र समान जो पुरुष आपका नाम भी जप लेता है, तथा सब प्रकारसे आपके चरणकमलमें श्रद्धालु रहता है वह अनायासही मनरूपी बिलमें छिपकर बैठे हुये पापरूपी सांपको बाहर निकालनेमें समर्थ हो जाता है ॥ ४२ ॥

करोषि यस्मिन् हृदये मम प्रभो सदा निवासं शुचिनि श्रियः पते !
कथं सहेथा नयने निमील्य भो नतस्य तस्यैव मनोव्यथामिमाम्॥४३॥

बा० बु० प्र० हे प्रभो ! हे श्रियः पते ! मम यस्मिञ्छुचिनि पवित्रे हृदये सदा निवासं करोषि तस्यैव नतस्य नम्रस्य हृदयस्येमां मनोव्यथां मानसिकीं पीडां नयने नेत्रे निर्माल्य कथं सहेथाः ॥ ४३ ॥

पताका—हे प्रभो ! हे लक्ष्मीनाथ ! आप मेरे जिस पवित्र हृदयमें सर्वदा निवास करते हैं उसी नम्र हृदयकी आन्तरिक पीडाको आप आंखें बन्द करके कैसे सहन करते हैं ॥ ४३ ॥

सुरासुरासेवितपादपङ्कजं पुनाति ते नाथ जगत्रयं हि तत् ।
विचार्य किं नाथ सनाथयस्यदो न मां त्रिलोकीगतमेकमन्वहम्॥४४॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! हीति निश्चये, ते तव सुरासुरैः सेवितं पादपङ्कजं जगत्रयं पुनाति पवित्रयति । अथ तर्हि, तद् अदो जगत्रयपावनकरणसामर्थ्यं विचार्य त्रिलोकीगतं जगत्रयान्तर्गतमेकं मामन्वहं प्रतिदिनं किं न सनाथयसि नाथवन्तं करोषि ॥ ४४ ॥

पताका—हे नाथ ! सुर और असुर दोनोंसे पूजित आपके श्रीचरण तीनों लोकको पवित्र करते हैं । तब आप अपने इस सामर्थ्यका विचार करके त्रिलोकीके मध्यमेंही रहनेवाले मुझे क्यों नहीं सनाथ करते ? मेरे पापोंको दूरकर मुझे क्यों नहीं पवित्र करते ? ॥ ४४ ॥

निपीय ते नाथ वचः सुधामधादियं त्रिलोकी परमां पवित्रताम् ।
अहं परन्त्वेक इहावलोकये भवातिभीमार्णवभङ्गमग्नताम् ॥ ४५ ॥

बा० बु० प्र० हे नाथ ! त्रिलोकी जगत्रयं ते तव वचःसुधां वचनामृतं निपीय पीत्वा परमां पवित्रतामधादृतवान् । परन्त्वहमेवैक इह तव शरणे समागतोऽपि भवः संसार एवातिभीमो भयङ्करोऽर्णवः सागरस्तस्य भङ्गेषु तरङ्गेषु मग्नतामवलोकये ॥ ४५ ॥

पताका—हे नाथ ! आपके वचनामृतका पान करके तीनों लोक परम पवित्र हो गया है । केवल मैंही एक ऐसा हूं जो आपके शरणमें रहकरभी

कौन हो? कहां जाते हो? यहां कहां २ से आये हो? यह सब बताओ॥

स प्राह नाथ तव कीर्तिमनन्तपारा-
मावारिधेः परिगतां च निशम्य सम्यक्।
हे हे शरण्य शरणं हि समीहमान-
स्त्वत्पादमूलमिह केवलमागतोऽस्मि ॥ ३९ ॥

बा० बु० प्र० सोऽनन्तानन्दः प्राह। हे नाथ! अनन्तपारामावारिधेः समुद्रपर्यन्तं परिगतां तव कीर्तिं सम्यङ्निशम्य हे हे शरण्य! शरणं समीहमानो वाञ्छन्निह केवलं त्वत्पादमूलमागतोऽस्मि ॥ ३९ ॥

पताका—श्रीअनन्तानन्दजीने कहा कि हे नाथ और हे शरणप्रद! समुद्र पर्यन्त व्याप्त आपकी अनन्त कीर्तिको अच्छे प्रकार श्रवण करके आपके शरणकी इच्छा करता हुआ आपके चरणकमलमें मैं आया हूं

स प्रत्यवोचदतिहृद्यवचः पुनः स-
त्पादारविन्द सरयोस्तट आस्त चैकः।
ग्रामो महेशपुरमित्यभिधो द्विजेन्द्र-
स्तत्रैव राजति पिता मम भूकुबेरः ॥ ४० ॥

बा० बु० प्र० सोऽनन्तानन्दः पुनरतिहृद्यवचो मनोहरवचनं प्रत्यवोचत्। हे सत्पादारविन्द! सरयोस्तटे महेशपुरमित्यभिध इतिनामक एको ग्राम आस्ते। तत्रैव भूकुबेरः परमधनिको मम पिता राजति। सरयुशब्दो ह्रस्वोकारान्तोऽपि॥४०॥

पताका—श्रीअनन्तानन्दजी पुनः बोले कि हे सच्चरणकमल! सरयूजीके तटपर एक महेशपुर नामक ग्राम है। वहां परही पृथ्वीके कुबेर समान मेरे पिताजी निवास करते हैं ॥ ४० ॥

तस्याहमेव किल सूनुरभूवमस्मा-
त्प्राणाधिकः प्रियतमोऽस्मि च तस्य नाथ!
उद्वाहयोग्यवयसं प्रसमीक्ष्य तात-
स्तूर्णं सदारमिह मामदिदृक्षतासौ ॥ ४१ ॥

प्राप्ता । तस्मादहो यतिराज ! मम चेतः शाश्वतिकीमनपायिनीं शान्तिं समेतु प्राप्नोतु ॥ ४८ ॥

पताका—हे महेश्वर ! हे यतिराज ! इस जन्मरूपी जङ्गलमें अनन्त काल पर्यन्त भटकते हुये तथा पिपासासे व्याकुल हुये मैंने आज आपके वचनामृतरूप नदीको प्राप्त किया है । अतः मेरा मन अनन्त और अनपायिनी शान्तिको प्राप्त करे ॥ ४८ ॥

अभिष्टूयाचार्य्यं ललितपदजालैः स्तुतिपदै-
र्निमग्नः स्नेहाब्धावमलकमलाशोभिचरणे ।
पपातासौ भूपो यतिकुलपतेर्विह्वलतनु-
र्यतीशोत्थाप्यामुं शिरसि निहितं हस्तकमलम् ॥४९॥

व्या० बु० प्र० ललितानि मनोहराः पदजालानि पदसमूहा येषु तैः स्तुतिपदैराचार्यमभिष्टूय सर्वथा स्तुत्वा स्नेहाब्धौ प्रेमसागरे निमग्नोऽसौ भूपो विह्वल-तनुः सन् यतिकुलपतेः श्रीरामानन्दस्वामिनोऽमलकमल इवाशोभिनि समन्ता-च्छोभाशालिनि चरणे पपात । यतीशा भगवता श्रीरामानन्देनामुं भूपमुत्थाप्य शिरसि हस्तकमलं निहितं स्थापितम् । हस्तेन पस्पर्शेत्यर्थः ॥ ४९ ॥

पताका—सुन्दर पदोंसे युक्त स्तुतिसे श्रीस्वामीजी महाराजकी स्तुति करके प्रेमसागरमें डूबे हुये श्रीपीपाजी स्वामीजीके सुन्दर कमल समान चरणोंमें विह्वल होकर पड़ गये । श्रीस्वामीजीनेभी उठाकर उनके मस्तकपर अपना हाथ रखा ॥ ४९ ॥

प्रसन्नोऽहं वत्स श्रवणपथमानीय ललितां,
दिगन्ते विश्रान्तां हृदयरमणीयामतितमाम् ।
त्वदीयां सत्कीर्तिं सकलसुलभोत्सेकसलिलै-
रनास्पृष्टं त्वामित्यवददतितुष्टं मम मनः ॥ ५० ॥

बु० वा० प्र० आचार्य इति शेषः, इत्यवदत । इति किम् ? हे वत्स ! दिगन्ते दिशामन्ते चतसृषु दिक्ष्विति यावत्, विश्रान्तां विस्तृतामिति यावत्, ललितामतएव हृदयरमणीयां त्वदीयां सत्कीर्तिं सतीं शोभनां कीर्तिं श्रवणपथमानीय

आपत्तिमय गृहस्थाश्रमको छोड़कर विद्याध्ययन करना चाहता है॥ ४३ ॥

स ब्राह्मणो निजसुतं परिबोध्य सम्य-
ग्दृष्ट्वा च तं दृढतमं निजसद्विचारे ।
श्रान्तः समर्प्य यतये भवनं निवृत्तः,
कः प्रोज्झितुं क्षम इहास्ति हि दैवरेखाम् ॥ ४४ ॥

वा० बु० प्र० स ब्राह्मणो विश्वनाथशर्मा निजसुतमनन्तानन्दं सम्यक् परिबोध्य निजसद्विचारे स्वशुभसङ्कल्पे तं दृढतमं दृष्ट्वा श्रान्तः सन् यतये समर्प्य तमिति भावः, भवनं निवृत्तः । हि यतो दैवरेखां भाग्यलेखां प्रोज्झितुं दूरीकर्तुमिह कः क्षमः समर्थः ! ॥ ४४ ॥

पताका—वह ब्राह्मण श्रीविश्वनाथशर्मा अपने पुत्र अनन्तानन्दको बहुत समझाकर, स्वविचारमें सुदृढ़ देखकर, श्रान्त होकर, श्रीस्वामीजीको पुत्र अर्पण करके अपने घर लौट गये। सत्य है भाग्यके लेखको कोई नहीं मिटा सकता ॥ ४४ ॥

श्रीराममन्त्रमुपदिश्य रहस्यमस्मै,
श्रीमान्मुनीन्द्रचरणः शरणं निनाय ।
क्षिप्रं च वेदविधिना यतिराजराज-
स्तं बालकं किल समस्कृत शिष्यमग्र्यम् ॥ ४५ ॥

वा० बु० प्र० श्रीमान् यतिराजराजो मुनीन्द्रचरणः श्रीस्वामिरामानन्दः क्षिप्रं शीघ्रं वेदविधिना वेदविधानेन तं बालकमग्र्यं प्राथमिकं ज्येष्ठमिति यावत्, शिष्यं समस्कृत (पा० ६।१।१३५) वैष्णवोचितैः, पञ्चभिः संस्कारैः संस्कृतवान् । श्रीराममन्त्रं रहस्यं चास्मा उपदिश्य शरणं निनाय ॥ ४५ ॥

पताका—यतिराजराज श्रीस्वामीजी महाराजने वैदिक विधिसे वैष्णवोचित पञ्च सँस्कारोंसे उस बालक—प्रथम शिष्यको संस्कृत किया। पश्चात् श्रीराममन्त्र और रहस्यका उपदेश करके उन्हें अपने शरणमें ले लिया॥४५॥

अध्यापयन्मुनिवरः सकला हि विद्या-
स्तं सोऽपि शीघ्रमुपलेभ उदात्तबुद्धिः ।

श्री संप्रदाय प्रधानाचार्य जगद्गुरु श्री १००८
श्रीमद्रामानन्दाचार्य्यजी महाराज

श्रीपीपाजी महाराज

गाङ्गरौनगढ़में श्रीपीपाजी महाराजके यहां अतिथि रूपमें
श्रीस्वामीजी महाराज पधारे हैं ।

श्रीरामानन्द दिग्विजय १० सर्ग, ५० श्लोक

अथैकादशः सर्गः

अथ संविधाय विधिमुग्रतपा निखिलं च सान्ध्यमहरादियुगे ।
समलंचकार रविणा च समं जगदर्हणीयपदमाशु यतिः ॥ १ ॥

वा० वु० प्र० अथ रात्रिनयनानन्तरमुग्रतपा महातपस्वी यतिः श्रीरामानन्दस्वाम्यहरादियुगे अह्न आदियुगे प्रारम्भे प्रातःकाल इत्यर्थः, निखिलं सर्वं सान्ध्यं सन्ध्योपासनादिकं विधिं संविधाय रविणा सूर्येण समं सह जगतामर्हणीयं पूजनीयं पदं सिंहासनमाचार्य्यासनमित्यर्थ एकत्र, अन्यत्र विष्णुपदमाकाशमित्यर्थः, आशु समलञ्चकार ॥ प्रमिताक्षराछन्दः ॥ १ ॥

पताका—रात्रि व्यतीत हो जानेके बाद उग्र तपवाले यतीश्वर श्रीस्वामीजी महाराज प्रातःकाल—ब्राह्ममुहूर्तमें सम्पूर्ण सन्ध्यावन्दनादि विधि पूर्ण करके सूर्य भगवान्के साथ २ संसारभरके पूजनीय आसनपर विराजमान हुये । सूर्यभगवान् आकाशमें और श्रीस्वामीजी महाराज महार्घ्य सिंहासन पर आसीन हुये ॥ १ ॥

समधिष्ठितं च निजयोग्यतया सकलैस्तदीयचरणानुचरैः ।
परधामनीर्भवति या पदवी करुणाकरोपदिश तामधुना ॥ २ ॥
इति मूर्द्धसन्निहितहस्तपुटः सदसि स्थितस्तदनु कोऽपि नरः ।
विनयं विधाय ननु मौनमगादुपदेष्टुमारभत योगिवरः ॥३॥ युग्मम्॥

वा० वु० प्र० निजयोग्यतया योग्यताक्रमेणेतिभावः, सकलैः सर्वैः कलाभिः सहितैर्वा तदीयचरणानुचरैः श्रीस्वामिचरणानुयायिभिः समधिष्ठितं सम्यक्स्थितमुपविष्टमित्यर्थः । तदनु ततः पश्चात्सदसि समायां स्थितः कोऽपि नरो मूर्द्धसन्निहितहस्तपुटः शिरसि बद्धाञ्जलिः सन्निति विनयं विनतिं विधाय कृत्वा मौनमगात्तूष्णीं बभूव । इति किम् ? हे करुणाकर ! या पदवी मार्गः परधामनीः साकेतप्रापको भवति मोक्षदायको भवतीति भावस्तां सरणिमधुनेदानीमुपदिश । योगिवरः श्रीस्वामिरामानन्द उपदेष्टुमारभत तं मार्गमिति शेषः ॥ २ ॥ ३ ॥

पताका—अपनी २ योग्यतासे श्रीस्वामीजीके सब सेवक बैठ गये । उस सभामें किसीने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि महाराज श्रीसाकेत लोक

—मुक्तिको प्राप्त कराने वाले मार्गका कृपया श्रीमान् उपदेश करें। इतना कहकर वह चुप हो गया। पश्चात् श्रीस्वामीजी महाराज उपदेश करना आरम्भ किये ॥ २ ॥ ३ ॥

अमृतं पिपासति जनो विरलो विरलश्च वष्टि तदुपाययितुम् ।
यदि वाञ्छथ श्रवणमान्तरतो विषयस्य चास्य शृणुत प्रवणाः ॥४॥

व्या० वृ० प्र० श्रीयतिराज उवाच । विरलः कोऽप्येव जनोऽमृतं पिपासति पातुमिच्छति । विरलश्च जनस्तमपाययितुं वष्टि इच्छति । यदि यूयमान्तरतो हार्दिकभावतोऽस्य विषयस्य श्रवणं वाञ्छथ तर्हि प्रवणाः विनयविनम्राः सन्तः शृणुत ॥ ४ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराज बोले कि संसारमें अमृत पीनेकी इच्छा वालेभी थोड़े हैं तथा अमृत पिलानेकी इच्छावाले भी विरलेही होते हैं। अतः यदि तुम लोगोंको इस विषयके सुननेकी इच्छा हो तो विनीतभावसे श्रवण करो ॥ ४ ॥

रघुनाथ धामगमनं हि मता किल वैष्णवी सततमुक्तिरहो ।
समवेत चात्र सरणिं द्विविधां भजनं हरेः प्रपदनं च तथा ॥ ५ ॥

व्या० वृ० प्र० अहो ! हीति पदार्थः । रघुनाथधामगमनमेव वैष्णवी सततमुक्तिर्मता । मुक्तिस्त्रिविधदुःखानामात्यन्तिकी निवृत्तिः । औषधादिभिरपि दुःखानां निवृत्तिर्दृश्यते परन्तु न सा मुक्तिः । पुनस्तेषामुज्जीवनस्य दृष्टत्वात् । अतः सततमुक्तिः सार्वकालिकत्रिविधदुःखविरहरूपा मुक्तिस्तु श्रीरामधामगमनमेव । अत्र मुक्तिविषये द्विविधां द्विप्रकारां सरणिं मार्गं समवेत जानीत । हरेः श्रीरामस्य भजनं तथा तस्यैव प्रपदनं च । प्रपदनं प्रपत्तिः । एवं च भक्तिः प्रपत्तिश्चेमौ मार्गौ भगवद्धामनेतारौ ॥ ५ ॥

पताका—श्रोतृ वर्ग ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराजके धाम—साकेतलोक गमनकोही वैष्णवी मुक्ति कहते हैं। उस मुक्तिके दो मार्ग हैं। भक्ति और प्रपत्ति ॥ ५ ॥

नियताधिकारमिह पूर्वगतं सकलाधिकारमथ पश्चिमगम् ।
अतिहाय तेन किल तत्प्रथमं चरमं हि वर्णयितुमारभणम् ॥ ६ ॥

बा० बु० प्र० इह द्विविधमार्गे भक्तिप्रपत्तिरूपे पूर्वगतं भक्तिरूपं वर्त्म नियताधिकारं द्विजमात्रैकसेव्यमितिभावः । अथ पश्चिममन्तिमं प्रपत्तिरूपं वर्त्म सकलाधिकारं सर्वजनसेव्यमिति भावः । तेन तत्प्रथमं भक्तिरूपं वर्त्मातिहाय परित्यज्य चरमं प्रपत्तिरूपं वर्णयितुमुपदेष्टुमारभणमारम्भोऽस्तीति शेषः ॥ ६ ॥

पताका–भक्ति और प्रपत्ति इन दोनों मार्गोंमेंसे प्रथम–भक्तिमार्ग नियताधिकार अर्थात् द्विजमात्रके लिये सेवनीय है। और अन्तिम अर्थात् प्रपत्तिमार्ग सर्व जनके लिये सेवनीय है। अतः मैं अन्तिम–प्रपत्तिकाही वर्णन आरम्भ करता हूं।

तात्पर्य यह है कि श्रुति कहती है कि—"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय" (श्वे० ३।८) "विद्ययाऽमृतमश्नुते" (ईशावास्योप० १४) अर्थात् ब्रह्मापरपर्याय भगवान् श्रीरामचन्द्रके यथार्थ ज्ञानके अतिरिक्त मोक्षका अन्य साधन नहीं है। तथा विद्यासेही अमृत–मोक्षको जीव प्राप्त होता है। इस श्रुतिके साथ विरोध परिहार करनेके लिये भक्ति शब्दसे श्रुत्युक्त अन्तरक्षिविद्या, अन्तरादित्यादि ब्रह्मविद्याओंका ही ग्रहण है। भक्तिको ही वेदन, ध्यान, उपासना आदि शब्दोंसे बोधित करते हैं। यही भक्तियोग परमपुरुषकी प्राप्तिका उपायभूत है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, भक्तियोगके ये आठ अङ्ग हैं। इस भक्तियोगमें तैलधाराके समान अविच्छिन्न स्मृतिसन्तान बना रहता है अतएव यह तद्रूपही है। यमादिका लक्षण योगदर्शनमें पतञ्जलिने इस प्रकार लिखा है। "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" (यो० २।३०) "शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" (यो० २।३२) "स्थिरसुखमासनम्" (यो० २।४६) "तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः" (यो० २।४९) "स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः" (यो० २।५४) "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" (यो० ३।१) "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" (यो० ३।२) "तदेवार्थमात्रनिर्भासं

स्वरूपशून्यमिव समाधिः" (यो० ३।३)। इन सूत्रोंका अर्थ क्रमसे इस प्रकार है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह ये पांच यम कहाते हैं।

अहिंसा–स्व स्व आश्रम विहित जो शौच, स्नान, अग्निहोत्रादि, तथा भगवदर्चा निमित्त पुष्पच्छेदनादिके अतिरिक्त सर्वदा समस्त प्राणियोंके साथ सर्वथा द्रोह न करनेको–अथवा पीडा न देनेको अहिंसा कहते हैं।

सत्य–स्वयं जैसा देखा हो, जैसा अनुमान किया हो, जैसा सुना हो वैसाही अन्यके प्रति कह देना अर्थात् वाणी और मनको समान कर देनेको सत्य कहते हैं। जैसा और जो मनमें हो वैसाही और वही कह देना सत्य कहा जाता है। परन्तु ऐसे सत्यमें यदि भूतोपघात–पर–प्राणि-पीडा होती हो तो नहीं बोलना चाहिये। ऐसे दुःखद प्रसङ्गमें मौन धारण करनाही श्रेयस्कर है। अतएव मनुने कहा है कि—

'सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।'

सत्य यदि प्रिय हो तो उसे बोलो परन्तु यदि अप्रिय हो तो न बोलो।

अस्तेय–अशास्त्रीय रीतिसे पर द्रव्यके हरण करनेको स्तेय–चोरी कहते हैं। शास्त्रीय रीतिसे परद्रव्यग्रहणको अस्तेय कहते हैं। लोगोंकी वञ्चना करनेके लिये, अन्तरज्ञान तथा भक्तिभावसे शून्य आचारविचारसे रहित होकर कितनेही लोग जो जटा, विभूति आदि धारण करके साधु वेष बनाकर परद्रव्यापहरण करते हैं वहभी चोरीही है। तात्पर्य यह है कि स्पृहाशून्य होकर शास्त्रीय मर्यादाके द्वारा स्वनिर्वाह मात्रके लिये जो पर–द्रव्य–स्वीकार है उसे अस्तेय कहते हैं।

ब्रह्मचर्य–अष्ट विध मैथुन अर्थात् स्त्रियोंका स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रियानिर्वृत्तिसे नितान्त पृथक् रहनेका नाम ब्रह्मचर्य है। प्रेक्षणके निषेधमें राग सहित, पतित दृष्टिसे

अवलोकनकाही निषेध है। धर्मदृष्टिसे किसीभी दशामें देख लेना ब्रह्मचर्य का विघातक नहीं है। अतएव जब श्रीहनुमान्‌जी लङ्कामें श्री महाराणीजी-को ढूंढते हुये रावणके अतःपुरमें गये हैं और वहां पर अस्त व्यस्त निद्रित स्त्रियोंको देखा है तब प्रथम उनको बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने कहा—

"परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥"
"न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥"

"यह जो मैंने सोती हुई परस्त्रीका अवलोकन किया है वह मेरे धर्मका अत्यन्त लोप करेगा।" मेरी दृष्टि परस्त्रीकी ओर कभीभी नहीं जाती थी। आजही मैंने ऐसा किया है।" इतना पश्चात्ताप कर लेनेके पश्चात् अन्तमें उन्होंने कहा—

"कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥"

मैंने रावणकी समस्त स्त्रियोंको अच्छे प्रकारसे देखा है परन्तु मेरे मनमें किञ्चिन्मात्रभी विकार उत्पन्न नहीं हुआ है। सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शुभ और अशुभ मार्गमें प्रवृत्त करानेवाला मनही है परन्तु वह अभी तक सुव्यवस्थित है। इससे सिद्ध है कि कुदृष्टिसे अवलोकन करनाही ब्रह्मचर्य-का नाशक है।

अपरिग्रह—हिंसादि असंख्य दोषोंके देखे जानेसे पदार्थका स्वीकार न करना अपरिग्रह कहलाता है। अथवा आवश्यकतासे अधिक पदार्थोंका संग्रह न करना अपरिग्रह है।

शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम कहलाते हैं।

शौच दो प्रकारका होता है। बाह्य और आभ्यन्तरिक। बाह्य शौच उसे कहते हैं जो मृत्तिका और जलादिसे शरीरकी शुद्धि की जाती है तथा गोमूत्र, यवागू, उपवास, मेध्याभ्यवहरण—पवित्र वस्तुओंका भक्षण किया जाता है।

चित्तके रागद्वेषादि मलोंके प्रक्षालन करनेका नाम आभ्यन्तर शौच है।

सन्तोष—अत्यावश्यक प्राणयात्रानिर्वाहक विद्यमान साधनसे अतिरिक्तिकी लिप्सा न करनेको सन्तोष कहते हैं।

तपः—जिघत्सा—खानेकी इच्छा, पिपासा—पीनेकी इच्छा, शीत—उष्ण, स्थान—आसन, एकादशी, चान्द्रायणादि व्रत, ये सब तप कहे जाते हैं।

स्वाध्याय—वेदान्त, श्रीवाल्मीकिरामायण, श्रीमद्वाल्मीकि संहिता, अगस्त्यसंहिता आदि मोक्ष शास्त्रोंका अध्ययन स्वाध्याय कहा जाता है।

ईश्वरप्रणिधान—परम गुरु भगवान् श्रीरामचन्द्रजीमें समस्त कर्मोंका अर्पण ईश्वर प्रणिधान कहा जाता है।

स्थिर—निश्चल, सुख—सुखकर हो वैसा **आसन** करना चाहिये। पद्मासन, वीरासन आदि आसनोंमेंसे जिससे स्थिरता और सुखपूर्वक बैठा जावे वही आसन करना चाहिये।

आसनके सिद्ध होने पर श्वास और प्रश्वासकी गतिके विच्छेदन करनेको **प्राणायाम** कहते हैं।

प्राणायाम मानवजातिके लिये एक अत्यावश्यक वस्तु है। इससे शारीरिक और आत्मिक दोनोंही उन्नति होती हैं। बन्ध और मोक्षके कारणभूत मनका निग्रहभी इसीके द्वारा ठीक २ होता है। योगियोंका कथन है कि—

" प्राणायामेन योगीन्द्रो लब्ध्वैश्वर्याष्टकानि वै ।
पापपुण्योदधिं तीर्त्वा त्रैलोक्यचरतामियात् ॥ "

अर्थात् योगीन्द्र लोग प्राणायामके द्वारा अणिमा, गरिमा, लघिमादि अष्ट सिद्धियोंको प्राप्त होकर तथा पाप पुण्यसे पृथक् होकर तीनों लोकोंमें स्वेच्छा विहार करते हैं। तथा—

" प्राणायामेन सिद्धेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत् ।"

जो मनुष्य प्राणायामको भले प्रकार सिद्ध कर लेता है उसके सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश हो जाता है। परन्तु—

" अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः । "

यदि उचित रीतिसे प्राणायामका अभ्यास न किया गया हो, आहार, विहारादिमें संयमका पालन न किया गया हो तो सम्पूर्ण व्याधियोंकी उत्पत्तिभी हो जाती है। लिखा है कि—

" हिक्का श्वासश्च काशश्च शिरःकर्णाक्षिवेदना । "
भवन्ति विविधा रोगाः पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥

यदि प्राणायामकालमें वायुका व्यतिक्रम हो जावे तो हिक्का–हिचकी, श्वास, –काश खांसी, शिरोवेदना, कर्णवेदना और अक्षिवेदना आदि विविध रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अनुभवी महात्माओंका कथन है कि—

" स्वेदः संजायते देहे योगिनः प्रथमोद्यमे ।
यदा संजायते स्वेदो मर्दनं कारयेत्सुधीः ।
अन्यथा विग्रहे धातुर्नष्टो भवति योगिनः ॥ "

प्राणायामके प्रथम कालमें योगियोंके शरीरमें स्वेद–पसीना आ जाता है। उसका प्रोक्षण नहीं करना चाहिये। किन्तु शरीरमेंही मर्दन करा देना चाहिये। नहीं तो शरीरके धातु नष्ट हो जाते हैं।

गोरक्ष तथा घेरण्डादिके मतानुसार आठ प्रकारके प्राणायाम हैं। परन्तु नाममें अन्तर हुआ है। गोरक्ष कहते हैं—

"सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्टकुम्भिका॥"

सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली ये आठ भेद प्राणायामके हैं। घेरण्ड कहते हैं—सूर्यभेदन, उड्डीयान, शीत्कार, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और प्लाविनी इस प्रकारसे आठ भेद हैं।

इन्द्रिय अपने २ विषयोंके असम्प्रयोग—असनिकर्षकालमें अर्थात् ध्यानादिमें चित्तकी समानाकारताको जो प्राप्त होते हैं उसेही **प्रत्याहार** कहते हैं। जितेन्द्रिय पुरुषके चक्षुरादि इन्द्रिय ध्यानकालमें चित्तके साथ तुल्याकार हो जाते हैं। चित्त जिस ध्येयका ध्यान करता है, इन्द्रियभी ताद्रूप्यको प्राप्त करते हैं। स्वतन्त्ररूपसे वह मनके साथ मिलकर विषयान्तरका सङ्कल्प नहीं करते। इसीका नाम समानाकारता है।

नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, मूर्द्धा, नासिकाग्र आदि प्रदेशमें विषयान्तरका परित्याग करके जो चित्तकी एकाग्रता सम्पादन करना है उसे **धारणा** कहते हैं।

उस देशमें द्विभुज भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अन्य वृत्तियोंके व्यवधानसे रहित जो तदाकार वृत्ति प्रवाह है उसे **ध्यान** कहेते हैं।

जहां ध्याता, ध्यान, आदिके विभागकी शून्यता जैसी हो जाती है है तथा ध्येय मात्रमें चित्त एकाग्र हो जाता है अर्थात् ध्येयमात्राकार हो जाता है उसे **समाधि** कहते हैं।

परन्तु इस औपनिषद भक्तिका अधिकारी केवल द्विज हो सकते हैं। क्यों कि यह ब्रह्मविद्या शूद्रोंके लिये अदेय है। तथा ब्रह्मसूत्रके अपशूद्रा-

धिकरणमें इसके दानका निषेधभी है। इस विद्याके नियत तीनही अधिकारी होनेसे यह नियताधिकार है। अतः इसे छोड़कर सर्वाधिकार प्रपत्तिका निरूपण आचार्यने किया।

यहां इतना स्मरण रहे कि आचार्यने जो भक्तिको नियताधिकार लिखा है वह केवल औपनिषद ब्रह्मविद्यारूप भक्तिको ही। परन्तु पौराणिक नवधा भक्ति–जिसमें अर्चन वन्दन आदि सम्मिलित हैं उनको नियताधिकार नहीं बताया है। वहभी प्रपत्तिके समानही सर्वाधिकार है। अतएव जात्यादिनिकृष्ट गजेन्द्र, शबरी, गुह, कपि, प्रह्लाद, आदिका पवित्र नाम परम भक्तोंकी श्रेणीमें उल्लिखित है। अपरकालमें भी मीराबाई आदि स्त्रीभक्त तथा रविदासादि शूद्र भक्त हो चुके हैं। अतएव गीताचार्यने लिखा है कि–

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये ऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

भगवत्प्राप्तिके लिये शास्त्रमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और प्रपत्तियोग बताए गये हैं। परन्तु पूर्वके दो मार्ग बहुत कठिन है। कहीं भी, किञ्चिन्मात्रभी विधिवैगुण्य हुआ तो पतन निश्चित है। पुनः उसी चक्रमें आकर भ्रमण करना पड़ता है। भक्तियोगमें भी तारतम्य है। भक्तिकी अपरिपूर्णतामें यद्यपि पतन नहीं है तथापि शीघ्र मुक्ति नहीं है। अधिक कालकी अपेक्षा रहती है। परन्तु जिन्हें संसारका दुःख असह्य है, एक क्षण भरभी इसे नहीं सह सकते वह अत्यन्त वैराग्यवान् होकर, निःशेष पदार्थोंसे परम विरक्त होकर भगवत्प्रपन्न होते हैं। उनके लिये प्रपत्तिके अतिरिक्त अन्य मार्ग है ही नहीं। भक्तिमें प्रारब्ध–कर्मका भोग अवश्य करना पड़ता है परन्तु प्रपत्ति प्रारब्ध–कर्मकाभी नाश कर देती है। अतएव श्रीमदाचार्य्य चरणने वैदिक भक्तिको नियताधिकार समझकर, पौराणिक भक्तिको आर्तप्रपन्नका अनुपादेय समझकर सर्वसुलभ, सर्वाधिकार

सर्वगम्य प्रपत्तिमार्गका निरूपण किया है। प्रपत्ति, शरणागति और न्यास यह सब पर्याय हैं ॥ ६ ॥

नहि विद्यते गतिरिहाद्य ममोद्गमनाय कापि सुलभाऽसुलभा ।
जगदीश केवलमलं विमलं तव पादकञ्जमधिका सुगतिः ॥ ७ ॥

वा० बु० प्र० हे जगदीश ! अद्येहोद्गमनायोर्द्ध्वगमनाय कल्याणाय मोक्षायेत्यर्थः, मम कापि सुलभा सुगमाऽऽसुलभाऽऽसुगमा प्राप्यापि प्राप्या वा गतिर्न विद्यते । केवलमलमत्यन्तं विमलं निर्मलं तव पादकञ्जं चरणकमलमधिका सुगतिः शोभनगतिः ॥ ७ ॥

पताका–हे जगदीश ! आज मेरे ऊर्ध्वगति–कल्याण अथवा मोक्षके लिये सुलभ–अथवा अ-सुलभ कोईभी मार्ग नहीं है। केवल आपके अत्यन्त निर्मल चरणकमलही मेरी सर्वश्रेष्ठ गति हैं ॥ ७ ॥

अगतेस्त्वमेव गतिरत्र विभो शरणं शरण्य करवाणि पदम् ।
तव याचनं तदमुना विधिना शरणागतिश्च भवतीदमपि ॥ ८ ॥

वा० बु० प्र० हे विभो ! अत्रागतेर्गतिशून्यस्य त्वमेव गतिः । हे शरण्य ! तव पद शरणं करवाणि । इदममुना विधिना याचनमपि शरणागतिर्भवति॥

पताका–हे विभो ! अगति–गतिरहितके आपही गति हैं। हे शरण्य ! आपके चरणकमलको मैं शरण बनाता हूं। इस प्रकारसे याच्ञा करनेकोभी शरणागति कहते हैं ॥ ८ ॥

अपराधकोटिशरणं शरणागतिरस्मि मे सुहृदकिञ्चनता ।
भवतात्त्वमेव भवबन्धभिदाविधितीर्थराजपदवीपदवी ॥ ९ ॥

वा० बु० प्र० हे शरण ! अहमपराधकोटीनां शरणं गृहं स्थानमिति यावत्, अस्मि । अगतिर्नगतिर्यस्यैवंभूतोऽस्मि । अकिञ्चनता दरिद्रता मे मम सुहृदस्ति । अतस्त्वमेव भवबन्धस्य भिदाया विनाशस्य विधौ तीर्थराजस्य प्रयागस्य पदवीमार्गस्तस्य पदवी तुल्यो भवतात् ॥ ९ ॥

पताका–हे शरण ! मैं करोड़ों अपराधोंका पात्र हूं। अगति हूं। दरिद्रताही मेरा मित्र है। अतः इस संसारके बन्धनको काटनेके लिये जैसे

तीर्थराज प्रयाग है वैसेही मेरे पापरूप बन्धनके उच्छेद करनेवाले श्रीमान् हो जाइये ॥ ९ ॥

मम शक्तिरस्ति न निजोद्धरणे तत एव सर्वग भरन्यसनम् ।
तव पादयोरकृपि सर्वगते ह्यधुना निजार्पणमथो युगले ॥ १० ॥

वा० बु० प्र० अथो हे सर्वग ! हे सर्वगते ! सर्वशरण ! अधुना निजोद्धरणे स्वोद्धाराय मम शक्तिर्न । तत एव हेतोस्तव पादयोश्चरणयोर्युगले द्वन्द्वे निजार्पणरूपं भरन्यसनं भरन्यासमकृपि कृतवान् ॥ १० ॥

पताका—हे सर्वव्यापक ! हे सर्व शरण ! अब मेरे उद्धारके लिये मुझमें शक्ति नहीं है । अतएव आपके चरणकमलद्वन्द्वमें मैंने अपना अर्पण रूप भरन्यास किया है । सर्वथा अपनेको प्रभुके अर्पण कर देनेका नाम भरन्यास है ॥ १० ॥

अनुकूलताप्रणयनं सततं प्रतिकूलतात्यजनमेव च वा ।
वरणं च विश्वसनमूर्जितकं शरणागतेः कृपणताङ्गमिति ॥ ११ ॥

वा० बु० प्र० "अनुकूलस्य सङ्कल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम् । रक्षिष्यतीति-विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥ पञ्चमं कृपणत्वं च" इत्याद्यभिहितानि प्रपत्तेरङ्गानि बोधयति । अनुकूलताया आनुकूल्यस्य प्रणयनं रचनमानुकूल्यसम्पादनमिति यावत् । प्रतिकूलतायास्त्यजनं त्यागः प्रातिकूल्यवर्जनमिति यावत् । विश्वसनं विश्वासोऽयं मद्रक्षणक्षम इति विश्वास इत्यर्थः । वरणं स्वीकरणम् । अयं मम गोप्ता भवत्विति-वरणमिति भावः । कृपणता दीनता च शरणागतेरङ्गमिति । प्रत्येकमङ्गत्वसंमासये-ऽङ्गमित्युपादानम् ॥ ११ ॥

पताका—अब प्रपत्तिके पांच अङ्गोंका निरूपण करते हैं। भगवान्‌की अनुकूलताका प्राप्त करना, प्रतिकूलताका त्याग, 'भगवान् मेरी रक्षा कर सकेंगे' ऐसा विश्वास, प्रभुही मेरी रक्षा करनेवाले हों इस प्रकारसे उनका अङ्गीकार, और दीनता ये प्रपत्तिके पांच अङ्ग हैं ॥ ११ ॥

विवृतिः पृथक् पृथगलं क्रियते शरणागतेरवयवस्य मुदा ।
शृणुतावधानमनसा सकलाः सकलाधितापशमनाय किल ॥ १२ ॥

वा० बु० प्र० शरणागतेः प्रपत्तेरवयवस्याङ्गस्य पृथक् पृथक् अलं यथा तज्ज्ञानं स्यात्तथेति भावः, विवृतिर्विवरणं क्रियते । सकलाः सर्वे यूयं अवधानेन मनसा सकलानामधितापानाम्महादुःखानां शमनाय शान्त्यै शृणुत ॥ १२ ॥

पताका—शरणागति अर्थात् प्रपत्तिके पांचों अङ्गोंका पृथक् २ विवरण करता हूं । तुम सब लोग त्रिविध ताप निवृत्तिके लिये सावधान मनसे उसका श्रवण करो ॥१२॥

शरणं हि यं स्वमनसा नियतं तदनुज्ञया व्यवहृतेर्नितराम् ।
करणं सदा च भजनं हृदये ह्यनुकूलतेति विबुधैः कथिता ॥१३॥

पताका—जिसको मनसे अपना शरण नियत कर लिया, तब उसीकी आज्ञासे सब व्यवहार करना, उसीका हृदयमें सदा भजन करना, इसे ही विद्वानोंने अनुकूलता कही है ॥१३॥

श्रुतिगर्भसंविहितकृत्यचये रतिधारणं च विरतिर्मनसि ।
प्रतिषिद्धकर्मणि सदा विबुधैः प्रतिकूलतेति कथिता सकलैः ॥१४॥

पताका—श्रुतिविहित कर्मोंमें स्वमनमें वैराग्य धारण करना और प्रतिषिद्ध कर्मोंमें अनुराग रखना इसे सब विद्वानोंने प्रतिकूलता कहा है ॥१४

प्रभुशास्तिरत्र दलिता भवति भ्रमतोऽपि केनचिदलं हि तदा ।
भवति प्रपत्तिरनघा विहता पुनरेति तद्भवभवे कलिले ॥१५॥

पताका—यदि कोई प्रपन्न भ्रमसे भी प्रभुकी आज्ञाका उलंघन कर दे तो उसकी प्रपत्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है और वह पुनः संसारजन्य दुःखमें आकर पड़ता है ॥१५॥

भवतात्त्वमेव मम चोपयनं जगदीश रक्ष शरणे पतितम् ।
इतिचार्थनं हृदयतः प्रति तं कथयन्ति पण्डितजना वरणम् ॥१६॥

पताका—हे जगदीश ! आप ही हमारे उपाय बन जावो । शरण पड़ेकी रक्षा करो ! इस प्रकारसे प्रभुके प्रति प्रार्थना करनेको विद्वान् लोक वरण कहते हैं ॥१६॥

मम रक्षणे प्रभुरयं कुशलो विपदां निपातसमये विषमे ।
हृदये स्वके प्रतिपलं नितरां दृढभावना भवति विश्वसितिः ॥१७॥

पताका—विपत्तिके निपातसमयमें, विषम दशामें, यह प्रभु मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं इस प्रकारसे प्रतिक्षण अपने हृदयमें दृढ भावनाको विश्वास कहते हैं ॥१७॥

मम च प्रभुः किल दयावशगः परमोऽस्त्युदार इति भावनया ॥
मम रक्षणे च सुतरां क्षमतां दधतेतरामिति हि विश्वसनम् ॥१८॥

पताका—पुनः विश्वासका ही निरूपण करते हैं । मेरे प्रभु बहुत दयालु और उदार हैं । मेरी रक्षा करनेमें अत्यन्त सामर्थ्य रखते हैं । इस प्रकारकी भावनाको विश्वास कहते हैं ॥१८॥

मदमेयपातकनिपुञ्जगिरिर्भविता कथं ननु भिदापथगः ।
यदि भेदनं भवतु तस्य न वा कथमापयिष्यति निजं स पदम् ॥१९

पताका—मेरे अनन्त पापोंका समूहरूप पर्वत इन प्रभुसे कैसे टूटेगा ? यदि पाप नष्ट न हो सके तो वह अपना परम पद मुझे कैसे देंगे ? ॥१९॥

यदि कोऽपि नैजहृदये रचनां विदधाति संशयपरीतमनाः ।
स उपायतः पतित एव भवेत्पुनरेष्यतीह भवभीतिभरे ॥२०॥

पताका—इस प्रकारसे यदि कोई संशयात्मा अपने हृदयमें विचार करता है तो वह उपायसे पतित हो जाता है और पुनः इस संसारके भयमें आकर पड़ता है ॥२०॥

अहमस्मि पापनिरतः सततं गुरु चास्ति वाञ्छितमिदं परमम् ।
मम दास्यतीह तदलं स कथं त्वितिसंशयान उपयाति भवम् ॥२१॥

पताका—मैं तो सर्वदा पापमें ही लीन रहता हूं और परम पदकी प्राप्तिरूप जो मेरा इष्ट है वह तो बहुत बड़ा है । उसे वह प्रभु कैसे देंगे ? इस प्रकार संशय करनेवाला भी पुनः संसारमें पड़ता है ॥२१॥

जननी न वा न जनकोऽपि मम न च बन्धुता सुतसुतादि न वा।
तव नाथ केवलमिदं युगलं स्वजनार्तिहृच्चरणयोः शरणम् ॥२२॥

पताका–हे नाथ ! माता, पिता, भाई, सुत, सुता आदि मेरा कोई रक्षक नहीं है। केवल स्वभक्तोंके दुःखोंको दूर करनेवाले ये दोनों आपके चरण ही मेरे शरण हैं ॥२२॥

गतिरस्ति नैव रघुनाथ परा प्रविहाय ते चरणपादयुगम्।
अयि वीक्ष्यतां नु मदकिञ्चनता तदनूद्धरातिकृपणं स्वजनम् ॥२३॥

पताका–हे श्री रघुनाथ ! आपके चरणकमल युग्मको छोड़कर मेरी अन्य गति नहीं है। हे नाथ ! मेरी दीनताकी ओर देखिये और पश्चात् अत्यन्त दीन स्वजनका उद्धार कीजिये ॥२३॥

इति सर्वथैव परमेशपदे स्वमनो निधाय तदसाधनताम्।
प्रकटय्य तस्य हि पुरो वसतिं विदुषांवरा कृपणतां ब्रुवते ॥२४॥

पताका–उपर्युक्त प्रकारसे परमेश्वरके चरणोंमें अपने मनको स्थापन करके अपनी उस असाधनताको प्रगट करके प्रभुके सामने ही रहनेको विद्वद्वर्य कृपणता कहते हैं ॥२४॥

भवमाप्य भक्तगण चङ्क्रमणं स विदादधीत्यगणितं बहुशः।
इह जीव एत्य पुनरात्मकृतेः फलमेति मानवतनुं क्वचन ॥२५॥

पताका–हे भक्तगण ! वह जीव संसारमें आकर अनेकवार अगणित चङ्क्रमण–आवागमन करता है। पश्चात् संसारमें ही अपने कर्मोंके फलके अनुसार किसी स्थलमें मानव शरीरको पाता है ॥२५॥

रघुनन्दनो हि कृपया च तदा नयनप्रसादमधितत्तनुते।
स च सात्त्विको हि भवतीह नरः परिचिन्तयत्यरिहमोक्षपदम् ॥२६

पताका–तब श्री रघुनन्दन यदि उसके ऊपर अपनी कृपादृष्टि करते

हैं तो वह पुरुष सात्त्विक हो जाता है और काम क्रोधादि शत्रुओंके मारने-वाले मोक्षमार्गकी निरन्तर चिन्ता करने लग जाता है ॥२६॥

भगवत्कटाक्षविधुतावरणः समवाप्तपुण्यपुरुषार्थरुचिः ।
अवलोक्य योगनिचयेऽक्षमतां विशति प्रपत्तिगृहमादरतः ॥२७॥

पताका—भगवान्के कृपाकटाक्षसे नष्ट आवरणवाला होकर, पवित्र मोक्षरूप पुरुषार्थमें रुचिवाला होकर, कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगमें अपनी असमर्थता देखकर जीव आदर सहित प्रपत्तिमन्दिरमें प्रवेश करता है।२७

रघुनाथपादकमलालयकः प्रतिकूलकृत्यविरतोऽविरतम् ।
परमप्रतीतिसहितः सहितो विहरत्यजस्रमिह निर्भयतः ॥२८॥

पताका—जो निरन्तर भगवान्के चरणकमलोंमें ही निवास करता है, भगवत्प्रतिकूल कृत्योंसे सदा पृथक् रहता है, भगवान् ऊपर परम विश्वास रखता है वह स्वहितैषी जीव इस संसारमें सर्वदा निर्भय होकर विहार करता है ॥२८॥

अतिपात्य कर्मकलिलं विमलस्तनुपातमेव सततं प्रमुदा ।
प्रतिपालयन्नित इतो वितनुः प्रभुपादपद्ममधु संपिबति ॥२९॥

पताका—वह जीव कर्म-दोषको नष्ट करके, निर्मल होकर, आनन्द-पूर्वक सदा शरीरपातकी—मरणकी प्रतीक्षा करता हुआ; यहांसे जाकर, दिव्य शरीर प्राप्त करके भगवान्के चरणकमलोंके मधुका पान करता है ॥२९॥

ननु कर्म पुण्यमथ पापमपि समचायि जीवगणकैश्च चिरात् ।
अविनाश्य तन्न भवसागरतस्तरणे क्षमो भवति कोऽपि नरः ॥३०

पताका—यहां एक शङ्का करते हैं कि—'इस संसारमें आकर जीवोंने चिरकालसे पुण्य और पाप उभयविध कर्मोंका सञ्चय किया है। और जब तक इन दोनोंका नाश न हो तब तक कोई भी मनुष्य भवसागरसे तरनेमें समर्थ नहीं हो सकता' ॥३०॥

परमानुकम्पजगदीश्वरतः श्रुतिरागता श्रुतिपरम्परया ।
अनुसृत्य तत्सरणिमेव जना अधिशक्नुवन्ति तदु नाशयितुम् ॥२१

पताका—इस प्रश्नका उत्तर करते हैं । परम कृपालु जगदीश्वर श्रीरामापरपर्याय परब्रह्मसे श्रवणपरम्परासे यह श्रुति जीवोंके कल्याणकेलिये प्राप्त हुई है । उसी श्रौतमार्गका अनुगमन करके मनुष्य पापादि कर्मोंका उपक्षय कर सकते हैं ॥२१॥

यदि वेदमार्गमनुयन्त इतः सकला नराश्च सुकृतान्यथवा ।
कुकृतानि नाशयितुमादधते क्षमतां मुधा नु परमेश्वरता ॥२२॥

पताका—पुनः प्रश्न करते हैं कि यदि वेदमार्गका अनुगमन करते हुये सब मनुष्य अपने पुण्य और पापका नाश कर सकनेमें समर्थ हैं तो पुनः ईश्वरता तो व्यर्थ ही है ? अर्थात् पुनः ईश्वरकी क्या आवश्यकता है ?॥२२

वरमभ्युपैमि तव वाचमिमां परमत्र तत्त्वमिदमस्ति सखे ।
जडभूतमस्ति किल शास्त्रमिदं परवत्यतो हि फलसाधनता ॥२३॥

पताका—उत्तर करते हैं । हे भाई ! तुम्हारा वचन मैं स्वीकार करता हूं । परन्तु इसमें तत्व यह है कि शास्त्र तो जड है । वह स्वयं कर्मफल नहीं दे सकते । अतः यह फलसाधनता जो है वह परतन्त्र है अर्थात् भगवदधीन है ॥२३॥

नहि यावदस्ति करुणा करुणावरुणालयस्य नहि तावदये ।
उदियात्फलं किमपि यत्नशतैस्तदधीनता श्रुतिचयस्य मता ॥२४॥

पताका—करुणावरुणालय भगवान्की जब तक करुणा नहीं होती तब तक सैकडों यत्न करने पर भी किसी फलकी प्राप्ति नहीं होती । अतः सम्पूर्ण वेद भगवान्के ही अधीन हैं । स्वतन्त्र नहीं ॥२४॥

फलमित्युवाद निजकण्ठरवैः स पराशरात्मज इतोऽपि ननु ।
रघुनाथसत्सलिलजाङ्घ्रिकृपा नितरामपेक्षिततमा सकलैः ॥२५॥

पताका—"फलमत उपपत्तेः" इस ब्रह्मसूत्रमें श्रीव्यासजीने भी निज-कण्ठरवसे ऐसा ही कहा है। अतएव भी सबको भगवान्‌के चरणकमलोंकी कृपा अत्यन्त अपेक्षित है ॥२५॥

पतितं स्वकं शरणमेव जनं स हि वीक्षते यदि दृशा दयया।
न हि तं निनीषति अधः क्वचन प्रतियात एव भवतीह भवः ॥२६॥

पताका—वह भगवान् यदि दया करके अपनी दृष्टिसे शरणमें पड़े हुये स्वजनको देखते हैं तब उसे कभी भी नीचे ले जानेकी इच्छा नहीं करते अर्थात् उसका अधःपात नहीं होने देते। उसका संसार निवृत्त हो जाता है ॥२६॥

यदि वाञ्छतीह तदधोनयनं न विलोक्य जीवपरमार्तिमहो।
सुकृतेरथापि विकृतेर्विलयं कथयन्ति वेदनिधिपाः सुधियः ॥२७॥

पताका—जीवोंके परम कष्टको देखकर जब प्रभु उसके अधःपातकी इच्छा नहीं करते तब उसके सुकृत और दुष्कृत विलीन हो जाते हैं ऐसा वेदज्ञ विद्वान् कहते हैं ॥२७॥

इति सर्वशुभ्रगुणजातलसज्जनकाङ्गभूपतिपवित्रपदे।
निहितैकतानत उदस्तजगद्वशमानयत्यखिलभूतपतिम् ॥२८॥

पताका—इस प्रकारसे सम्पूर्ण कल्याण गुणोंसे शोभित सीतापति श्री रामजीके पवित्र चरणोंमें एकतानता रखनेवाला तथा जगत्‌को परित्याग करनेवाला पुरुष भगवान्‌को वशमें कर लेता है ॥ २८ ॥

रसशब्दशब्दित उदारमनाः सततं प्रपन्नपरिरक्षणतः।
परितो हि वश्य इह दास इवानिशमभ्यमित्र्य इव स भ्रमति ॥२९॥

पताका—'रसो वै सः' इस श्रुतिके अनुसार रसशब्दवाच्य परम रसिक वह प्रभु प्रपन्न पुरुषोंकी रक्षाकेलिये शत्रुओंके जीतनेमें समर्थ, वशमें रहनेवाले दासके समान चारों ओर फिरा करते हैं ॥२९॥

करुणानिधानचरणप्रसितः प्रयतः प्रसादितरघूद्वहकः ।
समवाप्तकाम उदितप्रतिभो ह्यचिरेण मुक्तपदभाग्भवति ॥४०॥

पताका-भगवान्के चरणोंमें लगा हुआ, जितेन्द्रिय भगवान्को प्रसन्न करनेवाला, आप्तकाम, प्रतिभावाला पुरुष शीघ्रही मुक्त हो जाता है ॥४०॥

ननु तत्किमस्ति भुवि वस्तु परं न ददाति यन्निजजनाय हरिः ।
परमप्रसादमुपयात इह शरणागताय शरणागतरट् ॥ ४१ ॥

पताका-संसारमें वह कौनसा सुन्दर पदार्थ है जिसे शरणागत रक्षक दयालु भगवान् प्रसन्न होकर, शरणमें आये हुये निज जनको नहीं देते ॥४१

भगवान् हि भक्तभजनोत्सुकतां बिभृते दयारससरिच्छरणम् ।
व्यथते व्यथालवमपि स्वजने परिवीक्ष्य दीनजनबन्धुरयम् ॥४२॥

पताका-दयारसके सागर, दीनबन्धु यह भगवान् अपने भक्तोंके भजन करनेकेलिये उत्सुक रहा करते हैं। तथा स्वजनोंपर अल्पमात्र भी दुःख देखकर दुःखित हो जाते हैं ॥४२॥

प्रणतार्तिनाशन जनोऽद्य तव पतितोऽहमस्मि भववारिनिधौ ।
इति शृण्वतो द्रवति तस्य मनो नहि सीमितास्ति तदनुग्रहिता ॥४३॥

पताका-हे प्रणत जनोंके दुःख दूर करनेवाले नाथ ! मैं आपका दास संसार सागरमें आज पड़ा हुआ हूं। ऐसा सुनते ही भगवान्का हृदय पिघल जाता है। क्योंकि उनकी दयालुताकी सीमा नहीं है ॥४३॥

कलिकालकल्ककलितं हि जगन्नहि धर्म्यकर्मसु रतिश्च नृणाम् ।
शरदिन्दुरम्यरमणीमणयो गणयन्ति नैव शुभधर्मपथम् ॥ ४४ ॥

पताका-जगत् कलिकालके तापसे युक्त हो रहा है। मनुष्योंकी धर्मयुक्त कर्मोंमें प्रीति नहीं रही। शरत्कालके चन्द्रसमान सुन्दर-स्त्री-रत्नवाले पुरुष धर्मके शुभमार्गकी ओर दृष्टिपात ही नहीं करते हैं ॥४४॥

हतभव्यभास उदरम्भरयः परिहेयकर्मभरभारजुषः ।
अवमानयन्ति सततं च सतो नहि मानयन्ति हतदीनजनम् ॥४५॥

पताका—सबके सुन्दर तेज नष्ट हो गये हैं। पेटकी चिन्ता सबको पड़ी है। हेय—त्याज्य कर्मोंको ही करने लग गये हैं। लोग सज्जनोंका सदा अपमान करते हैं। अभागे दीनोंका कोई आदर नहीं करते ॥४५॥

जननीतिरस्कृतितिरस्करिणीपरिलुप्तवित्त्यधितमःप्रसराः ।
जनकापमानबहुमानजना जनयन्ति नैव कुलधर्मरतिम् ॥४६॥

पताका—माताके तिरस्कार रूप पर्देसे ज्ञानके लुप्त हो जानेसे अत्यन्त अज्ञानी लोग स्वकुलके धर्ममें प्रीति ही नहीं करते ॥४६॥

श्रुतिसत्कथा व्यथयतीव परं सततं श्रुती विषयमार्गजुषाम् ।
विषमे ह्यनेहसि हरेः करुणा शरणं नृणामिह तु सत्यमिदम् ॥४७॥

पताका—वेदोंकी सुन्दर कथा विषयिजनोंके श्रोत्रोंको पीडित करती है। अर्थात् उन्हें वह अच्छी ही नहीं लगती। ऐसे विषम समयमें, यह सत्य है कि, भगवान्‌की दयाके अतिरिक्त मनुष्योंको और कोई शरण नहीं है ॥४७

तत एव भावुकजनाः सकला अतिहाय मन्थरगतिं झटिति ।
भगवत्पदाब्जयुगलाधिलसद्विमलालये विशत शुद्धधिया ॥४८॥

पताका—इस लिये हे भव्य जनो! तुम सब लोग मन्द गतिको छोड़ कर भगवान्‌के चरणकमलरूप सुन्दर विमल मन्दिरमें शीघ्र प्रवेश करो॥४८॥

रघुराज पाहि निजदीनजनं त्वमु केवलं शरणमेधि मम ।
इतिवाचमेव हृदयाद्गलितामनुपालयत्ययि हरिः सततम् ॥४९॥

पताका—'हे रघुराज अपने दीन जनकी रक्षा करो। आप ही मेरे शरण बनिये।' इस प्रकारसे हृदयसे निकलती वाणीकी ही प्रतीक्षा भगवान् सतत करते रहते हैं। जिसनें हृदयसे उनकी ओर अपना हाथ फैलाया। प्रभु शीघ्र उसका हाथ पकड़ लेते और रक्षा करते हैं ॥४९॥

सुतरां दया परवशो भगवान्दयिता हि वो गलितमानभुवाम् ।
शबरीकपीशगजराजविभुः स उपेक्षणं नहि करिष्यति वः ॥५०॥

पताका—दया—परवश होकर भगवान् अभिमान शून्य तुम्हारे ऊपर अवश्य दया करेंगे । शबरी—भिल्लनी, सुग्रीव और गजके स्वामी कभी भी तुम्हारी उपेक्षा नहीं करेंगे ॥५०॥

इति यतिपतिराधिपत्यं प्रपत्तेः सभायां तदा,
सकलजनसमक्षमाख्याय मोक्षप्रदाया मुदा ।
उपसमहरदीश्वरस्य प्रसत्तौ व्यवस्थापय-
न्नुपगतनृमनांसि यत्नाद्विविच्य श्रुतीस्तत्त्वतः ॥५१॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास—विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजय एकादशः सर्गः

पताका—उस समय इस प्रकारसे मोक्षप्रद प्रपत्तिकी प्रभुताका सभामें समस्त पुरुषोंके समक्ष वर्णन करके, आये हुये सब लोगोंके मनको भगवत्प्राप्तिमें व्यवस्थित करते हुये यतियति श्री स्वामीजी महाराजने तत्त्वज्ञान-पूर्वक श्रुतिकी विवेचना करके उपसंहार कर दिया ॥५१॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य—ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास—विरचिते—श्रीमद्भगवद्रामा-
नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायामेकादशः सर्गः ।

अथ द्वादशः सर्गः

सायं पुनः सपदि संसदि सन्निपत्य,
पातुं च धर्मवचनामृतसिन्धुबिन्दून् ।
धर्मैकभूतिततिभव्यधियोऽस्य राज्ञ,
आजग्मुराशु सकला मुदिताः प्रजास्ताः ॥१॥

पताका—धर्मरूप धनसे निर्मल बुद्धिवाले इन पीपा महाराजकी समस्त धर्मात्मा प्रजा प्रसन्न होकर, धर्मवचन रूप अमृतसागरके कुछ विन्दुओंका पान करनेकेलिये मिलकर सायङ्काल पुनः सभामें आई ॥१॥

आचार्य्यवर्य्यचरणा अपि चारु रेजुः,
सार्द्धं निजैः सकलशिष्यवरैः सभायाम् ।
जिज्ञासितं हरिजनैः करणीयमद्धा,
किं किं च केन विधिना समितौ च कैश्चित् ॥२॥

पताका—सभामें अपने भव्य शिष्यों सहित श्रीमदाचार्यचरण भी शोभा के साथ विराजमान थे। उस सभामें कुछ लोगोंने जिज्ञासाकी कि महाराज हरिजनोंको किस २ विधिसे क्या २ करना चाहिये ॥२॥

प्रार्थ्यं निशम्य करुणावरुणालयोऽसौ,
सर्वान् कृतार्थयितुमेवमनिन्द्यकीर्तिः ।
प्रारब्ध वक्तुममुना विधिना सदैव,
श्रीवैष्णवैर्हरिजनैरिह वर्तितव्यम् ॥३॥

पताका—करुणावरुणालय, उत्तम कीर्तिवाले श्री स्वामीजी महाराज इस प्रार्थनाको सुनकर सबको कृतार्थ करनेकेलिये इस प्रकारसे उपदेश देना आरम्भ किये। वैष्णवोंमें श्री वैष्णवोंको इस प्रकारसे इस संसारमें वर्तना चाहिये ॥ ३ ॥

अस्याखिलस्य भुवनस्य परं विधाता,
भर्ता लयं गमयिता रघुनन्दनोऽयम् ।
सर्वाभिरेव स च भक्तिभिराशुतोषः,
सेव्यो विभुः प्रतिपलं सकलैस्तदीयैः ॥४॥

पताका—इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके विधान करनेवाले, पालन करनेवाले तथा नाश करनेवाले केवल प्रसिद्ध भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज ही हैं।

अतः समस्त—नव विध भक्तियोंके द्वारा शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, विभु वही भगवान् भगवद्भक्तोंके सेवन करनेयोग्य हैं ॥४॥

ध्येयः स एव भगवाननिशं हृदब्जे,
भक्तैस्स्वभूः शिवगुणोऽव्यभिचारिभक्त्या ।
किन्त्वन्यदेवविषये मनसापि चिन्त्यो,
द्वेषः कदाचिदपि नैव तदीयभक्तैः ॥५॥

पताका—भगवद्भक्तजनोंको उचित है कि अनन्त—कल्याण—गुणाकर स्वयंभू उन्हीं भगवान्‌का अव्यभिचारिणी भक्तिसे निरन्तर हृदयकमलमें ध्यान करें तथा कभी भी मनसे भी अन्य देवके विषयमें द्वेष बुद्धि न करें ॥५॥

जाप्यः सदा गुरुपदाब्जमहाकृपातः,
श्रीराममन्त्र इह सर्वजनैरवाप्तः ।
नैमित्तिकानि सकलानि च किल्बिषाणि,
नित्यान्यपि श्लथयितुं नितरां समर्थः ॥ ६ ॥

पताका—सर्व हरिजनोंको चाहिये कि नित्य और नैमित्तिक समस्त पापोंको नष्ट करनेमें समर्थ, गुरुचरणोंकी महती कृपासे प्राप्त, श्रीराममन्त्रका सर्वदा जप करें ॥६॥

श्रीराममन्दिरमठादि जगद्धिताय,
कर्तुं च कारयितुमारतितो हि युक्तम् ।
तत्रागताः सहृदया अथ ये तदीयाः,
स्नेहेन तेऽपि सुतरां परिपूजनीयाः ॥७॥

पताका—संसारके कल्याणकेलिये श्री रामजीका मन्दिर तथा मठ स्वद्रव्यसे बनवाना अथवा अन्योंसे बनवाना योग्य है। तथा उस मन्दिर और मठमें जो कोई विद्वान्, महात्मा अथवा प्रभुके भक्त आ जावें उन सब लोगोंकी प्रेमसे पूजा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

यत्केवलं निजमहोदरपूरणाय,
निर्मापितं भवति राघवमन्दिरादि ।
एकाकिनो विचरणं तदपेक्षया तु,
कल्याणकृन्मम मते भवतीह नूनम् ॥८॥

पताका—जो मन्दिर और मठादि केवल अपने मोटे पेटको भरनेके लिये ही बनाये जाते हैं, जिसमें दानधर्म कुछ भी न होता हो, तो ऐसे मन्दिर आदि बनवानेकी अपेक्षा तो उसका अकेले विचारना ही मेरे मतमें कल्याणकारक है ॥८॥

श्रीरामचन्द्रचरणामलभक्तिलक्ष्म,
तत्प्रीतये हि तुलसीमणिगुम्फितैका ।
रम्या च मुक्तिफलिका निजकण्ठलग्ना,
माला सदा हरिजनैर्नितरां प्रधार्या ॥९॥

पताका—श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें निर्मल भक्तिका चिह्नस्वरूप, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये मुक्तिफलको देनेवाली श्रीतुलसीके मणियोंसे बनाई गई हुई माला—कण्ठी सदा हरिभक्तोंको अपने कण्ठमें रखनी चाहिये ॥९॥

वाल्मीकिवक्त्रसरसीरुहराजमान-
वाणीविलास इह शीलयितव्य एव ।
कर्तव्य एव च सदा हरिभक्तिगङ्गा-
वारापुनीतहृदयैर्ननु वेदपाठः ॥ १० ॥

पताका—भगवद्भक्तिरूप गङ्गाके जलसे अत्यन्त पवित्र हृदयवालोंको श्रीवाल्मीकिजीके मुखकमलमें विराजमान जो सरस्वतीविलास अर्थात् श्रीमद्वाल्मीकि रामायण उनका अनुशीलन करना चाहिये । तथा नित्य वेदपाठ भी करना चाहिये ॥१०॥

नित्यं ललाटपटले शुभचित्रकूटा-
योध्याप्रयागमथुराप्रभृतिभ्य एव ।
श्वेता मृदः शुभतमाश्च समाहृताश्चे-
त्ताभिर्हि सश्रि करणीयमुदूर्द्ध्वपुण्ड्रम् ॥११॥

पताका—मङ्गलस्वरूप चित्रकूट, अयोध्या, प्रयाग और मथुरा प्रभृति तीर्थस्थानोंसे ही यदि परम पवित्र श्वेत मृत्तिका लाई हुई हो तो उससे सुन्दर ऊर्द्ध्वपुण्ड्र करना चाहिये तथा मध्यमें रक्तश्री भी शास्त्रानुसार करनी चाहिये ॥११॥

श्रीभारतं हि सकलं स्वत एव पूतं,
तत्रापि देवसरिदादि नदीजलानि ।
काशीप्रयागमथुरागिरिचित्रकूटा-
द्येवं पवित्रमिति सर्वमिहास्ति गम्यम् ॥१२॥

पताका—समस्त भारतवर्ष स्वयं ही पवित्र है। उसमें भी गङ्गा यमुनादि नदियोंका जल पवित्र हैं। एवं काशी, प्रयाग, मथुरा, चित्रकूट पर्वत आदि पवित्र हैं। अतः उनकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये ॥ १२ ॥

कौपीनधारणमहर्निशमेव कार्यं,
श्रीवैष्णवैः श्रुतिशिरोगतधर्मनिष्ठैः ।
श्वेतं च निर्मलमथान्यदपीह वस्त्रं,
धार्य्यं यथासमयमेव यथाप्रदेशम् ॥१४॥

पताका—वैदिक धर्मनिष्ठ श्रीवैष्णवोंको कौपीन* सदा धारण करना चाहिये। परन्तु देशकालके अनुसार श्वेत और निर्मल अन्य वस्त्र भी धारण कर लेना चाहिये ॥ १४ ॥

---

* कौपीन मात्र धारण करनेकी आज्ञा विरक्तमात्रकेलिये है ।

ये वैष्णवा इह भवन्ति च वीतरागा-
स्तैस्त्याज्य एव रमणीद्रविणादिमोहः ।
ये नाचरन्ति किल मूढनरास्तथा ते,
प्रेत्य व्रजन्ति नरकेषु हि रौरवेषु ॥१५॥

पताका—जो वैष्णव वैराग्यवान्—विरक्त हों उन्हें स्त्री और धनादिका मोह अवश्य छोड़ देना चाहिये। जो मूर्ख ऐसा नहीं करते अर्थात् विरक्त हो कर भी धन और स्त्रीकी इच्छामें फँसे रहते हैं वे मरकर रौरव नरकमें जाते हैं ॥१५॥

आच्छोदनं विविधचौर्य्यमथापि लोप्त्र-
वस्तुग्रहो ग्लहपणौ च समाह्वयश्च ।
मद्यादिसेवनमथापि च धूम्रपानं,
त्याज्यानि वैष्णवजनैर्व्यसनानि नित्यम् ॥१६॥

पताका—वैष्णवजनोंको शिकार खेलना, नाना प्रकारकी चोरी करना, चोरीका वस्तु लेना, द्यूतक्रीडा, पासा खेलना या किसी प्रकारका जूआ खेलना, मदिरा भङ्गादिका सेवन करना, गांजा, सूका, तमाकू, चरस आदि का पीना इत्यादि सब प्रकारके व्यसनोंको छोड़ देना चाहिये ॥१६॥

वाच्यान्यरुन्तुदवचांसि कदापि नैव,
दम्भप्रमादपरनिन्दनकाटवानि ।
त्याज्यानि दाशरथिपद्मपदानुरक्तैः,
सत्यव्रतं प्रतिदिनं परिपालनीयम् ॥ १७ ॥

पताका—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके उपासकोंको चाहिये कि कभी मर्म-च्छेदी वचन न बोलें। दम्भ, प्रमाद, परनिन्दा और कटुताका त्याग कर दें। सर्वदा सत्यव्रतका परिपालन करें ॥१७॥

श्रीमद्गुरौ च भगवत्यतितीव्रभक्ति-
योगं च वैष्णजनेष्वथ नम्रभावम् ।

संस्थापयेत्स्वमनसि स्वहिताभिलाषी,
नानादरात्मकवचोभिरिमे प्रबोध्याः ॥ १८ ॥

पताका—अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले वैष्णवजनको उचित है कि धर्मात्मा गुरुमें और भगवान्में तीव्र भक्तियोग करें। अन्य वैष्णवोंके साथ नम्रभावसे व्यवहार करें। अनादर युक्त वचनोंसे कभी भी इन्हें नहीं बुलाना चाहिये ॥१८॥

येषां मनःसरसिजे भगवत्पदार-
विन्दं समुल्लसति सर्वशिवप्रदायम्।
तेषां समीपमभिगम्य बुधः प्रबोधं,
गृह्णातु नित्यमखिलान्धतमोदिनेशम् ॥ १९ ॥

पताका—जिनके हृदयरूपी कमलमें समस्त कल्याणोंका देनेवाला भगवान्का पदारविन्द सुशोभित हो रहा हो उनके समीप जाकर बुद्धिमान्को चाहिये कि समस्त अन्धकारमय रात्रिको नाश करनेवाले सूर्यके समान ज्ञान का नित्य ग्रहण करें ॥१९॥

पश्यत्सु सत्सु गुरुषु श्रितविष्णुपादै-
र्धाष्ट्यं विवेकविकलं किमपीह कार्यम्।
कार्य्यं न कैश्चिदपि धर्मधुरीणदिष्ट-
सन्मार्गमीप्सुभिरिति श्रुतिचोदनैषा ॥२०

पताका—परम धर्मात्माओंसे बताये हुये मार्गको प्राप्त करनेकी इच्छावाले विष्णुभक्तोंको चाहिये कि गुरुओंके समक्ष किसी प्रकारकी धृष्टता अथवा विवेकशून्य कोई भी कार्य न करें। ऐसी वेदाज्ञा है ॥२०॥

विष्णोः सतां विरतिराज्यजुषां च साधोः,
स्याद्दर्शनं शुभकरं हि यदा यदा च।
बद्धाञ्जलिं च शिरमध्य निजोत्तमाङ्गं,
कुर्यात्प्रणाममनघं हि तदा तदा च ॥ २१ ॥

पताका—श्री विष्णु भगवान्‌का, साधु पुरुषका, वैराग्यवान् सज्जनोंका जब २ कल्याणप्रद दर्शन हो तब २ हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर प्रेम-सहित सादर प्रणाम करना चाहिये ॥२१॥

प्रातः सदा हरिजनाः शयनात्स्मरेत,
रामं च नैजगुरुपादसरोजयुग्मम् ।
ये चापि दृष्टिपथमभ्युपयन्तु पूज्याः,
सश्रद्धमानमत तानपि पूज्यभावैः ॥ २२ ॥

पताका—हे हरिजनो ! प्रातःकाल सदा आसन—बिछौनेपरसे उठकर श्रीरामजीका और तदनन्तर अपने गुरुचरणोंका स्मरण करो । उस समय अन्य जो कोई पूज्य तुम्हारी दृष्टिमें आवें उन्हें भी श्रद्धाके साथ पूज्यभावसे नमस्कार करो ॥ २२ ॥

एकासने न गुरुभिः सह चासनीयं,
नावं रथं गजमथाश्म विहाय काष्ठम् ।
आचार्य एव परतोऽपि परो हि देव-
स्तस्मात्प्रसाद्य इह सर्वजनैः स एव ॥ २३ ॥

पताका—गुरुके साथ एकासनपर कभी न बैठना चाहिये । परन्तु नौका रथ, हाथी, पत्थर और काष्ठासनपर साथ बैठनेमें कोई दोष नहीं है । आचार्य भगवत्स्वरूप होनेसे वह परात् पर देव है । अतः सबको उचित है कि अपने आचार्य—गुरुको सदा प्रसन्न ही रखें ॥२३॥

ऊर्जस्वलोऽहमहमेव महान्तसमर्थो,
विद्वानहं द्रविणवानहमेव चात्र ।
एतादृशी निजसमृद्धिविनाशयित्री,
त्याज्या प्रयत्नपटलैः सुनरैरहन्ता ॥ २४ ॥

पताका—मैं ही बलवान् हूं, मैं ही महान् समर्थ हूं, मैं ही विद्वान् हूं,

मैं ही धनवान् हूं, इस प्रकारकी अहन्ताको सज्जन पुरुष अनेक प्रयत्नोंके द्वारा छोड़ दें। क्योंकि इससे अपनी उन्नतिका नाश होता है ॥२४॥

राज्ञां सतां च विदुषां महतां समक्षं,
श्लाघेत यो निजगुणं किल वावदूकः।
पापेन सोऽधमतमो निहतो वराको,
दृष्ट्वा रविं स च विशुद्ध्यति मूढबुद्धिः ॥ २५ ॥

पताका-जो वावदूक, वराक, मूर्ख: राजाओं, सज्जनों, विद्वानों और महापुरुषोंके सामने स्वयं अपने गुणोंका वर्णन करता है वह पापका मारा हुआ महा नीच पुरुष सूर्यका दर्शन करके शुद्ध होता है ॥२५॥

ये ज्ञानभक्तिरहिता वनितासखायो,
धौर्त्येन वञ्चयितुमत्र जगत्समस्तम्।
मालाकराश्च कुधियो विधृतोर्द्ध्वपुण्ड्रा,
वाचापि धर्मरिपवो नहि ते समर्च्याः ॥ २६ ॥

पताका-जो दुष्ट बुद्धिवाले ज्ञान और भक्तिसे शून्य हैं 'गीतापुस्तक हाथ साथ विधवा माला विशाला गले' के अनुसार स्त्री साथमें है, धूर्ततासे समस्त जगत्को ठगनेके लिये हाथमें माला ले ली है और माथेमें उर्द्ध्वपुण्ड्र लगा लिया है ऐसे छद्मवेषी धर्मके शत्रु वाणीमात्रसे भी सत्कारके योग्य नहीं हैं। क्योंकि इससे पाषण्ड और अधर्म बढ़ता है ॥२६॥

मित्रद्रुहो गुरुविरोधपरा नरा ये,
ये चापरस्य सुगुणेष्वपि दृष्टदोषाः।
ये भ्रूणहिंसनविधौ परमं सुदक्षा,
हेयाश्च ते सपदि नारकिणः सदैव ॥ २७ ॥

पताका-जो मित्रके साथ द्रोह करनेवाले हैं, जो गुरुओंसे विरोध करते रहते हैं, जो दूसरोंके सुन्दर गुणोंमें भी दोष देखते हैं, जो भ्रूणहत्या

—गर्भपातनरूप पापमें अत्यन्त कुशल हैं, ऐसे नारकी लोगोंका शीघ्र ही त्याग कर देना चाहिये ॥२७॥

यद्वस्तुजातमिह विष्णुपदेऽनिवेद्यं,
ग्राह्यं भवेन्न हि कदापि च वैष्णवैस्तत् ।
तेनाहिफेनविजयादिकमादकानि,
वस्तूनि हेयपदवीं सुतरां गतानि ॥ २८ ॥

पताका—जो वस्तु भगवान्के सम्मुख नैवेद्य रूपमें न रखी जा सके उस वस्तुका वैष्णवोंको कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिये । अतः अफीम, भांग, आदि प्रत्येक मादक वस्तु भगवान्के अग्राह्य होनेसे वैष्णवोंके लिये अत्यन्त अग्राह्य है । इनके छूनेसे भी प्रायश्चित कर लेना उचित है ॥२८॥

आरार्तिकं भवति यत्र हरेस्तु तत्र,
व्युत्थानमेव हरिभक्तजनैर्विधेयम् ।
ध्येयं च विष्णुपदकञ्जयुगं मनोज्ञ-
मन्ते प्रणत्य विरमेयुरपेतदोषाः ॥ २९ ॥

पताका—जहां भगवान्की आरती होती हो वहां सब भक्तजनोंको खड़ा हो जाना चाहिये । भगवान्के चरणकमलका ध्यान करना चाहिये । पश्चात् साष्टांग प्रणाम करके दोषमुक्त होकर पुनः बैठना अथवा जिसको जो करना हो सो करना चाहिये ॥२९॥

भस्मान्तमित्यधिवचः श्रुतिसम्मतं य-
त्तस्माच्छरीरमिदमत्र यदा व्यसु स्यात् ।
भस्मावशेषमिह कार्य्यमवश्यमेव,
भूमौ नवाप्सु कथमप्यथ तत्समस्यम् ॥ ३० ॥

पताका—"भस्मान्तं शरीरम्" यह यजुर्वेदका वचन है। इससे यह बोधित होता है कि मृत शरीरको जलाकर भस्म कर देना चाहिये । अतः

जिस कारणसे यह सुन्दर वेदवचन ऐसी आज्ञा देता है अतः यह शरीर जब निष्प्राण हो जावे तो इसे अवश्य भस्म कर देना चाहिये। पृथ्वीमें नहीं गाड़ना चाहिये अथवा जलमें भी नहीं फेंकना चाहिये ॥३०॥

मानापमानविषये समतामुपेता-
स्तिष्ठेयुरत्र सुधियो हरिवल्लभाग्र्याः।
यत्सत्यमस्ति नहि तच्च कदापि गोप्यं,
मानाभिभङ्गभयतोऽपि मृषा न वाच्यम् ॥ ३१ ॥

पताका—भगवान्के ऐकान्तिक भक्तोंको चाहिये कि मान और अपमानके विषयमें समता धारण किये रहें। जो सत्य वस्तु हो उसे कभी छिपाना नहीं चाहिये। तथा मान भङ्गके भयसे असत्य नहीं बोलना चाहिये। सत्य और असत्यकी व्याख्या मैं एकादश सर्गमें कर चुका हूं। इतना और स्मरण रहे कि यहां पर असत्य भाषणका जो निषेध किया गया है वह ऐसे समयके लिये है कि जहां उभयपक्ष सत्यका ही अवलम्बन किये हो। परन्तु जहां एक ओर असत्य, कपट, जाल, प्रपञ्च और वञ्चना चल रही हो ऐसे समयमें कभी भी सत्य नहीं बोलना चाहिये। वहां सत्य बोलना ही अधर्म है और असत्य बोलना धर्म है। क्योंकि उस समय ऐसा किये विना धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। अतएव जिस समय श्री हनुमान्जी लङ्कामें अशोकवाटिकामें श्री महारार्णाजीसे वार्तालाप करके चूडामणि लेकर पृथक् हुये हैं उस समय राक्षसियोंने आकर पूछा है कि—

"कोऽयं कस्य कुतो वायं किं निमित्तमिहागतः।
कथं त्वया सहानेन संवादः कृत इत्युत ॥
आचक्ष्व नो विशालाक्षि मा भूत्ते सुभगे भयम्।
संवादमसितापाङ्गि त्वया किं कृतवानयम् ॥"

अर्थ—"यह कौन है? कहांसे आया है? क्यों आया है? और तुम्हारे साथ इसने वातचीत क्यों की?॥ हे विशाल नेत्रोंवाली! हे सुभगे!

तुम डरो नहीं। हमसे कहो कि इसने तुम्हारे साथ क्यों बातचीतकी है?॥

इसके उत्तरमें महाराणीजीने कहा है कि—

"रक्षसां कामरूपाणां विज्ञाने का गतिर्मम ॥
यूयमेवास्य जानीत योऽयं यद्वा करिष्यति ।
अहिरेव अहेः पादान्विजानाति न संशयः ॥
अहमप्यस्य भीतास्मि नैनं जानामि कोन्वयम् ।
वेद्मि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम् ॥

अर्थ—"कामरूप राक्षसोंको पहचाननेके लिये मेरी क्या गति है? तुम्हीं लोग जानो कि यह कौन है और क्या करेगा। क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि सर्पके पगको सर्प ही पहचान सकता है, अन्य नहीं। मैं भी इससे डर गई हूं। यह कौन है, मैं नहीं जानती। मैं समझती हूं कि कामरूप धारण करके यह कोई राक्षस ही आया था॥"

इस समय यदि श्री महाराणीजी सत्य २ कह देतीं कि यह श्रीरामदूत है तो कितना बडा अनर्थ हो जाता। अनर्थ होता अथवा नहीं परन्तु उसकी आशङ्का तो महाराणीजीको थी यह स्पष्ट झलक रहा है। इस प्रकरणसे यह सिद्ध हुआ कि सत्य और असत्य धर्माधर्मके विषयमें अव्यवस्थित है। कभी सत्य अधर्म हो जाता है और कभी असत्य धर्म हो जाता है। इति मे मतम् ॥३१॥

वस्त्राणि स्त्रीजनधृतानि च भूषणानि,
स्पर्श्यानि नैव मतिमद्भिरपेतरागैः ।
स्त्रीभिः सहास्यमथ नैव कदापि वाच-
मामिश्रयेयुरनघाः पुरुषा विरक्ताः ॥३२॥

पताका—विद्वान् विरक्त पुरुषोंको चाहिये कि स्त्रियोंके पहिरे हुये वस्त्रों तथा आभूषणोंका स्पर्श न करें। निर्मल विरक्तोंको स्त्रियोंके साथ हंसकर कभी बात भी नहीं करना चाहिये ॥३२॥

ये विष्णुवैष्णवसभाजनतत्पराः स्यु-
स्तेषामनिष्टमिह ये हि समाचरन्ति ।
संयातनाः किल विपद्य नराश्च यामी-
स्ते श्वित्रिणो ह्यपसदाश्च भवन्ति मूकाः ॥ ३३ ॥

पताका—जो हरिजन भगवान् और भागवतकी सेवामें तत्पर रहते हैं उनका जो अनिष्ट करते हैं, हे मनुष्यो ! वे नीच मनुष्य यमपुरीकी यातना-को सहन करनेके पुनः गूंगे और कोढ़ी होकर जन्म लेते हैं ॥३३॥

ये प्रेतभूतपिशिताशनयक्षरक्ष-
आदीन्निरन्तरमुपासत ईशबुद्ध्या ।
तेषां न भुक्तिरिह मुक्तिरथो परत्र,
न स्यात्कदापि विविधभ्रमजालभाजाम् ॥ ३४ ॥

पताका—जो लोग, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदिकी सर्वदा ईशबुद्धिसे उपासना करते हैं। उन भ्रान्त पुरुषोंको कभी भी भोग और मोक्ष प्राप्त नहीं होता है। इसी लिये गीताचार्यने कहा है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ९।२२।

अर्थात् जो लोग अनन्यभावसे—मेरेसे अतिरिक्त अन्य देवादिकोंमें प्राप्य अथवा उपास्य बुद्धि त्यागकर मेरी ही उपासना करते हैं ऐसे नित्या-भियुक्तजनोंको—सादर मेरेमें ही मन लगानेवाले भक्त पुरुषको मैं योगक्षेम प्राप्त कराता हूं। इससे आगे चलकर भगवान्ने कहा कि हे अर्जुन ! जो अन्य देवताओंके भक्त हैं वे भी श्रद्धासे मेरी ही पूजा करते हैं परन्तु "अविधि पूर्वकम्" (९।२३) मैं जैसा हूं वैसा मेरे स्वरूपको जाने विना वह मेरी उपासना करता है; वह मुझे नहीं जानता "अतश्च्यवन्ति ते" (९। २४) अतः वह कर्म फल भोगकर अन्तमें च्युत हो जाता है ॥३४॥

वाणी विशुद्ध्यति नृणामिह सत्यवाचा,
कर्णौ तथा च हरिकीर्तिकथामृतौघैः ।
पादौ च तीर्थगमनेन करौ च दानै-
रेवं मनो निखिलदम्भविवर्जनेन ॥ ३५ ॥

पताका—मनुष्योंकी वाणी सत्य बोलनेसे शुद्ध होती है, तीर्थाटनसे पग और दानसे हाथ शुद्ध होते हैं और दम्भ आदिके त्यागसे मन शुद्ध होता है ॥ ३५ ॥

ब्रूयात्कदापि भजने न जपे न होमे,
कुर्यान्न केनचिदपीह समं च वार्ताम् ।
आवश्यकं यदि भवेत्परमं तदा त्रि-
राचम्य कार्यमधिकृत्य वदेद्यतात्मा ॥ ३६ ॥

पताका—भजन, जप, और होमके समय किसीके साथ कोई अन्य वार्तालाप न करें । यदि वार्तालाप बहुत आवश्यक हो तो तीन आचमन करके सावधान होकर कार्यके अनुसार वार्ता करें । विशेष नहीं ॥३५ ॥

आचार एष परमः श्रुतिसम्मतोऽस्ति,
धर्मस्तथा च सततं हृदि सद्विचारः ।
पूर्वेण शुद्ध्यति वहिःकरणव्रजश्च,
वन्धादिकारणपरं चरमेण चान्तः ॥ ३७ ॥

पताका—आचार और हृदयमें सद्विचार ये दोनों वेद प्रतिपादित धर्म हैं । आचार—स्नान, शौच आदिसे बाह्य इन्द्रिय शुद्ध होते हैं और सद्विचारसे वन्ध का आदिकरण अन्तःकरण अर्थात् मन आदि शुद्ध होते हैं ॥

यो विष्णुभक्तमवलोक्य धनादिगर्वा-
द्बद्धाञ्जलिर्नतशिरा न समुत्थितः स्यात् ।
वोभूयते स च परेत्य हिमादिसोढृ,
यत्र क्वचिन्ननु गिरेर्दृषदां सुभित्तम् ॥ ३८ ॥

पताका—जो मनुष्य विष्णु भक्तको देखकर धन, जन, आदिके गर्वसे हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर खड़ा नहीं होता वह मरकर हिम, ताप आदिका सहन करनेवाला जहां कहीं भी पहाड़के पत्थरका टुकड़ा फिर २ होता रहता है ॥३८॥

माला च नाम तिलकं शुभतप्तमुद्रां,
मन्त्रं च रामपरकं सततं दधानैः।
चारित्र्यवद्भिरपि रामरसेच्छुभिश्च,
भव्यैः परोपकृतिचित्तलयैश्च भाव्यम् ॥ ३९ ॥

पताका—"पुण्ड्रं मुद्रा तथा नाम माला मन्त्रश्च पञ्चमः। अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्त्यहेतवः ॥" इस शास्त्रके अनुसार उर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक, शंख, चक्र, धनुष्, बाण आदि तप्तमुद्रा, भगवत्सम्बन्धी नाम, कण्ठी और राममन्त्रको धारण करनेवाले, सदाचारी और रामरसके पान करनेवालेको सदा परोपकारपरायण होना चाहिये ॥३९॥

यानेन विष्णुभवने गमनं विधेयं,
नो कैश्चिदप्यथ तथैव च पादुकाभिः।
देवोत्सवादिसमये प्रभुपादपूजा,
कार्य्या सदैव परधामनिवासकामैः ॥ ४० ॥

पताका—भगवान्के मन्दिरमें रथादिपर चढ़कर अथवा पादुका पहिन-कर किसीको भी नहीं जाना चाहिये। मोक्षाभिलाषी हरिजनोंको उचित है कि भगवान्के उत्सवादि समयमें भगवान्के चरणोंकी पूजा करें ॥४०॥

आसेवितां द्विजवरैः प्रतिमां विलोक्य,
विष्णोः सपद्यवनिपातपुरस्सरं हि।
कुर्य्युः प्रणाममिह मञ्जिमभाग्यभाजो
भक्तिभरत्ननिचयांशुलसन्मनस्काः ॥ ४१ ॥

पताका—भक्तिरूप सुन्दर रत्नोंके किरणोंसे सुशोभित मनवाले, सुन्दर भाग्यवाले पुरुषोंको उचित है कि ब्राह्मण*द्वारा पूजित भगवन्मूर्तिको देखकर तत्काल ही साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥ ४१ ॥

यन्मन्दिरे भवति चन्दनपत्रपुष्पं,
तत्स्प्रष्टुमर्हति जनोऽशुचिरत्र नैव ।
एकेन नैव विनमेच्च हरिं करेण,
कुर्यात्प्रदक्षिणमथो सततं विनम्रः ॥ ४२ ॥

पताका—मन्दिरमें जो भगवत्संबन्धी चन्दन, पुष्प, पत्र आदि रहते हैं उसे अपवित्र—स्नानादि किये विना कोई मनुष्य स्पर्श न करें। एक हाथसे भगवान्को प्रणाम न करे। नम्र होकर भगवान्की प्रदक्षिणा करे ॥४२॥

पादप्रसारणममुष्य जगत्रयस्य,
नाथस्य नोचितमहो पुरतः कदापि ।
पर्यङ्कबन्धनमथापि निबन्धनाय,
स्वस्यैव भव्यजनमण्डल ! मा दधीथाः ॥ ४३ ॥

पताका—त्रिलोकीनाथ भगवान्के सम्मुख कभी भी पग फैलाकर बैठना उचित नहीं। हे भव्यजनसमुदाय ! भगवान्के आगे किसी प्रकारका आसन लगाकर पगके ऊपर पग रखकर नहीं बैठना चाहिये क्योंकि उससे दोष लगता है और अपना बन्धन होता है ॥ ४३ ॥

स्वापं च जग्धिमथताररवं तथा च,
मिथ्योक्तिरोदनमिथोवदनाहवादीन् ।
क्रूराभिभाषणमनुग्रहनिग्रहौ च,
मा मा समाचरतु कोऽपि हरेः समक्षम् ॥ ४४ ॥

* ब्राह्मण शब्दसे केवल गृहस्थ ब्राह्मण ही अभिप्रेत नहीं है किन्तु विरक्त ब्राह्मणका भी समावेश समझना चाहिये। विरक्त होनेसे ब्राह्मणता कहीं चली नहीं जाती। केवल भक्तिमार्गमें उसके अभिमानकी निवृत्ति मात्र अभिप्रेत है।

पताका—भगवान्के समक्ष सोना, भोजन, उच्च स्वरसे बोलना, मिथ्या-भाषण, रोना, परस्पर वार्तालाप, युद्धादि, कठोर भाषण, अनुग्रह, और दण्ड यह सब कार्य किसीको नहीं करने चाहिये ॥ ४४ ॥

आवृत्य देहमभितोऽसितकम्बलेन,
गच्छेत्कदापि पुरतो हि हरेर्जनो नो ।
आत्मस्तुतिं च परनिन्दनमात्मघातीं,
मा संविधात् क्वचिदधोनिलमोक्षणं वा ॥ ४५ ॥

पताका—भगवान्के सम्मुख काला कम्बल आदि ओढ़कर कभी नहीं जाना चाहिये। तथा आत्मस्तुति, परनिन्दा और पर्दन भी नहीं करना चाहिये ॥ ४५ ॥

अश्लीलवाचमनिवेदितभोजनं वा,
गौणोपचारमिह सत्यपि शक्तिभावे ।
विष्णौ च सामयिकपुष्पफलाद्यदित्सां,
मा कश्चिदत्र तत नैज शुभाभिलाषी ॥ ४६ ॥

पताका—भगवान्के सम्मुख अश्लील भाषण नहीं करना चाहिये। भगवान्को निवेदन किये विना भोजन नहीं करना चाहिये। तथा स्वकल्याण चाहनेवाला कोई भी पुरुष सामयिक पुष्प और फल आदिके देनेकी कभी अनिच्छा न करें। अर्थात् जिस समय, जिस ऋतुमें जो फल फूल होते हों उन्हें प्रभुको अवश्य अर्पण करना चाहिये ॥ ४६ ॥

पूर्वं स्वयं च विनियुज्य ततोऽवशिष्टं,
वस्तु प्रभोश्चरणयोर्हि समर्प्यते यैः ।
ते कोटिकोटिकृमिसंकुलनारकेषु,
सम्पात्य दुःखविपिने निहिता भवन्ति ॥४७॥

पताका—जो पुरुष किसी वस्तुका प्रथम स्वयं भोग करके पश्चात् बची

हुई वस्तुको भगवान्‌को अर्पण करते हैं वह करोड़ों कीड़ोंसे भरे हुए नरक कुण्डमें पड़ाकर पश्चात् जिस योनिमें उनका जन्म होता है वहां बड़े २ कष्ट उन्हें प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥

देवाधिदेवपुरतो भ्रमतोऽपि पृष्ठं,
कृत्वोपवेशनमशस्तमिति ब्रुवाणम् ।
शास्त्रीयवैधवचनं च तिरस्करोति,
यः सोऽपि नैरयगतिं विवशः प्रयाति ॥४८॥

पताका—भगवान्‌के आगे भ्रमसे भी पीठ करके बैठना अनुचित है ऐसी आज्ञा करनेवाले शास्त्रीय वैध वचनका जो तिरस्कार करता है अर्थात् प्रभुके समक्ष पीठ करके बैठता है वह भी विवश होकर नरक गतिको पाता है ॥ ४८ ॥

आगच्छतो गुरुजनान् गुरुमन्तरेण,
विष्णोः पुरो नहि नमेद्धरिवल्लभो यः
इत्थं हि शास्त्रहृदयं परिवीक्ष्य नित्यं,
यश्चाचरेत्स परमं पदमभ्युपैति ॥४९॥

पताका—यदि कोई पुरुष भगवान्‌के सामने खड़ा हो वा बैठा हो और उस समय कोई भी अपनेसे बड़ा आवे तो उसे भगवत्समक्ष नमस्कार न करे। हां श्रीगुरुमहाराज हों तो उन्हें अवश्य दण्डवत्प्रणाम करे। इस प्रकारसे शास्त्रानुसार जो आचरण करता है वह परम पदको प्राप्त होता है ॥४९

गाङ्गेयमित्यथ च राजतमित्यथापि,
ताम्रं च कांस्यमथ शस्त्रकनिर्मितं वा ।
षट्कोणकं च वलयत्रयसम्परीतं,
तद्द्वादशारमनिशं बिभृयात्सुचक्रम् ॥५०॥

पताका—सोनेके अथवा चांदीके अथवा कांसेके अथवा लोहके बने हुये षट्‌कोणवाले, तीन वलयवाले, द्वादश अरावाले सुन्दर चक्रको तप्त करके

दक्षिण भुजके मूलमें धारण करना चाहिये। (वाम भुजके मूलमें शंख धारण करे यह भी समझ लेना चाहिये) ॥ ५० ॥

चक्रं च वैष्णवमिदं दसुनोविदग्धं,
यो लीलयापि दधते निजबाहुमूले ।
त्यक्त्वा परेतपतिभीतिमयं स तूर्णं,
निश्चमचं समधिगच्छति विष्णुलोकम् ॥५१॥

पताका—अग्निमें तपे हुये चक्रको लीलासे भी जो कोई अपने भुजके मूलमें धारण करता है वह यमराजके भयको छोड़कर निस्सन्दिग्ध और प्रख्यात विष्णुलोक—साकेतलोकको शीघ्र प्राप्त कर लेता है ॥ ५१ ॥

यः संबिभर्ति च तथैव धनुः स्वबाहौ,
दग्धातिपापनिचयो रघुनाथदासः ।
नो बाधते तमिह कापि कदापि बाधा,
ह्यन्ते प्रयाति परविष्णुपदं स चेतः ॥५२॥

पताका—जो मनुष्य तप्त धनुष् और बाणको भी अपने भुजपर धारण करता है उस श्रीरामजीके दासके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं। उसे कभी कोई बाधा नहीं पहुंचती और अन्तमें यहांसे परम पवित्र विष्णुपदको प्राप्त करता है ॥ ५२ ॥

यः श्वेतमृन्निचयतो विरचय्य पार्श्वौ,
भागौ च मूर्धनि हरेश्चरणानुकारौ ।
हारिद्रचूर्णरचितं पृथिवीतनुजा-
स्थानं चिनोति ललितं लघु पार्श्वमध्ये ॥५३॥
तं न स्पृशन्ति कलिदोषकलाः कदाचि-
न्नो वा यमो न नियमो यमयातनायाः ।
यस्तं च पश्यति महाघकृदप्यकस्मा-
त्सोऽपि प्रयाति हरिलोकमनन्यधन्यः ॥५४॥ (युग्मम्)

पताका—जो पुरुष मस्तकमें श्वेत मृतिकासे भगवच्चरणाकृति दोनों ओर बनाकर, दोनोंके मध्यमें हरिद्राचूर्ण—श्रीसे महारानीजीका स्थान बनाता है अर्थात् रक्तश्री करता है ॥ ५३ ॥ उसको कभी न तो कलिकालके दोष स्पर्श करते हैं, न यमराज स्पर्श करते हैं और न तो नरककी यातना उसे पीडा देती है। जो कोई महापाप करनेवाला हो वह भी यदि उस उर्द्ध्वपुण्ड्र-धारी वैष्णवका दर्शन कर ले तो वह परम धन्य पुरुष परमपदको पा लेता है ॥५४

यस्यास्ति नाम भगवत्परकं पवित्रं,
यस्मिन् कुले च भवतीह तथा समेषाम् ।
धन्यः स देवमहितः प्रथितः पृथिव्यां,
तत्सत्कुलं च किल धन्यतमं प्रवित्त ॥५५॥

पताका—जिसका भगवत्परक पवित्र नाम है अर्थात् भगवत्सम्बन्धी है वह देवोंका भी पूज्य, प्रख्यात पुरुष पृथ्वीपर धन्य है। तथा जिसके कुलमें सबका नाम भगवत्सम्बन्धी होता है उस उत्तम कुलको सबसे अधिक धन्य समझो ॥ ५५ ॥

ब्रह्माननोद्भववरं विदुषां वरिष्ठं,
भक्तं विरक्तमुपसद्य च सच्चरित्रम् ।
श्रीराममन्त्रमुपगृह्य महार्ध्यरत्नं,
श्रद्धाधनस्त्रिजगतीं सततं पुनाति ॥५६॥

पताका—विद्वानोंमें श्रेष्ठ, सच्चरित्र, भगवद्भक्त तथा विरक्त ब्राह्मणके समीप जाकर बहुमूल्य रत्न-स्वरूप श्रीराममन्त्रका उपदेश लेकर श्रद्धालु हरिजन तीनों लोकोंको सर्वदा पवित्र करता है ॥ ५६ ॥

ये लम्पटा विषयभोगनिमग्नचित्ता,
विश्वप्रतारणपराः कुधियो विमूढाः ।
विद्यासुरत्नलसिता अपि पापचारा-
स्त्याज्या हि ते किल विपश्चिपि सर्वथैव ॥५७॥

पताका—जो दुष्ट बुद्धिवाले महामूर्ख लम्पट हों, रात्रिदिवस विषय भोगकी ही चिन्तामें तल्लीन हों, संसारको ठगनेकी ही धुनमें हों, ऐसे पापी चाहे कितने बड़े भी विद्वान् क्यों न हों, विपत्ति समयमें भी उनका त्याग-कर देना चाहिये। अर्थात् अपने ऊपर विपत्तिके पहाड़ टूट पड़े हों ऐसी दशामें भी उनकी सहायताकी इच्छा न करे ॥ ५७ ॥

एतादृशस्य सुगुरोः समवाप्त्यभावे,
श्रीरामनामजपनं भवने वने वा ।
स्याच्छ्रेयसेऽसदुपसत्तिरियं परन्तु,
कल्याणिनी भवति नैव कदापि नृणाम् ॥५८॥

पताका—यदि सदाचारी, ब्रह्मनिष्ठ, विरक्त ब्राह्मण गुरु न मिले तो घरमें ही अथवा जंगलादि एकान्त स्थानमें बैठकर श्रीरामनामका जप करना चाहिये। इससे ही कल्याण हो जायगा। परन्तु असद्गुरुके समीप जाकर मन्त्रोपदेश लेना कभी भी मनुष्यके लिये कल्याणकारक नहीं है ॥५८॥

साकेतनाथरघुनाथपदारविन्द-
ध्यानोद्विधूतविचितोद्दुरितोच्चयो यः ।
तद्विग्रहार्चनमहर्दिवमातनोति,
संसारसागरममुं स तरत्यजस्रम् ॥ ५९ ॥

पताका—जो पुरुष साकेताधिप श्रीरामजीके चरणकमलके ध्यानसे, संचित बड़े २ पापोंको नष्ट कर चुका है, तथा सर्वदा भगवान्‌के ही विग्रहका अर्चन करता है वह इस बड़े अगाध संसारसागरको तर जाता है ॥५९

संसारपाथोधिमपारमिद्धकामादिदुर्धर्षणसत्त्वसत्त्वम् ।
यः स्यात्तितीर्षुः स च निर्मिमीतां श्रीरामनामप्लवमञ्जसैव ॥६०॥

पताका—जिसका पार नहीं है, जिसमें प्रबल काम, क्रोध, लोभ, मोहादि महाभयङ्कर जीव पड़े हुए है, ऐसे संसाररूपी सागरको

यदि पार करनेकी इच्छावाला हो तो शीघ्र श्रीरामजीके नामका प्लव–पार होनेका साधन नौका आदि बनाओ ॥ ६० ॥

भये च दुःखे विजने जने वा पुत्रे कलत्रे भवने वने वा।
सुखाय यः संस्पृहयेत वै स श्रीरामनामस्मरणं करोतु ॥ ६१ ॥

पताका–जो पुरुष भयमें, दुःखमें, शत्रुओंमें, स्वजनोंमें, पुत्रमें, कलत्रमें, घरमें, वनमें, सुखकी इच्छा करता हो उसे चाहिये कि श्रीरामनामका स्मरण करे ॥ ६१ ॥

यस्मिन्महापत्तिसरित्पतौ च ब्रुडन्तमालोक्य जहत्यनन्ते ।
मित्राण्यपि त्राणमिदं करोति श्रीरामनामात इदं भजध्वम् ॥६२॥

पताका–जिस विपत्तिरूप सागरमें डूबते हुये देखकर मित्र भी छोड़ देते हैं वहां भी यही रक्षा करता है। अतः इस श्रीरामनामको ही भजो ॥

आभीलमाभाल्य तवाल्पमेव त्वनल्पकल्पान्तदवाग्निदग्धः ।
त्वत्प्रीतये यत्नमयन्नयंस्ते निरस्तसाम्यो विपदेकबन्धुः ॥६३॥

पताका–तुम्हारे अत्यन्त अल्प दुःखको भी देखक अनल्प महान् कल्पान्तमें वनाग्निसे जले हुये, के समान दुःखित होकर, तुम्हारे सुखके लिये यत्न करते हुये वह आपत्ति–बन्धु किसीकी समता नहीं रखते। अर्थात् उनके समान दयालु अन्य कोई भी नहीं है ॥ ६३ ॥

एतादृशं बन्धुजनं जनौघाः कदापि मा मा परिभूत यूयम् ।
सेव्यः सतामस्ति तथापि तेषां कैङ्कर्यमाधातुमयं समुत्कः ॥६४॥

पताका–हे मनुष्यो ! ऐसे बन्धुजनका तुम लोग कभी भी तिरस्कार मत करो। वह भगवान् सत्पुरुषोंका सेव्य है तथापि कृपावश होकर उन सत्पुरुषोंकी सेवा करनेके लिये यह प्रभु अत्यन्त उत्सुक रहता है ॥ ६४ ॥

इत्येवं यतिराज आगतजनानादिश्य विमलं
धर्मं धर्मधुरीण ऐन्दवकलास्पर्द्धिद्धकृतिमान् ।

दत्वाशीर्वचनं समस्तवसुधाकल्याणमनिशं,
वाञ्छन्नेव समापयत्किल सभामुत्फुल्लवदनः ॥६५॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये द्वादशः सर्गः

पताका-श्रीमान् यतिराज श्रीस्वामीजी महाराज आये हुये लोगोंको इस प्रकारसे निर्मल उपदेश देकर, सबको आशीर्वाद देकर, सर्वदा समस्त भूमण्डलका कल्याण चाहते हुये प्रसन्न मुख होकर सभा समाप्त किये ॥६५

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारि-श्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये पताकाख्याव्याख्यायां द्वादशः सर्गः

अथ त्रयोदशः सर्गः

अथ विसर्ज्य सभां यतिनायकः सकलशिष्यगणेन समं मुदा ।
उपजलाशयमैच्च स पश्चिमं विधिमुपासितुमाशु हि सान्ध्यकम् ॥१॥

पताका-श्रीमान् यतिराज सभा विसर्जित करके आनन्दपूर्वक अपने सम्पूर्ण शिष्य गणके साथ सायंकालकी सन्ध्या करनेके लिये जलाशय पर गये ॥ १ ॥

निववृते स विधाय विधानतो बहुफलाः सुफलाः सकलाः क्रियाः ।
उपविवेश पुनश्च सदासनं तदनु संविशति स्म नृणां पतिः ॥२॥

पताका-श्री यतिराज बहुत फलवाली तथा सुन्दर फलप्रदान करनेवाली सन्ध्यावन्दनादि समस्त क्रियाओंको विधिपूर्वक समाप्त करके लौट आये और पुन आसनपर आकर बैठ गये। उसके पश्चात् पीपा महाराज वहां आये ॥

बहुगुणेन गणेन विदां मुनिं समभिवेष्टितमुल्लसितं सितम् ।
नयनयोरतिथिं विरचय्य स प्रणतिमाशु चकार विदूरतः ॥ ३ ॥

पताका—पीपा महाराजने उज्वल—गौर वर्णवाले, आनन्दित तथा गुणवान् विद्वानोंके समूहसे परिवेष्टित श्री यतिराजका दर्शन करके दूरसे ही शीघ्र प्रणाम किया ॥ ३ ॥

अधिसभं मुनिना पृथिवीपतिः परमहर्षमुपेत्य समाशिषाम् ।
निचयतो बहुशः स समुक्षितः स्वसविधे विधिना ह्युपवेशितः ॥४॥

पताका—श्री यतिराजने परम प्रसन्न अनेक आशीर्वादोंसे पीपाजीका सिञ्चन किया तथा सभामें अपने समीप ही विधिपूर्वक उन्हें बैठाया ॥४॥

अथ जगाद पतिर्यमिनां नृपं सकलमानवमानसमोहनम् ।
वच इदं श्व इतो गमनं प्रति प्रवणितं किल वत्स ! मनो मम ॥५॥

पताका—तदनन्तर श्री यतिराज सर्व जनके मनको मोह प्राप्त करानेवाले यह वचन राजाके प्रति बोले कि 'हे वत्स ! मेरा मन अब यहांसे कल्ह जानेके लिये उत्सुक हो रहा है' ॥ ५ ॥

बहुतरं स्थितिरत्र मया कृता नहि चिरं क्वचिदप्यनुशासिता ।
स्थितिरहो यमिनामिति साम्प्रतं गमन एव मतेर्ममताऽऽगता ॥६॥

पताका—बहुत समय तक मैने यहां निवास किया । शास्त्रोंमें अन्य स्थलमें कहींपर भी अधिक निवास करनेकी संन्यासियोंके लिये आज्ञा नहीं है । अतः मेरी मतिमें अब यहांसे जानेकी ममता आ गई है ॥ ६ ॥

श्रुतिपथेन वचो हृदयेऽदयं प्रविशदेव नृपस्य महाव्यथाम् ।
अतनुतेति सपद्यवनीतले नरपतिर्निपपात विमूर्छितः ॥७॥

पताका—कर्णमार्गसे राजाके हृदयमें वचन प्रविष्ट हो कर अत्यन्त पीडा पहुंचाने लगे । अतः राजा शीघ्र ही मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥७॥

करुणया करुणानिधिरात्मवान्समुदतिष्ठिपदात्मजनं नृपम् ।
शिरसि तस्य विशिङ्घ्य पुनः पुनः श्रितदयेन करेण समस्पृशत् ॥८

पताका—करुणानिधि परम मनस्वी यतिराजने करुणा करके स्वभक्त श्री पीपाजीको उठाया और उनके मस्तकको सूंघ कर दयापूर्ण हाथसे पुनः स्पर्श किया ॥ ८ ॥

उदितचेतन एव नृपोऽवदद्यतिपते ! परिहाय च मां कथम् ।
जिगमिषा हृदयेऽजनि तावके कथमिदं भवितुं नु तदर्हति ॥ ९ ॥

पताका—चेतना आते ही राजा कहने लगे कि हे यतिराज ! आपको मुझे छोड़कर जानेकी इच्छा कैसे उत्पन्न हुई ? तथा ऐसा हो ही कैसे सकता है ॥ ९ ॥

गमनमेव धिया भवता पुनर्यदि मनाङ् निरणायि तु मे वचः ।
भवतु नाथ ! समादृतमेतदादिशतु मां चलितुं भवता समम् ॥१०॥

पताका—तथा यदि आपने विचारपूर्वक जानेका ही निर्णय कर लिया हो तो हे नाथ ! थोड़ीसी मेरी प्रार्थना भी स्वीकृत की जावे । वह यह कि मुझे भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये ॥ १० ॥

प्रभुवरो निजगाद तदुत्तरं हृदयभावमतीव परीक्षितुम् ।
वय इदं नवमेव तव क्षमाभृदसि नेतुमतोऽर्ह इतो नहि ॥ ११ ॥

पताका—श्री यतिराज राजाके हृदयस्थ भावकी अत्यन्त परीक्षा करनेके लिये उत्तर दिये कि हे राजन् ! आपकी अवस्था नवीन है अतः साथ ले चलनेके आप योग्य नहीं हैं ॥ ११ ॥

विविधभोगवनान्तरचारिणो रथभृते न कदापि विहारिणः ।
कथमये भविता तव निर्वहो नरपते ! कठिना हि विरागिता ॥१२॥

पताका—हे राजन् ! नाना प्रकारके भोगरूपी वनमें विचरनेवाले तथा रथके विना कभी भी न फिरनेवाले आपका निर्वाह कैसे होगा ? क्योंकि विरक्त—धर्म कठिन है ॥ १२ ॥

नहि मिलिष्यति भोः क्षुधिते त्वयि सुरसभोग्यपदार्थचयः क्वचित्।
अथ च वत्स! पिपासित एव नो झटिति निर्मलवारुपलप्स्यते ॥१३॥

पताका—हे वत्स ! जिस समय तुम्हें भूख लगेगी उस समय सुन्दर रसीले योग्य पदार्थ नहीं मिलेंगे। तथा पिपासासे व्याकुल होनेपर शीघ्र निर्मल-पेय जल भी उपलब्ध नहीं होगा ॥ १३ ॥

नरपते ! नृपतेः प्रतिकर्मणां निचयमद्य विहाय कथं वने।
मुनिजनोचितवेषमुपाददन्मुनिगणेन समं नु चलिष्यसि ॥ १४ ॥

पताका—हे राजन्! आप इस राजकीय वेष समूहको त्यागकर, मुनिजनोचितवेष—मृगचर्म, कमण्डलु, पादगमन आदि—का स्वीकार कर मुनिजनोंके साथ वनमें कैसे चलेंगे ? ॥ १४ ॥

नरपते ! बहुकण्टकसङ्कटे पथि भृते च बहुत्र हि शार्करैः।
अहह ! वत्स ! विदूनमना भवन्ननु च नो व्यथयिष्यसि मानसम् ॥१५

पताका—हे राजन् ! हे वत्स ! कण्टकाकीर्ण तथा कङ्कड़ोंसे परिपूर्ण मार्गमें तुम व्याकुल मनवाले होकर हम लोगोंके चित्तकोभी दुःखित करोगे ॥१५

प्रकृतयस्तत्र भूप ! विना त्वया महति शोकसहस्रपयोनिधौ।
निपतिता भवितार इतोऽपि मे वस गृहं वचसा न हठं कुरु ॥१६॥

पताका—हे राजन् ! तुम्हारे विना यह तुम्हारी प्रजा महान् शोकसागरमें निपतित हो जायगी। अतएव भी तुम मेरा वचन मानकर घर रहो। हठ मत करो ॥ १६ ॥

कथममूर्विकलाः स्वकुलस्त्रियो रहयितुं त्वमु उत्सहसेऽधुना।
भव विचारपरः प्रिय ! मामकं नहि वचस्त्वमुपेक्षितुमर्हसि ॥१७॥

पताका—विकल—अनाथ—स्वकुलकी स्त्रियोंको त्याग करनेके लिये कैसे तुम्हारा हृदय स्वीकार करता है ? हे प्रिय ! विचारपरायण बनो। मेरे वचनकी उपेक्षा करने योग्य तुम नहीं हो ॥ १७ ॥

इति वचो निशमय्य हितावहं यतिपतेः करुणारसभावितम् ।
प्रणिजगाद गिरं गिरिसन्निभो मुनिमभि प्रणतिं प्रणयन्नृपः ॥१८॥

पताका—श्री यतिराजके इस प्रकार हितप्रद वचनको सुनकर पर्वत समान शरीर और स्थिरतावाले श्री पीपाजी मुनिराजको प्रणाम करके करुणा-रसपूर्ण वचन बोलने लगे ॥ १८ ॥

अयि गुरो! यदवोचि हिताय मे हिततमं भवता भवतापिते ।
तदनुतापसहस्रसमाकुले नहि चिरं स्थितिमातनुते हृदि ॥१९॥

पताका—हे श्री गुरु महाराज ! आपने जो मेरे हितकेलिये अत्यन्त हितावह उपदेश दिये हैं वह संसाररूप अग्निसे परितापित, अनेक पश्चात्तापोंसे समावृत मेरे हृदयमें अत्यन्त स्थिति नहीं प्राप्त करता है ॥ १९ ॥

विपिनदुःखमतीव भयावहं चरणचारमपि श्रुतिशेखर !
तव पदाब्जपरागकृपालवान्न गणयामि नयामिति मां वद ॥ २० ॥

पताका—हे श्रुतिशेखर ! अत्यन्त भयावह विपिन—विपत्ति, तथा पैदल चलना, इन सबको मैं आपके चरणकमल परागकी अनुकम्पासे नहीं गिनूंगा। अतः मुझे ले चालिये । आम्—'ले चलूंगा,' ऐसा कहिये ॥ २० ॥

तव पदान्तिकतां श्रयतो मम किमपि दुःखमुदेष्यति न प्रभो !
नहि विभाति च भास्वति कर्हिचिद्व्युदयते तिमिरं यतिनायक॥२१॥

पताका—हे प्रभो आपके चरणोंके समीप रहते हुये मुझे कोई भी क्लेश न होगा । हे यतिराज! सूर्यके प्रकाशित रहते हुये कभी भी अन्धकारका उदय नहीं होता है ॥ २१ ॥

स्मरविकार्यमिदं किल मे वयो भवति भीर्न विभो भवति स्थिते ।
अतिसमृद्धमपीह तमो हि किं न रविणा समुदीय निवार्यते ॥२२॥

पताका—यद्यपि यह मेरी अवस्था कामसे विकृत हो जानेवाली है तथापि हे प्रभो ! आपके रहते मुझे अल्प मात्र भी भय नहीं होता है ।

अत्यन्त बढ़े हुए अन्धकारको भी क्या सूर्य उदय पाकर नहीं निवृत्त करता है ? अर्थात् करता ही है। इसी प्रकार आपके द्वारा—आपके कृपा कटाक्षसे मेरे सब विकार निवृत्त हो जायंगे ॥ २२ ॥

प्रकृतयः परमेश्वररक्षिताः सुखभृता भवितार ऋषे सदा।
स्वयमपीच्छति यो भरणं पराद्भरणमादधतां स परस्य किम् ॥२३॥

पताका—हे ऋषे ! परमेश्वरसे रक्षित गाङ्गरौन गढ़की प्रजा सुखपूर्ण रहेगी। हम उनकी क्या रक्षा करते हैं ? जो स्वयं अन्यसे अपनी रक्षाका अभिलाषी है वह अन्योंकी रक्षा क्या कर सकता है ? ॥ २३ ॥

मयि गते गुरुवर्य्य ! कुलाङ्गना भगवतः कृपया कुलमात्मनः।
सुकृतमप्यदसीयमुपार्जितं प्रतिदिनं निपुणं परिपास्यति ॥२४॥

पताका—हे गुरुवर्य ! आपने राजकुलकी स्त्रियोंके लिये जो कहा उसकी भी मुझे चिन्ता नहीं है। मेरे जानेपर भगवान्‌की कृपासे अपना कुल अर्थात् यह राजकुल तथा उन कुलाङ्गनाओंके उपार्जित सुन्दर कर्म यह दोनों प्रतिदिन अच्छे प्रकार उनकी रक्षा करेंगे ॥ २४ ॥

अयि गुरो ! सुचिरं न परीक्ष्यतां करुणया च दृशा मयि वीक्ष्यताम्।
मुदभरेण विभो ! हृदयेन मे गमनमादिश शीघ्रमुदारधीः ॥२५॥

पताका—हे गुरु महाराज ! अब बहुत परीक्षा न कीजिये। मेरी ओर करुणादृष्टिसे अवलोकन कीजिये। हे प्रभो ! हे परमोदार ! आनान्दित हृदयसे शीघ्र मुझे चलनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २५ ॥

इति विधाय नृपो विनयं यतेर्जलजपादयुगे प्रणतोऽभवत्।
यतिवरोऽप्युपगृह्य भुजान्तरे समदिशद्गमनाय नृणां पतिम् ॥२६॥

पताका—श्री पीपाजी इस प्रकार विनय करके यतिराजके कमलचरणोंमें झुक गये। श्री यतिराजने भी उन्हें अङ्कमें भरकर चलनेके लिये आज्ञा दे दी ॥ २६ ॥

मुदभरो नृवरस्य ममौ तदा न हृदये मुनिराडनुशासितः ।
स च सपद्यवरोधमुपाययौ मिलितुमात्मसखीं महिषीं मुदा ॥ २७ ॥

पताका—आज्ञा सुनकर, आनन्द समूह राजाके हृदयमें नहीं समाया। मुनिराजसे आज्ञप्त होकर—आज्ञा पाकर अपनी प्रियतमा महाराणीसे मिलनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र अन्तःपुरमें आये ॥ २७ ॥

विशति वासगृहं नृपतौ स्मृतिः*स्मरसखीव पुरो विहिताञ्जलिः ।
सदकृताशु निजं दयितं प्रिया स्वधन एव यतो हि सतीधनम् ॥२८॥

पताका—जिस समय राजा अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुये; रतिके समान सुन्दरी महाराणी स्मृतिने हाथ जोड़कर शीघ्र उनका सत्कार किया। क्योंकि अपना पतिदेव ही सती स्त्रियोंका धन है ॥ २८ ॥

गुणवती सुविलासवती सती मधुर हासवती कुलपालिका ।
परमहर्षभृता रमणीमणिः पतिमनूपविवेश ततः स्मृतिः ॥ २९ ॥

पताका—स्वागत करनेके पश्चात् अनेक सुन्दर गुणोंवाली, सुन्दर विलासवाली मधुर मुसकानवाली, अत्यन्त हर्षसे भरी हुई रमणियोंमें परम सुन्दरी महाराणी स्मृति राजाके बैठ जाने पर पश्चात् स्वयं भी बैठ गई ॥

सनदियन्ति दिनानि यया समं दयितया गतवन्ति सुखेन मे ।
सपदि तद्विरहो भवितेति हा शुगुदयस्तमधीरमिवाकरोत् ॥ ३० ॥

पताका—जिसके साथ नित्य सुखके साथ मेरे इतने दिन व्यतीत हुये हैं, आज उसी मेरी स्मृतिका विरह होगा इस प्रकारसे चिन्ताके उदयने राजाको अधीरकी भाँति बना दिया ॥ ३० ॥

---

* कहा जाता है कि महाराणीका नाम तो पद्मावती था परन्तु वह राजाको इतनी प्रिय थीं कि राजा प्रतिक्षण उनकी ही स्मृतिमें तल्लीन रहा करते थे। अतः राजा स्वयं उन्हें स्मृति नामसे सम्बोधित किया करते थे ॥

अनिमिषं च विलोक्य नितम्बिनीं स्वमहिषीं स्मृतिमाशु भुवांपतिः ।
नयनयोरधिकोणमुदारधीर्विदधेऽश्रुभरं विकलान्तरः ॥ ३१ ॥

पताका—श्री पीपाजी परम सुन्दरी अपनी पटरानी स्मृतिको पलक गिराये विना—एक टकसे देखकर, व्याकुल मनवाले होकर आंखोंमें जल भर लाये ॥ ३१ ॥

स्मृतिरिमामभिवीक्ष्य दशां ततो नरपतेः सहसा भयकातरा ।
सविनयं निजगाद भुजान्तरे दयितमाशु विधाय रसेश्वरी ॥ ३२ ॥

पताका—प्रियतमा स्मृति राजाकी सहसा इस करुण दशाको देखकर भयसे कातर होकर अपने जीवनधनको शीघ्र आलिङ्गन करके विनयपूर्वक बोलने लगी ॥ ३२ ॥

कथय नाथ! किमस्ति हि कारणं भवसि येन सुदुःखभरार्दितः ।
शुगियमेत्य मुखं मम सन्निधौ किमिति चन्द्रमुखं तव चुम्बति॥३३॥

पताका—हे नाथ ! कहिये, क्या कारण है कि जिससे आप अत्यन्त दुःखके भारसे पीडित हो रहे हैं ! यह चिन्ता आकर मेरे समीपमें आपके चन्द्र समान मुखको कैसे चुम्बन कर रही हैं । मेरे पास तो आपको कभी भी चिन्ता नहीं होती थी, आज क्यों ऐसा हुआ ? तथा एक नायिकाके बैठी रहनेपर अन्य नायिका नायकका चुम्बन नहीं कर सकती; परन्तु आज क्या हुआ । शुक्के स्त्रीलिङ्ग होनेसे नायिकात्वका आरोप है ॥ ३३ ॥

प्रियतम ! प्रणयाश्रय! मे मनोहरणहार ! समाधिमुदाहर ।
तव कपोलयुगेऽस्रसरिज्जले ब्रुडति दीनतमं मम मानसम् ॥ ३४ ॥

पताका—हे प्रियतम ! हे प्रेमपात्र ! हे मेरे मनके हरण करनेवाले हार ! आप मेरा समाधान कीजिये । आपके गालोंपर बहती अश्रु—नदीके जलमें मेरा अत्यन्त रङ्क मन डूब रहा है । ॥ ३४ ॥

प्रियतमावचनामृतनिर्झरैर्हिमतमैश्च मनाग् शिशिरीकृतः ।
निजमनोगतभावविकासने प्रभुरभूत्कथमप्यवनीपतिः ॥ ३५ ॥

पताका—अत्यन्त शीतल, प्रियतमा स्मृतिके वचनामृत-निर्झरसे कुछ शीतलताको प्राप्त कराये हुये राजा किसी २ प्रकारसे स्व—मनोगत भावके प्रकट करनेमें समर्थ हुये ॥ ३५ ॥

अयि विलासिनि! भाग्यवशान्मम समुदिता हृदये हि विरागिता।
अत इदं निखिलं नृपवैभवं सपदि हेयपदं प्रतिपत्स्यते ॥ ३६ ॥

पताका—हे विलासशालिनि ! भाग्यवशात् मेरे हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ है। अतः यह समस्त राजवैभव शीघ्र ही मेरे लिये त्याज्य हो जावेगा

शिशिरकान्तिसमातपवारणं लसदद्वोऽद्वयचामरयुग्मकम् ।
नहि मनोरमणाय भवेन्मम तदहमद्य हिनोमि वनं प्रिये ॥३७॥

पताका—चन्द्रमा समान धवल—श्वेत छत्र तथा अत्यन्त सुन्दर ये दोनों चामर मेरे मनको आज प्रसन्न करनेमें समर्थ नहीं हैं। अतः हे प्रिये! मैं वनको जाता हूं ॥ ३७ ॥

प्रियतमे! वररत्नसमुल्लसन्मुकुटमप्यथ मेऽद्य भरायते ।
प्रकृतिमण्डलमप्यनघं च मे रुचिकरं न गरं हि विभाव्यते ॥३८॥

पताका—हे प्रियतमे! सुन्दर रत्नोंसे शोभित यह मुकुट भी आज मुझे भार समान लग रहा है। निष्पाप यह प्रजावर्ग भी आज मुझे रुचिकर नहीं किन्तु विष समान प्रतीत होता है ॥ ३८ ॥

बहुतरं त्वयका ललने! समं रतिरकारि मया हि रतीश्वरि !
रतिरियं भगवच्चरणान्तिके चरति तच्च तवाद्य रतेरिति ॥ ३९ ॥

पताका—हे ललने ! तुम्हारे साथ मैंने बहुत दिनों तक रति किया है। अब यह रति—प्रीति भगवान्के चरणोंके समीपमें विचर रही है अतः हे रतीश्वरि ! आजसे तुम्हारी रतिका अन्त होता है ॥ ३९ ॥

समवलोकनमाहितभावकं विहसितं च विलासमनोरमम् ।
भवति तापदमेव तव प्रिये! तत इतः सखि यामि मुनिर्भवन् ॥४०॥

पताका-हे प्रिये ! अनेक भावयुक्त तुम्हारा अवलोकन तथा विलास मनोहर तुम्हारा हास्य मुझे आज दुःखद हो रहे हैं। अतः हे मेरी सङ्गिनी आज मैं मुनि होकर यहांसे जाता हूं ॥ ४० ॥

यदि मया परिहासमुपास्य ते क्वचिदये ललने! कटु जल्पितम् ।
तदिह मर्षय भामिनि ! तावके पदयुगे प्रणतोऽस्मि विलासिनि !॥४१॥

पताका-हे ललने ! यदि किसी समय हँसीमें मैंने तुम्हें कोई भी कटु शब्द कहा हो तो हे भामिनि ! आज उसे क्षमा करो। हे विलासवति ! तुम्हारे चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४१ ॥

विदुषि! तिष्ठ गृहे सुसुखं चिरं भगवतो भजनं कुरु सर्वदा ।
स हि तवास्ति पतिः प्रणयेश्वरि! विसृज मां गमनाय वनं प्रति॥४२॥

पताका-हे विदुषि ! तुम सुखपूर्वक घरमें निवास करो और सर्वदा भगवान्का भजन करो। क्योंकि वही तुम्हारे पति हैं। हे प्रणयेश्वरि ! मुझे वन जानेके लिये विदा करो ॥ ४२ ॥

इति वचो रतिदस्य नृपस्य सा विकलिताऽभवदाशु निशम्य हा !
स्मृतिरियं सुविघूर्णितचेतना निपतिता दलितेव लता भुवि ॥४३॥

पताका-सर्वदा रतिप्रदान करनेवाले राजाके इस वचनको सुनकर स्मृति व्याकुल हो गई। स्मृति मूर्छित होकर कटी हुई लताकी भाँति शीघ्र ही पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ४३ ॥

इति दशामभिवीक्ष्य दयालुता नरपतेर्हृदये व्यलसन्मुहुः ।
निजकरेण च तामुदतिष्ठिपन्नहि दयां विरतिर्विरुणद्धि हि ॥४४॥

पताका-स्मृतिकी ऐसी दशा देखकर राजाके हृदयमें दयालुता उत्पन्न हो गई। उन्होंने अपने हाथोंसे उन्हें उठा लिया। कदाचित् कोई

प्रश्न करे कि वैराग्य दशामें स्त्रीको उठाना अनुचित है तो इसका उत्तर करते हैं कि 'दया वैराग्यका विरोध नहीं करती है।' दोनों एक साथ रह सकती हैं। राजाने दयाभावसे महाराणीको उठाया है अतः कोई दोष नहीं ॥ ४४ ॥

अपि च साकमनन्यरसान्तरे चिरतरं हि यया समगाहत ।
कथमु तामवलोक्य विपद्गतां समवलोकितुमुत्सहतां नरः ॥ ४५ ॥

पताका—किंच जिस धर्मपत्नीके साथ चिरकाल पर्यन्त कोई मनुष्य अनेक रसोंका आस्वादन किया हो वह उसे विपत्तिमें पड़ा हुआ कैसे देख सकता है ? ॥ ४५ ॥

समुपवेश्य निजाङ्कपदे प्रियां पुनरवेक्ष्य विलासि च तन्मुखम् ।
सरससारससुन्दरपाणिना नृपवरः सुतनोस्तनुमामृशत् ॥ ४६ ॥

पताका—राजाने अपनी प्राणेश्वरी स्मृतिको गोदीमें बैठाकर और उसके सुन्दर मुखको देखकर, रसीले कमल समान सुन्दर हाथसे उसके शरीरका स्पर्श किया ॥ ४६ ॥

अवहिता स्मृतिराह गलद्गिरा किमिति मान्द्यमभून्नियतो मम ।
निपतितः कुलिशः सहसा कथं ननु विनाशयितुं व्रततिं पने ॥४७॥

पताका—स्मृति देवी सावधान होकर लड़खड़ाती हुई वाणीसे बोली कि हे स्वामिन् ! मेरे भाग्यमें सहसा यह मन्दता कहांसे आ गई ? लताके विनाश करनेके लिये यह वज्र कैसे गिर पड़ा ? ॥ ४७ ॥

किमिति तथ्यमिदं भवतो वचो भवति वा परिहासविडम्बनम् ।
नहि मुधा परितापय मे मनो हृदयवल्लभ ! शान्तिमवापय ॥४८॥

पताका—क्या यह आपका वचन सत्य है ? अथवा केवल आप हँसी कर रहे हैं ? हे हृदयवल्लभ ! व्यर्थमें मेरे हृदयको दुःखित न कीजिये । मुझे शान्ति प्राप्त कराइये ॥ ४८ ॥

यदि च गच्छसि सत्यमितस्तदा कथममुं न जनं नयसे वनम् ।
कमपराधलवं नु विचार्य मां त्यजसि नाथ! पुनः शरणागताम् ॥४९॥

पताका—यदि आप सत्य ही यहांसे वनको जाते हों तो इस दासीको भी क्यों नहीं ले चलते? हे नाथ! किस अपराध-लवको देखकर मुझ शरणागताका त्याग कर रहे हैं? ॥ ५० ॥

यदि वनं प्रतिगच्छसि मत्प्रभो! किमधिगन्तुमिहात्र वसाम्यहम् ।
कथय नाथ! भवन्तमृतेऽपरो हितकृदस्ति च को मम भूतले ॥५०॥

पताका—हे मेरे प्रभो! यदि आप वनमें जाते हैं तो मैं किस लाभके लिये यहां महलमें रहूं। हे नाथ! आप बताइये कि इस संसारमें आपके अतिरिक्त मेरा कौन हितैषी है? ॥ ५० ॥

स्मृतिपथं न कथं नु तव स्मृतिः समधिरोहति वल्लभ! तेऽधुना ।
अतितमामनुराग इतः कथं विलयमेकपदे प्रययौ प्रभो! ॥ ५१ ॥

पताका—हे वल्लभ! यह आपकी स्मृति आज आपके स्मरण-पथमें क्यों नहीं आती है? हे प्रभो इतना अधिक प्रेम सहसा कैसे नाशको प्राप्त हो गया? ॥ ५१ ॥

अहह जीवननायक! दुर्भगां नय सह त्वयका हृदयेश माम् ।
यदि न नेष्यसि सत्यमतो ब्रुवे मरणमेव भवेच्छरणं मम ॥५२॥

पताका—हे जीवननाथ! आप मुझे अपने साथ ले चलिये। हे हृदयेश! यदि आप मुझे न ले चलेंगे तो मैं सत्य कहती हूं कि मैं मृत्युके शरणमें चली जाऊंगी ॥ ५२ ॥

स्मृतिवचोऽमृतमित्थमिडापतिः परिनिपीय भवन् हि समाकुलः ।
प्रियतमां परितोषयितुं गिरां मधुरिमानमुदारमवास्तृणात् ॥ ५३ ॥

पताका—राजा इस प्रकार वचनामृत पान करके व्याकुल होते हुये प्रियतमाको सन्तुष्ट करनेके लिये अत्यन्त मधुर वचन बोले ॥ ५३ ॥

हृदयतोषणि ! किं विदधासि मे हृदयतापमिवात्र वचश्चयैः ।
त्यज शुचं च समाकुलतां प्रिये ! बहुविधां न मुधा परिकल्पय ॥५४॥

पताका—हे मेरे हृदयको प्रसन्न करनेवाली ! आज अपने वचनोंसे तुम मेरे हृदयको क्यों परितप्त कर रही हो ? हे प्रिये शोकको छोड़ो । व्यर्थमें नाना प्रकारकी व्याकुलता उत्पन्न न करो ॥ ५४ ॥

नहि वनं विदधे भवतीकृते प्रियतमे ! विधिना हठमाजहि ।
गृहनिवासपरा परमात्मनः स्मरणमारचयानुदिनं किल ॥ ५५ ॥

पताका—हे प्रियतमे ! विधाताने तुम्हारे जैसे सुकुमारीके लिये जङ्गल नहीं बनाया है । हठको छोड़ो । गृहमें रहती हुई प्रतिदिन भगवान्का स्मरण करो ॥ ५५ ॥

नहि कदापि किमप्यवहेलितं मम वचस्त्वयका सुविलासिनि !
चरमकाल उपस्थित एव तत्किमु तथाऽऽचरितुं समकल्पयः ॥५६॥

पताका—सुन्दर विलासवाली प्रिये ! तुमने कभी भी मेरे वचनका तिरस्कार नहीं किया है । आज अन्तिम समयमें वैसा करनेके लिये क्यों सङ्कल्प किये बैठी हो ? ॥ ५६ ॥

यदि तवास्ति मनस्यपि मत्प्रिये ! मम कृते प्रियता ननु काचन ।
विदितसर्वमदान्तरभाविके ! परममानिनि मानय मे वचः ॥ ५७ ॥

पताका—हे मेरे अन्तरके सब भावोंको जाननेवाली ! हे परममानिनि ! हे मेरी प्रिये ! यदि तुम्हारे हृदयमें मेरे लिये कुछ भी प्रेम हो तो मेरे वचनको अङ्गीकार करो ॥ ५७ ॥

यतिगणेन समं नहि शोभनं तव भवेद्गमनं गजगामिनि !
अधिवसैव गृहं वचनान्मम मम तवापि च भद्रमुदेष्यति ॥ ५८ ॥

पताका—हे गजगामिनि ! यतियोंके साथ तुम्हारा चलना उचित

नहीं है। अतः मेरे कहनेसे तुम घरमें ही रहो। इसीमें तुम्हारा और मेरा कल्याण होगा ॥ ५८ ॥

हितकरं वचनं नृपतेरिदं श्रुतिपथं स्मृतिरादधती सती।
हठपरिग्रहमाशु जहौ हठात्कथमपीव मनः समतोषयत् ॥ ५९ ॥

पताका—राजाके इस हितकर वचनको सुनकर सती स्मृतिने साथ चलनेके हठका परित्याग कर दिया और हठात् किसी २ प्रकारसे अपने मनको समझा लिया ॥ ५९ ॥

सुरभितः स्वमुखस्य विनोदयन्त्यवनिपस्य मनः सुविलासिनी।
अतितरामवधार्य वचःसुधां नरपतिं समपीप्यदनुत्तमाम् ॥ ६० ॥

पताका—सुन्दर विलासवाली स्मृतिने अपने मुखके सुगन्धसे राजाके मनको विनोदित करती हुई सम्यग् विचार करके अपने परमोत्तम वचनामृतका राजाको पान कराया ॥ ६० ॥

सुखदिनानि च तानि गतान्यहो सपदि मे भवितार उरश्छद!
विपदि मज्जनमेव विधेर्वशात्समवशेक्ष्यति मेऽद्य नु दुर्विधेः ॥६१॥

पताका—हे कवच समान मेरे रक्षक स्वामिन्! अब मेरे वे सुख के दिन शीघ्र ही चले जावेंगे! अब मुझ अभागिनी को दैववश विपत्ति में डूबना ही अवशिष्ट रहेगा! ॥ ६१ ॥

अहह नाथ! विलासविलासिता क्व च गता भविता विरता सती।
क्व नु पुनर्हृदयं हृदयेन ते हृदयनाथ! हरिर्घटयिष्यति ॥ ६२ ॥

पताका—हे नाथ! अब विलास की विलासिता विरत होकर कहां जावेगी? हे हृदयनाथ! भगवान् अब पुनः कब आपके हृदयसे मेरे हृदय को आश्लिष्ट करेंगे? ॥ ६२ ॥

नरपतिर्विपिनं व्रजतु स्मृतिर्वसतु गेह इति प्रवया विधिः।
वत कथं नु लिखन् हृदये निजे नहि दयालवमस्पृशदीश्वर! ॥६३॥

पताका—हे ईश्वर! महाराज जङ्गल में जावें और उनकी दासी स्मृति घर में रहे ऐसा लिखते हुये वृद्ध ब्रह्माजी ने अपने हृदय में अणुमात्र भी दया का स्पर्श क्यों नहीं किया? ॥ ६३ ॥

भवतु, यल्लिखितं मम दुर्विधे हतविधे विधिना बत दुष्कृतैः।
फलतु तद्विनिवारयितुं च तद्भवतु को हि समर्थ इहाधुना ॥६४॥

पताका—अच्छा, मेरे दुष्ट और हतभाग्यमें मेर दुष्कर्मोंके कारण ब्रह्माने जो कुछ लिख दिया, वह हो। अब उसको निवृत्त करनेके लिये संसारमें कौन समर्थ है? ॥ ६४ ॥

अहह नाथ! तवास्ति च नाथता मयि निरन्तरमस्ति च दासिता।
तव वचोऽनुसृतावधिकारिता प्रतिदशं नियता त्वदधीनता ॥ ६५ ॥

पताका—अहा! हे नाथ! आपमें स्वामीपन है और मेरे में निरन्तर दासीपन है। अतः आपके वचनके अनुसरण करनेमें ही मेरा अधिकार है। प्रत्येक दशामें आपके अधीन रहना मेरे लिये नियत है ॥ ६५ ॥

इति विचार्य यथाज्ञपनं भवेत्तव विभोऽत्र च दीनजने मुदा।
ननु भविष्यति तच्च कृतं मया व्रजतु हन्त विधिर्हि कृतार्थताम् ॥६६॥

पताका—ऐसा विचारकर, हे नाथ! इस दीन जनको प्रसन्नतापूर्वक आपकी जो आज्ञा होगी वह अवश्य पूर्ण की जावेगी। हा! विधातः! तू कृतार्थ हो जा ॥ ६६ ॥

प्रियतम! प्रयता तव सङ्गिनी स्मृतिरियं पुरतस्तव याचते।
त्वदपराध उदारमना! मया यदि कृतः क्षमतां तमधीश्वर! ॥६७॥

पताका—हे प्रियतम! आपकी नियमपूर्वक रहनेवाली सङ्गिनी यह स्मृति आपसे यह प्रार्थना करती है कि "हे उदार चित्तवाले स्वामिन्! यदि मैंने आपका कोई अपराध किया हो तो उसे आप क्षमा करें ॥ ६७ ॥

विचरतो भवतश्च पुनर्भवेदपि कदाचिदितो नु पदार्पणम् ।
स्मृतिपथं भवता ननु नीयतामयमहो जन एष ममाञ्जलिः ॥ ६८ ॥

पताका—हे नाथ! यदि पुनः कभी विचरते हुये आपका इधर पदार्पण हो तो इस दासीको अवश्य स्मरण करें। यही मेरी प्रार्थना है ॥६८॥

इति वदन्त्यथ सा ललना शुचा विलुलिता निपपात नृपान्तिके ।
नरपतिश्च पुनः समबूबुधत्सहचरीं मधुरैर्वचनामृतैः ॥ ६९ ॥

पताका—इस प्रकार बोलती २ वह स्मृति शोकसे व्याकुल होकर राजाके समीपमें गिर पड़ीं। राजाने अपने मधुर वचनामृत से पुनः उन्हें बोध कराया ॥ ६९ ॥

अधिरजन्यधिभूम्यथ दम्पती अकुरुतां शयनं हि पृथक् पृथक् ।
विधिकरोन्मिषितं च कदक्षरं गतमहो नितरां चरितार्थताम् ॥७०॥

पताका—इसके पश्चात् राजा और रानी रात्रिमें पृथ्वीपर ही पृथक् २ शयन किये। अहा! ब्रह्माके हाथसे लिखे हुये दुष्ट अक्षर आज चरितार्थ हो गये ॥ ७० ॥

प्रियवियोगजशोककदर्थिता शयनमाशु जहौ च पतिव्रता ।
स्मृतिरथो नृपतेः समवाहयन्मृदुलकञ्जकरेण पदाम्बुजम् ॥ ७१ ॥

पताका—राजाके वियोगजन्य शोकसे पीडित पतिव्रता स्मृतिको निंद्रा नहीं आई। वह शीघ्र उठ बैठीं और अपने करकमलोंसे राजाके चरणकमलकी सेवा करने लगीं ॥ ७१ ॥

इति निशां विगमय्य भुवांपतिः परिसमाप्य विधिं च प्रगेतनम् ।
स च नृपासनमास्य पुरोहितं सकलधीसचिवान्समजूहवत् ॥ ७२ ॥

पताका—इस प्रकारसे रात्रि व्यतीत करके, राजा प्रातःकाल नित्य नियम करके सिंहासनपर बैठकर पुरोहित और सम्पूर्ण अमात्योंको बुलवाये।

प्रकृतयः सकलाः पि समाहृता अधिकृता अनुजीविन आगताः ।
प्रणिधयः पदिकाश्च निषादिनः सुभटसादिगणाः पृतनापतिः॥७३॥

पताका–सम्पूर्ण प्रजाको भी एकत्रित कराया। अधिकारिवर्ग और सेवकवर्ग भी आये। गुप्तचर पैदल सिपाही, हाथीसवार, सुन्दर योद्धा, घुड़सवार और सेनापति ये सब वहां एकत्रित हुये ॥ ७३ ॥

नृपतिराह विलोक्य समाजनान् भगवतः कृपया त्रिविधैषणाः ।
व्यपगता हृदयादत एव भोरहमये विपिनं हि मुनिर्भवन् ॥७४॥

पताका–राजाने सब लोगोंकी ओर देखकर कहा कि, भगवान्की अनुकम्पासे मेरे हृदयमेंसे तीनों प्रकारकी एपणाएँ दूर हो गई हैं। अतः मैं विरक्त होकर जङ्गलमें जाता हूं ॥ ७४ ॥

यदि च वः परिषेवणसद्विधावपि भवेच्च मया विहिता त्रुटिः ।
प्रियतमेषु भवत्सु च तत्कृते विहित एष पुनः पुनरञ्जलिः ॥ ७५ ॥

पताका–हे प्रजाजनो ! यदि आपकी सेवामें मुझसे कोई त्रुटि हुई हो तो अत्यन्त प्रिय आप लोगोंके आगे उस त्रुटिकेलिये हाथ जोड़कर क्षमा मांगता हूं ॥ ७५ ॥

उपकृतिः समपादि च या मम मयि भवद्भिरकारि कृपा च या ।
हृदयतः परमेश्वरसाक्षिकं तदपि वः सततं बहु धारये ॥ ७६ ॥

• पताका–तथा आप लोगोंने जो मेरा उपकार किया है और मेरे उपर जो कृपा की है, परमेश्वरकी साक्षीपूर्वक उसके लिये मैं आप लोगोंका अत्यन्त ऋणी हूं ॥ ७६ ॥

अनुज एष नृपो भविता च वस्त्विह मयीव हि भावमुपार्जत ।
रतिमवाप्नुत धर्मपथे चिरं विसृजताद्य सुखेन च मामितः ॥ ७७ ॥

पताका–यह मेरे छोटे भाई अब आप लोगोंके राजा होंगे। मेरे समान ही इनपर भी आपलोग सद्भाव प्राप्त करें। धर्ममार्गमें आपलोगोंकी बुद्धि चिरकालपर्यन्त बनी रहे। और आज सुखसे आप लोग मुझे जानेकी आज्ञा दें ॥ ७७ ॥

इति वचो नृपतेर्हि निशम्य तत्प्रकृतिषूपगतासु च तत्क्षणम् ।
अभवदाविरनन्तशुचां चयस्तटिनितामगमन्नयनान्यहो ॥ ७८ ॥

पताका—राजाके ऐसे वचनको सुनकर उपस्थित प्रजावर्गमें अत्यन्त शोक प्रसृत हो गया । सबके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी ॥ ७८ ॥

करुणरसनिमग्नान्बान्धवान्वीक्ष्य राजा,
प्रियवचनविलासैस्तोषयामास सर्वान् ।
हृदयपटलनीतं शोकशङ्कुं निरस्य,
प्रकृतिमधिनिनाय प्राञ्जलौजाः समस्तान् ॥ ७९ ॥

पताका—प्राञ्जल—विस्पष्ट तेजवाले राजाने समस्त बन्धुओं—सभास्थ प्रजाजनोंको करुणरसमें निमग्न देखकर प्रियवचनोंसे सबको सन्तुष्ट किया । उनके हृदयगत शोक—कण्टकको दूरकर स्वाभाविक—शान्तस्थितिमें प्राप्त कराया ॥ ७९ ॥

बन्धुं च पार्श्वे स्थितमाह राजा वात्सल्यभावेन सदैव बन्धो !
इमाः प्रजाः स्युस्तव रक्षणीया इतः परो नास्ति नरेन्द्रधर्मः ॥८०॥

पताका—इसके पश्चात् राजा अपने समीपमें बैठे हुये भाईसे कहने लगे कि भ्रातः ! वात्सल्यभावसे सदा प्रजाओंकी रक्षा करना । इससे अन्य धर्म राजाका नहीं है ॥ ८० ॥

एवं विधाय नृपतिः सकलां व्यवस्थां,
राज्ये निधाय निजबन्धुमुदारचेताः ।
यातो मुदा यतिपतेः सविधे द्रुतं स,
सर्वाः प्रजास्तमनुजग्मुरधीरचित्ताः ॥ ८१ ॥

पताका—उदार चित्तवाले राजा इसप्रकार समस्त व्यवस्था करके, राज्यके ऊपर अपने भाईको बैठाकर, प्रसन्नतासे शीघ्र यतिराजके समीप गये । अधीर चित्तवाली प्रजाभी उनके पीछे २ गई ॥ ८१ ॥

आज्ञापिताश्च चलितुं यतिना स्वशिष्याः
सज्जा बभूवुरधिगम्य गुरोरनुज्ञाम् ।
श्रीरामचन्द्रचरणस्मरणं विधाय,
पूज्यः पुरस्तदनु शिष्यगणः प्रतस्थे ॥ ८२ ॥

पताका—श्रीपीपाजीके आनेपर यतिराजने अपने शिष्योंको चलनेकी आज्ञा दी। वे लोग गुरुजीकी आज्ञा पाकर शीघ्र सज्ज हो गये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करके आगे २ पूज्य श्रीयतिराज और उनके पीछे २ शिष्यमण्डली चली ॥ ८२ ॥

विलोक्य भूपं मुनिवेषधारिणं प्रजाजनो दीनतमो बभूव हा ।
रुदन्नधीरो विलपँस्तपञ्छ्वसन्ननाम मूर्ध्ना विनतेन तत्पदे ॥ ८३ ॥

पताका—प्रजा अपने राजाको मुनियोंका वेष धारण किये हुये देखकर अत्यन्त कातर हो गई। रोती हुई, विलाप करती हुई, संतप्त होती हुई, उच्छ्वास लेती हुई प्रजाने मस्तक झुकाकर राजाके चरणोंमें प्रणाम किया।

पतिव्रता सा स्मृतिरप्यधीश्वरी सरूपतां संव्रजितेव दीनता ।
विनीतवेषा जलसंप्लुतेक्षणा प्रियाङ्घ्रियुग्मे प्रणनाम सादरम् ॥८४॥

पताका—रूप धारण करके आई हुई साक्षात् दीनताके समान, विनीतवेष धारण की हुई, आंखोंमें अश्रुजल भरी हुई, पतिव्रता महाराणी स्मृतिने भी अपने प्रियतमके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ८४ ॥

विलोकितुं दृश्यमिदं ह्यपूर्वकं दिवः समागुस्त्रिदशालयालयाः ।
दिवः पतन्ती हरिचन्दनप्रसूनवृष्टिराच्छादयदाशु दम्पती ॥ ८५ ॥

पताका—पत्नी यति होनेके लिये अपने पतिको प्रेमसे विदा कर रही है इस अपूर्व दृश्यको देखनेके लिये स्वर्गसे देवता भी चले आये थे। उस समय आकाशसे कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वृष्टिने राजा और रानीको ढँक दिया।

यतेरनुज्ञामधिगृह्य पौराः पूर्वं च तं राजवरं च पश्चात् ।
प्रणम्य भूयो गमनान्निवृत्तः स्थिताश्च तत्रैव सराजदाराः ॥८६॥

पताका—नगरवासी लोक श्रीयतिराजकी आज्ञासे, प्रथम यतिराजको और पश्चात् श्रीपीपाजीको पुनः प्रणाम करके गमनसे निवृत्त होकर राजपत्नी महाराज्ञी स्मृतिके साथ वहीं खड़े रहे ॥ ८६ ॥

विज्ञाय ते दृष्टिपथादतीतान् पूज्यान्निवृत्तौ विदधुर्मनांसि ।
प्रियच्छिदं दैवगतिं नृशंसां निन्दन्त आशुः स्वपुरं च पौराः ॥८७॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये त्रयोदशः सर्गः

पताका—जब यतिराज और उनके शिष्य प्रजाकी आंखोंसे ओझल हो गये तब लोगोंने चलनेका विचार किया। प्रियजनका वियोग करानेवाली निर्दया दैवकी गतिकी निन्दा करते हुये नगरनिवासी गांगरौनगढको लौट आये ॥ ८७ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारि-श्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां त्रयोदशः सर्गः

चतुर्दशः सर्गः

अथ व्रजन् रैवतकं विपश्चिद्यमिव्रजैः शिष्यगणैः समं सः ।
ददर्श दुर्धर्षमसावहार्य्यमहार्य्यधैर्य्याधिपतिर्यतीशः ॥ १ ॥

पताका—गांगरौन गढ़से चलते हुये विद्वान् जितेन्द्रिय शिष्योंके साथ परम धैर्यवान् उन यतीन्द्र श्रीस्वामीजी महाराजने दुर्धर्ष रैवतक पर्वतको देखा॥ १

नीलोत्पलश्यामतनुं तनुस्थामायामसंवेष्टितभूविभागम् ।
रत्नांशुसन्तानलसत्प्रभाभिर्विभूपितं भूषितकृष्णमूर्तिम् ॥ २ ॥

पताका- रैवतकका वर्णन सात श्लोकोंमें करते हैं। नील कमलके समान श्याम वर्णवाले, स्वशरीरके बल और विस्तारसे पृथ्वीके विभागको घेरनेवाले, रत्नोंके किरणोंके समूहकी कान्तिसे विभूपित, और जिसमें भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति शोभित हो रही थी—॥२॥

मरुद्धुताभिर्व्रततीभिरत्र लास्यैः पतद्भिः सुमनोभिरर्च्यम् ।
आमोदमाद्यन्मधुपाभिरामै रामाभिराचर्य्यमिवार्च्यमानम् ॥ ३ ॥

पताका—जैसे स्त्रियां पुष्पादि और नृत्यादिसे किसी पूज्यकी पूजा करती हों वैसे ही वायुसे प्रकम्पित लताओंसे, लास्यके द्वारा, तथा सुगन्धिसे उन्मत्त भ्रमरोंसे सुन्दर पुष्पोंके द्वारा वह रैवतक पूज्यमान था—॥३॥

कुलायनीडोद्भवभूरिरावैरुपव्रजन्तं मुनिमादिदेवम् ।
निशम्य तद्दर्शनलालसाभिर्मूर्द्धानमुत्थाप्य विलोकयन्तम् ॥४॥

पताका—घोंसलोंके पक्षियोंके महान् कलकलसे आदि देव मुनीश्वर श्रीस्वामिजी महाराजको आते हुये सुनकर, उनके दर्शनकी लालसासे मस्तक उठाकर जो देख रहा था—॥४॥

दिवाकरोद्दामतपःप्रभाभिर्मा भून्मुनेः संचरतः पृथिव्याम् ।
तापो विचार्येति रथं निरोद्धुं रवेरुपर्य्येव जवेन यान्तम् ॥ ५ ॥

पताका—पृथ्वीपर चलते हुये श्रीस्वामीजी महाराजको सूर्यके प्रचण्ड घामकी प्रभासे पीडा न हो ऐसा विचारकर सूर्यके रथको रोकनेके लिये जो मानो उपरकी ओर जा रहा था—॥ ५ ॥

शनैः समीरेरितशाखिशाखानमद्भुजैः पुण्यपदारविन्दम् ।
स्प्रष्टुं विधित्सन्तमिव प्रयत्नं महागुरोस्तस्य गृहागतस्य ॥६॥

पताका—अपने घरपर पधारे हुये महान् गुरु श्रीस्वामीजी महाराजके चरणकमलोंको, मन्द २ वायुसे कम्पित वृक्षोंकी शाखारूप झुकते हाथोंसे स्पर्श करनेके लिये मानो जो प्रयत्न करनेकी इच्छा कर रहा था—॥ ६ ॥

जलापयानेन विपाण्डुवर्णं चक्राङ्गपत्रप्रतिमप्रभाकम् ।
धाराधरोत्पुञ्जमनूनशोभं मुनेः कृते छत्रमिवादधानम् ॥७॥

पताका—हंसके पक्ष समान प्रभावाले, जलके चले जानेसे धवलवर्ण-

वाले परम रमणीय मेघके पुञ्जको, जो श्रीस्वामीजी महाराजके लिये, छत्रके समान धारण कर रहा था ॥७॥

अम्भोरुहाम्भोरुहसन्निकृष्टभ्रमद्द्विरेफालिमनोज्ञशब्दैः ।
जगत्त्रयातीतजगत्त्रयातिगुणान् प्रगायन्तमिवोच्चकैस्तम् ॥८॥

पताका—जलकमलोंमें भ्रमण करते हुये भ्रमरोंके मनोहर शब्दोंसे जगत्त्रयको अतिक्रान्त, भगवान् श्रीरामानन्द स्वामीजी महाराजके तीनों जगत्के उल्लङ्घन करनेवाले गुणोंको, जो उच्च स्वरसे गा रहा था ॥८॥

आयान्तमालोक्य यतिप्रकाण्डं दिवौकसस्ते त्रिदशालयस्थाः ।
विमानमानीय मनोभिरामं भुवि स्थिता नेतुमधिक्षमाभृत् ॥९॥

पताका—स्वर्गनिवासी प्रसिद्ध २ देवता श्री यतिराज महाराजको आते हुये देखकर उस रैवतक पर्वतपर ले जानेके लिये अत्यन्त रमणीय विमान लेकर पृथ्वीपर खड़े थे ॥९॥

यदा मुनीन्द्रः समगंस्त तस्य विशालशैलस्य समीपदेशे ।
तदा च वृन्दारकवृन्दमूचे विनम्रवाचा यतिराजमित्थम् ॥१०॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराज जब उस विशाल पर्वतके समीप प्रदेशमें आ गये तब सब देवता कोमल वाणीसे स्वामीजीसे इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥१०॥

दिवस्पतिस्त्वां यतिसार्वभौम प्रतीक्षते द्रष्टुमधित्यकायाम् ।
दयां दयालो हि विधाय गन्तुं तत्रार्हसि त्वं महिताब्जपाद ॥११॥

पताका—हे यतिराज ! देवराज आपका दर्शन करनेके लिये इस पर्वतकी अधित्यका—ऊपरके प्रदेशमें आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । अतः हे पूज्य चरण और हे दयालो ! कृपा करके आप वहां पधारें ॥ ११

स्वीकृत्य तेषां सनति प्रणीतामभ्यर्थनामद्रिमुदारचेताः ।
पवित्रयिष्यन्सुमनोविमानं यतिः सशिष्यः सहसारुरोह ॥ १२ ॥

पताका—उन देवताओंकी नम्रतापूर्वक की गई हुई प्रार्थनाको उदार चित्तवाले श्रीस्वामीजी महाराज सुनकर उस पर्वतको पवित्र करनेके लिये शिष्यों सहित देव-विमानपर चढ़ गये ॥१२॥

स्तम्भैः सहस्रैः किल शातकुम्भैर्विनिर्मिते निर्मितिदक्षदक्षैः।
शृङ्गारिते मौक्तिकतोरणैश्च भव्ये मनोहारिणि मण्डपेऽत्र ॥१३॥
विमानमागत्य शिलोच्चयेस्मिन्नवातरद्योगिपदाब्जजुष्टम्।
यतीश्वरस्याधिपदारविन्दं ननाम सौवागतिकः सुरेन्द्रः ॥१४॥

पताका—अत्यन्त निपुण शिल्पियोंसे सोनेके सहस्रों स्तम्भोंके द्वारा बनाये गये हुये, तथा मोतियोंके तोरणोंसे सजाये हुये, उस पर्वतपर बनाये हुये, रमणीक और मनोहर मण्डपमें श्रीस्वामीजीका विमान आकर नीचे उतरा। श्रीमद्यतीन्द्रके चरणारविन्दमें, स्वागत करनेवाले देवेन्द्रने आकर प्रणाम किया ॥ १३ ॥ १४ ॥

महार्घ्यरत्नोच्चयसम्परीतं प्रणीतमष्टापदसन्निवेशैः।
मणिप्रभाभासितसर्वदेशमुद्गन्धिमन्दारसुमाधिवासम् ॥ १५ ॥
भद्रासनं भद्रतमं च मञ्जु सनत्युपावीविशताधिनाथम्।
अक्ष्णां सहस्रेण च वासवोऽसौ मुनीन्द्रपादाब्जरसं निपीय ॥१६॥

पताका—इन्द्रराजने अपने सहस्र नेत्रोंसे श्रीस्वामीजीके चरणकमलोंका रस पान करके बहुमूल्य रत्नोंसे जटित, सुवर्ण निर्मित, जिसके मणियोंकी प्रभासे वहांके सर्व प्रदेश प्रकाशित हो रहे थे, जिसमें उत्कृष्ट गन्धवाले मन्दारके फूलोंका सुगन्ध आ रहा था ऐसे कल्याण स्वरूप और मनोहर भद्रासन—राजोचित आसनपर विनयपूर्वक श्रीस्वामीजी महाराजको बैठाया ॥

नाथं यतीनां त्रिदशाधिनाथः पूर्वं सुराश्चाथ नराः क्रमेण।
समार्चिचन्नर्च्यतमं धराया भाग्योद्भवं भावयितुं मुनीतम् ॥१७॥

पताका—पृथ्वीके भाग्यको बढानेके लिये पृथ्वीपर आये हुये श्री यति-

राजकी, सबसे प्रथम देवराज इन्द्रने पूजाकी। पश्चात् अन्य देवोंने। पश्चात् मनुष्योंने ॥ १७ ॥

ततः परं दुर्लभतामवेक्ष्य विना यतीशस्य पदारविन्दम्।
भक्तेश्च मुक्तेरपि तत्र शक्रो ह्यतिष्ठिपत्तत्र्यतिपादुकां सः ॥१८॥

पताका—पश्चात् इन्द्रने विचार किया कि भगवत्स्वरूप इन श्रीस्वामीजीके चरणकमल बिना भुक्ति और मुक्ति दोनोंही दुर्लभ हैं। अतः उन्होंने वहां पर श्रीस्वामीजीकी चरणपादुकाकी स्थापना कराई। (जो कि आज तक वहां वर्तमान है।) ॥ १८ ॥

स्वर्गान्मनोमोदविधित्सया ये देवाः समायान्त्विह शैलभागे।
विलासतर्पिप्रवरैर्मया च समर्चनीया यतिपादुकेयम् ॥ १९ ॥

पताका—इन्द्रने देवोंसे कहा कि इस पर्वतपर क्रीडा करनेकी इच्छासे स्वर्गसे जो देव आवें, वे परम विलासी देव, इस चरणपादुकाकी अवश्य पूजा करें। मैं आऊं तो मैं भी पूजा करूं ॥१९॥

आज्ञाप्य सर्वाञ्शतमन्युरेवं यतीश्वरादेशमयं स्वमूर्ध्ना।
वहन्विमानेन मुनिं विसर्ज्य स्वयं ययौ सादितिनन्दनः स्वः ॥२०॥

पताका—इन्द्रराज इस प्रकार सबको आज्ञा देकर, श्री स्वामीजी महाराजकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करते हुये श्रीस्वामीजीको विदा करके विमानपर चढ़कर स्वयं भी सब देवों सहित स्वर्गको गये ॥२०॥

भूमिं समागत्य पुनः स योगी भुवं पुनानो जलजाङ्घ्रिचारैः।
सद्यः स्वतन्त्रो निखिलेषु तन्त्रेष्ववापि केनापि जिनाध्वगेन ॥२१॥

पताका—पृथ्वीपर आकर नंगे पगसे पृथ्वीको पवित्र करते हुये जब निखिलतन्त्रस्वतन्त्र श्रीस्वामीजी चल रहे थे उसी समय कोई जैन साधु मिला ॥

वेषं निरीक्ष्यास्य स वैदिकानां हास्यं विधायेति वचो जगाद।
धूर्तैर्निकामं परिकल्पितेषु वेदेषु जागर्ति कथं तवास्था ॥२२॥

पताका—वह जैनी प्रथम स्वामीजीके त्रिदण्डी वेषको देखकर, और वैदिकोंकी हँसी करके इस प्रकार बोला कि वेदोंको तो धूर्तोंने बनाया है उसमें आपकी आस्था कैसे स्थिर है ? ॥२२॥

श्रुत्वा वचः कुन्तललुञ्चकस्य दूनं मनस्तस्य यतेर्निकामम् ।
यो वेदपाथोनिधिपारदर्शी निन्दां श्रुतीनां शृणुयात्कथं सः ॥२३॥

पताका—उस केशलुञ्चक जैन साधुकी बात सुनकर यतिराजके हृदयमें परम दुःख हुआ । क्योंकि जो वेदरूप समुद्रका पारदर्शी होवे वह वेदोंकी निन्दा कैसे सुने ॥ २३ ॥

उवाच शान्त्या स शमप्रधानो यतीश्वरस्तं च शिरोरुहाणाम् ।
उत्पाटकं स्नानपराङ्मुखत्वाद्दुर्गन्धसम्पीडितसर्वकायम् ॥२४॥

पताका—परम शान्त श्रीस्वामीजी महाराज शान्तिके साथ, केशनोचनेवाले तथा स्नान न करनेसे दुर्गन्धित शरीरवाले उस जैन साधुसे बोले ॥२४

ये धर्मकान्तारपरिच्युताः स्युर्ये चापि जाड्यान्धपराहताः स्युः।
तेषां समेषां पथिदर्शकेषु वेदेषु कस्तेऽयमपप्रलापः ॥२५॥

पताका—जो लोग धर्मके कठिन मार्गसे भ्रष्ट हो गये हैं, जो अज्ञानरूप अन्धकारसे पीडित हो रहे हैं, उन सबोंके लिये मार्गप्रदर्शक वेदोंके विषयमें तुम कैसा अपशब्द बोलते हो ? ॥२५॥

जगाद भूयो विरते यतीन्द्रे मुखेन दुर्गन्धिगरं वमन् सः ।
वेदैः सदारस्य विबोधितस्य विष्णोः कथं स्याज्जगदीश्वरत्वम् ॥२६

पताका—जब स्वामीजी इतना बोलकर चुप हुये तब मुखसे दुर्गन्धित विष निकालता हुआ वह पुनः बोला । "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च" इत्यादि मन्त्रोंसे वेद विष्णुकी स्त्रीका वर्णन करता है । जो सस्त्रीक हो वह जगत्का ईश्वर-स्वामी कैसे हो सकता है ? ॥२६॥

सदारतायाः प्रतिबन्धकत्वं यदीश्वरत्वस्य विभाव्यतेऽद्धा ।
तद्ब्रूहि किं कारणमस्ति तत्र यतीश्वरः प्रत्यवदत्तमेवम् ॥२७॥

पताका—श्रीस्वामीजीने उसको उत्तर दिया कि यदि तुम स्त्री सहित होनेको ईश्वरताका प्रतिबन्धक मानते हो तो उसका कारण बताओ ॥२७॥

स प्रत्युवाचाथ यदीश्वरत्वं सदारकस्यापि मतं त्वया स्यात् ।
समादरः केन तवास्ति विष्णावेवान्यजीवेषु कथं न तत्त्वम् ॥२८

पताका—वह साधु बोला कि यदि आप सस्त्रीकको भी ईश्वर मानते हैं तो क्या कारण है कि केवल विष्णुको ही ईश्वर मानते हैं? अन्य सस्त्रीक जीवोंमें भी ईश्वरता क्यों नहीं स्वीकार करते? ॥२८॥

सर्वज्ञताहानिरसर्वगत्वमसर्वशक्तित्वमथापि तेषाम् ।
जागर्ति तत्त्वस्य निपीडनायेत्यवोचतामुं यतिसार्वभौमः ॥२९॥

पताका—श्रीस्वामीजीने उत्तर दिया कि जितने जीव हैं वह सर्वज्ञ नहीं हैं, सर्वव्यापक नहीं हैं तथा सर्वशक्तिमान् नहीं हैं अतएव उनमें जगदीश्वरता नहीं मान सकते ॥ २९ ॥

कस्यापि जीवस्य सुकर्मशाखी सर्वज्ञतां चेत्प्रसुवीत विद्वन् ।
कथं न तत्त्वं विलसत्यमुष्य विचारमूढो निजगाद जैनः ॥३०॥

पताका—वह अविवेकी जैन साधु पुनः बोला कि यदि कोई जीव सुन्दर कर्म करता हो और उसके फलसे किसीको सर्वज्ञता प्राप्त हो जावे तो उसे ईश्वर क्यों नहीं मान सकते? ॥३०॥

न विद्यते कर्म किमप्यमुष्यां सर्वज्ञतां सोतुमलं जगत्याम् ।
ममापि शास्त्रेऽथ तवापि शास्त्रे ततस्तथा नेत्यवदन्मुनीन्द्रः ॥३१॥

पताका—हमारे शास्त्रमें तथा तुम्हारे शास्त्रमें भी ऐसा कोई कर्म नहीं है जिससे इस लोकमें किसीको सर्वज्ञता प्राप्त हो जावे; ऐसा स्वामीजी महाराजने उत्तर दिया ॥ ३१ ॥

अघातिकर्माणि तथा च घातिकर्माणि ते सन्ति मतानि तावत् ।
घातीनि तत्सज्जननेऽसमर्थान्यपेक्षितानीह तवैव शास्त्रे ॥ ३२ ॥

पताका–घातिकर्म तथा अघातिकर्म ये ही दो प्रकारके कर्म तुमको माननीय हैं। इनमेंसे तुम्हारे ही शास्त्रोंमें लिखा है कि घातिकर्म किसी वस्तुको उत्पन्न नहीं करते ॥३२॥

अघातिकर्मस्वपि तादृशीह न सम्मता शास्त्रकुलेऽपि शक्तिः ।
किमस्ति तेऽन्यन्मतमत्र कर्म सविष्यते यत्तवकल्पवल्लिम् ॥३३॥

पताका–तथा अघाति कर्मोंमें भी तुम्हारे शास्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं मानी गई है जो सर्वज्ञता आदिको उत्पन्न करे। तब बताओ तुम्हारे मतमें वह कौनसा कर्म है जो तुम्हारी कल्पलता–सर्वज्ञताको उत्पन्न करे? ॥३३॥

प्रयोक्तुकामः स च सप्त भङ्गीश्चातुर्यपल्यङ्कमथारुरोह ।
परन्तु वादाहवपण्डितोऽसौ भङ्गान्सभङ्गान् यतिराड् व्यधत्त ॥३४॥

पताका–वह जैन साधु सप्तभङ्गीका प्रयोग करनेके लिये चतुराई करने लगा परन्तु शास्त्रार्थ कलामें परम निपुण श्रीयतिराजने सब भङ्गोंको भग्न कर दिया ॥३४॥

अहो अनेकान्तमतं मतं चेन्निखात एव त्वयका निजार्थम् ।
गर्तो महानित्यवदद्यतीन्द्रो जैनोऽथ मौनं विदधे सलज्जः ॥३५॥

पताका–स्वामीजीने कहा कि यदि तुम अनेकान्तवाद स्वीकार करते हो तो तुमने अपने लिये बड़ा भारी खड्डा खोद लिया। इतना सुनते ही वह जैनी समझ गया और लज्जित होकर चुप हो गया ॥३५॥

स योगिराजश्चितभूरिमानो विराजमाननसुन्दरश्रीः ।
अग्रेऽचलच्छिष्यगणैः समेतः प्रचारयन्वैष्णवधर्मशिक्षाम् ॥३६॥

पताका–मान प्राप्तकर, सुन्दर मुखकी कान्तिवाले वह योगिराज अपने शिष्यों सहित वैष्णवधर्मकी शिक्षाका प्रचार करते हुये आगे चले ॥३६॥

शनैः शनैरेष महानुभावः स्थलीं यदूनां हृदयस्य योगी ।
स्थूणामिवापश्यदनिद्रदुःखो विवर्णचन्द्रानन आर्द्रचक्षुः ॥ ३७ ॥

पताका—धीरे २ महानुभाव श्रीयोगिराजने मलिनमुख तथा भींजी आंखोंसे अत्यन्त दुःखित होकर हृदय शल्यके समान यादव स्थलीको देखा

ततः परं तत्र हि सौमनाथं रम्यालयं भग्नशिखं निरीक्ष्य ।
निर्वीर्यतामप्यथ हिन्दुजातेरहो यतीन्द्रो विमना मुमोह ॥ ३८ ॥

पताका—उसके पश्चात् टूटे शिखरवाले सोमनाथके रमणीय मन्दिरको देखकर तथा हिन्दू जातिकी निर्बलताको देखकर यतिराज व्याकुल हो गये॥३८

हा हिन्दुता भारतवर्षतोऽद्य गतेति मन्येऽवसितानि चास्य ।
शुद्धावदानानि दिनानि तानि हंहो विधातुः प्रबला समीहा ॥३९॥

पताका—स्वामीजीने कहा, मैं समझता हूं कि आज भारतवर्षसे हिन्दुत्व चला गया ! इस देशके सुन्दर कर्म करनेके वे दिन चले गये ! अहो ! भगवान्की इच्छा प्रबल है ! ॥ ३९ ॥

हे क्षत्रवंशाम्बररोचिरीशा युष्मासु जीवत्स्वपि भारतस्य ।
दशा विपन्ना न परं विपन्ना यूयं महाश्चर्यमिदं ममात्र ॥४०॥

पताका—हे क्षत्रियवंशरूप आकाशके सूर्य क्षत्रिय ! तुम्हारे जीते २ भारतकी ऐसी दीन दशा हो गई परन्तु तुम लोग मर नहीं गये ? मुझे तो यही आश्चर्य है ॥ ४० ॥

अद्यैव शुष्कं किमु युष्मदीयेष्वङ्गेषु रक्तं किल पूर्वजानाम् ।
नोचेत्कथं हिन्दुकुलाधिपूज्यसोमाधिनाथस्य दशेयमस्य ॥ ४१ ॥

पताका—क्या निश्चय ही, अभीसे ही तुम्हारे शरीरमेंसे पूर्वजोंका रक्त सूख गया ? नहीं तो हिन्दुवंशके पूज्य सोमनाथकी यह दशा कैसे होती ?

यस्यां भुवि श्रीयदुनन्दनोऽपि चिरं निवासं रचयाञ्चकार ।
तस्या दशेयंहतभाग्यभाजो मनो दुनोतीह न हिन्दुजातेः ॥४२॥

पताका–जिस सौराष्ट्र भूमिमें भगवान् श्रीकृष्णनेभी चिरकाल तक निवास किया है उसकी यह दशा हतभाग्य हिन्दुजातिके मनको पीडित नहीं करती है ! ॥ ४२ ॥

दिने दिने वर्धत एव मन्ये कार्पण्यदोषः किल हिन्दुजातौ ।
नश्येदयं चेन्नहि शीघ्रमेव नामापि नश्येन्ननु हिन्दुतायाः ॥४३॥

पताका–हिन्दुजातिमें दिन २ निर्बलता बढ़ती जाती है ! यदि यह निर्बलतारूप दोष शीघ्र नष्ट न हुआ तो हिन्दुजातिका नामभी नष्ट हो जावेगा ॥ ४३ ॥

एवं विलप्याथ मुनिश्च तस्माच्छनैः शनैर्द्वारवतीं जगाम ।
ततः परावृत्य दिनैश्च कैश्चित्तामार्बुदीं कान्तिमवैक्षताशु ॥४४॥

पताका–इस प्रकारसे हिन्दुओंकी दशापर मुनीश्वर शोक प्रकट करके द्वारका गये । वहांसे लौटकर कुछ दिनोंमें शीघ्र आबूकी शोभाका अवलोकन किया ॥ ४४ ॥

ऋषेर्वसिष्ठस्य भुवं लुलोके महत्सरश्चापि नखीतिगीतम् ।
ददर्श तत्रैव तपोनिमग्नं भलिन्दसूनुं महसां स राशिः ॥ ४५ ॥

पताका–वहां आबूमें वसिष्ठ ऋषिके आश्रमका तथा नखी नामके सरोवरका दर्शन किया । उसी नखी सरोवरके पास तपस्या करते हुये भलिन्द सूनुको महातेजस्वी यतिराजने देखा ॥ ४५ ॥

दिनद्वयं तत्र मुनिर्निवासं सदेवतः शिष्यगणेन साकम् ।
विधाय देवैश्च विधाप्य श्रीमद्रघूत्तमस्थानमनूनशोभम् ॥ ४६ ॥

भलिन्दसूनोः सविधे स्थितासीत्सुपूजितैका रघुनाथमूर्तिः ।
संस्थाप्य तन्मन्दिर एव तामातनोदुदारं जनतोपकारम् ॥ ४७ ॥

(युग्मम्)

पताका—श्रीयतिराज वहां देवताओं और शिष्योंके साथ दो दिन तक निवास करके, देवताओंके द्वारा श्रीरघुनाथजीका सुन्दर मन्दिर बनवाकर; भलिन्दसुनु–मुनिके पास एक सु–पूजित श्रीरघुनाथजीकी प्रतिमा थी, उसे ही उस मन्दिरमें स्थापन करके जनताका महान् उपकार किये ॥

निर्गत्य तस्मात्समजान्मुनीन्द्रः क्षेत्रं महत्पुष्करनामधेयम् ।
ततो जयश्रीमहितं पुरं स जगाम शीघ्रं ह्युपदेष्टुकामः ॥४८॥

पताका—आबूसे चलकर श्रीस्वामीजी पुष्कर क्षेत्र आये। वहांसे उपदेश करनेकी इच्छासे शीघ्र जयपुर आये ॥ ४८ ॥

नृपो मुनेरागमनं निशम्य दिदृक्षया तूर्णमुपाययौ सः ।
आतिथ्यमाधाय यतीश्वरस्याज्ञप्तो ययौ राजगृहं समोदः ॥४९॥

पताका—उस समयके जयपुराधीश मुनीश्वरका आगमन सुनकर दर्शनकी इच्छासे शीघ्र उनके पास आये। यथोचित स्वामीजी महाराजका अतिथि सत्कार करके आज्ञा पाकर प्रसन्न होकर राजमहलको गये ॥४९॥

न्युवास तत्रर्षिवरो दिनानि प्रजाहितार्थं किल पञ्चषाणि ।
दिशन् स धर्मं शुभवैष्णवानां ततः शनैरुज्जयिनीं जगाम ॥५०॥

पताका—वह ऋषिवर प्रजाके कल्याणके लिये वैष्णव धर्मोपदेश करते हुये वहां पांच छ दिन रहे। पश्चात् धीरे २ उज्जैन गये ॥ ५० ॥

क्षिप्रातटे वासरमेकमेव नीत्वा सशिष्यो यतिराजराजः ।
व्रजं व्रजेशस्य जगाम यत्र लीला अनन्ता अभवन्हरेर्हि ॥ ५१ ॥

पताका—वहां क्षिप्रा नदीके तटपर शिष्योंसहित श्रीस्वामीजी एक दिन निवास करके नन्दके व्रजमें गये जहां भगवान्‌की अनन्त लीलाएँ हुई हैं ॥ ५१ ॥

ततः प्रियां स्वां स पुरीमयोध्यामागत्य वासं कृतवान् सरय्वाः ।
तटे विशुद्धेऽनुददर्श जन्मभूमिं क्रमादागतवान्स काशीम् ॥ ५२ ॥

पताका—उसके पश्चात् अपनी प्रिय पुरी अयोध्यामें आकर श्रीसरयू-जीके पवित्र तटपर निवास किये। पश्चात् जन्मभूमिका दर्शन किये और उसके पश्चात् क्रमसे काशी आ गये ॥ ५२ ॥

धर्मो विनाशमुपयाति दिने दिनेऽत्र,
श्रद्धाधनं विगलितं गलितोऽभिमानः।
वीर्यादिकं त्यजति हिन्दुजनांस्ततस्ते,
म्लेच्छावपातदलने विवशा बभूवुः ॥ ५३ ॥

पताका—दिन २ धर्मका नाश हो रहा है। श्रद्धारूप धन नष्ट हो गया। आत्मगौरव क्षीण हो गया। वीर्य, बल आदि हिन्दुओंको छोड़ रहे हैं। अतः वे हिन्दु म्लेच्छोंके आक्रमणको दलन करनेमें पराधीन हो गये हैं ॥ ५३ ॥

कथङ्कारं भवेद्रक्षा समयेऽस्मिन्विशङ्कटे।
हिन्दूनामिति सन्तस्थे मुनिस्तत्र विचारयन् ॥ ५४ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये चतुर्दशः सर्गः

पताका—इस महा विकराल समयमें हिन्दुओंकी रक्षा कैसे होगी, इसका विचार करते हुये श्रीस्वामीजी काशीमें ही रहने लगे ॥ ५४ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते-श्रीमद्भगवद्रामा-
नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां चतुर्दशः सर्गः।

अथ पञ्चदशः सर्गः

सदासनसमासीनं सर्ववैभवभूषितम् ।
पूर्णकीर्तिकलानाथं तरङ्गितजनोदधिम् ॥ १ ॥
भव्यभक्तिरमाक्रान्तं रमाकान्तमिव स्फुटम् ।
धामनिध्यधिधामानममानं मानिमानितम् ॥ २ ॥
त्रय्यन्तान्तविचोधिखवोधकं सुमनोहरम् ।
त्रिदण्डं दधतं तं श्रीमन्तं ध्यायन्तमीश्वरम् ॥ ३ ॥
अन्यैश्च वहुभी रामरसिकैः परिवेष्टितम् ।
यतिराजमहाराजं दण्डी कश्चिदुपेयिवान् ॥४॥ (कुलकम्)

पताका—सुन्दर आसनपर बैठे हुये, शम, दमादि समस्त वैभवोंसे युक्त, सुन्दर कीर्तिवाले, असंख्य मनुष्योंसे घिरे हुये ॥ विष्णु भगवानके समान सुन्दर भक्तिरूपिणी रमाके स्वामी, सूर्यस..न उज्वल तेजवाले, अपरिमित शक्तिवाले, मानी पुरुषोंसे सम्मानित—॥ वेदोंके पाण्डित्यको बोध न करनेवाले—सुन्दर त्रिदण्डको धारण करनेवाले, ईश्वरका ध्यान करते हुये—॥ अन्य अनेकों रामभक्तोंसे घिरे हुये, श्रीस्वामीजी महाराजके पास एक दण्डी आया ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

कनिष्ठोऽपि कनिष्ठः स कौमारीं पदवीं वहन् ।
मायावी तत्र निर्माय स्वमायामधितस्थिवान् ॥ ५ ॥

पताका—उसका नाम कनिष्ट था । वह स्वभावसे भी कनिष्ठ—क्षुद्र था । कार्तिकेयके सम्प्रदायका अनुयायी था । वह मायावी अपनी माया रचकर वहां बैठ गया ॥ ५ ॥

स विष्णुपदसम्प्राप्तो महाविष्णुं परीक्षितुम् ।
रुधिराणि च मांसानि प्रववर्ष प्रववरः ॥ ६ ॥

पताका—वह धूर्त आकाशमें जाकर महाविष्णुस्वरूप उनकी परीक्षा करनेके लिये रक्त और मांसकी वर्षा करने लगा ॥ ६ ॥

तदनन्तरमह्नाय हीनवृत्तेन भीतिदा ।
आश्रयाशमहावृष्टिस्तेने तेनेह पुष्कला ॥ ७ ॥

पताका—उसके पश्चात् शीघ्रही वह नीच भयानक और पुष्कल अग्निकी महती वृष्टि करने लगा ॥ ७ ॥

क्षमाशीलक्षमाशीला वैष्णवा अपरे तदा ।
विकला विकला जाता ज्वलज्ज्वालचुम्बिताः ॥ ८ ॥

पताका—क्षमाशील—पृथ्वीके समान क्षमा करनेके स्वभाववाले अन्य वैष्णव विकल—ज्ञानशून्य होकर, अग्निकी ज्वालासे स्पृष्ट होकर व्याकुल हो गये ॥ ८ ॥

प्रतीकारं न ते चक्रुः प्रतीकारक्षमा अपि ।
प्रतीक्षितनिजाचार्यशासना हि तयास्तिका ॥ ९ ॥

पताका—वह सब वैष्णव आस्तिक थे । आचार्यकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाले थे। अतः उपाय करनेमें समर्थ होनेपर भी उन्होंने गुरुकी आज्ञा विना उपाय नहीं किया ॥ ९ ॥

परस्परं समामन्त्र्य समाधिस्थं जगद्गुरुम् ।
सर्वतन्त्रस्वतन्त्रं तं तुष्टुवुर्वैष्णवास्तदा ॥ १० ॥

पताका—वे सब वैष्णव परस्पर विचार करके समाधिमें बैठे हुये, सर्व विद्याविशारद जगद्गुरु श्रीस्वामीजी महाराजकी स्तुति करने लगे ॥१०॥

तत्कृतस्तुतिगम्भीरशब्दनिर्घोष बोधितः ।
अभिभज्य समाधिं तं तमाधिं सन्ददर्श सः ॥११॥

पताका—वैष्णवोंकी स्तुतिके गम्भीर शब्दके कोलाहलसे जगाये गये हुये श्रीस्वामीजी उस समाधिको छोड़कर उस दुःखको देखे ॥ ११ ॥

सर्वज्ञः स समालोच्य मायां बुद्ध्वा च मायिनः ।
प्रामिणीत च तामासन्त्समस्ता अस्तभीतयः ॥१२॥

पताका—श्रीस्वामीजी तो सर्वज्ञ थे। उन्होंने सब अवगत करके मायावीकी मायाको जानकर उसे नष्ट कर दिया। तब सब लोग निर्भय हो गये ॥ १२ ॥

कनिष्ठोदरमध्ये तु गरिष्ठा सम्प्रतिष्ठिता ।
प्राणपीडाकरी पीडा को न भुङ्क्ते कृतं निजम् ॥१३॥

पताका—कनिष्ठकी माया नष्ट हो जानेके पश्चात् उसके पेटमें बडी भारी पीड़ा उत्पन्न हुई। प्राणसङ्कट उपस्थित हुआ। सत्य है, अपने कियेको कौन नहीं भोगता?

त्राहि त्राहि ब्रुवन्नूनं स्वेष्टं प्रति निजेष्टये ।
श्रुतिसम्पुटसम्भेदि शब्दजालमदोऽशृणोत् ॥१४॥

पताका—अपनी रक्षाके लिये जब वह अपने इष्टदेव कुमारको बुला रहा था कि 'रक्षा करो रक्षा करो' उस समय उसने एक बड़े भयानक शब्दको सुना ॥ १४ ॥

अरे रे सदरे मूर्ख त्वमिदं चारु नाचरीः ।
यदिमं योगिमूर्द्धन्याभरणं व्यग्रहीर्मुधा ॥१५॥

पताका—वह शब्द क्या था सो कहते हैं। अरे सत्पुरुषोंके शत्रु, तूने यह अच्छा नहीं किया जो व्यर्थमें परम योगीश्वर इन स्वामीजीके साथ विग्रह किया ॥ १५ ॥

अघोराणां परो मन्त्रो राममन्त्रः प्रकीर्तितः ।
तदाचार्यवरैः सार्कं नोचितो विग्रहग्रहः ॥ १६ ॥

पताका—अघोर मन्त्रोंकी अपेक्षा राममन्त्र सर्वोत्कृष्ट माना गया है। उस श्रीराममन्त्रके आचार्यके साथ विग्रह करना उचित नहीं है ॥ १६ ॥

वैष्णवाचार्य्यवर्य्योऽयं निसर्गकरुणापरः ।
चरणं शरणं तस्योपेहि त्यक्त्वा मृषा मदम् ॥१७॥

पताका—यह वैष्णवाचार्य्योंमें श्रेष्ठ आचार्य स्वभावसे ही दयालु हैं। अतः मिथ्याभिमानको त्यागकर उनके चरणशरणमें जा ॥ १७ ॥

त्वं च यद्यपि दण्ड्योऽसि क्षंस्यते हि तथापि सः ।
एतदेव महत्वं यदपकारिष्वनुग्रहः ॥१८॥

पताका—यद्यपि तुम दण्डके योग्य हो तथापि वह तुमको क्षमा कर देंगे। क्यों कि अपकार करनेवालेपर दया करना ही महत्त्व है ॥ १८ ॥

इतः परं परं कैश्चित्सहसा सिद्धवैष्णवैः ।
विग्रहे नाग्रहो ग्राह्यो मा विस्मार्षीर्वचो मम ॥१९॥

पताका—परन्तु अबसे किन्हीं सिद्ध वैष्णवोंके साथ सहसा विग्रहकी आकांक्षा नहीं करना। इस मेरे वचनको भूलना नहीं ॥१९॥

वाचमेतां समाकर्ण्य नितरामशरीरिणीम् ।
तत्रागाज्झटिति स्वार्थे विलम्बं सहते हि कः ॥२०॥

पताका—इस आकाशवाणीको श्रवण करके वह कनिष्ठ तत्काल ही स्वामीजीके पास गया। क्योंकि स्वार्थमें कोईभी विलम्ब नहीं करता ॥२०॥

बद्धाञ्जलिर्नमन्मूर्द्धा वेपमानोऽपमानितः ।
पुरस्तादागतस्तत्र यतिराजस्य पामरः ॥२१॥

पताका—वह नीच कनिष्ठ हाथ जोड़े हुये, मस्तक नमाये हुये, कांपता हुआ, अपमानित होकर श्रीस्वामीजीके आगे आया ॥ २१ ॥

नाम्ना कनिष्ठ एवाहं कनिष्ठोऽस्मि च वस्तुतः ।
परीचिक्षिषया यत्ते नाथ दुष्कृतमाचरम् ॥२२॥

पताका—हे नाथ! मेरा नाम कनिष्ठ है और वस्तुतः मैं कनिष्ठ ही

हूं कि जो आपकी परीक्षा करनेके लिये मैंने यह पाप किया ॥ २२ ॥

त्वन्माहात्म्यमविज्ञाय क्रूरकर्मा तमोनिधिः ।
अन्वष्ठां यदहं पापं तत्क्षमस्व महामुने ! ॥२३

पताका–हे महामुनीश्वर ! अज्ञानी और क्रूर कर्मवाला मैंने आपके माहात्म्यको जाने बिना जो पाप किया है उसे क्षमा करें ॥ २३ ॥

दासोऽहं ते महाराज पङ्कजाङ्घ्रियुगं तव ।
आश्रये स्वाश्रये दीनं करुणाकर मां कुरु ॥२४॥

पताका–हे महाराज ! मैं आपका दास हूं । आपके चरणकमलोंका आश्रय लेता हूं । हे दयालो ! मुझ दीनको अपने आश्रयमें स्वीकार करें ॥ २४ ॥

स्वर्भानुग्रसितो भानुर्वहिरेति पुनः पुनः ।
तव क्रोधानलग्रस्तः सदा तत्रावसीदति ॥२५॥

पताका–केतुसे ग्रसित सूर्य तो पुनः २ बाहर आता है परन्तु आपके कोधरूप अग्निसे ग्रस्त पुरुष वहां ही दुःखी हुआ करता है ॥२५॥

विरोधं च समाराध्य समाराध्य सतां त्वया ।
मया ह्याराधितं दुःखं केवलं सिद्धमानिना ॥२६॥

पताका–हे सज्जनोंके पूज्य ! आपके साथ विरोध करके, अपनेको सिद्ध माननेवाले मैंने केवल दुःख ही सिद्ध किया है ॥ २६ ॥

त्रिशूलमिव शूलं मे पिचण्डं पीडयत्यथ ।
भ्रमन्निव भवः सर्वो भाति मे भास्करप्रभ ॥२७॥

पताका–हे सूर्य समान तेजवाले ! यह शूल–पीडा मेरे पेटको त्रिशूलके समान पीडित कर रही है । समस्त संसार मुझे फिरता हुआ विदित होता है ॥ २७ ॥

प्राणाः कण्ठ गता नूनं निर्यातुं वर्ष्मणो मम ।
त्वरन्त इति मन्येऽहं परित्यज्य यतीन्द्र माम् ॥२८॥

पताका—हे यतीन्द्र! मैं समझता हूं कि कण्ठमें आये हुये मेरे प्राण अब मेरे इस शरीर को त्यागकर निकलने के लिये त्वरा कर रहे हैं॥२८॥

परिभूतेः फलं सद्यः प्राप्तवानस्मि तेऽनघ! ।
मीलिताक्षं कृतं यत्तद्दूयते हृदरिन्दम ॥२९॥

पताका—हे शत्रुसूदन! हे धर्मात्मन्! आप के तिरस्कार का फल मैंने तत्काल में ही पा लिया। आंख मींचकर जो कुछ मैंने किया वह मेरे हृदयको दुःखित कर रहा है ॥ २९ ॥

फेनिलेनाननेनेत्थं ब्रुवन्नथ च विब्रुवन् ।
दयनीयां दशां स्वीयां छिन्नवृक्ष इवापतत् ॥३०॥

पताका—फेनसे भरे हुये मुखसे इस प्रकार बोलता हुआ तथा अपनी दयापात्र दशाको प्रकट करता हुआ कटे हुये वृक्ष समान गिर पडा॥३०॥

पतितं पतितं दृष्ट्वा शरण्यः शरणै षिणाम् ।
भूपृष्ठे तं यतिश्रेष्ठो दयार्द्रहृदयोऽभवत् ॥ ३१ ॥

पताका—शरण चाहनेवाले उस पतित कनिष्ठको पृथिवीपर गिरा हुआ देखकर यतिराजका हृदय दयासे पिघल गया ॥३१॥

उत्थायोत्थाप्य तं तूर्णमालिलिङ्गोरसा रसात् ।
सतामेषोऽमलः पन्था दयन्ते ह्यसतामपि ॥ ३२ ॥

पताका—स्वामीजी उठकर, उसे उठाकर शीघ्र प्रेम पूर्वक छातीसे लगा लिये। क्योंकि दुष्टों पर भी दया करना, यह सत्पुरुषोंका निर्मल मार्ग है ॥ ३२ ॥

उवाच परम भीतः भीतो वाचमिमां मुनिः ।
सतां व्यतिक्रमस्तात नाशायाशु शरीरिणाम् ॥ ३३ ॥

पताका—परम प्रसन्न होकर मुनिराज इस प्रिय वचनको बोले कि हे तात ! सज्जनों का अपमान प्राणियों का शीघ्र नाश कर देता है ॥३३॥

स्वर्गापवर्गयोर्हन्ता गर्वः खर्वत्वकारणम् ।
तस्मात्स च परित्याज्यः श्रेयः सततमिच्छता ॥ ३४ ॥

पताका—गर्व स्वर्ग और अपवर्ग दोनोंका नाश करता है। वह लघुता का कारण है। अतः अपना कल्याण चाहने वालेको चाहिये कि उसका त्याग करदे ॥३४॥

श्रुत्वा श्रुतिमितं वाक्यं क्षणं मौनमुपाश्रितः ।
अश्रूदबिन्दुभिः पापं निजं सर्वमशूशुधत् ॥ ३५ ॥

पताका—वह कनिष्ठ वेदसम्मत इस वचनको सुनकर क्षणभर चुप रहा। तथा आंसुओंके जलसे अपने आपको धो डाला ॥ ३५ ॥

त्रिलोकीतिलकं योगी योगीन्द्रचरणाम्बुजम् ।
प्रणम्य स च साष्टाङ्गं जगादेदं कृताञ्जलिः ॥ ३६ ॥

पताका—वह कनिष्ट योगी तीनों लोकोंके तिलक समान योगीराज श्री स्वामीजीके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला ॥ ३६ ॥

भानवीयविभाभातो मानवीयतनुं दधत् ।
स्वयम्भविष्णुस्त्वं विष्णुर्जिष्णुः सद्धर्मविद्विषाम् ॥ ३७ ॥

पताका—आप सूर्यके प्रकाशके समान प्रकाश वाले हैं और मनुष्यका शरीर धारण किये हुये सद्धर्मके विद्वेषियोंको जीतने वाले आप साक्षात् स्वयम् विष्णु हैं ॥ ३७ ॥

अरुणस्त्वं मम व्याधिं तिग्मत्विड्विधुतारुणः ।
अधुनाधिमपि स्वामिन्समूलं छिन्धि सर्वथा ॥ ३८ ॥

पताका—प्रखर कान्तिसे सूर्यको भी परास्त करनेवाले आपने मेरे व्याधिका तो नाश कर दिया परन्तु हे स्वामिन् अब मूल सहित मेरे अगाध मानसिक दुःखका भी सर्वथा नाश कीजिये ॥३८॥

मुक्तियुक्तिर्वशे यस्य भुक्तिर्यस्य च किङ्करी ।
शाधि मामाधिपत्यं ते तस्याद्य स्वीकरोम्यहम् ॥ ३९ ॥

पताका—मुक्तिकी युक्ति जिनके वसमें हैं । भुक्ति (भोग) जिसकी दासी है उन आप स्वामीको मैं आज स्वीकार करता हूं । अतः आप मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ३९ ॥

प्रायश्चित्तविधानेन पतितोद्धारकः प्रभुः ।
दीक्षां वैष्णवीं तस्य दत्त्वा सन्मार्गमादिशत् ॥ ४० ॥

पताका—पतितोंके उद्धार करनेवाले श्रीस्वामीजीने उसे प्रायश्चित्त कराकर वैष्णवी दीक्षा देकर सन्मार्गका उपदेश दिया ॥ ४० ॥

विद्वज्जननमस्यायां वाराणस्यां कदाचन ।
महासेनो महासेनः सर्व विद्याविशारदः ॥ ४१ ॥
सर्वास्वाशासु सर्वेषां विदुषामावहन्द्विजः ।
पराजयमिहायासीद्विजिगीषुर्महामदः ॥ ४२ ॥

पताका—एक समय विद्वानोंके नमस्कार करने योग्य काशीमें विद्वानोंकी बडी भारी सेना लेकर सर्व विद्याओंमें निपुण महासेन नामका एक ब्राह्मण, सम्पूर्ण दिशाओंमें विद्वानोंका पराजय करता हुआ, महान् अहङ्कारी विजयकी इच्छासे, आया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

विश्वनाथार्चनं कार्यं यथाशैवागमं मया ।
योऽवरोत्स्यति मां तेन शास्त्रार्थः सम्भविष्यति ॥ ४३ ॥
इत्येवं घोषणाऽघोषि निर्भयेण बुधां पुरि ।
लिङ्गपूजनसामग्रीं समग्रां समचीचयत् ॥ ४४ ॥

पताका—उसने काशीमें यह घोषणा कर दी कि मैं शैव आगमके अनुसार इस विश्वनाथके लिङ्गकी पूजा करूंगा। जो कोई मुझे रोकेगा उसके साथ मेरा शास्त्रार्थ होगा। तदनन्तर उसने लिङ्गपूजनकी सब सामग्री संग्रह कर लिया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

केनचित्स्वामिना प्रोक्तं माभिमानं कृथा बुध !
निर्जनायामरण्यान्यामपि निर्भयता कुतः ॥ ४५ ॥

पताका—उस समय उसे किसी स्वामीने कहा कि पण्डितजी आप अभिमान न करें। यह न समझें कि काशी शून्य है। घोर जङ्गल चाहे निर्जन ही हो परन्तु उसमें निर्भयता कहांसे आ सकती है? ॥ ४५ ॥

विद्वच्छिरोमणिः श्रीमान् प्रतिवादिभयङ्करः।
दर्पिणां दर्पदलनो रामानन्दः प्रतिष्ठते ॥ ४६ ॥

पताका—विद्वानोंमें शिरोमणि, प्रतिवादियोंके लिये भयङ्कर और अहंङ्कारियोंके अहङ्कारको चूर्ण करनेवाले श्रीमान् रामानन्द स्वामीजी महाराज यहां विराजते हैं ॥ ४६ ॥

तन्नामश्रुतिमात्रेण पञ्चगङ्गं स आगतः।
आत्मनीनं न कुर्वन्ति कर्म गर्वकशाहताः ॥ ४७ ॥

पताका—श्रीस्वामीजीका नाम सुनते ही, वह पञ्चगङ्गाघाटपर जहां स्वामीजी रहते थे, आया। सत्य है अहङ्कारके कोड़ेसे मारे गये लोग आत्मकल्याण करनेवाले कर्मको नहीं करते ॥ ४७ ॥

व्याजहार गतस्तत्र दौवारिकमिदं वचः।
निजस्वामिनमक्षाय निवेदय मदागतिम् ॥ ४८ ॥

पताका—वहां जाकर पण्डित महासेनने द्वारपालसे कहा कि तुम अपने स्वामीजीसे मेरे आनेका समाचार कह दो ॥ ४८ ॥

भक्तदीपो नृपः पीपा तत्रासीत्समवस्थितः ।
कौतस्कुतः समायातः कश्च त्वमिति पृष्टवान् ॥ ४९ ॥

पताका—भक्तोंमें दीपक समान पीपा महाराज वहां ही बैठे थे। उन्होंने पूछा कि आप कौन हैं और कहां २ से फिरते आ रहे हैं? ॥४९

त्वरया संजगादासौ जयोत्कण्ठितमानसः ।
अधीती सर्वशास्त्रेषु दाक्षिणात्योऽस्मि सद्द्विजः ॥ ५० ॥

पताका—विजयके लिये उनके मनमें बडी उत्कण्ठा थी अतः शीघ्रतासे उन्होंने उत्तर दिया कि मैं सर्वशास्त्र सम्पन्न दक्षिणी ब्राह्मण हूं ॥५०॥

सर्वा दिशो विजित्यैव समगंस्त मयाऽधुना ।
काशीकेयं पुरी सर्वविद्वत्पुरनिदर्शना ॥ ५१ ॥

पताका—सम्पूर्ण दिशाओंके विद्वानोंको जीतकर, सर्व विद्वानोंके नगरोंमें शिरोमणिभूत इस काशीमें मैं आया हूं ॥ ५१ ॥

युष्माकं च गुरोर्नाम कर्णाकर्णि मया श्रुतम् ।
अपराजित्य तं चाद्य न किमप्याचरिष्यते ॥ ५२ ॥

पताका—कर्णपरम्परासे मैंने आपके गुरुका नाम सुना है। उनको पराजित किये बिना आज मैं कुछ नहीं करूंगा ॥ ५२ ॥

पीपाऽपि प्रत्युवाचैवं किमवोचः पुनर्वद ।
यतमानोऽपि नाशक्रोदक्षरमपि भाषितुम् ॥ ५३ ॥

पताका—पीपाजीने कहा कि आपने क्या कहा, एक वार पुनः बोलिये। उस समय महासेनजीने बहुत प्रयत्न किया परन्तु एक अक्षरभी बोल न सके. ॥ ५३ ॥

स समस्थित तत्रैवमाहोराद्वयमद्वयम् ।
वृत्तं वीक्ष्य जयेच्छा तन्मनसः स्वेच्छया व्यगात् ॥ ५४ ॥

पताका—वह वहां ही दो घड़ी बैठे रहे। ऐसा अद्भुत वृत्तान्त देखकर उनके मनमेंसे विजयकी श्रद्धा अपने आप ही निकल गई ॥५४॥

आश्चर्यमिदमालोक्य गताहंयुर्यदाऽभवत् ।
तदा प्राप पुनर्वाचमाप लज्जां विशेषतः ॥ ५५ ॥

पताका—इस आश्चर्यको देखकर जब उनका अहङ्कार नष्ट हुआ तब पुनः मुखमेंसे शब्द निकला और अधिक लज्जित हो गये ॥५५॥

यामिनां पतिमासाद्य मिलत्पाणिर्नमच्छिराः ।
अपराधक्षमां प्रार्थ्य सर्वथा शरणं गतः ॥ ५६ ॥

पताका—महासेन हाथ जोड़े हुये, मस्तक नमाते हुये, श्रीयतिराजके पास जाकर अपराधक्षमाकी प्रार्थना करके शरणागत हो गये ॥ ५६ ॥

दुस्तरः समयः प्राप्तः कलिधर्मो विजृम्भते ।
श्रौतधर्मसदाचारपद्धतिः प्राप्तपद्धतिः ॥ ५७ ॥

पताका—समय बड़ा दुस्तर आ गया है। कलिकालका धर्म बढ़ रहा है। वैदिक धर्मके सदाचारकी जो पद्धति है वह पैरोंतले कुचली जा रही है ॥ ५७ ॥

वर्णाश्रमसदाचाराः श्लथन्ते हि शनैः शनैः ।
देशोऽयं यवनप्रायो जातो जात बलादपि ॥ ५८ ॥

पताका—धीरे २ वर्णाश्रमके सदाचार भी शिथिल होते जा रहे हैं। हे प्रिय महासेन! यह देश बलात्कारसे यवन जैसा ही हो गया है ॥५८॥

कलिकालसमारब्धमहायज्ञेऽत्र भारते ।
होता च यवनो धर्मच्छागस्तत्र निहन्यते ॥ ५९ ॥

पताका—इस भारतमें कलिकालरूप यजमानने महायज्ञ आरम्भ किया है। उसमें होता यवन हैं और धर्मरूपी बकरा मारा जा रहा है ॥५९॥

यवना धर्महीना धिक्स्वसाम्राज्यमतिष्ठिपन् ।
पारतन्त्र्याभिधे नूनं नरकेऽपप्तंश्च दैशिकाः ॥ ६० ॥

पताका–धर्महीन यवनोंने अपना साम्राज्य स्थापन कर लिया है। धिक्कार है, इस देशके लोग परतन्त्रतारूप नरकमें पड़ गये ॥ ६० ॥

हिन्दवः प्रायशो नित्यं योयुध्यन्ते परस्परम् ।
स्वविरोधः परेषां च सम्पुष्णाति हितं सदा ॥ ६१ ॥

पताका–हिन्दुलोग प्रायः परस्पर नित्य युद्ध किया करते हैं। स्वजनोंके साथ विरोध होनेसे शत्रुओंका सदा हित होता ही है ॥ ६१ ॥

तेन याहि स्वदेशे त्वं पारस्परिकयोधनम् ।
निवर्तय महायत्नाद्देशध्वंसोऽन्यथा ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

पताका–अतः हे महासेन! तुम अपने देशमें जावो। और महान् प्रयत्न करके आपसकी लड़ाईको बन्द करो। नहीं तो अवश्य ही देशका नाश हो जावेगा ॥ ६२ ॥

योगिकण्ठीरवस्तस्मै यतिराजो विदांवरः ।
इत्यादिश्य गृहं गन्तुमादिदेश सुखेन तम् ॥ ६३ ॥

पताका–योगियोंमें सिंहसमान, महाविद्वान् यतिराजने महासेनको ऐसा आदेश करके घर जानेकी आज्ञा दी ॥ ६३ ॥

सोऽपि मूर्ध्नाऽग्रहीदाज्ञामाचार्यस्य शुभायतिम् ।
प्रययौ च प्रणम्याशु साष्टाङ्गं पद्मपादयोः ॥ ६४ ॥

पताका–महासेनजीभी भविष्यमें सुन्दर फलवाली आचार्यकी आज्ञाको मस्तकपर धारण किये। स्वामीजीके चरणकमलमें साष्टाङ्ग प्रणाम करके शीघ्र प्रयाण किये ॥ ६४ ॥

अपारो नाम कोऽप्यासीत्पारावारः क्षमातले ।
सर्वतान्त्रिकसिद्धीनां ताराराधी बुधद्विजः ॥ ६५ ॥

पताका—एक अपार नामका कोई विद्वान् ब्राह्मण था। वह तारा-देवीका उपासक था। अतएव पृथ्वीपर सम्पूर्ण तान्त्रिक सिद्धियोंका सागर था ॥ ६५ ॥

उत्कलान्दाक्षिणात्यांश्च सर्वान् सिद्धान् परास्य सः।
अङ्गस्थलं महच्चारु कामाक्षायां न्यधीयमत् ॥ ६६ ॥

पताका—उस अपारने उत्कल और दक्षिण देशके समस्त सिद्धोंको परास्त करके कामाक्षामें एक बहुत सुन्दर अङ्गस्थल नियत किया ॥६६॥

विद्या नाम च तस्यासीद्दुहिता सुहितावहा।
शारदशर्वरीकान्तकान्ताननमनोहरा ॥ ६७ ॥

पताका—उस अपारके शरदृऋतुके चन्द्रमासमान सुन्दरमुखसे मनोंको हरनेवाली, तथा कल्याण करनेवाली विद्या नामकी एक पुत्री थी ॥६७॥

विम्बविम्बप्रतिविम्बरदच्छदविभूषिता।
सर्वसीमन्तनीदर्पसर्पसीमन्तविभ्रमा ॥ ६८ ॥

पताका—विम्बाफलके समान रक्त ओष्ठोंसे विभूषित थी तथा सम्पूर्ण सुन्दर स्त्रियोंके दर्पको डंस लेनेके लिये सर्पके समान केशोंवाली थी॥६८॥

यतः कुतोऽपि सन्त्रस्तमृगशावकलोचना।
लसत्सद्गुणशोभाढ्या परा श्रीरिव सुन्दरी ॥ ६९ ॥

पताका—जहां कहींसे डरे हुये मृग शावकके समान चञ्चल उसके नेत्र थे। सद्गुणोंसे शोभित दूसरी लक्ष्मीके समान वह सुन्दरी थी ॥६९॥

तारुण्यारण्यसंञ्चारियुववातायुमोहनम्।
वंशीस्वराधरीकारक्षमं स्वरमुपेयुषी ॥ ७० ॥

पताका—जवानीरूप जङ्गलमें फिरनेवाले जवान पुरुषरूप मृगोंको मोहित करनेवाला तथा वंशीके स्वरकोभी नीचा दिखानेवाला उसका स्वर था ॥ ७० ॥

कामं कामं परित्यज्य भूतलालोकनागता ।
साक्षाद्रतिरिवारेजे कामचारा हि देवता ॥ ७१ ॥

पताका–अत्यन्त सुन्दर कामको भी छोड़कर पृथ्वीका अवलोकन करनेके लिये आई हुई रतिके समान वह शोभा देती थी । क्योंकि देवता लोग स्वेच्छाचारी होते हैं ॥ ७१ ॥

पदवाक्यप्रमाणज्ञरामानन्दजगद्गुरोः ।
अनवद्या सुविद्येव प्रमदा प्रमदावहा ॥ ७२ ॥

पताका–जिस प्रकारसे पद–वाक्य–प्रमाणज्ञ जगद्गुरु श्रीरामानन्द स्वामीजीकी निर्दोष विद्या आनन्द देनेवाली थी उसी प्रकारसे वह तरुणी अपार–पुत्री भी आनन्द देनेवाली थी ॥ ७२ ॥

तपःसत्यधृतिक्षान्तिविद्याशमदमादिभिः ।
प्रकाशमानां सा काशीं द्रष्टुकामा समागता ॥ ७३ ॥

पताका–तप, सत्य, धैर्य, क्षमा, विद्या, शम और दम आदिसे प्रकाशमान काशीको देखनेकी इच्छासे वह वहां आई ॥ ७३ ॥

काश्यामितस्ततः सासीद्भ्रमन्ती द्विजकन्यका ।
हरन्ती सर्वलोकानां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ ७४ ॥

पताका–वह ब्राह्मणकन्या लोगोंके नेत्रों और मनको हरण करती हुई काशीमें इधर उधर फिर रही थी ॥ ७४ ॥

कदाचिद्विशती देवी विदुषी विदुषामपि ।
समाजे शास्त्रसाम्राज्यं शास्त्री साह्यकुतोभया ॥ ७५ ॥

पताका–किसी दिन शास्त्र साम्राज्यका शासन करनेवाली उस विदुषी विद्यादेवीने विद्वानोंके समाजमें निर्भय प्रवेश किया ॥ ७५ ॥

तत्र सिंहासनासीनो भानुमानिव भानुमान् ।
सर्वभूमण्डलस्थायिविद्वद्वृन्दाभिवेष्टितः ॥ ७६ ॥

पताका—वहां सिंहासनपर बैठे हुये, सूर्यके समान प्रभावान्, समस्त पृथिवीके विद्वानोंसे परिवेष्टित—॥ ७६ ॥

सुन्दरश्रीसमापन्नसूर्द्ध्वपुण्ड्रलसच्छिराः ।
सूत्रत्रयीं दधच्छुभ्रां हृदयेन त्रयीमिव ॥ ७७ ॥

पताका—सुन्दर श्रीयुक्त ऊर्द्ध्वपुण्ड्रसे जिनका मस्तक सुशोभित हो रहा था। जो हृदयमें वेदत्रयीके समान सूत्रत्रयी—यज्ञोपवीतको धारण किये हुये थे—॥ ७७ ॥

काषायाम्बर आचार्य्यः सर्वशास्त्रविदांवरः ।
त्रिगुणातीततां वक्तुं त्रिदण्डं विभ्रदुत्तमम् ॥ ७८ ॥

पताका—जो आचार्य्य थे। काषाय वस्त्र धारण किये हुये थे। सर्व शास्त्र विशारद थे। त्रिगुणतीतताको प्रकट करनेके लिये जो सुन्दर त्रिदण्ड धारण किये हुये थे ॥ ७८ ॥

तत्तेजस्तत्तपः शान्तां मूर्तिं तामावहन्नसौ ।
रामानन्दयतीन्द्रोऽस्या नयनातिथितां गतः ॥ ७९ ॥

पताका—अपूर्व तेज, लोकोत्तर तप और अद्वितीय शान्त मूर्ति धारण किये हुये श्रीरामानन्द स्वामीजी महाराजपर उसकी दृष्टि पड़ी ॥७९॥

यतीक्षणकृतार्था सा सुभगा नवयौवना ।
तदन्तेवासिनं चैकमीक्षाञ्चक्रे सुयौवनम् ॥ ८० ॥

पताका—उस सुन्दर भाग्यवाली, नवयौवना विद्याने यतिराजके दर्शनसे कृतार्थ होकर उनके एक सुन्दर युवावस्थासम्पन्न विद्यार्थीको देखा।

तल्लावण्यमहाम्भोधौ सुतनुर्निममज्ज सा ।
रेजिरे वदनाम्भोजे तस्याः प्रस्वेदविन्दवः ॥ ८१ ॥

पताका—उस शिष्यके सौन्दर्यरूप महासागरमें वह सुन्दरी डूब गई। उसके मुखकमलपर स्वेदके बिन्दु झलकने लग गये ॥ ८१ ॥

वेपथुः सर्वगात्रेषु रोमहर्षसमुद्भवः ।
अनंगेषुप्रविद्धाङ्गी दशां कामपि सान्वभूत् ॥ ८२ ॥

पताका—सर्वाङ्गमें कम्पन पैदा हो गया । रोमाञ्च हो आया । कामके बाणोंसे बींधी गई वह त्रिया किसी अपूर्व दशाका अनुभव करने लगी ॥

उपलभ्य रहस्थं सा रहस्यं स्वमनोगतम् ।
सोल्लासं कथयामास शिष्याय ब्रह्मचारिणे ॥ ८३ ॥

पताका—एकान्त पाकर उस त्रियाने अपने हृदयके रहस्यको प्रसन्नताके साथ उस ब्रह्मचारीके आगे निवेदन किया ॥ ८३ ॥

मारच्छवे कुमारास्मन्मनोरथसुरद्रुम !
अपडक्षीणमेकं ते मन्त्रं च विनिवेदये ॥ ८४ ॥

पताका—वह बोली, हे काम समान सुन्दर तथा मेरे मनोरथके कल्पवृक्ष कुमार! मैं नितान्त गोप्य एक वस्तु आपसे निवेदन करती हूं ॥८४॥

क्षीरस्याति यथा बालो मयश्च लवणस्यति ।
त्वदस्यमि तथा चाहं दृष्ट्वा त्वां वीर्यवत्तमम् ॥ ८५ ॥

पताका—जिस प्रकारसे बालक दूधकी इच्छा करता है, ऊंट लवणकी इच्छा करता है वैसेही आपको परम वीर्यवान् देखकर मैं आपकी इच्छा करती हूं ॥ ८५ ॥

एतच्च शृण्वता तूर्णं भर्त्सिता सोर्द्ध्वरेतसा ।
मन्तुमन्त्रविपन्नात्मा स्वसिद्धिमनुसन्दधे ॥ ८६ ॥

पताका—वह ब्रह्मचारी ऊर्द्ध्वरेता था अतः यह सुनतेही उसने त्रियाका तिरस्कार कर दिया । उसने क्रुद्ध होकर अपनी सिद्धिका अनुसन्धान किया ॥ ८६ ॥

तस्या मन्त्रप्रयोगेण तत्क्षणं गतचेतनः ।
पपात भूतले वर्णी शोणितं चोद्वमाम सः ॥ ८७ ॥

पताका—उसके मन्त्रप्रयोगसे वह ब्रह्मचारी उसी समय मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और रक्त वमन करने लगा ॥ ८७ ॥

यतिराप्तसमाचारो मायां मायाविनीकृताम् ।
संजहार क्षणेनाभूत्स पुनर्लब्धसंज्ञकः ॥ ८८ ॥

पताका—यह समाचार पाकर श्रीस्वामीजीने मायाविनी विद्याकी माया-को दूर कर दिया। वह ब्रह्मचारी क्षणभरमें ही पुनः सावधान हो गया ॥

तस्याः सिद्धिबलं चापि शापेनाजीहरन्मुनिः ।
स्वगुरुं गुरु दुःखं तद्गत्वा सर्वमचीकथत् ॥ ८९ ॥

पताका—मुनीश्वरने उस विद्याके सिद्धिबलको भी शापसे नष्ट कर दिया। उसने अपने पिताके पास जाकर इस बड़े दुःखको निवेदन किया॥

सिद्धोऽपारो निशम्यैतद्दारुणं कन्यकामुखात् ।
चुक्रोध मुनये सार्धं सिद्धैरागाच्च तां पुरीम् ॥ ९० ॥

पताका—अपनी कन्याके मुखसे इस दारुण समाचारको सुनकर वह अपार सिद्ध मुनीश्वर श्रीस्वामीजीके ऊपर बहुत क्रुद्ध हुआ और अन्य सिद्धोंको साथ लेकर काशीमें आया ॥ ९० ॥

मुनिं दूषयितुं मूर्खो बहुधा प्रायतिष्ट सः ।
सर्वज्ञः स परं योगिराजो मायामुदच्छिनत् ॥ ९१ ॥

पताका—उस मूर्खने स्वामीजीको दूषित करनेके लिये बहुत प्रयत्न किये परन्तु सर्वज्ञ योगिराजने उसकी मायाको उच्छिन्न कर दिया ॥९१॥

या च यद्दासदास्येऽपि पदवीं न प्रपद्यते ।
तस्य श्रीयतिराजस्य माया मायात्कुतः पुरः ॥ ९२ ॥

पताका—जो माया जिस स्वामीजीके दासकी भी दासताके योग्य नहीं है वह माया भला श्रीस्वामीजीके आगे कैसे ठहर सके? ॥ ५२ ॥

कविरो धर्मवीरोऽपि गुहाया एेदुवाच च ।
पापात्मायं महाराज वधार्हो वधमर्हति ॥ ९३ ॥

पताका-गुहामेंसे धर्मवीर कविरदासजी भी आये और बोले कि श्री महाराज जी ! यह पापात्मा वध्य है अतः वध करना चाहिये ॥ ९३ ॥

दयार्द्रहृदयः स्वामिरामानन्दो यतीश्वरः ।
उद्यतं तं तथा कर्तुं वर्जयामास यत्नतः ॥ ९४ ॥

पताका-कविरजी उस अपारको मन्त्रबलसे मारनेको उद्यत हो गये थे परन्तु दयालु स्वामीजीने ऐसा करनेसे यत्नपूर्वक रोक दिया ॥९४॥

क्रमशश्च परीक्ष्यासौ सर्वाः सिद्धीस्त्रपामयात् ।
हिमपातेन शुष्यन्ति सरोजानि सरांसि नो ॥ ९५ ॥

पताका-वह अपार क्रमसे सब सिद्धियोंकी परीक्षा करके लज्जाको प्राप्त हुआ । सत्य है, हिमके पड़नेसे केवल कमल सूख जाते हैं सरोवर नहीं सूखते ॥ ९५ ॥

अनार्यमिदमालोच्य तारा चारादुपस्थिता ।
दिशः पुनाना सोवाद स्वमुखोद्गन्धिवायुना ॥ ९६ ॥

पताका-इस अनुचित कर्मको देखकर वहां पासमें ही तारादेवी प्रकट हुई । अपने मुखके सुगन्धित वायुसे दिशाओंको पवित्र करती हुई बोलीं ॥

कथं पित्ससि रे मूढ स्वात्मानं किं हि रित्ससि ।
जगद्गुरोः पुरस्तात्किं जाग्रहीपि दुराग्रहम् ॥ ९७ ॥

पताका-अरे मूर्ख ! तू क्यों पतित होना चाहता है ? क्यों अपना नाश करनेकी इच्छा करता है ? जगद्गुरु श्रीस्वामीजीके सामने क्यों दुराग्रह करता है ? ॥ ९७ ॥

जनुषान्धो न जानाति यथा रूपं हि वस्तुनः ।
तथा त्वं न विजानास्यमुष्य माहात्म्यमैश्वरम् ॥ ९८ ॥

पताका–जैसे जन्मका अन्धा किसी वस्तुके रूपको नहीं जानता वैसेही तुम श्रीस्वामीजीके ऐश्वर माहात्म्यको नहीं जानते हो ॥ ९८ ॥

इत्युक्त्वा सुन्दरी ताराऽस्पृशद्धस्तेन तद्दृशौ ।
व्यजिज्ञपन्मुनिं द्रष्टुंधुताज्ञानावृतिं द्विजम् ॥ ९९ ॥

पताका–ऐसा कहकर तारासुन्दरीने अपने हाथसे अपारकी दोनों आखोंको स्पर्श किया । अज्ञानरूप आवरणसे मुक्त हुये अपारको आज्ञा दी कि अब तुम मुनीश्वरका दर्शन करो ॥ ९९ ॥

चतुर्मुखादयः सर्वे सर्वपूज्या महर्षयः ।
कुटीरं परितः प्रेम्णा भ्रमन्ति करमालिकाः ॥ १०० ॥

पताका–उसने देखा कि, सर्वपूज्य ब्रह्मादि महर्षि हाथमें माला लेकर श्रीस्वामीजीकी कुटीके चारों ओर प्रेमसे फिर रहे हैं ॥ १०० ॥

आञ्जनेयो जयी तिष्ठन् समया तं मुनीश्वरम् ।
गदापाणिश्च विघ्नानां राशिं हरति दूरतः ॥ १०१ ॥

पताका–विजयी श्रीहनुमान्‌जी भी हाथमें गदा लेकर मुनिराजके समीपमें खड़े रहकर दूरसे ही विघ्नोंका नाश कर रहे हैं ॥ १०१ ॥

स्वयं श्रीमाननन्तात्मा सर्वशेषी धनुर्धरः ।
श्रियः पतिरवातारीत्पृथिव्यां धर्मरक्षया ॥ १०२ ॥

पताका–उसने यह भी देखा कि, अनन्तात्मा, सर्वशेषी, धनुर्धारी श्रीरामजी महाराज स्वयं पृथिवीपर धर्मकी रक्षा करनेके निमित्त अवतार लेकर पधारे हैं ॥ १०२ ॥

तेन सिद्धाधिनाथेन भिन्नाहङ्कारपर्वणा ।
इदं सर्वमवालोकि महाचकितचक्षुषा ॥ १०३ ॥

पताका–अहङ्कार रहित उस अपारने आश्चर्यकी दृष्टिसे यह सब देखा ॥ १०३ ॥

देवीं प्रार्थयन्मूर्ध्ना मातर्जाड्यं क्षमस्व मे ।
करणीयं तथा शाधि यथा स्यां धूतकिल्बिषः ॥ १०४ ॥

पताका—मस्तक झुकाकर देवीकी प्रार्थना करने लगा कि हे मातः ! मेरी जडताको क्षमा करो । तथा मुझे ऐसी आज्ञा करो जिससे मेरा पाप दूर हो ॥ १०४ ॥

प्रत्युवाच तदा तारा यथाजात यदीहसे ।
कल्याणमस्य कल्याणमूर्तेश्चरणमाश्रय ॥ १०५ ॥

पताका—तारादेवीने उत्तर दिया कि हे मूढ ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो कल्याणमूर्ति इन स्वामीजीके चरणका आश्रय ले ॥

पन्थानं नान्यथा मन्ये त्वदुद्धारस्य दुर्मते !
तेन मोक्षमतिर्भूत्वा तं मोक्षपतिमाप्नुहि ॥ १०६ ॥

पताका—हे दुर्मते ! इससे अन्य मार्ग मैं तेरे उद्धारके लिये नहीं देखती हूं । अतः मोक्षबुद्धि होकर उन्हीं मोक्षपतिकी शरणमें जा ॥ १०६ ॥

तिरोबभूव सा तारा व्याहृत्य हितकृद्वचः ।
अपारः कृष्णकर्मासौ तत्र मूढ इव स्थितः ॥ १०७ ॥

पताका—वह तारा हितके वचन कहकर अन्तर्हित हो गई । दुष्ट कर्मवाला अपार वहां ही मूढकी भाँति स्थित रहा ॥ १०७ ॥

पश्चात्पश्चात्तपँश्चासावपध्वस्तश्च तारया ।
शिश्रिदानस्य सम्प्राप्तो यतिराजस्य चाश्रमम् ॥ १०८ ॥

पताका—तारादेवीसे धिक्कृत होकर पीछेसे पश्चात्ताप करता हुआ पुण्यकर्मवाले श्रीस्वामीजीके आश्रयमें वह आया ॥ १०८ ॥

तत्राश्रमस्मुनेः पादावुपगृह्य च दुर्विधः ।
त्राहि त्राहीति स व्यक्तं रुरोद चिरमग्रजः ॥ १०९ ॥

पताका—वहां आश्रममें आश्रममुनि—श्रीस्वामीजीके चरण पकड़कर 'त्राहि त्राहि' ऐसा बोलता हुआ दीन होकर वह अपार बहुत देर तक जोर जोरसे रोता रहा ॥ १०९ ॥

प्रपन्नपारिजातोऽसौ तदश्रूणि परामृशन् ।
चक्षमे तस्य दोषान् हि महतामाशुतोषिता ॥ ११० ॥

पताका—प्रपन्नोंके लिये कल्पवृक्षके समान श्रीस्वामीजी उसके आंसुओंको पोंछते हुये उसके दोषोंको क्षमा कर दिये। क्योंकि महापुरुष शीघ्र प्रसन्न होनेवाले होते हैं ॥ ११० ॥

न्यस्ताहंकृतये तस्मै यतिराट्छरणं ददौ ।
भगवत्प्राप्त्युपायो हि सर्वसाधनहीनता ॥ १११ ॥

पताका—यतिराजने अहङ्कार रहित अपारको शरण प्रदान किया। क्योंकि सर्व प्रकारके साधनोंकी हीनता ही भगवत्प्राप्तिका उपाय है ॥१११॥

मन्त्रराजमवाप्यासावाचार्य्यचरणान्तिके ।
पद्मनाभाभिधस्तत्रोवास भक्तिरसं पिबन् ॥ ११२ ॥

पताका—आचार्यचरण—श्रीस्वामीजी महाराजसे श्रीराममन्त्रको ग्रहण करके पद्मनाभ नामवाला होकर उन्हींके समीपमें भक्तिरसका पान करता हुआ वह अपार रहने लगा ॥ ११२ ॥

श्रीपतिरतिवैमुख्यादापन्ना विषमदशां,
संसृतिभुजगीफूत्काराद्भीताः सितमतयः ।
ये यतिपतिरामानन्दाचार्य्यः परमकृपा-
वाञ्छुतिपथमानीयाऽस्वेवं तानुददीधरत् ॥ ११३ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य—ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास—विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-
दिग्विजये पञ्चदशः सर्गः

पताका—जो लोग श्रीरामजीसे विमुख होकर विषम दशाको प्राप्त थे, संसाररूप सर्पके फूत्कारसे भीत होकर शुद्ध बुद्धिवाले हो गये थे, उन सबको परम कृपालु श्री स्वामी रामानन्दजी महाराजने वेदमार्गपर आरूढ कराकर शीघ्रही उनका उद्धार कर दिया ॥ ११३ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारि-श्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्रामानन्द-दिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां पञ्चदशः सर्गः

षोडशः सर्गः

वेदादिशास्त्राण्यखिलानि सम्यङ्मोक्षप्रदायानि मुनिप्रवीरः ।
अध्यापयन्नास्त सुखेन काश्यामाचार्यवर्यो निजशिष्यवर्गम् ॥१॥

पताका—मुनिश्रेष्ठ आचार्य्यवर्य्य श्रीस्वामीजी महाराज अपने शिष्यों-को मोक्षप्रद वेदवेदान्तादि शास्त्रोंको अच्छे प्रकारसे अध्ययन कराते हुये सुखपूर्वक काशीमें निवास करते थे ॥ १ ॥

दिने च कस्मिन्नपि पूज्यपादः श्रीब्रह्मसूत्रे निजभाष्ययुक्ते ।
'उत्क्रान्तिगत्ये'ति वचो विवृण्वन्वैयासिकं तत्र बभूव योगी ॥२॥

पताका—किसी दिन पूज्यपाद श्रीस्वामीजी स्वभाष्ययुक्त ब्रह्मसूत्रके "उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥' (ब्र० सू० २। ३। २०) इस व्याससूत्रका विवरण कर रहे थे ॥ २ ॥

काले च तस्मिन्वपुषा गरिष्ठो देशानटन् प्राप च कोपि विद्वान् ।
उपाविशत्तत्र समेत्य भूमौ विद्वद्वरिष्ठस्य पदं नमन्सः ॥ ३ ॥

पताका—उसी समय एक बृहत्काय विद्वान् देशाटन करते हुये वहां आये। वहीं आकर वह परम विद्वान् श्रीस्वामीजीके चरणोंको प्रणाम करते हुये भूमिपर बैठ गये ॥ ३ ॥

भूयाद्भवत्स्वागतमेव जात किमीहमानोऽत्र कुतः समागाः ।
किं नाम कश्चाभिजनस्तवेति मुनिः स पप्रच्छ शमप्रधानः ॥४॥

पताका–अत्यन्त शान्तिवाले मुनिराज श्रीस्वामीजीने 'आपका स्वागत हो' ऐसा कहकर पूछा कि आप कहांसे आये हैं? क्या चाहते हैं? क्या नाम है? आपका अभिजन (जहां माता पिता रहते हों वह देश) कौन सा है? ॥ ४ ॥

व्याहारि तेनापि ममास्ति मद्रपुरं निवासोऽभिजनोऽपि सैव ।
प्रयागतोऽये द्विजसत्यमूर्तिर्नाम्नाहमिच्छन्भवता हि वादम् ॥५॥

पताका–आगन्तुक विद्वान्ने कहा कि मैं मद्रासमें रहता हूं। मेरा अभिजन भी वहीं है। आपके साथ शास्त्रार्थ करनेकी इच्छासे मैं प्रयागसे आ रहा हूं। सत्यमूर्ति मेरा नाम है ॥ ५ ॥

तद्वाचमाचम्य पतिर्यतीनां विहस्य तं प्रत्यवदद्द्विजेन्द्र !
क्षणं प्रतीक्षस्व समाप्य पाठं भवन्मनीषामभिपूरयामि ॥६॥

पताका–उनके इस वचनको सुनकर, मुसुकुराकर, यतिपति श्रीस्वामीजीने उत्तर दिया कि मैं इस पाठको समाप्त करके आपकी इच्छाको पूर्ण करता हूं ॥ ६ ॥

ततः परं संयमिसार्वभौमः पुनः प्रवृत्तं हि तदेव सूत्रम् ।
तत्सूत्रसङ्गत्यभिलापपूर्वं प्रचक्रमेऽध्यापयितुं मनीषी ॥७॥

पताका–उसके पश्चात् परम संयमी श्रीस्वामीजीने उसी प्रस्तुत सूत्रको उसकी सङ्गतिवर्णन पुरस्सर पढ़ाना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

शङ्कासमाधानपुरस्सरं तान् महर्षिचूडामणिरश्रमेण ।
अध्याप्य शिष्यान्निजगाद तत्र स्थितं बुधं वादमपेक्षमाणम् ॥८॥

पताका–महर्षि चूडामणि श्रीस्वामीजी विना परिश्रम शङ्कासमाधान-

पूर्वक अपने शिष्योंको पढाकर शास्त्रार्थकी इच्छासे बैठे हुये सत्यमूर्तिसे बोले ॥ ८ ॥

निर्वृत्तकार्योऽस्मि मनीषितं ते यथा फलेत्त्वं हि तथा विदध्याः ।
आतिष्ठतां सज्जन पूर्वपक्षं यस्मिन्मनस्ते रमते च शास्त्रे ॥ ९ ॥

पताका—हे सज्जन! मेरा कार्य पूरा हो गया। अतः जिस प्रकार आपकी इच्छा पूर्ण हो वैसा करिये। जिस शास्त्रमें आपकी इच्छा हो पूर्व-पक्ष करिये ॥ ९ ॥

तदोमिति व्याहरदेष विद्वानूचे च यत्पाठितमेतदेवम् ।
ज्ञातृत्वरूपः खलु जीव एष एवं च तत्प्रत्यवतिष्ठ ईश ॥१०॥

पताका—तब सत्यमूर्तिने कहा, बहुत अच्छा। आपने जो अभी यह पढ़ाया है कि "जीव ज्ञातृत्वस्वरूपवाला है" मैं इसीका खण्डन करता हूं ॥ १० ॥

स्वाभाविकं चेन्मनुषे कदाचिज्ज्ञातृत्त्वमस्यात्मन ईहितस्य ।
प्रसज्यते सर्वगतस्य तस्य दोषश्च सर्वत्र सदोपलब्धिः ॥ ११ ॥

पताका—उसने कहा कि यदि आप अपने वाञ्छित आत्माका स्वाभाविक ज्ञातृत्व स्वीकार करेंगे तो सर्वव्यापी आत्माका सर्वत्र और सर्वदा उपलब्धिरूप दोष प्रसक्त होगा। तात्पर्य यह है कि अद्वैतवेदान्तमें जीव ब्रह्मस्वरूप होनेके कारण व्यापक—विभु स्वीकार किया गया है। उसी संस्कारसे प्रेरित होकर इस विद्वान्ने प्रश्न किया कि आत्मा तो व्यापक है। यदि उसका स्वाभाविक ज्ञातृत्व स्वीकार करेंगे तो वह ज्ञातृत्व सर्वदा और सर्वत्र उपलब्ध होना चाहिये। होता तो नहीं है। अतः आपके मतमें सर्वत्र और सर्वदा ज्ञातृत्वोपलब्धिरूप दोष प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

स्यादेष दोषो यदि सर्वगः स्यादात्मा परं नास्ति यतोऽणुरेषः ।
उत्क्रान्तिगत्यागतिदर्शनेन न स्यान्ममत्वं विदुषां विभुत्वे ॥१२॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराज बोले कि यह सर्वत्र ज्ञातृत्वोपलब्धि और सर्वदा ज्ञातृत्वोपलब्धिरूप दोष तब होता यदि आत्मा विभु होता। परन्तु ऐसा है नहीं। क्योंकि "उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्" (ब्र० २।३।२०) इस सूत्रमें व्यासदेवने जीवात्मविभुत्वादका खण्डन किया है। अतः विद्वानोंकी ममता विभुवादमें नहीं हो सकती।

तात्पर्य यह है कि 'तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुषा वा मूर्ध्नोवाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः' (बृ० ६।४।२) इस श्रुतिमें जीवकी उत्क्रान्तिका निरूपण है। 'ये वै केचास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति' (कौषी० १।२) इस श्रुतिमें जीवकी गतिका निरूपण है। तथा 'तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे' (बृ० ६।४।६) इस श्रुतिमें जीवकी आगतिका निरूपण है। यदि आत्मा विभु होता तो यह तीनों—उत्क्रान्ति, गति और आगतिका निरूपण श्रुतियाँ न करती। क्योंकि वह व्यापकमें सर्वथा असम्भव हैं॥ १२ ॥

शरीरसंयोगविभेदरूपत्वेनोत्क्रमो यद्यपि संभवःस्यात्।
यथाकथंचित्स्थितिशीलकस्य तथापि ते द्वे न च सम्भवेताम् ॥१३॥

पताका—तथा यदि विभु आत्माका शरीरके वियोगरूप उत्क्रान्तिका किसी प्रकार सम्भव भी हो तो भी गति और आगति ये दोनों नितान्त असम्भव ही है। अतएव आत्मा विभु नहीं किन्तु अणु है ॥१३॥

अथो स वा एप महानितीदं श्रुतिर्महत्त्वं स्वतो ब्रवीति।
श्रुतेर्विरुद्धेन वचःशतेन न साधनीयं चिदणुत्वमेव ॥ १४ ॥

पताका—सत्यमूर्तिने उत्तर दिया कि 'स वा एष महानज आत्मा' (बृ० ६।४।२५) यह श्रुति आत्माको कण्ठसे विभु कह रही है। अतः आप श्रुति विरुद्ध सैकड़ों वचनों—युक्तियोंसे भी आत्माका अणुत्व नहीं स्थापित कर सकते ॥१४॥

प्राज्ञस्य जीवादितरस्य तत्राधिकारतस्ते न वचोस्ति सम्यक् ।
उपक्रमे प्रस्तुत एव जीवस्तथापि मध्ये प्रतिपादितोऽन्यः ॥ १५ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराज बोले कि आपने जो श्रुति कही है उसमें जीवात्मासे भिन्न प्राज्ञात्माका निरूपण है । यद्यपि 'योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु' (वृ० ६।३।७) इस श्रुतिमें जीवका प्रस्ताव किया गया है तथापि 'यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मा' (वृ० ६।४।१३) इस श्रुतिसे मध्यमें अन्य अर्थात् पर आत्माका निरूपण होनेसे परमात्मसम्बन्धिनी 'स वा एष महानज आत्मा' (वृ० ६।४।२५) यह श्रुति है जीव सम्बन्धिनी नहीं ॥ १५ ॥

एषोऽणुरात्मेतिवचोमुखेन ह्यात्माणुरित्याह च मुण्डकेऽपि ।
आराग्रमात्रो ह्यवरोप्यनेन चोन्मानतोप्याणवमेव सिद्ध्येत् ॥१६॥

पताका—तथा 'एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश' (मु० ३।१।९) इस श्रुतिमें भी आत्माको स्पष्ट अणु कहा गया है । तथा 'आराग्रमात्रो ह्यवरोपि दृष्टः' (श्वे० ५।८) 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः' (श्वे० ५।९) इस श्रुतिमें* उन्मानसे भी जीवका अणुत्व ही प्रतिपादन किया गया है ॥

वाच्यं न चेत्थं सकले शरीरे चितोऽणुतायामुपलभ्यते नो ।
संवेदना तेन विहाय तत्त्वं विभुत्वमङ्गीक्रियतां त्वयेति ॥ १७ ॥

पताका—आत्माको अणु माननेसे सम्पूर्ण शरीरमें वेदना—ज्ञानकी उपलब्धि नहीं होगी अतः अणुत्वपक्षको छोड़कर विभुवाद स्वीकार करना चाहिये ऐसा भी आप नहीं कह सकते क्योंकि—॥ १७ ॥

* अणुसदृश वस्तुको उद्धृत करके मान करनेको उन्मान कहा गया है । जैसे यहां बालाग्रशतभाग और आराग्रमात्र ये दोनोंही अणु वस्तु हैं । उनके द्वारा आत्माका मान—माप किया गया है ॥

यतोऽविरोधो हरिचन्दनस्य देहैकदेशेऽपि लसन्नुविन्दुः ।
यथाखिलाङ्गेषु परममोदमुत्पादयत्यस्त्यनुभूतिरेषा ॥ १८ ॥

पताका–कोई विरोध नहीं है । जैसे हरिचन्दनाबिन्दु शरीरके एक देशमें स्थित होकर भी सम्पूर्ण शरीरमें आनन्दको उत्पन्न करता है यह सार्वजनीन अनुभव है ॥ १८ ॥

तथैव जीवोपि विराजमानो देहैकदेशेऽणुरयं समस्ताम् ।
लब्धावकाशां स्वगुणेन देहे संवेदनां वेत्ति यथायथं सः ॥ १९ ॥

पताका–इसी प्रकार वह यह अणुजीव भी शरीरके एक देशमें रहकर भी स्वधर्मभूत ज्ञानरूप गुणसे यथायथ (ठीक २) वेदनाको जान लेता है ॥ १९ ॥

उच्येत चेद्देशविशेष एव देहे स्थितत्वाद्धरिचन्दनस्य ।
प्रतीयते सा न तथायमात्मा ज्ञायेत नो तेन च वेदना सा ॥२०॥

पताका–यदि आप यह कहें कि हरिचन्दन तो शरीरके किसी एक नियत देशमें रहता है अतएव उसकी वेदना प्रतीत होती है; परन्तु आत्माका तो शरीरमें कोई नियत देश नहीं है अतः उसे वेदनाकी प्रतीति नहीं हो सकती ॥ २० ॥

न तत्समीचीनमिदं वचस्ते हृद्यन्तरित्यादि वचोबलेन ।
चितस्तथात्वेऽनुपपत्तिरत्र न विद्यते कोपि विचारिते हि ॥२१॥

पताका–तो आपका यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि आत्मा भी शरीरके नियत एक देशमें अर्थात् हृदयरूप देशमें रहता है । जैसा कि 'हृदि ह्ययमात्मा तत्रैकशतं नाडीनाम्' (प्रश्न० ३।६) इस श्रुतिमें निरूपण किया गया है । अतः श्रुत्यालोचन करनेके अनन्तर आपका दिया हुआ दोष नहीं आता ॥ २१ ॥

यथा रविस्तिष्ठति चैकदेशे प्रभाश्च तस्याश्नुवते दिगन्तम् ।
ज्ञानेन जीवः स्वगुणेन सर्वं व्याप्नोति देहं सततं तथैव ॥ २२ ॥

पताका—जिस प्रकारसे भास्कर आकाशरूप एक देशमें स्थित है तथापि उसकी प्रभा समस्त दिशाओंमें व्याप्त हो जाती है उसी प्रकारसे अणु आत्मा भी अपने ज्ञानरूप गुणसे समस्त देहमें व्याप्त होता है॥२२॥

कथं गुणः स्वाश्रयतो विभिन्नप्रदेशमाश्रित्य समुत्सहेत ।
स्थातुं विशंकेति च कस्यचिच्चेच्छृणोतु मत्तो मुदितः समाधिम् ॥

पताका—कदाचित् किसीको यह शंका हो कि गुण और गुणीका नित्य सम्बन्ध होनेके कारण गुण अपने आश्रय गुणीको त्याग करके तद्-रहित देशमें कैसे रह सकता है? तो उसका भी समाधान प्रसन्न होकर मुझसे सुनें ॥ २३ ॥

द्रव्यं प्रभेतीह सुखं समर्थ्य कृतार्थतां यासि यथा मनीषिन्!
ज्ञानं तथैवास्ति मते ममापि द्रव्य ततो मौनमुपास्य तिष्ठ ॥२४॥

पताका—जिस प्रकारसे आप अपने सिद्धान्तमें प्रभाको द्रव्य स्वीकार करके अपनेको कृतार्थ मानते हैं उसी प्रकारसे हमारे मतमें भी ज्ञानको द्रव्यत्व है। अतः चुप होकर बैठिये ॥ २४ ॥

तद्द्रव्यतां प्रत्यथ शङ्कसे चेत्तच्छ्रूयतां राजपथप्रवृत्तिः ।
नाद्रव्यमेवास्ति गुणो मदीये तन्त्रे ततः क्वापि न पर्यवस्था ॥२५॥

पताका—कदाचित् आप यह शङ्का करें कि ज्ञान तो गुण है उसे द्रव्य कैसे माना जा सकता है? तो इस विषयमें राजमार्गकी प्रवृत्तिको आप सुनिये। वैशेषिक आदिके समान अद्रव्य ही गुण होता है ऐसा आग्रह हमको नहीं है। 'यो यदाश्रितस्वभावः स तस्य गुणः'। अर्थात् जो जिसके आश्रित रहनेका स्वभाववाला है वह उसका गुण है। ऐसा हम गुणका लक्षण मानते हैं। पारिभाषिक गुणको हम स्वीकार नहीं

करते। क्योंकि ऐसा माननेसे समस्त व्यवहारके साथ विरोध उत्पन्न होता है जिसका परिहार दुष्कर है ॥ २५ ॥

द्रव्यात्मकाः केपि गुणा भवन्ति भवन्ति ते शुद्धगुणाश्च केपि।
ज्ञानादयः सत्त्वरजस्तमांसीत्यनुक्रमेणात्र निदर्शनानि ॥२६॥

पताका–हमारे उपर्युक्त लक्षण लक्षित गुणके दो भेद हैं। कोई द्रव्यात्मक गुण हैं और कोई केवल गुण हैं। गुणैकरूपमात्र होनेस सत्त्वादिमें गुण शब्द प्रधान रूपसे वर्तता है और ज्ञानादिमें गौण रूपसे रहता है ॥ २६ ॥

यच्चाजडं तद्ध्यजडत्वहेतोर्द्रव्यं यथात्मेति वयं वदामः।
ज्ञानं तथा चास्ति ततोस्य तत्त्वं निहन्ति तर्कों न च कर्कशोऽपि ॥

पताका–'अजडं द्रव्यम्, अजडत्वात्, आत्मवत्' अर्थात् अजड होनारूप हेतुसे अजड द्रव्य कहा जाता है। जैसे आत्मा। आत्मा अजड है अतएव द्रव्य है। इसी प्रकार ज्ञान भी अजड होनेके कारण द्रव्य है इसको कर्कश तर्क भी निवारण नहीं कर सकता ॥ २७ ॥

नन्वास्ति चेज्ज्ञानमिदं मतं ते द्रव्यं तदा त्वात्मगुणत्वमस्य।
सिध्येत्कथं त्वन्मतमित्यमुं च शङ्काग्रहं क्रूरतरं महर्षिम ॥ २८ ॥

पताका–यदि यह शङ्का हो कि आपको ज्ञानद्रव्यत्वेन सम्मत है तो वह आत्माका गुण आपके मतमें कैसे सिद्ध हो सकगा? तो इस शङ्काका भी दुर्निवार्य उत्तर करता हूं ॥ २८ ॥

प्रत्यक्तया रूपितरूपकाया विशेषकत्वेन गुणश्चितोऽस्ति।
आत्मानमाश्रित्य सदैव तिष्ठत्यतोऽपि तस्यास्ति गुणत्वमस्य ॥२९॥

पताका–प्रत्यक्तया निरूपित स्वरूपवाले आत्माका विशेषक होनेके कारण ज्ञान आत्माका गुण कहा जाता है। तथा सर्वदा आत्माका आश्रयण करके ही ज्ञान रहता है अतएव भी वह आत्माका गुण कहा जाता है ॥ २९ ॥

देशान्तरे चोन्मिषतीह यद्यद्भोगाय जीवस्य हि वस्तु तत्र ।
अपेक्षितं हेतुतया ह्यदृष्टं न तद्विनोत्पद्यत एव किञ्चित् ॥ ३० ॥

पताका—सत्यमूर्ति इस प्रकारसे निरुत्तर होकर अब स्पष्ट रूपसे नैयायिकका मत लेकर जीवाणुवाद खण्डन करनेके लिये ६ श्लोकोंसे पुनः पूर्वपक्ष करने लगे ।

जीवोंके भोगके लिये देशान्तरमें जो वस्तु पैदा हुई हैं, वहां २ सर्वत्र कारणरूपसे अदृष्ट अपेक्षित है । क्योंकि उसके विना कोई वस्तु उत्पन्न ही नहीं हो सकती ॥ ३० ॥

शक्नोति न स्थातुमदृष्टमद्धा परःशतैर्यत्नगणैरपीह ।
विनाश्रयं क्वापि ततो ह्यदृष्टवदात्मसंयोगमुपैहि हेतुम् ॥ ३१ ॥

पताका—और वह अदृष्ट सहस्रों यत्न करनेपर भी आश्रयके विना नहीं रह सकता अतः अदृष्टवाला आत्माके संयोगको कारण मानना चाहिये ॥ ३१ ॥

न स्याद्यदात्मा विभुरत्र कस्माद्देशान्तरे तस्य गतिः सुसाध्या ।
अणुत्वमस्मादुपपत्तिशून्यं विहाय मन्तव्यमहो विभुत्वम् ॥ ३२ ॥

पताका—यदि आत्मा विभु न हो तो सर्व देशमें उसकी गति कैसे हो सकती है ? अतः अणुत्वको उपपत्तिशून्य होनेके कारण, इस पक्षको त्यागकर विभुत्वपक्ष ही स्वीकार करना चाहिये ॥ ३२ ॥

ज्ञानादिकं चापि चितोऽणुतायामतीन्द्रियं स्यान्नियमाग्रहेण ।
प्रत्यक्षयोग्यत्वविपादनेनाहमित्ययं प्रत्यय आशु नश्येत् ॥ ३३ ॥

पताका—यदि आत्माको आप अणु मानोगे तो उसके जो ज्ञानादि गुण हैं वह सब अतीन्द्रिय हो जावेंगे । क्योंकि ऐसा नियम है कि 'अणुगुणानामतीन्द्रियत्वम् ।' अर्थात् अणुके गुण अतीन्द्रिय होते हैं । किंच अणुका तो प्रत्यक्ष भी नहीं होता है तो प्रत्यक्षकी योग्यता (विभुत्व)का

नाश हो जानेसे 'अहम्' इस प्रत्यक्ष प्रत्ययका भी अपलाप हो जायगा ॥

तथा च शास्त्रे मनसोऽपि तत्त्वं जीवात्मनोप्यस्ति तथा त्वमत्र ।
अणुद्वयायोगमुपेत्य कस्माद्द्रव्यान्तरारम्भ उदेतु नात्र ॥ ३४ ॥

पताका—किंच शास्त्रोंमें मनको भी अणु परिमाणवाला माना गया है। जैसा कि 'यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु' (गौ० ६।२।६२) 'अणु मन एकं चेति०' (वात्स्या० भा० ३।२।६२)। और आपके मतसे आत्मा भी अणु है। तब दो अणुओंके संयोगसे द्रव्यान्तरकी उत्पत्ति आपके यहां क्यों नहीं होती है? ॥ ३४ ॥

तथेन्द्रियैर्यर्हि मनश्च पृङ्क्ते तदात्मना योगवियोजनेन ।
ज्ञानोदयो नापि भवेच्च तस्मात्तद्व्यापकत्वं खलु सुस्थमेव ॥३५॥

पताका—किंच जिस समय इन्द्रिय और मनका संयोग होगा उस समय आत्मा और मनका संयोग नष्ट होगा। तब तो कभी किसी वस्तुका आत्माको ज्ञान भी नहीं होना चाहिये। अतः उसे विभु मानना ही उचित है ॥ ३५ ॥

इत्थं स्वपक्षं निपुणं समर्थ्य स पण्डितो मौनपदं प्रपेदे ।
तदा प्रसन्नो विहसन्मुनीन्द्रो विभिन्नवान्स्वाननमौनमुद्राम् ॥३६॥

पताका—इस प्रकार सत्यमूर्ति विस्तारपूर्वक अपना पक्ष समर्थन करके चुप हो गये तब प्रसन्न होकर हँसते हुये मुनिराज श्रीस्वामीजी बोले ॥ ३६ ॥

विद्वँस्त्वदुक्तं विशदं समस्तं विचारचारु प्रतिभाति नो मे ।
अतो निरासे स्वमनो दधामि निशामय स्वस्थमना मनाक्त्वम् ॥३७॥

पताका—हे विद्वन्! आपने जो कुछ कहा वह विचार करनेसे मुझे युक्त प्रतीत नहीं होता है। अतः मैं उसका खण्डन करता हूं आप स्वस्थ-होकर सुनें ॥ ३७ ॥

यद्यस्ति जीवो विभुरेव नाणुस्तदा समस्तेन्द्रियमानसाद्यैः ।
संयोग एवास्य भवेदवश्यं मूर्तस्य संयोगितया समेषाम् ॥३८॥

पताका–यदि जीव विभु है तब तो सकल मूर्तद्रव्य संयोगी होनेके कारण समस्त इन्द्रिय और मन आदिके साथ उसका अवश्य संयोग ही बना रहेगा वियोग तो कभी हो ही नहीं सकता ॥ ३८ ॥

एवं स्थिते साक्षर सर्वभोगे सर्वस्य बाधं न विभावयामः ।
भोगस्य नैयत्यमवश्यमेवं प्रत्यात्ममस्माच्च्यवनं प्रयाति ॥ ३९ ॥

पताका–जब ऐसा मान लिया तो हे साक्षर! सब सबका भोग कर सकेंगे। इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं है। तब तो प्रत्यात्म नियत भोगकी सर्वथा अनुपपत्ति ही हो जावेगी ॥ ३९ ॥

युक्तं न चैतद्भवतीह तर्को यत्रैव देशे मनसश्चितश्च ।
उदेति संयोग उदेति तत्र भोगस्ततो नास्त्युपपत्त्यभावः ॥४०॥

पताका–कदाचित् आप यह कहें कि 'विशेषविभुगुणानामसमवायिकारणप्रादेशिकत्वनियमः' अर्थात् विशेष जो विभुके गुण हैं वह असमवायिकारणके प्रदेशमें रहते हैं ऐसा नियम है। इस नियमके अनुसार यद्देशावच्छेदेन आत्ममनःसंयोग होगा तद्देशावच्छेदेन ही भोग भी होगा अतः आत्माके विभु होनेपर भी नियतभोगानुपपत्तिरूप दोष नहीं प्रसक्त होता तो यह कथन ठीक नहीं ॥ ४० ॥

अस्त्येवदोषो मयका प्रदत्तोऽप्रयोजकत्वान्नियमस्य तेऽस्य ।
पादे सुखं मे ह्यसुखं च मूर्ध्नि ज्ञानं यथेदं विलसत्यजस्रम् ॥४१॥
तथैव मे चैत्रतनौ सुखं च दुःखं तथा मैत्रतनाविति स्यात् ।
एकस्तवात्मास्ति च सर्वदेशे ज्ञानं तथा तत्समवेतमेव॥ ४२ ॥(युग्म०)

पताका–क्योंकि आपके इस नियमके अप्रयोजक होनेसे मैंने जो नियतभोगानुपपत्तिरूप दोष दिया है वह ठीक ही है। किंच जिस प्रकारसे

'पादे मे सुखं, शिरसि मे वेदना' 'मेरे पगमें सुख है और शिरमें वेदना है' यह ज्ञान होता है उसी प्रकारसे मेरे चैत्र शरीरमें और मैत्रशरीरमें दुःख है यह भी ज्ञान होना चाहिये। क्योंकि आपके एक आत्माके सर्वत्र होनेसे तत्तत् मनःसंयोगादिदेशमें उत्पन्न हुये ज्ञान एतदात्मसमवेत हो सकते हैं। यहां एक दूसरा दोष यह भी होगा कि तत्तत् मनके साथ तत्तद् अनुव्यवसायके निराबाध होनेके कारण सर्व आत्माओंको सर्वज्ञत्वापत्ति प्राप्त होगी। इष्टापत्ति कर नहीं सकते क्योंकि कोई प्रमाण नहीं है ॥४१॥४२॥

स्याच्चेददृष्टादि च कल्पयित्वा स्वदेहमात्रे नियतो हि भोगः।
नित्यत्वमेवं च विभुत्वमस्य क्षीणं च जैनं मतमाद्रियेत ॥ ४३ ॥

पताका—यदि किसी अदृष्टादिको प्रतिबन्धक स्वीकार करके स्वशरीर-मात्रावच्छेदेन भोग अङ्गीकार करेंगे तब तो जैन मतके समान देहपरिमाण-वाद प्राप्त होगा। और ऐसा माननेसे आत्माका नित्यत्व और विभुत्व दोनोंको ही आपको तिलाञ्जलि देनी होगी ॥ ४३ ॥

अतस्तयोर्निर्वहमाविधातुं देहान्तरीयोऽपि च भोगराशिः।
अस्य त्वया स्वीकरणीय एवं प्रत्यक्षतः स्यात्सुतरां विरोधः ॥४४॥

पताका—अतः इन दोनों नित्यत्व और विभुत्वका निर्वाह करनेके-लिये शरीरान्तरावच्छिन्न भोग भी अवश्य आपको स्वीकार करना होगा। परन्तु ऐसा माननेसे प्रत्यक्षका विरोध होगा। सबको सर्वज्ञतापत्ति प्राप्त होगी। त्रैलोक्यसङ्करापत्ति भी प्राप्त होगी। अतः उभयतः पाशारज्जु है ॥

भुक्ते फले मैत्रशरीरतोऽपि भुक्तं मयेत्यन्यशरीरकस्य।
तस्य स्मृतिः स्यादथ केन वार्या जागर्ति नो कोपि निवारकोस्याः ॥

पताका—किंच मैत्रशरीरावच्छेदेन फलादि भक्षण करनेपर मैत्राद्यन्य-शरीरावच्छिन्न आत्माका 'अहं फलं भक्षितवान्' 'मैंने फल खाया' इस स्मरणापत्तिको कौन निवारण करेगा? कोई इसका वारक नहीं है ॥४५॥

स्मृतेस्तथास्था हि चितोनुभूतेरेकप्रदेशत्वमपेक्षितं नो ।
स्पृष्टस्य दृष्टस्य च चक्षुरादि स्मृतिश्चकास्तीति विहाय दृष्टम् ॥४६॥

पताका–कदाचित् आप अनुभव और स्मरण दोनोंका एक प्रादेशिकत्व नियम मानकर निर्वाह करें तो वह भी असङ्गत है। क्योंकि 'नेत्राभ्यामद्राक्षम्' 'कराभ्यामस्पृशम्' 'नेत्रोंसे मैंने देखा,' 'हाथोंसे मैंने स्पर्श किया' इत्यादि स्मरण स्वजनकानुभवदेश नेत्रादिको छोड़कर हृदयमें उत्पन्न होते हैं। अनुव्यवसाय भी ऐसा ही होता है कि 'यमद्राक्षं तमन्तः स्मरामि।' जिसको मैंने देखा है उसका हृदयमें स्मरण करता हूं ॥ ४६ ॥

न चैकदेहत्वमपीह शक्यं वक्तुं तयोः पूर्वजनेः स्मृतेश्च ।
देहान्तरे दृश्यत एव तस्माद्दोषः प्रदत्तस्तदवस्थ एव ॥ ४७ ॥

पताका–ऐसे ही अनुभव और स्मरणको एकशरीरावच्छेद्यत्व नियम भी नहीं कर सकते। क्योंकि पूर्वजन्मीय अनुभव, जन्मस्मरण पूर्वशरीरके विना भी शरीरान्तरमें देखा जाता है। अतः मेरा दिया हुआ दोष तदवस्थ है ॥ ४७ ॥

अदृष्टतो यो नियमोऽभ्यधायि तस्योपपत्तिर्न तु संगता स्यात् ।
यतो नियम्यत्वमथास्य यत्नैस्तस्यापि चिन्मानससन्निकर्षैः ॥ ४८ ॥

पताका–और जो आपने अदृष्ट नियम स्वीकार किया है उसकी उपपत्ति भी नहीं हो सकती। क्योंकि अदृष्ट तो कर्म–यत्ननियम्य है और यत्न आत्ममनःसंयोगनियम्य है ॥ ४८ ॥

तत्सन्निकर्षस्य मनःसु सत्त्वाज्जीवात्मनां सर्वजुषां समेषाम् ।
तथा च सर्वेषु च तस्य सत्त्वाद्दोषो विभुत्वे विभुरेव तिष्ठेत् ॥४९॥

पताका–और वह संयोग सब आत्माओंका सर्व आत्माओंके मनमें होनेके कारण सबमें सब अदृष्टकी प्राप्ति होगी। अतः आत्माको विभु माननेमें दोष भी विभु ही होगा ॥ ४९ ॥

विलक्षणश्चेत्तव सन्निकर्षः स चापि तेऽद्यापि न सिद्धभूतः ।
यावत्तथात्वं न हि कारणे स्यात्संयोग एवात्र भवेत्कथं तत् ॥५०॥

पताका–कदाचित् आप विलक्षण मनःसंयोगादि मानकर निर्वाह करना चाहें तो वह तो अभी तक असिद्ध ही है। जब तक आप कारणमें वैलक्षण्य स्थापन न कर लें तब तक मनःसंयोग वैलक्षण्य अशक्य है ॥

कार्य्यैककल्प्यं यदि मन्यसे तत्तथास्तु तच्चाप्यहमभ्युपैमि ।
परन्तु तन्नैव भवेदकस्मादतश्च हेतुर्वचनीय एव ॥ ५१ ॥

पताका–यदि कार्य देखकर वैसी कल्पना उचित मानते हों तो वैसा आप मानिये। मैं अभ्युपगम करता हूं। परन्तु वह आकस्मिक तो नहीं हो सकता। अतः उसका कोई कारण तो अवश्य कहना चाहिये ॥५१॥

अन्यस्य तद्वक्तुमशक्यताया आश्रीयते चेत्परमेश्वरेच्छा ।
तत्सन्निकर्षे च विपश्चिता वैलक्षण्यहेतुः शृणुयास्तदेति ॥५२॥

पताका–अन्य कारण तो अशक्य होनेसे कह नहीं सकते। अन्तमें यदि परमेश्वरकी इच्छाको ही उस विलक्षण संयोगमें आप कारण स्वीकार करें तब तो एक हमारी बात सुनें ॥ ५२ ॥

भुङ्क्तामयं नो इतरे तथा वा ह्यनेन चारोहतु कर्मणास्य ।
अदृष्टमित्यादि विभुत्वपक्षे नियम्यते सूक्ष्ममते यथा च ॥५३॥

पताका–हे सूक्ष्ममतिवाले! 'यह भोग करे, अन्य नहीं' 'इस कर्मसे इसका ही अदृष्ट उत्पन्न हो, अन्यका नहीं' इत्यादि नियम जैसे आप विभु पक्षमें स्वीकार करते हैं ॥ ५३ ॥

देशान्तरस्थं किल भोगराशिमित्थं हि भुङ्क्तामयमत्र जीवः ।
अणुत्वपक्षेऽपि तथैव किं नो नियम्यतेऽतीत्य जघन्यवादम् ॥५४॥

पताका–वैसेही देशान्तरमें उत्पन्न हुई भोग्य वस्तुको 'अयमनेन

प्रकारेण भुङ्क्ताम्' 'यह अमुक पुरुष अमुक प्रकारसे भोग करे' यह नियम अणुपक्षमें भी स्वीकार करके इस जघन्यवाद-विभुवादको क्यों नहीं छोड़ देते? ॥ ५४ ॥

अणुत्वमेषां यदि संगिरेत प्रत्यक्षतां याति सुखादि नैव।
इदं न चेत्स्वीक्रियते त्वया प्रत्यक्षत्वमायात्परमाणुरूपम् ॥ ५५ ॥

पताका-सत्यमूर्ति बोले कि महाराज! यदि आत्माको अणु मानेंगे तो सुखादि प्रत्यक्ष न होंगे। 'अणुप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति महत्त्वसमानाधिकरणस्य तन्त्रत्वात्' और यदि आप ऐसा नहीं स्वीकार करेंगे तो परमाणुरूपका भी प्रत्यक्ष होना चाहिये ॥ ५५ ॥

तन्त्रत्वतस्तत्र हि योग्यताया न स्यात्समीचीनमिदं वचस्ते।
विभुत्ववादेऽथ कथं ह्यदृष्टप्रत्यक्षतापत्तिरियं च न स्यात् ॥५६॥

पताका-श्रीस्वामीजीने कहा, इस विषयमें योग्यताको नियामकता अवश्य मानना पड़ेगा। नहीं तो विभ्वात्मवादमें भी अदृष्टादिकी प्रत्यक्षत्वापत्ति दुर्निवार हो जायगी। क्योंकि वहां तुम्हारे मतमें महत्त्वसमानाधिकरण तो है ही है। इस युक्तिसे 'अणुगुणानमतीन्द्रियत्वानियमः' का भी समाधान हो गया ॥ ५६ ॥

अण्वोस्तयोः प्राप्य च सन्निकर्षं द्रव्यान्तरं नापि जनिष्यतीह।
वैजात्यतस्तादृगयं च पक्षः श्रुतेर्विरोधात्सुतरां प्रहेयः ॥ ५७ ॥

पताका-और जो आपने कहा था कि अणुद्वयके संयोगसे द्रव्यान्तरकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती? उसका उत्तर यह है कि सजातीय अणुद्वयके संयोगसे द्रव्यान्तरकी उत्पत्ति स्वीकार की गई है। यहां तो आत्मा और मन दोनों विजातीय है। किंच, अणुद्वय संयोगसे द्रव्यारम्भ पक्ष श्रुतिविरुद्ध होनेसे सर्वथा त्याज्य है ॥ ५७ ॥

न ज्ञप्त्यनुत्पत्तिरिहास्ति दोष आत्मा मनोयोगमुपैति वो हि।
ज्ञानप्रसृत्या निखिलं प्रसिद्ध्येद्विद्वँस्ततोऽणुत्वमदुष्टमस्य ॥ ५८ ॥

पताका—और आपने जो यह कहा था कि इन्द्रिय और मनःसंयोग-कालमें आत्ममनःसंयोगके अभावमें ज्ञानकी अनुत्पत्ति होगी सो भी कोई दोष नहीं है। क्योंकि आत्मा स्वधर्मभूत ज्ञानद्वारा उस कालमें भी मनके द्वारा संयोग स्थिर रख सकेगा। अतः आत्माका अणुत्व निर्दुष्ट है ॥५८॥

इत्येवं शिततर्ककर्कशशरैराशीर्य योगीश्वरो,
वाचं तस्य विमोहनीमृजुधियां वादीभकण्ठीरवः।
पन्थानं निविडान्धकारनिचयप्रच्छन्नमाशोध्य स,
धर्म्यं धर्मविभाकरो विजयते त्रैविद्यचूडामणिः ॥ ५९ ॥

पताका—वेदत्रयीके पण्डितोंमें सर्वश्रेष्ठ वादिगजपञ्चानन योगीश्वर श्री स्वामीजी महाराज इस प्रकारसे तीक्ष्ण तर्करूप कठोर बाणीसे उस सत्य-मूर्ति विद्वान्की बालमोहिनी युक्तियांको टुकड़े २ करके घोर अन्धकारके समूहमें छिपे हुये वैदिक मार्गको शोधकर सर्वोत्कर्षेण विराजमान हो रहे हैं ॥ ५९ ॥

अधिमहि नरलीलां नाटयन्तं मुनीन्द्रं,
सुरवरवरिवस्यातोषितं स द्विजेन्द्रः।
श्लथितविचितगर्वो बद्धपाणिः प्रणम्य,
गृहगमनमयाचीत्प्रस्खलद्भारतीकः ॥ ६० ॥

पताका—पृथ्वी ऊपर मनुष्यलीला करते हुये, देवताओंकी सेवासे सन्तुष्ट मुनीन्द्र श्रीस्वामीजीको प्रणाम करके गलित गर्व होकर गद्गदस्वर-वाले उस द्विजेन्द्र सत्यमूर्तिने हाथ जोड़कर घर जानेकी आज्ञा मांगी ॥६०॥

अतिमुदितमनाः श्रीयोगिवर्यो बभाषे,
परिहर बुध खेदं मावमंस्था निजं त्वम्।
उपविबुधसरस्वत्यत्र वासं विधाय,
पटुवटुभिरुपस्यादर्शिताध्वा प्रयाहि ॥ ६१ ॥

पताका—तब अत्यन्त प्रसन्न मनवाले योगिराज बोले कि हे विद्वन्! खेदको परित्याग करो। अपने आपका तिरस्कार मत करो। तथा आज श्री गङ्गाजीके तटपर निवास करके कल प्रातःकाल आप जावें। हमारे चतुर ब्रह्मचारी आपको मार्ग बता देंगे॥ ६१॥

इतिमुनिवरवाचं विप्रवर्योभिमत्य,
यतिकुलपतिनासौ सार्धमाराद्दिनान्ते।
सुरसरिदुपकण्ठं प्राप्य सान्ध्यं विधिं सन्,
विधिवदभिविधाय प्रत्ययावाश्रमं तम्॥ ६२॥

पताका—सत्यमूर्तिने श्रीस्वामीजीकी आज्ञाको स्वीकार करके उनके साथ सायङ्कालमें समीप ही गङ्गाजीके तटपर जाकर सन्ध्या विधि समाप्त करके आश्रमको लौट आये॥ ६२॥

तरणिरपि निपीयापर्चितो विप्रवृन्दैः,
सुरसरिदमृतौघं दत्तमर्ध्यैर्विशुद्धम्।
स्वरुचिमधिविभावस्वास्य तूर्णं प्रतीचीं,
ककुभमभिलपन्नालिङ्गितुं स प्रतस्थे॥ ६३॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये षोडशः सर्गः

पताका—भगवान् सूर्य भी ब्राह्मणोंके दिये हुये अर्घ्यजलको पान करके, अग्निमें अपनी प्रभाको स्थापन करके पश्चिम दिशाको आलिङ्गन करनेकी इच्छासे शीघ्र प्रयाण कर गये॥ ६३॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते-श्रीमद्भगवद्रामा-
नन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां षोडशः सर्गः।

अथ सप्तदशः सर्गः

अहर्मुखे यतिश्रेष्ठः कृतनित्यविधिर्मुदा ।
नभो रविरिवायामं स्वमासनमशिश्रियत् ॥ १ ॥

पताका–जैसे सूर्य भगवान् प्रातः विस्तृत आकाशमें विराजते हैं वैसे ही यतिश्रेष्ठ श्रीस्वामीजी महाराज प्रसन्न होकर अपने उच्चासनपर विराजे ॥

परितस्तं त्रयीनाथं ब्रह्मवर्चसशालिनम् ।
लसदभ्यर्च्यवर्चस्काः शिष्याः सर्वेऽप्युपाविशन् ॥२॥

पताका–ब्रह्मवर्चससे सुशोभित, चारों वेदोंके महान् विद्वान् श्रीस्वामीजीके चारों ओर सुन्दर तेजस्वी सब शिष्य बैठ गये ॥ २ ॥

जङ्घालोष्ट्रसमारूढान् प्रासिकानासिकानपि ।
बहूनागच्छतो म्लेच्छानस्वच्छाँस्ते व्यलोकयन् ॥ ३ ॥

पताका–अत्यन्त वेगसे चलनेवाले ऊंटोंपर चढ़े हुये, भाला और तलवार लिये हुये, बहुतसे आते हुये अपवित्र यवनोंको उन्होंने देखा ॥

आश्रमाद्बहिरेवामी आदराच्छ्मश्रुलाः स्थिताः ।
आगत्य वामनो नामानोनवीत्तेषु साञ्जलिः ॥ ४ ॥

पताका–ये सब यवन आदरसे आश्रमसे बहार ही खड़े हो गये । उनमंसे वामन नामक एक ब्राह्मण स्वामीजीके पास आकर हाथ जोड़े हुये स्तुति करने लगा ॥ ४ ॥

ब्राह्मणोऽहं महाभाग सैनिका यवना इमे ।
सर्वांश्च प्रैषयद्राज्यधुरन्धरसिकन्दरः ॥ ५ ॥

पताका–हे महाभाग ! मैं ब्राह्मण हूं । ये सैनिक मुसलमान हैं । राज्य धुरंधर सिकन्दरने हम सबको भेजा है ॥ ५ ॥

तन्मूर्ध्नि वेदना जाता मुने प्राणनिषूदना ।
ततो भवन्तमानेतुं वयं सर्वे समागताः ॥ ६ ॥

पताका—बादशाहके मस्तकमें प्राणहारिणी पीडा हो रही है अतः हे मुनिराज ! *आपको लेनेके लिये हम सब आये हैं ॥ ६ ॥

यदि नाम भवान्नाथ न व्रजेत्साम्प्रतं लघु ।
व्यथापृक्तो नृपो नूनं कथारिक्तो भविष्यति ॥ ७ ॥

पताका—हे महाराज ! यदि आप इस समय शीघ्र नहीं पधारेंगे तो अवश्य ही बादशाहका मृत्यु हो जायगा ॥ ७ ॥

समदर्शी भवानस्ति दयालुहृदयस्तथा ।
अनामयमवाप्नोतु यथा राजा तथा कुरु ॥ ८ ॥

पताका—हे महाराज ! आप समदर्शी तथा दयालु हृदयवाले हैं । अतः बादशाह जैसे नीरोग हो वैसा उपाय आप करिये ॥ ८ ॥

वार्तामेतां समाकर्ण्य मुनेर्हृदयमद्रवत् ।
दया नापेक्षते सत्यं भेदभावं कदाचन ॥ ९ ॥

पताका—इस सन्देशको सुनकर मुनिराजका हृदय पिघल गया । सत्य है, दया कभी भेदभावको नहीं देखती ॥ ९ ॥

दुराचारोऽपिचेत्कश्चिद्विवशो दुःखकातरः ।
सहाय्यकमपेक्षेत धत्ते साहाय्यमात्मवान् ॥ १० ॥

पताका—यदि कोई पापी भी दुःखसे विह्वल और विवश होकर सहायताकी अपेक्षा करे तो महान् पुरुष अवश्य उसकी सहायता करते हैं ॥

* कहा जाता है कि बहुतसे औलिया फकीरोंने दवा, तावीज की परन्तु बादशाहके मस्तककी पीडा नहीं गई । तब उसके मोलवी तकीने कहा कि काशी-में एक हिन्दू सन्यासी हैं । जिनका नाम रामानन्द स्वामी है । यदि वह आवे तो आपको अवश्य लाभ हो । परन्तु वह मुसलमानोंसे बात ही नहीं करते । अतएव बादशाहने अपने सिपाहियोंके साथ एक ब्राह्मण भेजा था ।

अयं योग्योऽथवाऽयोग्य इत्येवं हि विचारणा ।
आपत्काले न शोभेत दयार्द्रमनसां सताम् ॥ ११ ॥

पताका—यह सहायताके योग्य है अथवा नहीं, ऐसा विचार आपत्तिके समय दयालु सत्पुरुषोंको शोभा नहीं देता ॥ ११ ॥

भद्रं भवतु ते भद्र भूपतेराशु गच्छत ।
कार्यान्तरनिमग्नोऽहं तत्र गन्तुं न कामये ॥ १२ ॥

पताका—हे भद्र! तुम्हारे राजाका कल्याण हो। तुम लोग यहांसे शीघ्र जावो। मैं अन्य कार्यमें लगा हुआ हूं अतः वहां नहीं जाना चाहता ॥ १२ ॥

मुन्यनागमनश्रावाद्दीर्घमुच्छ्वस्य विह्वलाः ।
सर्वे मलिनयामासुस्ते सदागतिमण्डलम् ॥ १३ ॥

पताका—मुनिराजके न चलनेकी बात सुनकर सब सैनिकोंने व्याकुल होकर लम्बी सांस लेकर वायुमण्डलको दुर्गन्धित कर दिया ॥ १३ ॥

उदासीनान्समासीनान्समासाद्य सदग्रणीः ।
राजा वोऽनामयो जातो मा स्म खिद्यत सोऽभ्यधात् ॥१४॥

पताका—श्रीस्वामीजीने उन सबोंको उदास बैठे देखकर कहा कि तुम लोग चिन्ता मत करो। तुम्हारे बादशाहको आराम हो गया है ॥ १४ ॥

अविश्वासग्रहग्राहगृहीतास्ते नृपस्पशाः ।
मयारोहचणं चैकं प्रेषयामासुरञ्जसा ॥ १५ ॥

पताका—अविश्वासग्रहण रूपी ग्राह से पकड़े गये हुये उन बादशाहके दूतोंने शीघ्र एक अच्छे ऊंटसवारको (दिल्ली) भेजा ॥ १५ ॥

तरस्वी त्वरितं गत्वा गृहीतनृपवार्तकः ।
अल्पैरहोभिरागत्य सुखयामास सैनिकान् ॥ १६ ॥

पताका—वेगसे जानेवाले उस ऊंटसवारने दिल्ली शीघ्र जाकर, थोड़े ही दिनोंमें आकर बादशाहके शुभ समाचारसे सैनिकोंको प्रसन्न कर दिया ॥

तमद्भुतचमत्कारं म्लेच्छराजगुरुस्तदा ।
तर्की कोऽपि कुतर्की स विषेहे न विषान्तरः ॥ १७ ॥

पताका—बादशाहके गुरु तर्की विषैला हृदयवाला होनेके कारण इस अद्भुत चमत्कारको न सह सका ॥ १७ ॥

अमर्यादस्तर्की सोऽथ काशीमागत्य सन्मुनिम् ।
विजेतुं यतनं वादे चक्रे निहतसिद्धतः ॥ १८ ॥

पताका—नष्ट सिद्धान्तवाला तथा मर्यादाहीन वह तर्की काशीमें आकर श्रीस्वामीजीको वादमें जीतनेका प्रयत्न करने लगा ॥ १८ ॥

वामनं तं पुनः प्रेष्य स्वामिनं समसूसुचत् ।
तर्की वादाय सोत्कण्ठस्तिष्ठति द्वारि तावके ॥ १९ ॥

पताका—उस तर्कीने उसी वामन ब्राह्मणको पुनः भेजकर स्वामीजीको सूचना दी कि आपके द्वारपर तर्की वाद करनेके लिये उत्कण्ठित होकर बैठा है ॥ १९ ॥

तन्मुखात्तद्वचः श्रुत्वा संत्यक्तम्लेच्छभाषणः ।
प्रतिसीराव्यवहितो मुनिस्तर्कीमजूहवत् ॥ २० ॥

पताका—वामनके मुखसे यह वचन सुनकर म्लेच्छोंके साथ वार्तालापका त्याग करनेवाले श्रीस्वामीजी पर्दाके आड़में बैठकर उस तर्कीको बुलवाये ॥ २० ॥

अहङ्कारमहासर्पसंदंशविषमूर्छितः ।
यथाकथञ्चित्पप्रच्छ फेनिलेन मुखेन सः ॥ २१ ॥

पताका—अहङ्काररूपी महासर्पके काटनेसे मूर्छित हुआ, मुखमें फेन भरकर जैसे तैसे तर्कीने पूछा ॥ २१ ॥

मूर्तिपूजापरायत्ता निहता ह्यशरीरिता ।
ब्रह्मणस्तत्कथं श्रीमाँस्तदाराधनतत्परः ॥ २२ ॥

पताका—उसने पूछा कि, स्वामीजी ! मूर्तिमत्ताके अधीन होकर ब्रह्मकी अशरीरिता नष्ट हो जाती है । क्योंकि अकायकी मूर्ति नहीं हो सकती सो आप क्यों मूर्तिपूजा करते हैं ? ॥ २२ ॥

सशरीरत्वमस्माकं सदेष्टं नाशरीरिता ।
ब्रह्मणस्तेन नो मन्ये दूषणस्य प्रवेशनम् ॥ २३ ॥

पताका—स्वामीजीने कहा कि मैं ब्रह्मको शरीरी ही मानता हूं अशरीरी इष्ट नहीं है । अतः कोई दोष नहीं ॥ २३ ॥

सशरीरं यदि ब्रह्म विनाशि स्यात्तदा च तत् ।
घटादिवदहो श्रीमन्सशरीरत्वहेतुना ॥ २४ ॥

पताका—तर्कीने कहा, यदि आप ब्रह्मको शरीरवाला मानेंगे तो वह विनाशी हो जायगा । क्योंकि जो शरीरवाला होता है वह विनाशी देखा गया है । जैसे कि घट ॥ २४ ॥

अप्राकृतशरीरत्वादविनाशि सदैव तत् ।
तादृक्छरीरताभावात्त्ता नास्ति घटादिषु ॥ २५ ॥

पताका—स्वामीजीने कहा कि, ब्रह्मका शरीर अप्राकृत शरीर है । अतः उसका नाश नहीं होता । जहां २ ऐसा शरीर है वहां २ अविनाशित्व है । जहां २ ऐसा नहीं है वहां अविनाशित्व भी नहीं है । घटपटादिमें अप्राकृतशरीरत्व नहीं है अतः वह विनाशी है ॥ २५ ॥

सशरीरत्वसाम्येन तौल्यं जीवात्मभिर्भवेत् ।
तदा न तत्सम इति वाचो मिथ्यात्वमागतम् ॥ २६ ॥

पताका—तर्कीने कहा कि यदि ब्रह्म शरीरी है तो सशरीरसाम्यसे जीवोंके साथ ब्रह्मकी समानता हो जायगी । तब तो 'न तत्समश्चाभ्यधिकोऽपि कश्चित्' यह श्रुतिवचन मिथ्या हो जायगा ॥ २६ ॥

सशरीरत्वसाम्येन तौल्यं चेदात्मनां भवेत् ।
तेनैव हेतुना किं नो नृपश्वोः साम्यमिष्यते ॥ २७ ॥

पताका—स्वामीजी बोले, यदि सशरीरत्व समतासे ब्रह्मकी आत्माओंके साथ समानता कहते हो तो इसी सशरीरित्वसाम्यसे मनुष्यों और पशुओंकी भी समानता आप क्यों नहीं मान लेते ? ॥ २७ ॥

अशरीत्वभावे हि वाचिकत्वं विहन्यते ।
मोहमद्प्रभृतीनां यत्प्रसिद्धं तवाङ्गने ॥ २८ ॥

पताका—किंच यदि ब्रह्म अशरीरी हो तो तुम्हारे घरके सिद्धान्तानुसार मुहम्मद वग़ैरः पैगम्बर* नहीं हो सकते ॥ २८ ॥

एवं पराजितो म्लेच्छो म्लेच्छराजस्य संमतः ।
स गुरुर्मुनिनाथस्य निपपात पदाम्बुजे ॥ २९ ॥

पताका—इस प्रकार बादशाहका माननीय गुरु वह तक़ी वादमें भी पराजित होकर स्वामीजीके चरणोंमें पड़ गया ॥ २९ ॥

अपराधंक्षमां प्रार्थ्य शिरसा च प्रणम्य तम् ।
गलितोद्गर्वगरलो दिल्लीं प्रति ययौ तकी ॥ ३० ॥

पताका—शिर झुकाकर प्रणाम करके, अपराध क्षमा कराकर अहङ्कार-हीन होकर वह तक़ी दिल्लीको चला गया ॥ ३० ॥

तत्र राजसमज्यायां सिकन्दरपुरः स च ।
यतिराजस्य माहात्म्यं यथायथमचीकथत् ॥ ३१ ॥

पताका—वहां बादशाहके दरबारमें जाकर बादशाहके आगे, श्रीस्वामीजीका जैसा माहात्म्य उसने देखा था वैसा ही वर्णन कर दिया ॥ ३१ ॥

* पैगम्बरका अर्थ है पैग़ाम लानेवाला। यदि ब्रह्म-खुदा अशरीरी है तो इसका पैग़ाम शब्द किस तरहसे आया ? खुदाके पास आसमानमें जब्रइल वगैरःका जाना कैसे बन सकता है ?

माहात्म्यातिशयं तस्य निशम्य स्वगुरोर्मुखात् ।
स्वयं चाप्यनुभूयैव परमप्रीतिमाययौ ॥ ३२ ॥

पताका—बादशाह अपने गुरु तर्कीके मुखसे स्वामीजीकी प्रशंसा सुनकर तथा स्वयं भी मस्तकपीडा दूर होनेसे उनके चमत्कारका अनुभव करके बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३२ ॥

विविधानि च रत्नानि स्वर्णभाण्ड शतानि च ।
कौशेयानि च वासांसि यतये प्रैषिपन्नृपः ॥ ३३ ॥

पताका—बादशाहने नाना प्रकारके रत्न, सोनेके पात्र, अनेकों रेशमी वस्त्र स्वामीजीकी सेवामें भेंटमें भेजा ॥ ३३ ॥

त्यक्तप्रतिग्रहः श्रीमानाशीर्वादपुरस्सरम् ।
तैरेव किङ्करैः सार्धं सर्वं चापि न्यवीवृतत् ॥ ३४ ॥

पताका—स्वामीजी महाराज तो सन्यासी थे। किसीका कुछ लेते नहीं थे। उन्हें इन रत्नों और सुवर्णके पात्रोंकी क्या आवश्यकता थी? अतः उन्होंने आशीर्वाद देकर उन्हीं दासोंके साथ सब वस्तुएँ लौटा दीं ॥

इति नैस्पृह्यमालोच्य यतिराजस्य भूमिपः ।
महदाश्चर्यमासाद्य मनसि प्रससाद च ॥ ३५ ॥

पताका—बादशाह स्वामीजीकी इतनी निस्पृहता देखकर, आश्चर्य पाकर मनमें प्रसन्न हुआ ॥ ३५ ॥

गमनागमनं वीक्ष्य वहूनां तदनन्तरम् ।
योगी राजपुरुषाणां मेने विघ्नमिदं परम् ॥ ३६ ॥

पताका—तबसे बहुतसे राजपुरुषोंका आनाजाना देखकर श्रीस्वामीजीने सोचा कि यह बहुत बड़ा विघ्न है ॥ ३६ ॥

कञ्चित्कालं च देशानामटनं मनसाऽऽस्थितम् ।
शिष्यमण्डलमादाय वाराणस्याः स निर्ययौ ॥ ३७ ॥

पताका—कुछ कालपर्यन्त देशाटन करना चाहिये ऐसा श्रीस्वामीजीने विचार किया। अतः सब शिष्योंको साथ लेकर काशीसे चल पड़े ॥३७॥

एकदा भ्रमतस्तस्य महाराष्ट्रानुपेयुषः।
सिद्धसेनगणिर्जैनसाधुः सविध आगमत् ॥ ३८ ॥

पताका—एक समय जब श्रीस्वामीजी भ्रमण करते २ महाराष्ट्रमें आये उस समय सिद्धसेन गणि नामका एक जैन साधु उनके पास आया ॥ ३८ ॥

नास्ति कोऽपि जगत्कर्ता वैदिकं हि वचो मृषा।
अनाद्यनिधनं सर्वं जगदित्यगदच्च सः ॥ ३९ ॥

पताका—उसने स्वामीजीसे कहा कि, कोई भी संसारका कर्ता नहीं है। अतः जगत्को सकर्तृक कहनेवाले वेदवाक्य मिथ्या हैं। यह संसार तो सदासे ऐसा ही है और ऐसा ही रहेगा ॥ ३९ ॥

दन्तच्छटाघटादूरोत्सारितध्वान्तवैभवः।
अनन्तवैभवोपेतस्तमुवाच कृती वचः ॥ ४० ॥

पताका—दाँतोंकी छटासे अन्धकारको दूर करते हुये, अनन्त वैभव युक्त श्रीस्वामीजी महाराज बोले ॥ ४० ॥

जगतो यदि कर्तृत्वं कस्मिंश्चिद्रोचते न ते।
नियमेन पदार्थानामुत्पादः संविपद्यते ॥ ४१ ॥

पताका—यदि तुमको किसीमें जगत्का कर्तृत्व नहीं रुचता है तो नियमपूर्वक जो पदार्थोंकी उत्पत्ति देखनेमें आती है वह नष्ट हो जायगी। किसी बुद्धिमान् कर्ताके स्वीकार करनेसे ही यह नियम निभ सकता है ॥

यथा पथीष्टका दृष्ट्वा क्रमतः स्थापिताः क्वचित्।
संग्रहीता भवेदासां कोपीत्येवोप्यते मतिः ॥ ४२ ॥

पताका—जैसे मार्गमें क्रमसे स्थापित ईंटोंको देखकर यह बुद्धि उत्पन्न होती है कि इनका क्रमपूर्वक स्थापन करनेवाला अवश्य कोई है ॥

तथा क्रमेण सम्बद्धान् भवभावान्विभाव्य कः ।
मतिमान्नानुमिनुतामेषां कर्तारमादिमम् ॥ ४३ ॥

पताका—उसी प्रकारसे सांसारिक सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थोंको क्रमसे सम्बद्ध देखकर कौन बुद्धिमान इनके आदिकर्ताका अनुमान नहीं करेगा ? ॥ ४३ ॥

मृदप्तेजोमरुत्खेषु विकारो विहरन्सदा ।
तेषामनित्यतोद्योते सामर्थ्यं दधते महत् ॥ ४४ ॥

पताका—यदि संसारको अनादि मानो तो बन नहीं सकता है । क्योंकि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशमें रहनेवाला जो विकार है वह इन सर्व पदार्थोंको अनित्य सिद्ध करनेमें महान् सामर्थ्य रखता है । तात्पर्य यह है कि विकारी पदार्थ जितने हैं सब अनित्य ही होते हैं । जैसे घटादि विकारी हैं अतएव अनित्य हैं ॥ ४४ ॥

अनित्येषु च भावेषु नित्यत्वं यैर्निधीयते ।
बुधैस्तद्बुद्धिदौर्बल्ये कृपादृष्टिर्विधीयते ॥ ४५ ॥

पताका—अनित्य पदार्थोंमें जो नित्य-बुद्धि रखते हैं उनकी बुद्धिकी दुर्बलतापर ज्ञानी जन कृपादृष्टि ही करते हैं । वह अज्ञानोपहत होनेके कारण दयाके पात्र हैं ॥ ४५ ॥

स्याद्वादं चेत्समुद्भाव्यानित्यत्वं नित्यतामपि ।
तनुषे त्वं पदार्थानां विद्वद्भ्यस्तन्न रोचते ॥ ४६ ॥

पताका—यदि तुम स्याद्वादका उद्भावन करके निखिल पदार्थोंमें नित्यत्व और अनित्य दोनों धर्म स्वीकार करोगे तो वह विद्वानोंको नहीं रुचेगा ॥ ४६ ॥

मिथो वैरुद्ध्यमापन्ना धर्मास्तु युगपत्कचित् ।
शक्नुवन्ति न संस्थातुमेकस्मिन्नेव धर्मिणि ॥ ४७ ॥

पताका—परस्पर विरुद्ध नाना धर्म एक ही धर्ममें एक ही कालमें कहीं भी नहीं रह सकेत ॥ ४७ ॥

मनुषे चेदसम्बद्धमपि ब्रूहि कुतस्तदा ।
सकर्तृकं जगन्न स्यात्तवैवास्मात्कुतर्कत: ॥ ४८ ॥

पताका—यदि ऐसे असम्बद्ध स्याद्वादको स्वीकार करते हो तो बताओ कि तुम्हारे ही इस कुतर्कसे जगत् सकर्तृक क्यों नहीं सिद्ध हुआ? तात्पर्य यह कि जब तुम्हारे मतमें एक धर्मीमें परस्पर विरुद्ध धर्म एक ही कालमें रह सकते हैं तो जैसे तुम ईश्वरमें जगत्का अकर्तृत्व स्वीकार करते हो वैसे ही उसमें जगत्के कर्तृत्वका स्वीकार भी तुम्हारे गले पतित है ॥

किंच त्वन्मतयोस्तात मिथःकलहिनोरपि ।
फलोपधायकत्वं च धर्मयोरस्ति वा न वा ॥ ४९ ॥

पताका—किंच, तुम्हारे माने हुये परस्पर दो विरोधी धर्मोंमें फलोपधायकता है या नहीं? अर्थात् उससे कुछ फल सिद्ध होता है या नहीं?॥

तथापि प्रतिपद्येत चेत्तदा वह्निराशिभिः ।
जलैरिव सतां स्नानं संभवेच्छान्तिदायकम् ॥ ५० ॥

पताका—यदि तुम यह भी स्वीकार कर लोगे कि उसमें अर्थोपधाय-कत्व है तो तुम्हारे मतमें अग्निसमूहमें उष्णत्व और शीतलत्व तथा वह्नित्व और जलत्व दोनों रह रहे हैं, तब तो जैसे सज्जन पुरुष जलसे स्नान करके शीतल होते हैं वैसे ही वह्निसे भी स्नान करके उन्हें शीतल होना चाहिये॥

स्वसा ते विधवा जाता माता ते व्यभिचारिणी ।
कन्या प्रासूत ते पुत्रमृषभो वृषभोऽभवत् ॥ ५१ ॥

कूपमण्डूकतां प्राप्ता ये जनास्त्वद्वशं गताः ।
वचनारचना तेषामेषा मा भूदरुन्तुदा ॥ ५२ ॥

पताका—तुम्हारी बहिन बहुत पति वाली है अथवा विधवा हो गई, तुम्हारी माता व्यभिचारिणी है, तुम्हारी कन्या (कुमारी)को पुत्र हुआ है, तुम्हारे ऋषभदेव वृषभ हो गये हैं। इत्यादि वचन तुम्हारे अनुयायी कूप-मण्डूक समान जनोंके हृदयको व्यथित तो नहीं न करेंगे? अर्थात् जब तुम्हारे यहां सबमें सब धर्म है तो उपर्युक्त वचनसे तुम अथवा तुम्हारे अनु-यायी चिढ़ेंगे तो नहीं न? ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

यद्यद्विनाशि तत्कार्यं यत्कार्यं तत्सकर्तृकम् ।
जगतोऽपि विनाशित्वात्कार्यत्वं तस्य न क्षतम् ॥ ५३ ॥

पताका—जो २ विनाश धर्मवाला है वह सब कार्य है। और जो कार्य है उसका कोई कर्ता अवश्य है। जगत् भी विनाशि है अतः उसमें कार्यत्व भी अव्याहत ही है ॥ ५३ ॥

तन्निर्माणसामर्थ्याभावक्षाराम्बुधौ ब्रुडन् ।
जीवः कर्तृपदं कस्मादारोहतु तु जातुचित् ॥ ५४ ॥

पताका—उस जगत्के निर्माण करनेकी शक्तिके अभावरूप लवण-समुद्रमें डूबता हुआ जीव तो जगत्का कर्ता कैसे हो सकता है? ॥५४॥

अतस्तस्य च निर्माता वैदिकैरभ्युपेयते ।
सर्वाद्भुतक्रियाशक्तिप्राज्यसाम्राज्यभुग्विभुः ॥ ५५ ॥

पताका—अतएव वैदिक लोग समस्त अद्भुत क्रिया और अद्भुत शक्तिके महान् साम्राज्यके भोक्ता विभु भगवान् श्रीरामजीको ही जगत्का निर्माता स्वीकार करते हैं ॥ ५५ ॥

इदं सर्वं निशम्यासौ रागद्वेषमहाकरः ।
ऊचे पुनर्महाक्रुद्धः स जिनाशासनासनः ॥ ५६ ॥

पताका—वह यह राग और द्वेषका महान् आकर, जैन शासनमें रहने वाला साधु अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुनः बोला ॥ ५६ ॥

सशरीरोऽशरीरो वा जगत्स्रष्टा प्रभुस्तव ।
शरीरित्वेऽप्यदृश्यं वा शरीरं दृश्यमेव वा ॥ ५७ ॥

पताका—आपका जगत् स्रष्टा ईश्वर सशरीरी है वा अशरीरी ? यदि शरीरी है तो वह शरीर अदृश्य है अथवा दृश्य ? ॥ ५७ ॥

सशरीरो जगत्स्रष्टा शरीरं तच्च सर्वथा ।
दृश्यं भक्तिगणैरेव निर्धूताखिलकिल्बिषैः ॥ ५८ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराजने उत्तर दिया कि जगतस्रष्टा प्रभु सशरीरी हैं । तथा वह शरीर सर्वथा समस्तदोषशून्य भक्तजनोंको ही दृष्टिगोचर होता है ॥ ५८ ॥

शरीरित्वेऽन्तरेणापि तं तृणादिर्विजायते ।
कार्यत्वस्याक्षतेस्तत्र हेत्वाभासत्वमीक्ष्यते ॥ ५९ ॥

पताका—जैन साधु बोला, यदि ईश्वर शरीरी है, तो उस सशरीर ईश्वरके विना भी खेतोंमें तृण आदि उत्पन्न होते हैं । कार्यत्व तो वहां पर भी है ही है अतः आपका हेतु वस्तुतः हेत्वाभास है ।

तात्पर्य यह है कि 'क्षित्यादयो बुद्धिमत्कर्तृकाः, कार्यत्वात्, घटवत्' ऐसा अनुमान प्रयोग किया जाता है । अर्थात् पृथ्वी आदि सब पदार्थ बुद्धिमत्कर्तृक हैं, क्योंकि वह कार्य हैं । जैसे घट कार्य है और कुम्भकारकर्तृक है । इस अनुमान प्रयोगमें हेतु है 'कार्यत्वात्' । वह साधारण-अनैकान्तिक हेतु है । क्योंकि तृणादिमें कार्यत्व है परन्तु शरीरिकर्तृकत्व अनुपलब्ध है । हेत्वाभासोंमेंसे सव्यभिचार एक हेत्वाभास है । उसके तीन भेद हैं । साधारण, असाधारण और अनुपसंहार । जो हेतु साध्यमें भी रहता हो और जहां साध्य नहीं है वहां भी रहता हो उसे साधारण अनै-

कान्तिक कहते हैं। अनैकान्तिक और सव्यभिचार पर्याय शब्द है। यहां पर यही साधारण अनैकान्तिक हेतु है। क्योंकि कार्यत्व भवदभिमत ईश्वरकृत सूर्यचन्द्रादि पदार्थोंमें भी है और तदकृत अर्थात् जिनका बनानेवाला ईश्वर नहीं है उन तृणादिकोंमें भी कार्यत्व विद्यमान है ॥ ५९ ॥

शरीरी स स्वशक्त्यैव यानि बीजान्यजीजनत् ।
तानि चोप्तानि भूगर्भे ह्युपयन्ति तृणद्रुताम् ॥ ६० ॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले, शरीरी परमात्माने अपनी शक्तिसे जिन बीजोंको प्रथमसे ही उत्पन्न कर रखा है, वे ही पृथ्वीमें बोये जानेपर तृण, वृक्ष आदि भावको प्राप्त हो जाते हैं। यहां पर भी शरीरी कर्ता है ही है अतः 'कार्य्यत्व' हेतु साधारण अनैकान्तिक नहीं है। इसी प्रकारसे तुम्हारा कहा हुआ कालात्ययापदिष्ट भी नहीं है। प्रतिज्ञासिद्ध, कालात्यया-पदिष्ट तथा बाध ये तीनों पर्यायवाचक हैं। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके विरोधसे जिस हेतुकी प्रतिज्ञा सिद्ध न होती हो उसे कालात्ययापदिष्ट कहते हैं। 'बुद्धिमत्कर्तृक' जगत् है। यह प्रतिज्ञा है वह योगप्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द आदि प्रमाणोंसे सिद्ध ही है अतः निर्दुष्ट है ॥ ६० ॥

यथा नटो विदूरेण नर्तयन्नोपलक्ष्यते ।
पुत्तलिकां तथा देवोऽभक्तैर्न कापि दृश्यते ॥ ६१ ॥

पताका—जैसे नट दूरसे बैठकर पुतलीको नचाता है परन्तु पटादिसे अन्तरित होनेके कारण उपलक्षित नहीं होता है उसी प्रकार जगत्कर्ता प्रभु प्रतिक्षण सब कुछ कर रहे हैं परन्तु भगवद्भक्तोंके अतिरिक्त उनकी लीलाका अनुभव तथा उनका साक्षात्कार अन्योंको नहीं होता है ॥६१॥

सूक्ष्मदर्शी यथा कश्चिज्ज्ञानी पश्यति तं नटम् ।
भव्यभक्तिप्रकाशात्मा जगत्कर्तारमीक्षते ॥ ६२ ॥

पताका—जिस प्रकारसे सूक्ष्मदर्शी कोई ज्ञानी पुरुष नचाते हुये

उस नटको देखता है उसी प्रकारसे भव्यभक्तिरूप प्रकाशसे परिपूर्ण आत्मा उस जगत्कर्ताको देखता है ॥ ६२ ॥

एक एवेश्वरः सोऽथ बहवो वा भवन्मताः ।
तत्त्वं सत्त्वावलम्बी त्वं ब्रूहि स्पष्टं यतीश्वर ! ॥ ६३ ॥

पताका—जैन साधु बोला, ईश्वर एक है अथवा अनेक है ? हे यतिराज इसका स्पष्ट समाधान करिये ॥ ६३ ॥

सकलश्रुतिसन्दिष्टः सर्वशक्तिसमन्वितः ।
एक एव जगत्स्रष्टा मन्यते जगदीश्वरः ॥ ६४ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले, सकलश्रुतिप्रतिपादित, सर्वशक्तिमान्, जगत्का स्वामी, जगत्स्रष्टा एक ही है; अनेक नहीं ॥ ६४ ॥

कारणं किं पुरस्कृत्य वेदैर्वेदानुयायिभिः ।
एक एवेश्वरोऽस्तीति डिण्डिमो वाद्यते सदा ॥ ६५ ॥

पताका—जैन बोला, क्या कारण है कि वेद और वेदानुयायी लोग सर्वदा यह डिण्डिम बजाते रहते हैं कि ईश्वर एक ही है ? ॥ ६५ ॥

ईश्वराणां बहुत्वं चेदेकस्मिन् कार्यवस्तुनि ।
वैमत्यं सम्भवेत्तस्मादेक एवेश्वरो मतः ॥ ६६ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले, यदि अनेक ईश्वर हो तो एक ही कार्यमें विरुद्ध मत उत्पन्न होनेकी सम्भावना है । एक ईश्वर कहेगा कि यह करना है, एक कहेगा कि नहीं वह करना है । अत एव ईश्वर एक ही अभिमत है ॥ ६६ ॥

कीटिकाशतनिष्पाद्ये शक्रमूर्द्धनि दृश्यते ।
वैमत्यं नापि तत्कार्य्यहानिः क्वापि जनैरिह ॥ ६७ ॥

पताका—जैन बोला, सैकड़ों कीड़ियां मिलकर एक वल्मीक तैयार करती हैं परन्तु उनमें वैमत्य नहीं देखा जाता है तथा कार्यकी हानि भी नहीं देखी जाती । ऐसे ही ईश्वर भी अनेक हो तो कोई क्षति नहीं है ॥

कीटिकानां सहस्रेष्वेकस्यास्तु स्वामिता मता ।
अन्यासां तदधीनत्वाद्वैमत्यं सम्भवेन्नहि ॥ ६८ ॥

पताका—अनन्त कीड़ियोंमें एक स्वामी होता है और अन्य कीड़ियां उसके अधीन रहती हैं अत एव वहां वैमत्य सम्भव नहीं है ॥ ६८ ॥

तथा कथं च विज्ञातं वैमत्यं नास्ति तासु भोः ।
अत्यल्पकीटिकाभिस्तं देवं तोलयता त्वया ॥ ६९ ॥

पताका—तथा अत्यन्त अल्प निकृष्ट अज्ञानी कीड़ियोंके साथ उस ज्ञान स्वरूप पुरुषोत्तमकी तुलना करते हुये तुमने कैसे जाना कि उनमें परस्पर विरुद्ध मत नहीं है ? तात्पर्य यह कि एक तो उनकी भाषा, उनका व्यवहार आदि तुमको विदित नहीं है । दूसरे तुमने एक सर्वज्ञके साथ कीड़ियोंकी तुलना की है यह सर्वथा अनुचित है । एक भेडके पीछे सैकडों भेड़ें चलती हैं एतावता तुम यह कहोगे कि एक मनुष्यके पीछे ब्रह्माण्डके सब मनुष्य चलते हैं ? यह तो प्रत्यक्षके ही विरुद्ध है । हां जिनेश्वरकी भेंड़ें अवश्य आंख कान बन्द करके एकके पीछे एक, क्रमसे चलती हैं । यदि कहो कि कार्यनिष्पत्ति देखते हैं,—वल्मीक निर्मित देखते हैं अतएव वहां वैमत्याभावका अनुमान करते हैं, तो भाई, वैमत्याभावमें कार्य हो ही नहीं, यह तो कहा ही नहीं जा सकता । संसारमें जैनोंके साथ अत्यन्त वैमत्य है तब भी तो केश नोचनेवालोंकी कमी नहीं है ॥ ६९ ॥

सर्वगोऽसर्वगो वापि स च देहात्मनाऽथवा ।
ज्ञानात्मनेति वक्तव्यं निपुणं निपुणात्मना ॥ ७० ॥

पताका—पुनः जैन बोला, वह ईश्वर व्यापक है वा नहीं ? यदि है, तो देहसे व्यापक है अथवा ज्ञानसे ? इसे आप अच्छे प्रकारसे समझाइये ॥

सर्वगः स च विश्वात्मा जगदीशो महाप्रभुः ।
ज्ञानाद्यैरिति सर्वत्र शास्त्रेषु प्रतिपादितम् ॥ ७१ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले, विश्वात्मा, जगदीश्वर, महाप्रभु धर्मभूत ज्ञानद्वारा, स्वरूपद्वारा तथा विग्रहद्वारा सर्वव्यापक हैं। ऐसा ही सर्व शास्त्रोंमें प्रतिपादित है ॥ ७१ ॥

विश्वतश्चक्षुरित्यादि तदा वेदो वदन् कथम्।
न प्रकुप्येत भो विद्वन् कथङ्कारं वदेति ते ॥ ७२ ॥

पताका—जैन बोला कि, वेदोंमें तो लिखा है कि, 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतः पाणिरुत विश्वतः पाद्' अर्थात् ईश्वरके चारों ओर मुख इत्यादि हैं, अर्थात् शरीरात्मना व्यापकत्व लिखा है और आप ज्ञानात्मना व्यापकत्व कहते हैं, तब आपके ऊपर वेदका प्रकोप क्यों नहीं होगा? ॥ ७२ ॥

सर्वदर्शित्वमानन्त्यं सर्वगत्वं च सर्वथा।
बोधयितुं प्रवृत्तायाः श्रुतेरर्थो न गम्यते ॥ ७३ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले, इस श्रुतिका अर्थज्ञान तुम्हें नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि संसारमें चारों ओर प्रतिपदार्थमें ब्रह्मका मुख ही मुख है अथवा नेत्र ही नेत्र हैं। इस श्रुतिका तात्पर्य यह है कि भगवान् सर्वदर्शी हैं। ऐसी कोई भी क्रिया प्राणियोंकी नहीं है जो प्रभुके ज्ञानसे बाहर हो। प्रभुका आनन्त्य, उनकी सर्वशक्तिमत्ता, उनकी व्यापकता और उनका लोकोत्तर सामर्थ्य ही प्रकट करनेके लिये यह श्रुति प्रवृत्त हुई है ॥

सर्वगः स च सर्वज्ञ ईश्वरः केन बुध्यते।
आगमैरिति चेद् ब्रूषे तद् विकल्पान्निरासय ॥ ७४ ॥

पताका—जैन बोला, वह ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है यह कैसे आप जानते हैं? यदि कहिये कि आगमों—वेदोंसे? तो मेरे विकल्पोंको दूर करिये ॥ ७४ ॥

आगमास्तत्कृताः सन्ति तद्भिन्नैर्वा कृता मताः।
तत्कृता इति चेदस्तु तत्कृतौ का प्रमाणता ॥ ७५ ॥

पताका—मेरे विकल्प यह हैं कि, वे आगम ईश्वरकृत हैं अथवा अन्य कृत ? यदि ईश्वरकृत ही हैं तो ईश्वरकी कृतिमें प्रमाणता क्या है ? अर्थात् ईश्वर यदि अपना महत्त्व प्रकट करनेके लिये असत्य ही लिख दिया हो तो कौन जानता है ? ॥ ७५ ॥

महत्त्वक्षतिरप्येषा तस्य संजायते ननु ।
न महान् स्वगुणोद्घोषे जिह्वां संचालयत्यपि ॥ ७६ ॥

पताका—यदि ईश्वरकृत वेद हैं और उनमें ईश्वरका महत्त्व वर्णित है तब तो उसके महत्त्वकी भी हानि है। क्योंकि महान् पुरुष स्वतः अपना गुण वर्णन करनेकेलिये जीभ नहीं हिलाते हैं ॥ ७६ ॥

पूर्वापरविरुद्धार्थवचनानां विनायकः ।
कुरुते स स्वयं स्वस्य सर्वज्ञत्वनिवारणम् ॥ ७७ ॥

पताका—पूर्वापरविरुद्ध वचनोंके निर्माता तुम्हारे ईश्वर स्वयं अपने सर्वज्ञताका निवारण कर रहे हैं ॥ ७७ ॥

मा हिंस्यात्सर्वाभूतानीत्युक्त्वा पूर्वं ततः परम् ।
अग्नीषोमीयमित्यादि वाक्यं तत्र निदर्शनम् ॥ ७८ ॥

पताका—वेदमें प्रथम तो कहा कि किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये और उसके पश्चात् विधान किया कि अग्निषोमीय पशुका वध करना चाहिये। यह वचन पूर्वापर विरोधका उदाहरण है ॥ ७८ ॥

उन्मत्तानां प्रलापोऽयमप्रामाण्यं ततः श्रुतेः ।
ततो नास्ति च सार्वज्ञ्ये प्रमाणं तस्य किञ्चन ॥ ७९ ॥

पताका—यह वेद उन्मत्तोंका प्रलाप है अतः उसका प्रामाण्य नहीं है। अत एव ईश्वरके सर्वज्ञ होनेमें कोई भी प्रमाण नहीं है ॥ ७९ ॥

तदन्यैश्चेत्कृता वेदा नो ततोऽपि प्रमाणता ।
रागद्वेषादिपूर्णत्वात्तेषां तस्माद्विभुर्न सः ॥ ८० ॥

पताका—यदि ईश्वरसे अतिरिक्त किसी अन्यके बनाये हुये वेद हैं तो भी उनका प्रामाण्य नहीं है। क्योंकि उनके बनानेवाले मनुष्य रागद्वेषादिसे पूर्ण रहे होंगे। अतः किसी प्रकारसे सिद्ध न होनेके कारण ईश्वर विभु नहीं हो सकता ॥ ८० ॥

श्रुत्वा यतिपतिर्वाचमेतस्य च्छद्मसद्मनः ।
दशनांशुप्रकाशेन तमो दूरमपाहरत् ॥ ८१ ॥

पताका—श्रीस्वामीजीने उस महाछलीके इस वचनको सुनकर उसके अज्ञानान्धकारको अपने दांतोंके किरणोंके प्रकाशसे दूर कर दिया। अर्थात् वह बोले ॥ ८१ ॥

आगमानां च नित्यत्वान्न कृतास्ते हि केनचित् ।
सर्गादौ भगवानेव प्रादुर्भावयतीह तान् ॥ ८२ ॥

पताका—वेदोंके नित्य होनेके कारण वे किसीके बनाये हुये नहीं हैं। सृष्टिके आरम्भमें प्रभु स्वयं उनका प्रादुर्भाव करते हैं ॥ ८२ ॥

स्वगुणख्यापनार्थं तु श्रुतयो न प्रवर्तिताः ।
किन्तु याथार्थ्यबोधाय तेन, तस्मान्न दूषणम् ॥ ८३ ॥

पताका—उस भगवान्‌ने अपने गुणोंका वर्णन करनेके लिये श्रुतियों-का प्रादुर्भाव नहीं किया है किन्तु यथार्थ ज्ञानके निमित्त वेदोंको प्रकट किया है। तात्पर्य यह कि सृष्टिके आरम्भमें परम कृपालु भगवान्‌ने जीवों-पर परमानुग्रह करके वेदोंका इस लिये प्राकट्य किया कि पदार्थमात्रका यथार्थ ज्ञान मनुष्योंको हो। जैसे माता, पिता और गुरु अपने पुत्रों और शिष्योंको यह शिक्षा देना अपना धर्म समझते हैं कि तुम माता, पिता और गुरुको नित्य प्रणाम करो, इनके सामने विनीतभावसे रहो, इत्यादि। और जैसे इस उपदेशमें कोई भी विज्ञ पुरुष महत्त्व हानि नहीं समझता है उसी प्रकारसे प्रभुने नैसर्गिक अपने प्रति सद्भाव रखने तथा अपने स्व-

रूपका बोधन करनेके लिये ही श्रुतियोंमें व्यापकत्व और सर्वज्ञत्व आदिका निर्देश किया है। अतः इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ८३ ॥

मा हिंस्यादिति वाक्यं तु विद्ध्युत्सर्गं तमोनिधे।
अपवादश्च तस्येदमग्नीपोमीयमित्यथ ॥ ८४ ॥

पताका—'मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि' यह वाक्य उत्सर्ग है। और 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' यह वाक्य उसका अपवाद है ॥ ८४ ॥

उत्सर्गेष्वपवादेषु नो विरोधविचारणा।
अन्यथा सर्वशास्त्रेषु महान् क्षोभो जनिष्यति ॥ ८५ ॥

पताका—उत्सर्ग और अपवाद वाक्यमें विरोधका विचार नहीं होता है। परस्पर विरुद्ध वचन उसे कहते हैं जो एक ही प्रसङ्गमें एकके ही लिये, समान रूपसे, अनिवार्य्य रूपसे विहित अथवा निषिद्ध हो। जहां विभिन्न प्रसङ्गमें भेद अनिवार्य हो वहां विरोध नहीं कहा जा सकता। नहीं तो तुम्हारे यहां भी तो 'अहिंसा परमो धर्मः' ऐसा माना गया है। पुनः जलको उष्ण करके पीनेका विधान किया है। और जलको उष्ण करनेका मुख्य कारण यही है कि उसमें रहनेवाले जीव मर जावें और पुनः उत्पन्न न हों। साधुओंको स्त्रीके स्पर्शका निषेध है परन्तु कोई साध्वी (गृहस्थ स्त्री नहीं !!) स्त्री जलमें डूबती हो तो उसे पकड़कर बचा लेनेकी आज्ञा है इस प्रकारसे सबके यहां उथल पुथल हो जावेगा ॥ ८५ ॥

अथोवाच पुनर्जैनो मिथ्यादृष्टिसमाहतः।
स्वाधीनो वा पराधीनः परमेशस्तवास्ति भोः ॥ ८६ ॥

पताका—मिथ्यादृष्टिसे ताडित वह जैन पुनः बोला, कि आपका वह परमेश्वर स्वाधीन है अथवा पराधीन? ॥ ८६ ॥

स्वाधीनश्चेत्कथं क्रौर्य्यं सुखितादुःखितादिकाम्।
नानावस्थां प्रतायेह जीवानां तेन तायते ॥ ८७ ॥

पताका–यदि वह स्वाधीन है तो जीवोंको सुख और दुःख आदिकी नाना अवस्था देकर क्यों क्रूरता करता है? अर्थात् उस ईश्वरको आप लोग दयालु मानते हैं तो वह स्वाधीन होते हुये भी दयालुताके विरुद्ध जीवोंको क्यों कष्ट देता है? ॥ ८७ ॥

यदि कर्मपराधीना कृतिस्तस्यापि विद्यते ।
तदा च स्ववशत्वाय दत्त एव जलाञ्जलिः ॥ ८८ ॥

पताका–यदि उस ईश्वरकी कृति भी जीवोंके कर्माधीन है तबतो उसकी स्वाधीनताकेलिये तिलाञ्जलि दे दी गई? ॥ ८८ ॥

बुद्धाबोधातिसंघातसम्पातापातिताशयः ।
शकृत्कल्पं वमन् गन्धं मुखेनायात्स मौनिताम् ॥ ८९ ॥

पताका–उत्पन्न हुये अज्ञानके समूहके सम्पातके द्वारा पातित हो गया था अन्तःकरण जिसका, ऐसे उस जैन साधुने मुखसे विष्ठा समान गन्ध उगलता हुआ मौनावलम्बन किया ॥ ८९ ॥

जीवानां च यथाकर्म सुखदुःखे ददाति सः ।
पारतन्त्र्यं भवेन्नेदं न्याय्यमेतदुदीर्यते ॥ ९० ॥

पताका–श्रीस्वामीजी बोले, वह भगवान् जीवोंके कर्मानुसार उसे सुख दुःख देते हैं। यह परतन्त्रता नहीं कही जा सकती। इसका नाम है न्याययुक्त कार्य ॥ ९० ॥

किञ्चित्कर्तुं समीह्यैव साधनाभावतो यदि ।
शक्यते चेन्न तत्कर्तुं तदाऽस्वातन्त्र्यमिष्यते ॥ ९१ ॥

पताका–यदि कोई किसी कार्यको करनेकी इच्छा करके साधनोंके अभाव होनेसे उसे न कर सके तो उसका नाम पराधीनता है ॥ ९१ ॥

नैवमत्र भवेदीशे सति कर्मकुले प्रभुः ।
संबध्नाति फलैर्जीवाँस्तदभावे स नेहते ॥ ९२ ॥

पताका—भगवान्‌में ऐसा नहीं है। वह तो जब जीवोंके कर्म रहते हैं तभी फलोंद्वारा उन्हें बांधते हैं। कर्म न हों तो उनको बांधनेकी उनकी इच्छा भी नहीं होती है। अतः भगवान् परतन्त्र नहीं। क्योंकि परतन्त्र वही है जो साधनाभावसे स्वमनीषितको पूर्ण न कर सके ॥ ९२ ॥

एवं हि सृष्टिनिर्माणेऽप्यस्ति नापरतन्त्रता।
तस्य किञ्चित्परत्वं नो विद्यते जगतीतले ॥ ९३ ॥

पताका—इसी प्रकार सृष्टि निर्माणमें भी प्रभुको पारतन्त्र्य नहीं है। संसारमें भगवान्‌के लिये पर कोई वस्तु ही नहीं है। परतन्त्रता कहांसे आवेगी? ॥ ९३ ॥

चितोऽचितः शरीरत्वं तस्य भाति शरीरिणः।
स्वशरीरे परत्वं चेत्स्वत्वं कुत्रोपयुज्यते ॥ ९४ ॥

पताका—चित् और अचित् ये दोनों ही उस शरीरी प्रभुके शरीर हैं। यदि स्वशरीरमें भी परत्व हो तो स्वत्व कहां रहेगा? ९४ ॥

सर्वथा हि स्वतन्त्रः स फलदाने विभुर्मतः।
न्यायाध्यक्षो ददद्दण्डं परवान्दण्ड्ये न कथ्यते ॥ ९५ ॥

पताका—अतः भगवान् जीवोंके फलदानमें सर्वथा स्वतन्त्र ही हैं। कर्मानुसार फल देनेसे वह परतन्त्र नहीं हो सकते। न्यायाध्यक्ष अपराधी-को दण्ड देता हुवा परतन्त्र नहीं कहा जा सकता ॥ ९५ ॥

ईश्वरश्चेत्स नित्योऽस्ति जगत्सर्गस्वभाववान्।
अथवाऽतत्स्वभावोऽसाविति स्पष्टमुदीरय ॥ ९६ ॥

पताका—जैन बोला, यदि आपका अभिमत ईश्वर नित्य है तो क्या वह त्रिभुवनकी सृष्टि करनेका स्वभाववाला होकर नित्य है अथवा सृष्टि न करनेका स्वभाववाला होकर नित्य है? इसे आप स्पष्ट बताइये ॥ ९६ ॥

सर्गस्वभावतायुक्तश्चेत्सदा सर्गनिर्मितेः ।
न स्यादुपरतिस्तस्य तत्त्वे सृष्टिर्न युज्यते ॥ ९७ ॥

पताका–यदि वह सृष्टि बनानेका स्वभाववाला होकर नित्य है तब तो सृष्टि बनानेसे उसे कभी अवकाश ही नहीं मिल सकता। और यदि वह सृष्टि ही बनाता रहे तो सृष्टिका होना भी असम्भव है। तात्पर्य यह है कि जैसे, घट जबसे बनना आरम्भ हुआ है तबसे लेकर समाप्ति क्षणसे पूर्व वह घट शब्दसे व्यपदेश्य–व्यवहार्य नहीं होता। क्रिया समाप्तिके पश्चात् ही घट कहा जाता है। उसी प्रकारसे यदि ईश्वरका स्वभाव नित्य ही सृष्टि करनेका है तब तो वह नित्य सृष्टि ही करता रहेगा। उसकी क्रिया कभी समाप्त ही नहीं होगी। क्रिया समाप्त न होनेसे पूर्वोक्त प्रकारसे सृष्टि सृष्टि शब्द व्यपदेश्या नहीं होगी॥ ९७ ॥

अतत्स्वभावश्चेदीशस्तज्जगन्ति स नो सृजेत् ।
स्वभावयोगतस्तस्मात्सर्गोऽयं नोपपद्यते ॥ ९८ ॥

पताका–तथा यदि वह सृष्टि न बनानेका स्वभाववाला होकर नित्य है तो भी वह सृष्टि नहीं बना सकता। क्योंकि वह उसके स्वभावके विरुद्ध है। अतः सृष्टि उपपन्न नहीं हो सकती ॥ ९८ ॥

सत्यं स नित्य एवास्ति जगल्लीलाधरो विभुः ।
तदा तत्तत्करोत्येव यदा यद्यत्समीहते ॥ ९९ ॥

पताका–श्रीस्वामीजी बोले, तुम्हारा कथन सत्य है। जगत्रूप लीला के धारण करनेवाले प्रभु नित्य ही हैं। तथा जब २ जो चाहते हैं तब वह वह कर लेते हैं॥ ९९ ॥

विसृष्टिस्थितिसंहारलीलास्वाभाव्यसंयुतः ।
जगन्नाथो महाशक्तिर्विनियोज्यो न कस्यचित् ॥ १०० ॥

पताका—सृष्टि, स्थिति और संहार रूप लीलाके स्वभावसे युक्त तथा महती शक्ति सम्पन्न वह जगन्नाथ किसीके विनियोज्य नहीं हैं। अर्थात् यह क्यों किया और यह क्यों न किया? उन्हें ऐसा कहनेवाला कोई नहीं है॥

रममाणो यथा बालो विम्बं निर्मीति तत्पुनः।
विनाशं गमयत्येवं रघुनाथोऽपि चेष्टते॥ १०१॥

पताका—जैसे बालक खेलता हुआ मिट्टी आदिसे कोई बिम्ब बनाता है और पुनः बिगाड़ देता है उसी प्रकारसे लीलामय प्रभु भी करते रहते हैं॥ १०१॥

स्वभावभेदेऽनित्यत्वं समायाति परात्मनः।
पार्थिवं च शरीरं स्यादत्र योग्यं निदर्शनम्॥ १०२॥

पताका—जैन बोला कि कदाचित् ऐसा मानिये कि वह एक ही स्वभावसे जगत्की सृष्टि भी करता है और प्रलय भी करता है तो स्वभावके अभेद होनेके कारण सृष्टि और संहार दोनोंका यौगपद्य प्राप्त होगा। यदि स्वभावान्तरसे सृष्टि प्रलयकी निष्पत्ति स्वीकार करिये तो नित्यत्वकी हानि है। क्योंकि स्वभाव भेद ही तो अनित्यताका लक्षण है। जैसे आहारपरमाणु सहकृत पार्थिव शरीरको प्रतिदिन अपूर्व अपूर्व उत्पादनसे स्वभावभेद होनेके कारण अनित्यत्व है वैसाही ईश्वरमें भी प्राप्त होगा॥ १०२॥

स्वभावभेदेऽनित्यत्वं प्राकृतेष्वेव वस्तुषु।
नाप्राकृते परेशे तत्प्रसज्ज्येत कथञ्चन॥ १०३॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले कि स्वभावभेद केवल प्राकृत वस्तुओंमें ही अनित्यताका प्रयोजक हो सकता है। परन्तु अप्राकृत परमेश्वरमें यह अनित्यत्व कभी नहीं आ सकता है॥ १०३॥

स्वभावभेदे नित्यत्वं ब्रुवता किं प्रसाधितम्।
यत्र स्वभावसंभेदो नास्ति तत्रास्ति नित्यता?॥ १०४॥

पताका—किंच स्वभावभेदसे अनित्यत्वका प्रतिपादन करते हुये तुमने क्या सिद्ध किया? यह तो नहीं, कि जहां स्वभाव भेद नहीं है वहां अनित्यत्व भी नहीं है? ॥ १०४ ॥

एवं चेदनले दोषप्रसक्तिस्त्वन्मते भवेत्।
उष्णस्वभावतापायात्तस्माद्भेदोऽभिदाकरः ॥ १०२ ॥

पताका—यदि ऐसा ही हो तब तो तुम्हारे मतमें अग्निमें भी दोष आवेगा। क्योंकि अग्निका जो उष्ण स्वभाव है वह तो कभी भी नष्ट नहीं होता है। सर्वदा वहां एक स्वभावता ही है तब तो उसे तुम्हें नित्य मानना होगा, जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध है। अतः स्वभाव भेद नित्यत्व अनित्यत्वका सर्वथा प्रयोजक नहीं है ॥ १०५ ॥

किंच प्रेक्षावतामत्र प्रवृत्तेः कारणद्वयम्।
स्वार्थेनाथापि कारुण्येनेति किं तत्र कारणम् ॥ १०३ ॥

पताका—जैन पुनः बोला, बुद्धिमान् पुरुषोंकी प्रवृत्तिमें दो ही कारण होते हैं। एक स्वार्थ, और दूसरा दया। इन दोनोंमेंसे ईश्वरकी सृष्टिरूप प्रवृत्तिमें कौन सा कारण है? ॥ १०६ ॥

न तावच्छक्यते वक्तुं स स्वार्थात्सम्प्रवर्तते।
कृतकृत्यतया तस्य परेशस्य यतीश्वर! ॥ १०४ ॥

पताका—हे यतीश्वर! आप यह तो कह नहीं सकते कि वह स्वार्थवश सृष्टिमें प्रवृत्त होता है। क्योंकि वह सर्वथा कृतकृत्य है उसे किसी वस्तुकी अपेक्षा ही नहीं है ॥ १०७ ॥

कारुण्यादपि नो युक्ता तत्प्रवृत्तिर्यतश्च तत्।
परदुःखप्रहाणेच्छा सर्गाभावे न दुःखिता ॥ १०५ ॥

पताका—कारुण्यवशसे भी ईश्वरकी सृष्टिरूप प्रवृत्ति युक्त नहीं है। क्योंकि परदुःखके नाशकी इच्छाको ही कारुण्य कहते हैं। यदि भगवान्

सृष्टि न करें तो किसीको दुःख ही न हो। दुःख न हो तो दयाकी आव-श्यकता ही नहीं है। अतः सृष्टिकी प्रवृत्तिमें यह भी कारण नहीं है ॥१०८

सर्गान्तरे च दुःखित्वमापन्नेषु दयावशात्।
तत्प्रवृत्तिश्च जीवेषु ह्युपपन्नेति चेदथ ॥ १०६ ॥

पताका—दूसरी सृष्टिमें दुःखभावको प्राप्त हुये जीवोंपर दया करके भगवान्की यह प्रवृत्ति है, यदि ऐसा कहियेगा तो—॥ १०९ ॥

अन्योन्याश्रयदोषः स्यात्सृष्टिः कारुण्यतः कृता।
सृष्ट्यैव चाथ कारुण्यं ततः सर्वं निरर्थकम् ॥ १०७ ॥

पताका—अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होगा। यदि कारुण्य हो तो सृष्टि बने और सृष्टि बने—जीव दुःखी हों तो कारुण्य उत्पन्न हो। अतः यह सब आपकी कल्पना निरर्थक है ॥ ११० ॥

लीलारूपेयमीशस्य सृष्टिः कारुण्यहेतुका।
अन्योन्याश्रयदोषस्य लेशलेशो न विद्यते ॥ १०८ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले, भगवान्की लीलारूपा यह सृष्टि कारुण्य-हेतुका है। तथा त्वदुक्त अन्योन्याश्रय दोषका तो गन्ध भी नहीं है ॥१११

जीवानामप्यनादित्वात्कर्मणामप्यनादिता।
वस्तुन्यनादिनि प्रेक्षादित्वस्य हि निरर्थिका ॥ १०९ ॥

पताका—अन्योन्याश्रय क्यों नहीं है तो इसका उत्तर करते हैं। कर्म-कर्ता जीव भी अनादि हैं और उनके कर्म भी अनादि हैं। अर्थात् यत्न, क्रिया और इच्छा आदि चेतनके स्वाभाविक नित्य धर्म हैं। जबसे चेतन है तबसे उसकी क्रिया है। वह अनादि है अतः उसकी क्रिया भी अनादि-कालसे ही प्रवृत्त है। अनादि वस्तुमें आदित्व शोधना निरर्थक है ॥११२॥

प्रवाहानादितो नित्यं पुना रात्रिरहर्महः।
पुनः प्रवर्तते यद्वत्तथा सृष्टेरपि क्रमः ॥ ११३ ॥

पताका—जिस प्रकारसे रात्रिके पश्चात् दिवस और दिवसके पश्चात् रात्रिका क्रम चला आता है और चलता रहेगा। उसी प्रकारसे सृष्टि भी प्रवाहसे अनादि है। अतः सृष्टिका भी आदि न होनेसे यह नहीं कह सकते हो कि पूर्व सृष्टि ईश्वर न बनाता तो जीवोंको कष्ट न होता और तन्मूलक दया न होती और उसका परिणाम सृष्टि निर्माण न होता ॥

पृथिव्यादीनि वस्तूनि धारणादि क्रियां यथा ।
स्वाभाव्यात्कुर्वते तद्वदीश्वरोऽपि विचेष्टते ॥ ११४ ॥

पताका—जिस प्रकारसे पृथिवी आदि स्व स्व धारणादि क्रिया स्वभावसेही करती हैं उसी प्रकारसे प्रभु भी अपनी जगत् निर्माणरूप लीला स्वभावसे ही करते हैं। उनकी प्रवृत्ति बुद्धिमत्तापूर्विका होनेसे जिस कार्य्यके उत्पादनका कारणसानिध्य होता हैं उसकी उत्पत्ति करते हैं और जिसका कारणसानिध्य नहीं है उसे नहीं बनाते। अतः सब समञ्जस है ॥११४॥

एवं सद्युक्तिसूक्तोतिसूक्तिसञ्चयवायुभिः ।
उत्क्षिप्तोऽस्य विपक्षस्य पक्षकक्षोऽनलेऽपतत् ॥ ११५ ॥

पताका—इस प्रकारसे श्रीस्वामीजीके सुन्दर युक्तिपूर्ण वचनरूप वायुसे उड़ाया हुआ विपक्षी—जैनका पक्षरूप तृण अग्निमें पड़ गया ॥ ११५ ॥

दग्धसंशयशाखी स विषयेऽस्मिन्निरुत्तरः ।
पुनः प्रवते जैनः शौचाचारं विनिन्दितुम् ॥ ११६ ॥

पताका—इस विषयमें निरुत्तर होकर, संशयरहित होकर, वह जैन साधु पुनः शौचाचार—पवित्रतासंरक्षणकी निन्दा करनेको प्रवृत्त हुआ॥११६

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्तीत्येवमादिक्षदादिमः ।
स्वस्यां स्मृतौ स्मृतौ ते स्याद्भूपस्ते सन्मनुर्मनुः ॥११७॥

पताका—वह जैन बोला कि, उत्तम ज्ञानवाले सर्वप्रथम राजा मनुने अपनी स्मृतिमें अर्थात् मनुस्मृतिमें लिखा है कि जलसे शरीर शुद्ध होता है। यह आपके स्मरणमें होगा ॥ ११७ ॥

तन्मुधा व्याहृतिर्मन्ये ह्यस्थिचर्मास्रगन्विते।
देहे च पापगेहेऽस्मिन्शुद्धता कास्तु वस्तुतः ॥ ११८ ॥

पताका–इस कथनको मैं व्यर्थ ही मानता हूं। क्योंकि अस्थि, चर्म, रक्त आदि युक्त इस पापाकर देहमें वस्तुतः शुद्रता क्या हो सकती है? ॥ ११८ ॥

स्नानमाचरताभीक्ष्णं जन्तूनां सूक्ष्मदेहिनाम्।
न हिंसाचरितेत्येवं मतिमान् कोऽनुमन्यताम् ॥ ११९ ॥

पताका–सर्वदा स्नान करनेवाले मनुष्यने सूक्ष्म शरीरवाले जन्तुओं-की हिंसा नहीं की, ऐसा कौन बुद्धिमान् मान सकता है? अर्थात् जलके जो अल्प जीव हैं वह शरीरके संपर्कसे, हस्तादिके घर्षणसे मर जाते हैं ॥

शौचं चेदान्तरं तेऽस्तु बहिः स्यात्तच्च वा न वा।
तत्किमर्थं जनैर्व्यर्थं वैदिकैस्तत्समुह्यते ॥ १२० ॥

पताका–यदि आपके अन्तःकरणकी शुद्रता अच्छे प्रकारसे हो तो बाहरकी शुद्रता हो अथवा न हो उससे कोई फल नहीं। तो क्यों व्यर्थमें वेदानुयायी लोग बाह्य शौचाचारका पालन करते हैं? ॥ १२० ॥

उदरं चेन्मनुष्याणां विण्मूत्रैः सम्परिप्लुतम्।
गुदप्रक्षालिते क्षालो हस्तयोर्मृत्स्नया मुधा ॥ १२१ ॥

पताका–मनुष्योंका पेट तो विष्ठा और मूत्रसे भरा ही हुआ है। तो गुद प्रक्षालनके पश्चात् मृत्तिकासे हाथ पग धोना व्यर्थ ही है ॥ १२१ ॥

दन्तानां घर्षणं दूरं तिष्ठतु क्षालनेऽप्यहो।
महापापं प्रजायेत जीवानां मृत्युकारणात् ॥ १२२ ॥

पताका–दांतोंका प्रभाती (दातुन) आदिसे रगड़ना तो दूर रहो, उसके धोनेसे भी महापाप होता है। क्योंकि वहांके जन्तु मर जाते हैं ॥

ईषद्धास्ये यतेरास्ये श्रुत्वा तस्य वचोभरम् ।
निरासाय तदुक्तीनां रसना रसमास्पृशत् ॥ १२३ ॥

पताका—उस जैन साधुके इन वचनोंको सुनकर श्रीस्वामीजीके प्रसन्न मुखमें जिह्वाने उसकी उक्तियोंका खण्डन करनेके लिये अनुरागको ग्रहण किया ॥ १२३ ॥

केशोत्पाटपटो पद्वी गीर्वराकी च तावकी ।
केषां हि विदुषां चित्ते दयाभावं तनोति नो ॥ १२४ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी बोले, हे केशनोचनेमें चतुर ! यह तुम्हारी वराकी वाणी किन विद्वानोंके हृदयमें दयाभाव प्रकट नहीं करती ? अर्थात् तुम्हारे इस अज्ञानपर सबको दया आती है ॥ १२४ ॥

येन देहेन धर्म्याणि कर्माण्यर्ज्यानि सन्ति ते ।
मलोपबृंहितं कृत्वा तत्कथं मन्यसे सुखम् ॥ १२५ ॥

पताका—जिस देहसे तुमको उत्तम उत्तम धर्म-कर्म प्राप्त करने हैं उसे मल-पूर्ण करके तुम कैसे सुख मानते हो ? ॥ १२५ ॥

अपवित्रेण गोत्रेण पवित्राणि कथं ननु ।
साधनेन हि साध्यानि सिध्यन्तु मतिमूदन ॥ १२६ ॥

पताका—हे मतिमूदन ! अपवित्र शरीर-साधनसे पवित्र साध्य-कार्य्य कैसे सिद्ध हो सकते हैं ? ॥ १२६ ॥

शौचमाभ्यन्तरं चास्तु वाहीकमपि तत्तथा ।
वाहीकं पूर्वसोपानमान्तरं तदनन्तरम् ॥ १२७ ॥

पताका—आभ्यन्तर और बाह्य दोनों शौच होना चाहिये । बाह्य पवित्रता प्रथम सोपान है और आन्तरिक पवित्रता उसके आगेका सोपान है ॥ १२७ ॥

अन्तःशुद्धिं न कुत्रापि बाह्यशुद्धिर्विबाधते ।
तत्कथं त्यज्यतेऽसभ्य भिषक्छास्त्रं द्विषन्मुधा ॥ १२८ ॥

पताका—तथा बाह्य शुद्धि अन्तःशुद्धिमें कोई बाधा तो पहुंचाती ही नहीं है। तब हे असभ्य-दुर्गन्धादिपूर्ण होनेसे सभामें बैठने अयोग्य ! वैद्यकशास्त्रके साथ द्वेष करते हुये उसे क्यो छोड़ते हो ? ॥ १२८ ॥

स्वेदः संजायते देहे तव ग्रीष्मे तथा च तम् ।
वस्त्रेण प्रोञ्छितुं कस्मादुदयं याति ते मतिः ॥ १२९ ॥

पताका—गर्मीके समयमें जब तुम्हारे शरीरमें स्वेद—पसीना उत्पन्न होता है तब उसे क्यों पोछते हो ? क्योंकि स्नानाभावके कारण नाना सूक्ष्म जीव दांतोंकी तरह तुम्हारे शरीरमें भी उत्पन्न हो गये होंगे। वे बेचारे मर जायंगे तो क्या उसमें पाप तुमको नहीं चिपटेगा ? ॥ १२९ ॥

अलं मले शरीरस्थे बहूनां वसतां सदा ।
सुसूक्ष्माणां हि जीवानां कथं हिंसा न मन्यते ॥ १३० ॥

पताका—शरीरमें रहे हुये मलमें निरन्तर उत्पन्न होकर रहनेवाले सूक्ष्म जीवोंकी हिंसाको तुम हिंसा क्यों नहीं मानते हो ? ॥ १३० ॥

हिंसाश्च त्रिविधाः कल्पतरवो गुरवस्तव ।
मन्यन्ते तासु जायेत शौचाचारेषु का वद ॥ १३१ ॥

पताका—किंच तुम्हारे लिये कल्पवृक्ष समान तुम्हारे गुरुओंने तीन प्रकारकी हिंसा स्वीकार की है। उन तीनोंमेंसे शौचाचार पालनमें कौन सी हिंसा होती है सो कहो ?

जैन मतमें तीन प्रकारकी हिंसा मानी गई है। स्वरूपहिंसा, हेतुहिंसा और अनुबन्ध हिंसा। स्वरूपहिंसा वह है जो देखनेमें प्रतीत होती हो अथवा अल्पहिंसा होती हो परन्तु उसके परिणामसे लाभ विशेष होता हो। जैसे मन्दिरादि बनवानेमें अनेक जीवोंकी हिंसा होती है परन्तु मन्दिर

बननेके पश्चात् प्रभुकी पूजा आदिसे हिंसापेक्षया लाभ—पुण्य अधिक होता है। हेतुहिंसा वह है जो यत्न विना होती हो अर्थात् भ्रमसे वा अज्ञानसे वा स्वाभाविक प्रमादसे होती हो। जैसे अनवधानतासे, हाथसे पुस्तकादिके गिरनेपर अल्पजीव मर जावे तो वह अयत्नसे हुई हिंसा है। तीसरी अनुबन्ध हिंसा वह है जो जैनियोंके तीर्थङ्करोंकी मानी हुई हो। अर्थात् वह जिसे कह दें कि इस कार्यके करनेसे, इस फलके खानेसे, इस जलके छूनेसे हिंसा होती है तो वह अनुबन्ध हिंसा समझी जावेगी ॥ १३१ ॥

न प्रथमा द्वितीया वा शक्यते वक्तुमाविल !
दोषानाधायकत्वाद्धि तयोस्ते च समुज्झिते ॥ १३२ ॥

पताका-स्वरूपहिंसा और हेतुहिंसा तो कह ही नहीं सकते क्योंकि वे दोनों ही तुम्हारे मतमें दोषाधायक नहीं हैं। जैसे तुम मन्दिर, उपाश्रय आदि बनाते हो अथवा बनवाते हो, उसमें जीवों की हिंसा तो होती ही है। तुम्हारे मतमें तो अनन्त हिंसा होती है परन्तु उसका परिणाम अच्छा मानकर तुम उसमें पाप नहीं मानते हो, वैसे ही वैदिक लोग भी स्नानादि पवित्रतासे शरीरकी नीरोगिता और उससे होनेवाले अनेक धार्मिक कार्य-निष्पत्तिरूप अनेक शुभ परिणाम मानकर उसमें हिंसा नहीं मानते। हेतु हिंसा तो स्नानादिमें संभवित ही नहीं है। क्योंकि यह क्रिया यत्नपूर्वक होती है। अतः दो प्रकार की हिंसा तो स्नानादिमें सिद्ध नहीं ही हुई ॥ १३२ ॥

तृतीयाज्ञानिनामेव सविलासावतष्ठिताम्।
गेहे नेहेहतां वासस्तदर्थं मृग्यतां नृग ॥ १३३ ॥

पताका—अनुबन्धहिंसा मूर्खोंके ही घरमें आनन्दपूर्वक निवास करो। उसके लिये वैदिकोंके पास स्थान मत ढूँढ़ो। तात्पर्य यह है कि जिसको यह विश्वास हो कि तीर्थङ्करोंके वचन सत्य ही है वह भले तुम्हारी अनु-

बन्ध हिंसाका मान करे। परन्तु जिनके हृदयमें उनके वचन अन्धकारमय उपाश्रयका कोलाहल मात्र हो, भला वह क्यों उस वचनके माननेका पाप करें। तथा जिस प्रकारसे तुम अपने शास्त्रको और अपने शास्त्रकारोंको सर्वज्ञ मानकर उसमें प्रमाणबुद्धि रखते हो उसी प्रकारसे अन्य भी तो अपने शास्त्र और शास्त्रकारोंको परम प्रामाणिक मानते होंगे। तब युक्तिहीन बुद्धिहीन तीर्थङ्कर–वचनको कोई क्यों मानेगा? तथा जैसे तुम हिंसा, अहिंसाके विचारका आधार मनुष्य–तीर्थङ्करके वचनपर रखते हो वैसे ही वैदिक लोग भी हिंसा और अहिंसा, धर्म और अधर्म, कर्तव्य और अकर्तव्य आदिके विचारको परम आप्त सर्वज्ञ ज्ञानस्वरूप भगवान्की आज्ञाभूत श्रुतियोंपर निर्भर रखते हैं। अतः यागादिककी हिंसा भी पापजनिका नहीं है॥ १३३॥

शौचाचारविहीनानां शकृत्स्पृष्ट्वापि वोऽसकृत्।
मन्वानानां निजं शुद्धं मातङ्गात्का भवेद्भिदा॥ १३४॥

पताका–शौच–पवित्रताके आचारसे रहित, विष्ठाका अनेकवार स्पर्श करके भी अपनेको पवित्र माननेवालोंमें और चाण्डालमें क्या भेद है?॥

कामं तिष्ठतु विण्मूत्रप्रभृति प्राणिनां तनौ।
तत्परोक्षत्वमापन्नं न घृणायै भवेन्नृणाम्॥ १३५॥

पताका–प्राणियोंके पेटमें भले विष्ठा मूत्र आदि रहे। वह परोक्ष है–प्रत्यक्ष नहीं है अतः उसमें घृणा नहीं होती॥ १३५॥

उदरे मलमूत्रादि तिष्ठतीति च कः पुमान्।
मुखेऽपि स्वे निधातुं तच्चोद्युनक्त्यप्रमादवान्॥ १३६॥

पताका–पेटमें मल मूत्र आदि है अतएव ऐसा कौन अनुन्मत्त पुरुष होगा कि जो उस मल मूत्र आदिको मुखमें भी रख लेनेका प्रयत्न करेगा? अशक्य कार्य न कर सकनेसे शक्य कार्य भी नहीं करना यह मूर्खता है।

पेटके अन्दर शुद्धि नहीं रख सकते अतः बाहर भी नहीं रखना इसका अर्थ तो यह हुआ कि कोई लोहे का चना नहीं खा सकता अतः अन्न भी न खावे ॥ १३६ ॥

वने संजातवृद्धानां पुष्टानां दैववर्षणात् ।
दयसे चेत्कथं चान्ने निर्दयत्वं तव स्फुटम् ॥ १३७ ॥

पताका—वनमें जो स्वयं पैदा हुये और बढ़े, तथा वर्षाके जलसे पुष्ट हुये उन वृक्षोंपर यदि तुम दया करते हो तो अन्नके ऊपर निर्दयता क्यों है ? अर्थात् जैसे तुम दन्तधावन नहीं करते हो वैसे ही तुम्हें अन्न ग्रहण भी नहीं करना चाहिये ॥ १३७ ॥

उन्मूल्य क्षेत्रतः सद्यो भाजा बहुविधाः कुतः ।
आनीता भोक्तुमह्नाय निर्विचार प्रवर्तसे ॥ १३८ ॥

पताका—हे निर्विचार ! जो शाक भाजी तत्क्षण खेतमेंसे उखाड़ कर लाई जाती है उसके खानेके लिये तुम क्यों प्रवृत्त होते हो ? अर्थात् उनके उखाड़नेमें जीवहिंसा तो होती ही है तब उसका ग्रहण क्यों करते हो ? कदाचित् यह कहो कि वह हमारे निमित्त नहीं उखाड़ा गया है अतः हमें पाप नहीं लगेगा। तो तुम्हारा यह कथन सर्वथा उन्मत्तप्रलाप है। जो हिंसा तुमारे लिये नहीं की गई हो परन्तु उसमें किसी प्रकारसे तुम सम्मिलित हो तो अवश्य ही तुमको पाप लगेगा। क्योंकि यदि तुम शाक न खाते तो उतना कम उखाड़ा जाता और उतनी ही कम हिंसा होती। इसका स्पष्ठ भावार्थ यह है कि एक गांवमें सौ मनुष्य हों उनमेंसे यदि ५० ही मनुष्य शाक खावें तो ५० ही आलूका व्यय होगा और हिंसा भी इतनी ही होगी परन्तु जो सौ आदमी खावें तो आलूका व्यय अधिक और उसके अनुसार हिंसा भी अधिक। अतः इस परम्पराके द्वारा तुम भी हिंसा के भागी तो हो ही ॥ १३८ ॥

स्वादूनि यानि यानीह महार्घ्याण्यपि सोत्सुकः ।
फलानि स्वोदरे कर्तुं त्वं कथं वर्तसे सदा ॥ १३९ ॥

पताका—सुन्दर २ जो फल बहुमूल्य फल है उनको पेटमें रख लेने के लिये तुम्हारी प्रवृत्ति कैसे होती है? ॥ १३९ ॥

तत्र चेन्न दया वत्साजस्रं स्फूर्जति ते हृदि ।
दन्तशोधककाष्ठे किं दयाधारा विधावति ॥ १४० ॥

पताका—हे वत्स! जो इन सब वस्तुओंके ऊपर तुम्हारे हृदयमें दया नहीं उत्पन्न होती है तो दातुनकी लकड़ीमें दयाकी धारा क्यों बह रही है? ॥ १४० ॥

कूपमण्डूकतां हित्वा त्वज्ञानावृत्तिसंवृत ।
तथ्यां पथ्यां च मे वाचं तात त्वं हृदये कुरु ॥ १४१ ॥

पताका—अज्ञानके आवरणसे आच्छादित हे तात! कूपमण्डूकताको छोड़कर मेरे तथ्य और हितकर वचनको हृदयमें धारण करो ॥ १४१ ॥

वस्तुतस्तत्त्वतस्तावन्मतं जैनं पृथक् स्थितम् ।
तत्त्वचिन्तापरीतानां तन्मतं नरकाभिधम् ॥ १४२ ॥

पताका—वस्तुतः जैन मत तत्त्वसे बहुत दूर है। अतः जो लोग तत्त्वविचार करनेवाले हैं उनके लिये यह मत नरक समान है ॥ १४२ ॥

हिन्दुधर्मसुधासिन्धुबिन्दुनापि कदाचन ।
न समत्वं तदाधत्ते तावकं जैनशासनम् ॥ १४३ ॥

पताका—हिन्दु धर्म—वैदिक—धर्मरूप सुधासिन्धुके एक बिन्दु समान भी तुम्हारा जैन मत नहीं है ॥ १४३ ॥

हिन्दवो यतयो नित्यं शौचाचारं चरन्ति तत् ।
हन्त! तद्द्वेषिभिर्जैनैर्जाड्यतस्तन्निवर्तितम् ॥ १४४ ॥

पताका—हिन्दु विरक्त—यति नित्य शौचाचारको पालन करते हैं। अतः उनके द्वेषी जैनोंने मूर्खतासे उस शौचाचारका खण्डन कर दिया ॥

हिन्दुभिर्यतिभिः क्वापि धर्मतत्त्वविदां वरैः।
वारीण्यपरिपक्वानि पीयन्ते शुद्धबुद्धिभिः ॥ १४५ ॥

पताका—धर्मके तत्त्वोंको जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, तथा निर्मल बुद्धिवाले हिन्दु यति समयानुसार कच्चा पक्का सब प्रकारका जल पीते हैं ॥ १४५ ॥

तदाचारमसोढ्वैव तद्द्वेषाबद्धबुद्धयः।
जैनाः पक्वानि गृह्णन्ति तानि सर्वत्र साधवः ॥ १४६ ॥

पताका—उनके आचारको न सहन करके ही उनके साथ द्वेष करनेवाले जैन साधु सर्वदा सर्वत्र पक्का—औंटाया हुआ ही जल ग्रहण करते हैं ॥ १४६ ॥

जलस्थानां हि जीवानां मारणायैव पक्वता।
स्यात्कथं तत्र हिंसात्वं पश्यन्ति न जडाः खलु ॥ १४७ ॥

पताका—जलमें रहनेवाले जीवोंको मारनेके लिये ही जल उष्ण करते हैं। तब उसमें जड लोग हिंसाविचार क्यों नहीं करते? ॥ १४७ ॥

रागद्वेषादिसंपूर्णैर्मानसैर्मानवैः कृतम्।
देशकालानभिज्ञैश्च मतं त्यक्त्वा पृथग्भव ॥ १४८ ॥

पताका—राग द्वेषादिसे परिपूर्ण हृदयवालों तथा देश और कालके अनभिज्ञ मनुष्योंके बनाये मतको छोड़कर पृथक् हो जावो ॥ १४८ ॥

ईश्वरेण समादिष्टे दिष्ट्या द्वेषादिवर्जिते।
हिन्दुधर्मे धृतिं कृत्वा सद्गतिं त्वं लभस्व रे ॥ १४९ ॥

पताका—भाग्यवश द्वेषादिवर्जित तथा ईश्वरद्वारा प्रवर्तित हिन्दुधर्म—वैदिकधर्ममें दृढता करके सद्गतिको प्राप्त करो ॥ १४९ ॥

मातृवद्वत्सला जीवनिकाये सर्वदा श्रुतिः ।
तत्सृतावुपसृत्य त्वं तत्त्वमाप्नुहि वत्सल ॥ १५० ॥

पताका—श्रुतियाँ जीवोंपर माताके समान प्रेम करनेवाली हैं। अतः उनके मार्गमें आकर तुम तत्त्वको प्राप्त करो। अर्थात् अत्यन्त कृपालु श्रुतियें तुम्हें अनायास तत्त्वोद्बोधन करा देंगी ॥ १५० ॥

एवं देवः क्षणादेव सक्षणो मतमक्षिणोत् ।
जैनं श्रुत्वा ततः प्रीतः स चक्रे शरणं मुनिम् ॥ १५१ ॥

पताका—इस प्रकारसे स्वामीजी महाराजने आनन्दपूर्वक क्षणभरमें ही जैन मतका खण्डन कर दिया। उसे सुनकर प्रसन्न होकर सिद्धसेनगणि स्वामीजीके शरण हो गया ॥ १५१ ॥

मन्त्ररत्नं मुनेः प्राप्य पञ्चसंस्कारसंयुतः ।
भावानन्द इतिख्यातः सद्भावोऽभावयद्धरिम् ॥१५२॥

पताका—वह सिद्धसेनगणि श्रीयतिराजसे मन्त्ररत्न—श्रीराममन्त्रकी दीक्षा लेकर, पञ्च संस्कारयुक्त होकर भावानन्द नामसे भगवान्‌की सेवा करने लग गया ॥ १५७ ॥

गच्छं तस्यानुगच्छन्त आसन्ये केऽपि चेतरे ।
अनुगास्तेऽपि सर्वत्र शिक्षां दीक्षां च पेदिरे ॥ १५३ ॥

पताका—सिद्धसेनके गच्छके जो अन्य अनुयायी उसके साथ थे वह सब भी आचारशिक्षा और मन्त्रदीक्षाको ग्रहण किये ॥ १५३ ॥

एवं मुनीन्द्रचरणाः शरणागतानां,
रक्षां विधाय शुभमार्गमुपादिशन्तः ।
श्रीरामनाममहिमानमुदीरयन्तः,
प्रान्ते च तत्र सुचिरं व्यहरन् यथेच्छम् ॥१५४॥

पताका—इस प्रकारसे श्रीयतिराज शरणागतोंकी रक्षा करके, शुभ मार्गका उपदेश करते हुये तथा श्री रामनामके माहात्म्यका प्रतिपादन करते हुये उस महाराष्ट्र प्रान्तमें अधिककाल तक इच्छानुसार विहार किये॥१५४॥

सर्वत्ररामचरणाम्बुजभक्तिभाव-
स्फीताधिमौक्तिकगणैः स च भूषयित्वा।
सर्वाञ्जनान्यतिपतिः पवितुं प्रतस्थे,
तस्मात्सपद्यथ कृती खलु दाक्षिणात्यान् ॥१५५॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये सप्तदशः सर्गः

पताका—सर्वरक्षक श्री रामजीके चरणकमलोंकी भक्तिके भावरूप स्थूल और सुन्दर मोतियोंसे सब जनोंको विभूषित करके वह कृती यतिराज दाक्षिणात्योंको पवित्र करनेके लिये वहांसे शीघ्र प्रस्थान किये॥ १५५॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारि-श्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

अथो महीशूरपुरीं यतीश्वरो जगाम कैश्चिद्दिवसैः कृपाकरः।
अशेषशिष्यैः प्रयतैः प्रयत्नतो विभूषितैः सर्वगुणश्रिया प्रभुः॥१॥

पताका—महाराष्ट्र देशसे प्रस्थित होकर परमदयालु श्री स्वामीजी महाराज, जितेन्द्रिय तथा सर्वगुणश्रीसे सम्पन्न अपने समस्त शिष्यों सहित कुछ दिनोंमें महीशूर—मैसूर नगरीमें पहुंच गये॥ १॥

पुरो वहिस्तत्र च रामणीयकश्रितां महारामभुवं ददर्श सः।
ततः स्थितस्तत्र नरोत्तमः पुनर्न कामयामास पुरि प्रयाणकम्॥२॥

पताका—वहां नगरके बाहर बहुत ही सुन्दर एक बड़ा भारी उद्यान स्वामीजीने देखा। अतः वह पुरुषोत्तम वहां ही ठहर गये। पुनः नगरमें जानेकी इच्छा नहीं की ॥ २ ॥

ततो यतीन्दोः प्रतिधाम धामसन्निधेः कथा व्यापदलं शुभागतेः।
बभूवुरद्धा मुनिपादपङ्कजावलोकनार्थं सकलाः समुत्सुकाः ॥३॥

पताका—स्वामीजीके मैसूरमें आनेपर घर घर उनके पधारनेकी बात होने लग गई। सब लोग श्रीयतिराजके चरणकमलोंके दर्शनकेलिये उत्कण्ठित हो गये ॥ ३ ॥

श्रुतिप्रतीताधिसमस्ततत्त्वसन्मणीकलापाकलितान्तरोऽसकौ।
विधातुमाचार्यवरः पवित्रतां पुरः समागादिह सद्गुणाश्रयः ॥ ४ ॥

पताका—वेदोक्त समस्त उत्कृष्ट तत्त्वरूप उत्तम मणिके समूहसे विभूषित अन्तःकरणवाले यह श्रीयतिराज आचार्यशिरोमणि श्रीरामानन्द स्वामीजी महाराज इस पुरीको पवित्र करनेके लिये ही यहां पधारे हैं॥४॥

नवीनभाष्यं परमोपकारिताभृतं समस्तासुभृतामयं मुनिः।
विधाय वैयासिकदर्शने स नः सनाथतां नेतुमिहाद्य संययौ ॥५॥

पताका—ब्रह्मसूत्रपर समस्त मनुष्योंके लिये परमोपकारी नवीन भाष्य—आनन्दभाष्य बनाकर (सबका उपकार करते हुये—'उपकुर्वन्निति शेषः'] हम लोगोंको सनाथ करनेके लिये आज यहां पधारे हैं ॥ ५ ॥

भुजद्वयं धारयतो रमापते रघूद्वहस्यार्चनसन्दिदिक्षया।
समागतो व्याहततर्ककर्कशो यतीश्वरोऽस्माकमुदारभाग्यतः ॥ ६ ॥

पताका—द्विभुज भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना पूजन आदिके सन्देश देनेकी इच्छासे तर्कवागीश श्रीयतिराज हम लोगोंके बड़े भाग्यसे यहां पधारे हैं ॥ ६ ॥

सनत्कुमारादिमहर्षिसंहिता अहर्निशं यस्य कलाधरोपमान् ।
यशश्चयान्वर्णयितुं कृतादराः समागतः सोऽत्र पुरीमिमामहो ॥७॥

पताका—श्री सनत्कुमारसंहिता, श्री वाल्मीकिसंहिता, अगस्त्यसंहिता आदि आगम जिनके चन्द्र समान उज्वल गुणोंका सर्वदा वर्णन करते हैं, वही श्री स्वामीजी महाराज आज यहां पधारे हैं ॥ ७ ॥

यदीयनामश्रवणेन मामकं श्रुतिद्वयं प्रापदहो कृतार्थताम् ।
चिरात्पिपासाकलिते दृशावपि निरीक्ष्य तत्पादयुगं वितृप्यताम् ॥८॥

पताका—जिनके नाम श्रवणसे मेरे कान कृतार्थ हो चुके हैं उनके चरणोंके दर्शनसे दीर्घकालसे प्यासे नेत्र भी तृप्त हो जावें ॥ ८ ॥

स कोप्यपूर्वः परजन्मनार्जितः सुपुण्यशाखी फलितो हि नोऽधुना ।
यतोऽयमागान्महसां ततिर्यतिः स्वयं शमीशोऽत्र वसुन्धरावसु ॥९॥

पताका—आज पूर्वजन्मके कर्मोंद्वारा अर्जित कोई अपूर्व पुण्य-वृक्ष फलान्वित हुआ है जिसके कारण परमतेजस्वी, शमप्रधान, पृथ्वीके एकमात्र धन श्री यतिराज यहां पधारे हैं ॥ ९ ॥

महेशितुस्तस्य पदाब्जदर्शनैर्विधूतभूयोदुरितारिसन्निधाः ।
अहो भवेमाद्य विभोः कृपावशादितीयमासीत्प्रतिवेश्म गीस्तदा ॥१०

पताका—प्रभुकृपासे उन महैश्वर्य्यशाली श्री स्वामीजीके चरणदर्शनोंसे आज हम लोग अपने पापरूप महान् शत्रुओंसे छूट जावेंगे, इस प्रकारसे प्रत्येक गृहमें वात होने लगी ॥ १० ॥

मनस्त्वमीषां मुनिनाथदर्शनेऽक्रमात्सतारोत्सुकतां समक्रमीत् ।
ततो नगर्या निरगू रयात्समे यतीन्द्रपादानभिवन्दितुं मुदा ॥११॥

पताका—उन नगरवासियोंका मन श्रीमुनिराजके दर्शनकेलिये अत्यन्त उत्सुक हो रहा था। अतः उनके चरणोंमें प्रणामकी इच्छासे सब लोग शीघ्रतासे आनन्दपूर्वक नगरमेंसे निकले ॥ ११ ॥

विकस्वराम्भोजरुगाननेक्षणा रतिभ्रमं सञ्जनयन्त्य ऐक्षके।
सहैव पत्या वरटागतिप्रभातिरस्करिण्यो ललनास्ततोऽचलन् ॥१२॥

पताका—विकसित कमल समान मुख और नेत्र वालीं, दर्शकोंको रतिका भ्रम उत्पन्न कराती हुईं, हंसिनीकी गतिको भी तिरस्कृत करती हुई सुन्दर ललनाएँ चलीं ॥ १२ ॥

तदा तु कोऽप्येवमभून्न चागतो विलोकनाय क्षितिपावनस्य यः।
रुजा परायत्तजना नृवाहनैरुपाययुर्दर्शनलालसाभृताः ॥१३॥

पताका—उस समय नगरमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं था कि जो श्रीयतिराजके दर्शनकेलिये न आया हो। जो लोग रोग—पीड़ित थे वे लोग दर्शनकी लालसासे लालायित होकर, पालकीमें बैठकर आये ॥ १३ ॥

विनोदनुन्ना अमराङ्गजा इवाययुर्विलासैर्बटवः सहस्रशः।
जगत्त्रयाधीश्वरपादपङ्कजं प्रणन्तुकामाः कमनीयभावनाः ॥ १४ ॥

पताका—सद्भाववाले छोटे २ बालक—ब्रह्मचारी भी देवकुमारके समान, विनोदसे प्रेरित होकर त्रिलोकीनाथके चरणकमलोंको प्रणाम करनेकी इच्छासे सहस्रोंकी संख्यामें वहां आये ॥ १४ ॥

स्वचक्षुषोस्तस्य मुनेः सुपङ्कजच्छवी पदौ स्थापयितुं पदे मुदा।
अगण्यपुण्यावलिलालिता ललुर्ललामलीलां विबुधाः समागतेः ॥१५॥

पताका—अपने नेत्ररूप पदपर श्रीयतिराजके कमल समान चरणोंकी स्थापना करनेके लिये अगणित पुण्यवाले विद्वान् लोग भी वहां आये ॥१५॥

यदा त्वभूवुर्भवभोगभोगिसंव्रजोल्वणक्ष्वेडहरस्य ते यतेः।
समीपमामोहमुपाप्नुरुत्कटं ह्यलौकिकं कौतुकिनस्ततोऽभवन् ॥१६॥

पताका—जब वे लोग संसारके भोगरूप सर्प—समूहके भयङ्कर विषको हरण करनेवाले श्रीयतिराजके समीपमें आये तो उन्होंने एक अत्यन्त

उत्कट तथा अलौकिक गन्धका अनुभव किया जिससे निश्चय ही सब आश्चर्यित हो गये ॥ १६ ॥

अमन्दमानन्दमुपानयन् कुतो मनो हरन्नेष सुगन्ध एति भोः ।
परस्परं प्रष्टुमकल्पयन्त ते गिरः सुदोलां रसनां निजां निजाम् ॥१७

पताका—'अत्यन्त आनन्दको प्राप्त करता हुआ, मनोंको हरण करता हुआ यह सुगन्ध कहांसे आता है' यह परस्पर पूछनेके लिये सब लोगोंने अपनी २ जीभको सरस्वतीका हिंडोला बना दिया। अर्थात् परस्पर एक दूसरेसे पूछने लगे ॥१७॥

अनोकहः कोपि न दृश्यते तथा सुगन्धमुश्चोपवनेऽत्र यः क्वचित् ।
सुवीत निर्हारिणमीदृशं दृशौ समासु चाशासु च ते विचिक्षिपुः॥१८

पताका—इस उपवनमें तो कोई ऐसा वृक्ष नहीं है जो इस प्रकारका आकर्षक सुगन्ध दे। ऐसा कहकर सब लोगोंने चारों ओर अपनी आँखें दौड़ाई ॥ १८ ॥

ततश्च वैचित्र्यमिदं व्यलोकि तैस्तदन्यदह्नाय समीपमागतैः ।
स्थितो यतिर्यत्र वनाजिरे ततो रविप्रिया भाति विभाति नो रविः ॥

पताका—उसके पश्चात् लोगोंने श्री स्वामीजीके पास आकर एक दूसरा चमत्कार यह देखा। उद्यानके मध्यभागमें—आंगनमें जहां श्रीयतिराज विराजमान थे वहां सूर्यका तेज नहीं है, प्रत्युत छाया शोभा दे रही है ॥१९॥

विचार्यते तैरिति हेतुरस्तु को न मण्डपो नात्र वितानमप्यथ ।
स्थितो यतीशस्तदनावृतेऽम्बरे तथापि चण्डद्युतिरत्र नाश्नुते ॥२०॥

पताका—लोग विचार करने लगे कि, यहां कोई मण्डप भी नहीं है, चन्द्रवा भी नहीं है, श्रीयतिराज खुली जगहमें विराजमान हैं, तो भी क्या कारण है कि यहां सूर्यका तेज नहीं व्याप्त हो रहा है? ॥ २० ॥

अनल्पसङ्कल्पविकल्पसङ्कुलान्निरीक्ष्य सर्वान्मनुजान्दिवस्पतिः।
चिराय तेषां शमयन्स संशयं जगाद विस्पष्टमदृश्यया गिरा ॥२१॥

पताका—देवराज—इन्द्रने सब लोगोंको अनेक प्रकारके सङ्कल्प विकल्पसे व्याकुल देखकर उनके संशयको दूर करनेके लिये स्पष्ट रूपसे, आकाशवाणी करने लगे ॥ २१ ॥

कृत स्म मा कोऽपि च विस्मयं हृदि प्रतापवत्यत्र यतीश्वरे जनः।
नरो न चैषोऽत्र नरोत्तमः कृपावशात्पृथिव्यामवतीर्य राजते ॥२२॥

पताका—इन्द्र बोले,: इन महाप्रतापी श्रीयतिराजके सम्बन्धमें कोई हृदयमें संशय न करो। यह मनुष्य नहीं हैं प्रत्युत कृपावश साक्षात् प्रभु इस पृथ्वीपर अवतार लेकर विराजमान हैं ॥ २२ ॥

सुरद्रुमोऽदृष्टचरो वियत्यहो निषेवतेऽद्धा यतिपादपङ्कजम्।
अनातपस्तस्य सुगन्धसञ्चयो मनोहरोऽप्यस्ति दिगन्तसंप्लुतः ॥२३॥

पताका—अहो! आकाशमें अदृष्ट होकर कल्पवृक्ष श्रीयतिराजकी चरणसेवा कर रहा है। उसीकी यह छाया तुम देख रहे हो तथा दिगन्तव्यापी यह मनोहर सुगन्ध भी उसीका है ॥ २३ ॥

निशम्य माहात्म्यमिदं विलक्षणं यतीश्वरस्यामुमुदे जनैस्तदा।
तदीयसत्पङ्कजपाददर्शनैः कृतार्थयन्ति स्म जनुस्तदात्मनाम् ॥२४॥

पताका—श्रीयतिराजके ऐसे विलक्षण माहात्म्यको सुनकर सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हुये। तथा श्रीस्वामीजीके चरणकमलोंके दर्शनोंसे अपनेको कृतार्थ करने लग गये ॥ २४ ॥

पुनर्न ईदृंशि फलानि वा न वा फलेयुराराच्छुभगत्वसद्द्रुमे।
इति प्रकल्प्य स्वमनस्सु नागरा दिदृक्षया प्रत्यहमस्य चाययुः ॥२५

पताका—'पुनः हमारे भाग्यरूप सुन्दर वृक्षमें शीघ्र ऐसे उत्तम फल फलेंगे या नहीं अर्थात् श्रीयतिराजके चरणोंके दर्शन होंगे या नहीं' ऐसा

अपने मनमें विचार कर सब नगरनिवासी प्रतिदिन श्रीस्वामीजीके दर्शनोंके लिये आया करते थे ॥ २५ ॥

विपक्षपक्षान्परिपेष्टुमीश्वरः समस्थिताऽऽपक्षमुदारचेतनः ।
दिशन् प्रपत्तिं रघुनाथपादयोस्तथा च भक्तिं सकलेभ्य एव सः ॥२६

पताका—विपक्षियोंके पक्षको पेषण करनेके लिये उदारचेता श्रीयतिराज श्रीरामजीमहाराजकी भक्ति और प्रपत्तिमात्रका सबको उपदेश करते हुये वहां एक पक्ष—पन्द्रह दिवस तक निवास किये ॥ २६ ॥

दिने च कस्मिँश्चिदयं महाप्रभुर्दिशन् प्रपत्तिं विदुषां सदस्यलम् ।
प्रपत्तिमार्गस्तु मुधेति केनचिन्न्यगादि चैवं जगदेकदेवता ॥ २७ ॥

पताका—किसी दिन श्रीयतिराज विद्वानोंकी सभामें प्रपत्तिका उपदेश कर रहे थे उसी समय संसारके एकमात्र देव श्रीस्वामीजीसे एक विद्वान्ने कहा कि प्रपत्तिमार्ग तो व्यर्थ है ॥ २७ ॥

न वात्मनः कोपि परः परेश्वरो ह्युपासनीयत्वपदं वहेत यः ।
न जीवता चात्मसु नित्यतां गता श्रुतिप्रकाशेन तिरस्कृता भवेत् ॥

पताका—तथा आत्मासे भिन्न कोई अन्य ऐसा नहीं है जो उपासनीय हो। इस आत्मामें जीव बुद्धि है वह नित्य नहीं है, प्रत्युत वेदार्थज्ञानसे वह बुद्धि दूर हो जाती है ॥ २८ ॥

विलस्यते यावदमुष्य चात्मनो विलासवत्या हृदि मायया तया ।
अहं तु जीवोस्मि विभुर्विभुर्ममेतिबुद्धिरारोहति तावदेव सा ॥ २९ ॥

पताका—यावत्पर्य्यन्त इस आत्मामें माया विलास करती है तावत्पर्यन्त ही यह बुद्धि रहती है कि मैं तो जीव हूं और भगवान् मेरे प्रभु हैं॥२९॥

यदा श्रुतीनामुपदेशधारणाद्विनाशमायाति तु जीवतैषका ।
निवर्तते मायिकमेव नर्तनं तदा स्वरूपं परतः परं भवेत् ॥ ३० ॥

पताका—जब श्रुतिके उपदेश धारण करनेसे यह जीवभाव विनष्ट हो जाता है तब मायाका नृत्य अवश्य निवृत्त हो जाता है और तदनन्तर परात्पर स्वरूप हो जाता है ॥ ३० ॥

अनादिकालात्मतिबद्ध एषकोस्ति मायया तावदुपाधिना परः ।
निवर्त्य तं ज्ञानवशात्पुनर्निजं स्वरूपमेतीति मतं महात्मनाम् ॥३१॥

पताका—अनादिकालसे यह जीव मायारूप उपाधिसे बँधा हुआ है। ज्ञानके द्वारा उस मायाको निवृत्त करके पुनः वह स्वस्वरूपको प्राप्त कर लेता है ऐसा विद्वान्—महात्माओंका मत है ॥ ३१ ॥

अतः प्रपत्तिर्नच भक्तिरिष्यते स्वरूपलाभाय कदापि धीधनैः ।
समीह्यते ज्ञानमिदं परं परं न चास्ति पन्था अपरो यतीश्वर ! ॥३२

पताका—आत्माको स्वरूप लाभ करनेकेलिये विद्वान् लोग भक्ति अथवा प्रपत्तिको स्वीकार नहीं करते। किन्तु केवल ज्ञानको ही इष्ट मानते हैं। हे यतीश्वर ! अन्य मार्ग नहीं है ॥ ३२ ॥

निशम्य तस्योक्तिमिमां यतीश्वरो जगाद विद्वद्वरपूजितक्रमः ।
अयुक्तिमुक्तिं तव नानुमंस्यते विपश्चितां तावदपश्चिमावली ॥३३॥

पताका—उस विद्वान्‌की इस उक्तिको सुनकर श्रेष्ठ विद्वानोंसे पूजित-चरणवाले श्री यतिराज बोले कि कोई भी उद्भट विद्वान् तुम्हारे इस युक्तिहीन वचनका अनुमोदन नहीं करेगा ॥ ३३ ॥

नहि प्रमाणं बुध शास्त्रसंमतं त्वभेदमाधातुमवेक्ष्यते क्वचित् ।
तयोः स्वरूपेण भिदां प्रपन्नयोश्चितोस्ततस्ते न वचो मनोहरम् ॥३४

पताका—हे विद्वन् ! स्वरूपसे ही भेदको प्राप्त दोनों चेतनोंमें—परमेश्वर और जीवमें अभेद साधन करनेके लिये शास्त्रमें कहीं भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। अतः आपका वचन समीचीन नहीं है ॥ ३४ ॥

श्रुतावपि द्वेति च नित्य इत्यपि वचः सहस्रं विबुध त्विदंविधम् ।
निरन्तरं खेलति तन्न शक्यते द्वयोरभेदं वदितुं चितोस्त्वया ॥३५॥

पताका—हे विबुध! श्रुतिमें भी परमेश्वर और जीवके स्वाभाविक भेदके प्रतिपादक सहस्रोंवचन निरन्तर क्रीडा कर रहे हैं, अतः आप इन दोनोंका अभेद नहीं कह सकते। 'द्वा' और 'नित्यः' इन दो श्रुतियोंका उदाहरण देते हैं—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योभिचाकशीति ॥"

इस श्रुतिका भावार्थ यह है कि जीवात्मा और परमात्मरूप दो पक्षी एक ही वृक्षपर बैठे हैं। उनमेंसे एक—जीवात्मा कर्मरूपी फलका भोग करता है और दूसरा—परमात्मा फलभोग न करता हुआ साक्षीरूपसे वहां वर्त्तमान रहता है॥ इस श्रुतिमें स्पष्ट फल भोगाभोगरूप क्रियाभेदसे जीव और ब्रह्मका भेद प्रतिपादन किया है। तथा दूसरी श्रुति भी इसी प्रकार भेद वर्णन करती है, यथा—

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।'
'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा पृथगात्मानम्'

इस श्रुतिमें भी प्रेरयिता परमात्माका जीवसे पृथक् उपदेश हुआ है। अतः जीव और ब्रह्मका त्वदुक्त रीतिसे कथमपि अभेद सिद्ध नहीं हो सकता ॥ ३५ ॥

महर्षिवर्यैरपि सूत्रितं स्वयं त्वदीयपक्षक्षपणाय यत्नतः ।
अतो वचस्ते सुवचा न रोचते विदांवरेभ्यः कथमप्यसंशयम् ॥३६॥

पताका—महर्षिवर्य्य श्री व्यासजीने भी यत्नपूर्वक तुम्हारे पक्षका खण्डन करनेके लिये सूत्र रचे हैं। यथा 'भेदव्यपदेशाच्चान्यः', 'भेदव्यपदेशाच्च', 'अनुपपत्तेस्तु न शारीरः', कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च', 'पत्यादिशब्देभ्यः,' 'अधिकं

तु भेदनिर्देशात्', इत्यादि। अतः हे सुन्दर वाणीवाले विद्वन्! निस्सन्देह आपका वचन विद्वानोंको नहीं रुचता है ॥ ३६ ॥

स्वयंप्रकाशत्वमपि स्वयं त्वया निगद्य विद्येतरबन्धता कुतः।
उपाधिवश्यत्वमथाज्ञतादिकं प्रकल्प्यते ब्रह्मणि निर्विकारके ॥३७॥

पताका—आपके मतमें भी ब्रह्म स्वयंप्रकाश है तब पुनः अविद्याकृत बन्धन, उपाधिवश्यता, अज्ञतादि दोष निर्विकारक ब्रह्ममें आप कैसे कल्पित करते हैं? ॥ ३७ ॥

यथा ब्रुवन्कोपि मदीययाम्बया व्यलोकि नो जातु सुखं सुतस्य वै।
भवत्यलं हास्यपदं यथा त्वमप्यहो कृतार्थः पदवीं गतस्तथा ॥३८॥

पताका—जैसे कोई 'मेरी माताने पुत्रका सुख कभी नहीं देखा अर्थात् मेरी माता वन्ध्या है.' ऐसा कहनेपर हास्यका पात्र होता है वैसे ही आप भी हास्यपदवीको प्राप्त हुये हैं। जैसे देवदत्त अपनी माताको यह नहीं कह सकता कि मेरी माता वन्ध्या है क्योंकि जब उसकी वह माता है तब देवदत्त उसका पुत्र हुआ अतः वह वन्ध्या नहीं हो सकती। इसी प्रकार स्वयं प्रकाश, निर्विकार और ज्ञानस्वरूप ब्रह्ममें अविद्या आदि दोष नहीं आ सकते ॥ ३८ ॥

सहेतुकस्तस्य च मायया समं चकास्ति सम्बन्ध उताप्यहेतुकः।
न च प्रसिद्धोऽस्ति स आद्यपक्षकस्तदा ह्यभावाच्च तृतीयवस्तुनः ॥

पताका—किंच, ब्रह्मका मायाके साथ जो सम्बन्ध है वह सहेतुक है अथवा निर्हेतुक? यदि प्रथम पक्ष स्वीकार करके सहेतुक सम्बन्ध आप मानेंगे तो वह ठीक नहीं। क्योंकि अविद्या और ब्रह्मके अतिरिक्त उस समय तृतीय वस्तुका अभाव है ॥ ३९ ॥

न च द्वितीयोपि हि संभवेद्बुध कुतो न्विति ब्रूष्व तदा निशम्यताम्।
निवर्तको नास्त्यपरस्ततः सदा निबद्ध एवात्र विभुर्वितिष्ठताम् ॥४०

पताका–द्वितीय पक्ष भी समीचीन नहीं है। यदि पूछो कि क्यों? तो सुनो। निर्हेतुक सम्बन्धको दूर करनेवाला कोई नहीं है। अतः परमात्मा सदा बद्ध ही रहेगा कभी मुक्त न हो सकेगा ॥ ४० ॥

न च स्वशक्त्यैव निवर्तयिष्यति महानविद्यां सुतरां ततः परः।
अपेक्ष्यते नो यदि तस्य बन्धनं स्वतन्त्रदेवस्य न सम्भवेदपि ॥४१

पताका–वह महान्–परब्रह्म स्वशक्तिसे ही अविद्या को निवृत्त कर देगा अतः अन्य निवर्तक की आवश्यकता नहीं है, ऐसा भी आप नहीं कह सकते। क्योंकि यदि ऐसा हो तब तो स्वतन्त्र भगवान्का बन्धन भी सम्भव नहीं है। भला ऐसा कौन मूर्ख होगा जो स्वयं अपनेको बन्धनमें डालेगा? ॥ ४१ ॥

इयं परा दूषणसन्निकर्षता स वेत्ति मायातनुमीशिता न वा।
विदन्न कोपीह जनोपि वाञ्छति विपत्तिपातं किमुताग्रमीश्वरः ॥४२

पताका–दूसरा दोष यह है कि वह ईश्वर मायाके स्वरूपको जानता है या नहीं? यदि जानता है तो कोई भी–मनुष्य भी जानबूझकर विपत्ति नहीं चाहता है तो परमेश्वरकी तो बात ही क्या कहनी? ॥ ४२ ॥

न वेत्ति तस्यास्तनुमित्युदीर्यते तदा च तज्ज्ञत्वमपाकृतं भवेत्।
अतः परेशे परमात्मनि क्वचिद्विशेदविद्या नहि जातु सम्मते ॥४३॥

पताका–यदि यह कहो कि ईश्वर मायाके शरीरको नहीं जानता है तो उसका जो ज्ञत्व–ज्ञातृत्व है वह तिरस्कृत हो जाता है। अतः इन सब दोषोंके कारण परमात्मामें कभी भी अविद्या प्रविष्ट नहीं हो सकती ॥

न सात्वविद्या परमार्थवस्तुनि भवेत्समुद्भावयितुं च दूषणम्।
त्वयोच्यते चेदथ तन्निवर्तने प्रयासराशिर्विफलीभवेदलम् ॥४४॥

पताका–यदि कहो कि अविद्या परमार्थ वस्तुमें दोष उत्पन्न नहीं

कर सकती तब तो उसके दूर करनेके लिये गुरूपसत्ति अर्थात् समित्पाणि होकर गुरूके पास जाना आदि सब प्रयास व्यर्थ हो जावेंगे ॥ ४४ ॥

द्वयोश्चितोश्चेदभविष्यदार्य यद्भवन्मतोऽभेदतरुश्च वस्तुतः ।
समूलमच्छेत्स्यदथो न तं श्रुतिर्विधाय जीवात्मबहुत्वमञ्जसा ॥४५॥

पताका—तथा यदि आपके मतानुसार ईश्वर और जीवका अभेदरूप वृक्ष वस्तुतः होता तो श्रुतियां जीव-नानात्व प्रतिपादन करके उसका समूल छेदन न करतीं ॥ ४५ ॥

तथा च नित्येति वदन्त्यलं श्रुतिर्निरासयत्येव भवद्विभावितम् ।
उपाधिसम्पादित एष चेदिति ब्रवीषि तन्मे वचनं निशम्यताम् ॥४६

पताका—जीवनानात्वमें श्रुति प्रमाण देते हैं। 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्' इत्यादि वचनोच्चार करती हुई श्रुति आपके मतका तो निरास ही कर रही है। कदाचित् यह कहो कि यह बहुत्व तथा भेद उपाधिकृत है तो आगे मेरी बात सुनो ॥ ४६ ॥

लभन्त इत्यादिवचःशतेन ते भवेद्विरोधोऽपि दुरुद्धरश्च सः ।
निवर्तिताबोधभरात्मनामपि स्फुटं बहुत्वप्रतिपादनादथ ॥ ४७ ॥

पताका—'लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः। छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्। अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥' इत्यादि सैकड़ों वचनोंके साथ आपका विरोध होगा और वह विरोध दुरुद्धर है। क्योंकि उपर्युक्त वचनमें उपाधिरहित, अज्ञानादि-आवरण-शून्य आत्माओंका भी बहुत्व प्रतिपादन किया है ॥ ४७ ॥

अवोचदेवं वसुदेवनन्दनोऽप्यहो स न त्वित्यधिमित्रमर्जुनम् ।
तथा च ते कल्पितकल्पवल्लरी सहायहीना न्यपतत्क्षितावधः ॥४८॥

पताका—गीतामें भगवान्ने भी अर्जुनसे कहा है कि 'न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः

परम् ॥' इस श्लोकमें भगवान्‌ने स्पष्ट आत्मनानात्व अत एव भेदवादका प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार 'ये मे मतमिदं नित्यम्' 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते,' 'योगिनः कर्म कुर्वन्ति,' 'निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाः,' इत्यादि वचनोंमें भी आत्मनानात्वका ही प्रतिपादन है। अतः तुम्हारी कल्पित कल्पलता सहायहीना होकर नीचे पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ४८ ॥

उपाधिभेदादिति तत्स्थलेऽपि चेन्निगद्यते बालविमोहनं वचः।
न युज्यते तस्य विभोः कदापि भोरनीदृगाप्यस्तदकाण्डताण्डवः ॥

पताका—यदि कहो कि इन स्थलोंमें भी उपाधिभेदसे ही बहुत्व प्रतिपादन किया है तो यह वचन बाल-संमोहन है। क्योंकि ज्ञान स्वरूप विभु परमात्माको पामरजन योग्य ऐसा अकाण्डताण्डव युक्त नहीं है। अर्थात् अज्ञान-विष-मूर्छित अर्जुनके अज्ञानकी, तात्विक उपदेश द्वारा निवृत्तिके समय औपाधिक-अज्ञानमय भेदवादको स्वीकार करके उपदेश देना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है ॥ ४९ ॥

निवृत्तबोधो भगवाँस्तदाऽभवद्विवृद्धबोधस्त्वथवेति कोविद।
चिरं विचार्यार्थ्य मनीषिमानसाधतोषदं ब्रूहि वचो विचारमत् ॥५०

पताका—यदि औपाधिकवादको ही स्वीकार करो तो बताओ कि उस उपदेशकालमें भगवान् स्वयं निवृत्तबोध-अज्ञानी हैं अथवा विवृद्धबोध-ज्ञानवान् हैं? इस प्रश्नको विचारकर, विद्वानोंके हृदयको सन्तुष्ट कर सके ऐसा विचारपूर्ण उत्तर दीजिये ॥ ५० ॥

विवृद्धबोधो यदि किं तदोच्यतां स तावदध्यास इहासितुं क्षमः।
विवृद्धदुर्बोध इदं नु मन्यते तदाऽज्ञताताडित एव सोऽभवत् ॥५१॥

पताका—यदि शुद्ध ज्ञानयुक्त स्वीकार करें तो भला बताइये कि वह अध्यास भगवान्‌में कैसे रह सकता है? यदि अज्ञानी मानो तब तो ब्रह्म अज्ञानान्धकारनिहत हो गया ॥ ५१ ॥

अभेद बोधाय कृतप्रवृत्तयो न निष्फलाः स्युः श्रुतयश्च मन्मते।
समास्ववस्थास्वचितां चितां च तच्छरीरितां धत्त इतीदमीरते ॥५२॥

पताका—कदाचित् कहो कि अभेद स्वीकार किये बिना अभेदप्रतिपादिका श्रुतियां व्यर्थ हो जावेंगी तो—हमारे मतमें उनको निष्फलता नहीं है। क्योंकि वह श्रुतियां शरीरशरीरिभावद्वारा अभेद बोधन करती हैं। अर्थात् कारणावस्थापन्न सूक्ष्म चिद् और अचित् तथा कार्यावस्थापन्न स्थूल चित् और अचित् सब ही भगवान्के शरीर हैं अतः शरीरशरीरिके भेदबोधनके लिये उन श्रुतियोंका प्रस्थान है। 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यन्तरोऽयं पृथिवी न वेद यस्य पृथ्वी शरीरम्।' 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।' 'योऽक्षरमन्तरे संचरन् यस्याक्षरं शरीरं यमक्षरं न वेद। यो मृत्युमन्तरे संचरन्यस्य मृत्युः शरीरं यं मृत्युर्न वेद' इन श्रुतियोंमें स्पष्ट ही चित् और अचित्को भगवान्का शरीर प्रतिपादन किया गया है ॥ ५२ ॥

यथा मदीयेन स एव कारणं स एव कार्यं श्रुतिसद्वचोभरैः।
द्वयोरनन्यत्वविधानतो नतो मते मदीये श्रुतितत्यनुग्रहः ॥ ५३ ॥

पताका—हमारे सिद्धान्तमें भगवान् ही कारण हैं और वही कार्य हैं। अर्थात् 'अव्यक्तमक्षरे लीयते। अक्षरं तमसि लीयते। तमः परदेव एकीभूय तिष्ठति।' 'अन्तः प्रविष्टोऽजः सृजते, अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्' इन श्रुतियोंके सद्वचनसमुदायसे यह सिद्ध है कि परब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही कार्यावस्थ जगत् और कारणावस्थ जगत्रूपसे अवस्थित हैं। अतः इन दोनोंके अभेदविधानसे हमारे मतमें ही श्रुतियोंका अनुग्रह है ॥ ५३ ॥

तथा च विज्ञात उदार! कारणे भवेच्च विज्ञातमु कार्य्यमप्यहो।
तदैकविज्ञानबलेन सिद्ध्यति स्वयं मते मे ननु सर्ववेदनम् ॥ ५४ ॥

पताका–तथा च, हे उदार! कारण के ज्ञात होनेपर कार्य भी ज्ञात हो जाता है। इस रीतिसे एक विज्ञानद्वारा सर्व विज्ञानकी प्रतिज्ञा भी हमारे मतमें स्वयं सिद्ध हो जाती है ॥ ५४ ॥

निपीय तस्येति वच.सुधां मुनेः प्रसादमासादितवान्स पण्डितः।
नयन् करौ मूर्द्धनि बद्धभावतां प्रणम्य तत्सत्त्वरगत्वरोऽभवत् ॥५५॥

पताका–श्रीस्वामीजीके इस प्रकारके वचननामृतका पान करके वह पण्डितजी प्रसन्न हो गये। हाथ जोड़कर प्रणाम करके शीघ्र वहांसे चले गये ॥ ५५ ॥

आनन्दमानन्दमनिन्दितो व्रजन् पुनः समायादधिहस्तमाशु सः।
प्रसूनमालामधिगृह्य सोऽवदत्पदं प्रपन्नोऽस्मि तवेति साम्प्रतम् ॥५६॥

पताका–परमानन्दको प्राप्त होते हुये वह विद्वान् हाथमें पुष्पमाला लेकर पुनः स्वामीजीके पास आये और बोले कि अब मैं आपके चरणोंमें प्रपन्न हुआ हूं ॥ ५६ ॥

निरर्थकं जन्म गतं मम प्रभो न भक्तिरासेवि मया कदाचन।
कृपानिधेस्तस्य च जानकीपतेस्ततस्तनुष्वाद्य सुमङ्गलं मम ॥५७॥

पताका–हे प्रभो! मेरा जन्म निरर्थक ही चला गया! कभी भी मैंने परमकृपालु भगवान् श्रीरामजीकी भक्ति नहीं की। आज आप मेरा कल्याण कीजिये ॥ ५७ ॥

न जानकीनाथपदाम्बुजद्वयं मनस्विना येन निषेवितं मुदा।
कथं स संसारमपारसागरं तरिष्यतीत्यर्थिसुरद्रुम! प्रभो! ॥ ५८ ॥

पताका–हे मोक्षयाचकोंके लिये कल्पवृक्ष! प्रभो! जिसने श्रीभगवान् रामचन्द्रके चरणोंकी आनन्दपूर्वक सेवा न की वह इस अपार संसार सागरको कैसे तर सकेगा? ॥ ५८ ॥

अतो जनं मामनुगृह्य गृह्यतां कृपालवोपि श्रुतिशेखरार्थवित् !
विधीयतां शीतलमाशु मानसं षडक्षरेणातिसुधेन मे प्रभो ! ॥५९॥

पताका—अतः हे प्रभो ! मुझ जनपर दया करके कृपाका एक लव भी ग्रहण कीजिये । समस्त वेदान्तके तत्त्वज्ञ ! शीघ्र ही सुधासे भी अधिक श्रीषडक्षर—श्रीराममन्त्रसे मेरे हृदयको शीतल कीजिये ॥ ५९ ॥

न शक्यते सोढुमितः परं प्रभो ! वियोगदावानलतापतीव्रता ।
अतो दयां नाथ ! निधेहि सत्वरं विधेहि मां भागवतं यतीश्वर ! ॥

पताका—हे प्रभो ! वियोगाग्निके तापकी तीव्रता अब नहीं सही जाती है । अतः हे नाथ ! शीघ्र दया करिये और मुझे भागवत बना लीजिये ॥

निशम्य तस्योक्तिभरं स निर्भरं यतीश्वरो नश्वरभाववैभवात् ।
विरज्य दैन्यं प्रणिपातपूर्वकं प्रदर्शयन्तं द्विजवर्यमुक्तवान् ॥६१॥

पताका—श्रीयतिराजने उन ब्राह्मणदेवके इस वचनको सुनकर तथा सांसारिक नश्वर पदार्थोंसे विरक्त होकर प्राणिपातपूर्वक दीनता दिखाते हुये —उन्हें, कहा ॥ ६१ ॥

प्रभोः कृपापात्रमसीति दीक्ष्यसे षडक्षरेणाद्य षडङ्गपण्डित !
स राममन्त्रामृतमादराद्यतिस्त्वपाययत्सोप्यपिबच्च सादरम् ॥६२॥

पताका—हे षडङ्गके जाननेवाले पण्डित ! आप प्रभुके कृपापात्र हैं अतः आज श्रीषडक्षर मन्त्रकी दीक्षा देता हूं । ऐसा कहकर आदरपूर्वक श्रीयतिराजने उन्हें श्रीराममन्त्रामृतका पान कराया और उन्होंने सादर पान किया ॥ ६२ ॥

सपञ्चसँस्कारमभूत्स वैष्णवो विहाय तन्मायिपथं पथि श्रुतेः ।
चरन्सदाचारपरायणो द्विजो महान् प्रतापी क्रमशो बभौ भुवि ॥६३

पताका—पञ्चसंस्कार पूर्वक वह पण्डितजी वैष्णव हो गये और मायावादका मार्ग छोड़कर श्रुतिप्रतिपादित मार्गपर आ गये। तथा

वैष्णवाचारपरायण होकर, महान् प्रतापी होकर वह विद्वान् पृथ्वीपर प्रख्यात हो गये ॥ ६३ ॥

गतश्च यो भाग्यभुवामधीशतां यतेः प्रपद्यार्तिहरान् पदानिह ।
स नामधेयेन सुरेश्वरार्य इत्यभूत्प्रवित्तो जनतासु तासु हि ॥६४॥

पताका—श्रीयतिराजके चरणोंमें प्रपन्न होकर इस प्रकारसे आज जो विद्वान् भाग्यशाली बने हैं वह महीशूरमें सुरेश्वरार्य इस नामसे प्रख्यात थे ॥

प्रबुद्धपुंसां बहुशस्तदा गणो हितं स्वकीयं सततं समिच्छताम् ।
प्रभोर्मनावेव षडक्षरेऽक्षरे दधावनन्यत्वधियानुरागिताम् ॥६५॥

पताका—श्रीसुरेश्वरार्यके दीक्षित होनेके पश्चात् अनेक ज्ञानिपुरुषोंका समूह--जोकि अपना हित चाहता था—सर्वेश्वर श्रीरामजीके अक्षर--अविनाशी षडक्षर मन्त्रमेंही अनन्यभावसे प्रेम करने लगा । अर्थात् स्त्री और पुरुष दीक्षित हुये ॥ ६५ ॥

श्रीमानेवं विनयविनतान्वैष्णवाँस्तान्विधाय,
स्त्रीपुंसान्सद्विमलकुलपाथोजभानून्यतीन्द्रः ।
नित्यं रामे जनकतनयानन्दिते वन्दिते स–,
दैवैर्भक्तिं त्वनुपधिमतीं सम्प्रतस्थेऽनुशास्य ॥ ६६ ॥

पताका—इस प्रकारसे श्रीमान् स्वामीजीने उत्तमकुलोत्पन्न स्त्री–पुरुषोंको विनीत वैष्णव बनाकर देववन्दित श्रीजानकीजी सहित श्रीरामजीमें निष्कपट भक्तिका उपदेश देकर वहांसे प्रस्थान किया ॥ ६६ ॥

आशीराशीन्प्रयच्छन्कतिपयदिवसान्वाक्सुधां पाययित्वा,
सर्वान् कृत्वा कृतार्थाञ्जलभृतनयनान्बोधवाङ्माधुरीभिः ।
शान्तान् कृत्वा कटाक्षान्सकलनरभरे विक्षिपन्संक्षिपँस्त-
द्दुःखाम्भोधिं कृपायाः परमनिधिरयं शिष्यवृन्दैः प्रतस्थे ॥६७॥

पताका—कितनेही दिवसपर्यन्त स्ववचनामृतका लोगोंको पान कराकर, सबको कृतार्थ बनाकर, वियोगसे रोते हुये लोगोंको ज्ञानमय

मधुर वचनोंसे शान्त करके, सबके ऊपर कृपा–कटाक्षसे देखते हुये, उनके दुःखोंको अल्प करते हुये, आशीर्वाद देते हुये कृपाके परमनिधि श्रीस्वामीजी महाराज अपने शिष्यों सहित वहांसे चले ॥ ६७ ॥

मार्गे सर्वत्र जिष्णुर्विगलितभवभीरश्लथाभिर्व्यथाभिः,
खिन्नाँल्लोकान्यतीशस्त्रिविधविषमबाधोत्थिताभिः स्थिताभिः।
हृद्यं सर्वं श्रुतीनां निखिलसुखकरं बोधयन्धर्ममर्म,
बद्धश्रद्धान्विधायाशमयदनुपदं रामचन्द्रे तदर्तिम् ॥ ६८ ॥

पताका–विजयशील तथा संसारके भयसे रहित श्रीस्वामीजी महाराजने मार्गमें सर्वत्र, त्रिविधतापोंकी विषमबाधासे उत्पन्न स्थिर और गाढ व्यथाओंसे खिन्न लोगोंको समस्त श्रुतियोंके हृदय–प्रिय, सर्वसुखप्रद धर्मके रहस्यका बोधन करके, भगवान् श्रीरामचन्द्रमें परमश्रद्धालु बनाकर उनकी पीडाको शीघ्रही शान्त कर दिया ॥ ६८ ॥

अङ्गान्वङ्गान् कलिङ्गाञ्छ्रुतिपथपथिकानेष कुर्वन्मुनीन्द्रः,
श्रीजानक्याः समागाज्जनिभुवमधिशोभाभुवं कीर्त्यकीर्तिम् ।
तत्रत्यानां समेषामधिहृदयपटं भक्तिभावं निषिञ्चन्,
वन्द्यो विद्याधिसम्राड्जितविबुधकुलो भूषयामास काशीम् ॥६९॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते
श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजयेऽष्टादशः सर्गः

पताका–श्रीस्वामीजी महाराज अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग आदि देशवासियोंको वैदिक मार्गानुयायी–वैष्णव बनाते हुये, अत्यन्त शोभाधाम, प्रशस्यकीर्ति श्रीमहाराणीजीकी जन्मभूमि श्रीजनकपुरमें पधारे। वहांके लोगोंके हृदयमें भक्तिभावको पुष्ट करके परमवन्दनीय, परमविद्वान्, सर्वविद्वद्विजेता श्रीयतिराज काशीपुरीको सुशोभित करने लगे ॥ ६९ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य–ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास–विरचिते–श्रीमद्भगवद्रामानन्ददिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायामष्टादशः सर्गः ।

एकोनविंशतिः सर्गः

एकदा सर्वसच्छिष्यैः सर्वविद्याविशारदैः ।
स्वाश्रये मुनिशार्दूलः स्थित आसीद्व्यवस्थितः ॥१॥

पताका-एक समय श्रीस्वामीजी महाराज सर्वविद्याओंमें कुशल अपने उत्तम-योग्य शिष्योंके साथ आश्रममें बैठे थे ॥ १ ॥

तदानीं सहसा तत्र श्रुता वागशरीरिणी ।
सर्वैश्च विस्मयाविष्टैर्मिथोलोचिविलोचनैः ॥ २ ॥

पताका-उसी समय आश्चर्ययुक्त होकर, एक दूसरेकी ओर देखते हुये सबलोगोंने एक आकाशवाणी सुनी ॥ २ ॥

खललीलामहाकीलक्लिष्टशिष्टनृणां कृते ।
कृपयावातरःश्रीमान्साकेताद्यतिशेखर ॥ ३ ॥

पताका-हे यतिराज ! दुष्टोंकी दुष्टतारूप महाकन्टकसे पीडित सज्जनोंकी रक्षाकेलिये कृपाकर आप साकेतसे अवतार लेकर पधारे हैं ॥३॥

म्लेच्छश्वापदसंत्रस्ताः परं साकेतवासिनः ।
स्वधर्मभ्रंशिता म्लेच्छैर्निशितायुधधारिभिः ॥ ४ ॥

पताका-अयोध्यावासी हिन्दु यवनरूपी हिंसकपशुओंसे अत्यन्त डरे हुये हैं । म्लेच्छोंने तलवार आदिके बलसे हिन्दुओंको स्वधर्मसे पतित कर दिया है ॥ ४ ॥

देवालयालयं यान्ति तीर्थस्थानानि यानि च ।
अस्थाने तान्यपि श्रीमन्नव्यवस्थामुपागमन् ॥ ५ ॥

पताका-देवालय और तीर्थस्थान सब नष्ट भ्रष्ट किये जा रहे हैं । सबकी अव्यवस्था हो गई है ॥ ५ ॥

हिन्दुतन्तुक्षयं कर्तुं यन्त्रयत्नविचक्षणाः ।
निखिलायामयोध्यायां मार्गे यन्त्राण्ययूयुजन् ॥ ६ ॥

पताका—हिन्दुवंशका नाश करनेकेलिये यन्त्रविद्यामें कुशल यवनोंने सम्पूर्ण अयोध्यामें यन्त्रोंका प्रयोग कर दिया है ॥ ६ ॥

तदधोगमनं येषां तेषां सद्धर्मविच्युतिः ।
म्लेच्छाकृतिश्च वोभोति हठादपि मुनीश्वर ! ॥ ७ ॥

पताका—हे मुनिराज ! उन यन्त्रोंके नीचेसे जो हिन्दु जाते हैं वह सब हठात् धर्मसे च्युत हो जाते हैं। उनकी मुसलमानों जैसी आकृति बन जाती है ॥ ७ ॥

हिंसानृतदुराचारमहारण्यविहारिणः ।
म्लेच्छकेसरिणो नृणां बम्भ्रम्यन्ते जिघांसया ॥ ८ ॥

पताका—हिंसा, असत्य और दुराचाररूप महान् जङ्गलमें विचरनेवाले यवनरूप सिंह मनुष्यों—हिन्दुओंको मारनेकेलिये जहां तहां फिर रहे हैं ॥ ८ ॥

उत्पातोत्पत्तितः सर्वान् खिन्नानखिलमानवान् ।
त्रातुं शीघ्रं मनो धेहि त्रस्तत्राणैकसुव्रत ! ॥ ९ ॥

पताका—हे भीतप्राणियोंकी रक्षा करनेके सुन्दर व्रतवाले महाराज ! इस प्रकारके उत्पातसे व्याकुल सब मनुष्योंकी रक्षाका यत्न कीजिये ॥ ९ ॥

हिन्दवस्तेऽन्यथाऽनाथाः परधर्मपरायणाः ।
भविष्यन्ति यते हन्त ! हतैव श्रौतपद्धतिः ॥ १० ॥

पताका—नहीं तो हे यतिराज ! हिन्दु अनाथ होकर अन्य धर्मको स्वीकार कर लेंगे और वेदमार्गका नाश हो जायगा ॥ १० ॥

इति वाचं समाकर्ण्य मुनिश्चिन्तानिशीथिनीम् ।
दन्तप्रभाचयेनाशु नाशयन्निजगाद सः ॥ ११ ॥

पताका—इस आकाशवाणीको सुनकर श्रीस्वामीजीने अपनी दन्त-प्रभासे चिन्तारूप रात्रिको नाश करते हुये बोले ॥ ११ ॥

भोः शिष्याः प्रियधर्माणो लब्धप्रज्ञाः कलाविदः ।
तूर्णं च गच्छतायोध्यां भङ्क्त यन्त्रं हि यावनम् ॥ १२ ॥

पताका—हे धर्मप्रिय, बुद्धिमान् और कलाकुशल मेरे शिष्य ! तुम लोग शीघ्र अयोध्या जावो और यवन—यन्त्रको तोड़ डालो ॥ १२ ॥

सर्वदोषप्रतीकारं सर्वशत्रुनिषूदनम् ।
वैष्णवं यन्त्रमादाय तत्र स्थापयताञ्जसा ॥ १३ ॥

पताका—सम्पूर्ण दोषोंके दूर करनेवाले, सम्पूर्णशत्रुओंका नाश करने वाले वैष्णव यन्त्रकी वहां शीघ्र स्थापना करो ॥ १३ ॥

तन्मार्गेणापि गच्छन्तः सर्वे वैष्णवतां ध्रुवम् ।
अन्येऽपि संव्रजिष्यन्ति तेऽपि ये यवनीकृताः ॥ १४ ॥

पताका—उस वैष्णव यन्त्रमार्गसे जो जायंगे; सब हिन्दू हो जायंगे। तथा जो हिन्दू मुसलमान बनाये गये हैं वह भी हिन्दू हो जायंगे ॥१४॥

पञ्चषा यतिराजस्य शिष्या दुष्टनिकर्तनाः ।
दिष्ट्या चेलुस्तदादिष्टास्तामयोध्यां ससम्मदाः ॥ १५ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराजके पांच छः शिष्य जो कि दुष्टके निकंदन करने वाले थे, स्वामीजीसे आज्ञप्त होकर प्रसन्नतापूर्वक अयोध्याको चले ॥ १५ ॥

द्वित्रैरहोभिराजग्मुर्मुन्यनुग्रहशालिनः ।
रमानाथपदद्वन्द्वचर्चितां तां पुरीं मुदा ॥ १६ ॥

पताका—श्रीमुनिराजके कृपापात्र वे शिष्य दो तीन दिनमें भगवान् श्रीरामजी महाराजके चरणोंसे पवित्र अयोध्यामें पहुंच गये ॥ १६ ॥

रामपादारविन्दप्रस्फुरद्रेणूच्चयोज्ज्वलाम् ।
तीरस्थहरिदाभातमहीरुहसुमश्रियम् ॥ १७ ॥

पताका—आठ श्लोकोंमें श्रीसरयूजीका वर्णन करते हैं। भगवान्के चरणकमलके सुन्दररेणुसे शोभित, तीरके हरे २ शोभित वृक्षोंके फूलोंकी शोभासे युक्त—॥ १७ ॥

श्रीरामचरणासङ्गिरजोराशिपवित्रिताम् ।
मनोभूविलसत्पापतटिनीपत्यगस्त्यिताम् ॥ १८ ॥

पताका—भगवान्के चरणरजसे पवित्रिता, मनरूपी पृथ्वीपर पापरूपी समुद्रको सुखानेके लिये अगस्त्यके समान—॥ १८ ॥

विहसल्लोलकल्लोलप्रसारितबृहद्भुजाम् ।
गृहायातजनातिथ्यातिव्याकुलितमानसाम् ॥ १९ ॥

पताका—खूब उछलते हुये लहररूप भुजवाली, गृहपर आये हुये अतिथियोंके सत्कारके लिये व्याकुल मनवाली—॥ १९ ॥

धर्मव्याधमनोव्याधिवाधावृद्धिनिपीडिताम् ।
आगतापत्परीतापव्यञ्जकोद्घोषपूरिताम् ॥ २० ॥

पताका—धर्मके ह्रासमे मानसिक पीडाकी वृद्धिके कारण दुःखिता, आई हुई आपत्तिके परितापको व्यक्त करनेवाले शब्दोंसे परिपूर्ण—॥२०॥

अनन्तगुणसन्तानमहनीयपदाम्बुजाम् ।
कीर्त्यकीर्तिकलानाथकलानन्दनिधिप्रदाम् ॥ २१ ॥

पताका—अनन्त गुणोंके कारण पूज्य चरणवाली, प्रशस्त कीर्तिरूपी चन्द्रमाके एक कलासे भी परमानन्दको प्राप्त करनेवाली—॥ २१ ॥

महादेवविरञ्च्यादिसर्वदेवनमस्कृताम् ।
मुक्तिभुक्त्यर्थिकामाप्तिवृन्दारकमहीरुहम् ॥ २२ ॥

पताका—शिव, ब्रह्मादि सर्व देवोंसे नमस्कृत, मुक्ति और भुक्ति दोनों के अधिकारियोंकी इच्छापूर्तिके लिये कल्पवृक्ष समान—॥ २२ ॥

हरिभक्तिमहारत्नराशिरत्नाकरायिताम् ।
कलिदन्तावलोद्दर्पदारिवारिसमन्विताम् ॥ २३ ॥

पताका—भगवद्भक्तिरूप महारत्नोंके राशिसे समुद्रके समान, कलियुग-रूप हाथीके दर्पको दलन करनेवाले जलवाली—॥ २३ ॥

मातरं सरयूं नत्वा स्नानं कृत्वा समादरात् ।
राघवपादसम्पातपूतां ते विविशुः पुरीम् ॥ २४ ॥

पताका—वे सब शिष्य श्रीसरयूजीमें आदरपूर्वक स्नान करके भग-वान्के चरणोंसे पवित्रित अयोध्यापुरीमें प्रविष्ट हुये ॥ २४ ॥

मन्त्ररत्नारिसन्तापिप्रतापोत्कटमार्गणैः ।
मार्गयित्वा च यन्त्राणि ते सर्वाणि विचिच्छिदुः ॥ २५ ॥

पताका—श्रीराममन्त्रके, शत्रुसंहारक—प्रतापरूप बाणोंसे शोध २ कर उन सब यवन यन्त्रोंको उन्होंने काट डाले ॥ २५ ॥

नियन्त्रितानि यन्त्राणि वैष्णवानि नवानि च ।
पुर्यां तस्यां यतीन्द्रस्यादिष्टैः शिष्यैः समन्ततः ॥ २६ ॥

पताका—श्रीस्वामीजीसे आज्ञा प्राप्त किये हुये उन शिष्योंने उस अयोध्या पुरीमें चारों ओर नवीन वैष्णव यन्त्र स्थापन कर दिये ॥२६॥

वैष्णवयन्त्रमहात्म्याद्धर्मात्प्रच्याविता हठात् ।
यवनत्वं समापन्नाः पुनर्हिन्दुत्वमाप्नुवन् ॥ २७ ॥

पताका—वैष्णवयन्त्रके माहात्म्यसे हठात् धर्मसे पतित कराये गये हुये, यवनधर्मको प्राप्त किये हुये हिन्दु पुनः हिन्दुधर्मको प्राप्त हुये ॥२७॥

तद्यन्त्रच्छायया स्पृष्टा यवना अपि केचन ।
हिन्दुसाधर्म्यमापन्ना म्लेच्छचिह्नविवर्जिताः ॥ २८ ॥

पताका—इन वैष्णवयंत्रोंकी छायासे छूये जाकर कितने ही मुसलमान भी म्लेचचिन्होंसे छूटकर हिन्दुओंके समान बन गये ॥२८॥

तान् स्प्रष्टुं वा गृहे नेतुं परं वृद्धा न मेनिरे ।
शिष्यैश्चायं समाचारः प्रापितो यतिकुञ्जरम् ॥ २९ ॥

पताका—परन्तु वृद्धोंने उन लोगोंको स्पर्श करना अथवा घरमें रखना स्वीकार नहीं किया। स्वामीजीके शिष्योंने यह समाचार स्वामीजीके पास पहुंचा दिया ॥२९॥

वार्ता वार्ताहरेणेमां श्रुत्वा योगिशिखामणिः ।
श्रुतीनां पारदृश्वासौ क्षणं नेत्रे न्यमीलयत् ॥ ३० ॥

पताका—वेदोंके तत्वको भले प्रकार जाननेवाले योगीश्वर श्री स्वामीजीने इस समाचारको सुनकर क्षण भरकेलिये आंखें बन्धकर लीं ॥३०॥

कश्चिद्वैमानिको देवो विमानं दिव्यदर्शनम् ।
उपस्थितः समादाय मुनिनाथपुरस्तदा ॥ ३१ ॥

पताका—तब एक वैमानिक नामका देव परम सुन्दर विमान ले कर श्रीयतिराजके सम्मुख उपस्थित हुआ ॥३१॥

तदारुह्य सशिष्योऽयं स्वप्रभाभिर्जगत्त्रयम् ।
भासयँश्च यथा सूर्यः प्रतस्थे तां पुरीं प्रति ॥ ३२ ॥

पताका—श्री स्वामाजी अपने अन्य शिष्यों सहित उसपर चढकर अपने प्रकाश से सूर्यसमान तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हुये अयोध्याके प्रति चले ॥३२॥

प्रस्थिते च मुनौ पुर्यामयोध्यायां समन्ततः ।
शकुनानि त्वनेकानि हिन्दूनां भवने बभुः ॥ ३३ ॥

पताका—जिस समय श्रीस्वामीजी चले हैं उस समय अयोध्यामें हिन्दुओंके घरोंमें अनेकों शकुन होने लग गये थे ॥३३॥

तथा यावनकुलं चात्राशकुनानि जगाहिरे ।
सहस्राणि महानर्थसूचकानीव सर्वशः ॥ ३४ ॥

पताका—तथा यवनोंके घरोंमें महान् अनर्थकी सूचना देनेवाले सहस्रों अशकुन चारों ओरसे होने लग गये ॥३४॥

महान्तं घोषमातन्वद्रमणीयतमं परम् ।
विमानं तच्च सम्प्राप्तमयोध्यासन्निधे क्षणात् ॥ ३५ ॥

पताका—महान् शब्द करता हुआ परम सुन्दर वह विमान अयोध्याके पास क्षणभरमें पहुंच गया ॥३५॥

तत्र श्रीसरयूतीरे व्योमयानं शनैः शनैः ।
अवतरितुमारेभे लोककौतुककारणम् ॥ ३६ ॥

पताका लोगोंको आश्चर्य लगानेवाला वह विमान श्रीसरयूके तटपर धीरे २ उतरने लग गया ॥३६॥

तन्मध्ये संस्थितं वीक्ष्य कोटिभास्करभास्वरम् ।
भासयन्तं दिशः सर्वाः सर्वे कौतुकिनोऽभवन् ॥ ३७ ॥

पताका—उसके बीचमें करोडों सूर्यके समान प्रकाशमान, सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हये स्वामीजीको देखकर सब आश्चर्यित हो गये ॥ ३७ ॥

गगनात्प्रच्युतो भानुः प्रलयानल एव वा ।
ऊर्जितस्फूर्जथुः किं वा कुलिशः पाकशासनः ॥ ३८ ॥

पताका—क्या आकाशसे सूर्य टूट पडा है ! अथवा प्रलयकालकी अग्निज्वाला है ! अथवा इन्द्रका अत्यन्त बलशाली वज्र है ! ॥३८॥

कादम्बिनीं विनैवाथ शम्पासम्पात ईदृशः ।
अथवा कोऽपि योगीशो लोकशोकविनाशनः ॥ ३९ ॥

पताका–अथवा मेघके विनाही बिजली पडी है ! अथवा संसारका शोक नष्ट करनेवाले कोई महान् योगीश्वर हैं ! ॥३९॥

इत्येवं तर्कयन्तस्ते कौतुकान्वितचेतसः ।
अवालुलुकिरे सर्वे विमानं भुव्युपस्थितम् ॥ ४० ॥

पताका–इस प्रकार तर्क करते हुये, आश्चर्यित मनवाले लोगोंने पृथ्वीपर उपस्थित विमानको देखा ॥४०॥

मा च भूद्दृष्टिसम्पर्को यावनस्त्विति तत्क्षणम् ।
तद्देशे रविरागत्य प्रचकाशे भृशं दिवः ॥ ४१ ॥

पताका–यवनोंकी दृष्टिका स्वामीजीके साथ सम्पर्क न हो अतः आकाशसे सूर्य तत्कालमें उस प्रदेशमें (जिधर यवन सब खडे थे) अत्यन्त तीक्ष्णतासे चमकने लगे ॥४१॥

तत्प्रकाशेन तेषां तु नायनं ज्योतिराहतम् ।
गर्वोऽपि खर्वतां यातो हा हा हेति प्रजल्पताम् ॥ ४२ ॥

पताका–उसके प्रकाशसे मुसलमानोंके नेत्रोंकी ज्योति नष्ट हो गई ! हाहाकार करते हुये उन सबोंका गर्वभी नष्ट हो गया ॥४२॥

हिन्दूनां च पुरस्तात्तु शीतरश्मिः कलाधरः ।
प्रकाशते स्म तमात्तैर्यतिपादाब्जमैक्ष्यत ॥ ४३ ॥

पताका–जिस ओर हिन्दु खडे थे उस ओर शीतल किरणोंवाले चन्द्रदेव प्रकाशमान थे अतः उन्होंने स्वामीजीके चरणोंका दर्शन किया ॥

प्राक्तनपुण्यसंयोगादागतं स्वगृहे स्वयम् ।
अर्हणीयतमं वीक्ष्य प्रससाद सरिद्वरा ॥ ४४ ॥

पताका—नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीसरयूजी, पूर्वजन्मके पुण्योंके संयोगसे पूजनीय स्वामीजीको अपने घर आये हुये देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥

मुनीनामपि मान्याय यतिराजाय सम्मुदा ।
तारस्वरैर्निनदन्ती स्वागतं व्याजहार सा ॥ ४५ ॥

पताका—श्रीसरयूजी, मुनियोंके भी माननीय श्रीयतिराजके लिये परमानन्दसे, उच्च स्वरसे निनादकरती हुई मानो ऐसा बोलीं कि 'आपका स्वागत हो ॥४५॥

शीतलोल्लोलकल्लोलैः क्षालयित्वा पदाम्बुजम् ।
अमन्दानन्दपाथोधौ निमग्ना तं नुनाव सा ॥ ४६ ॥

पताका—पश्चात् श्रीसरयूजी अपने अत्यन्त चञ्चल तरङ्गोंकेजलसे स्वामीजीके चरणकमलको धोकर परमानन्द सागरमें निमग्न होकर स्तुति करने लगीं ॥४६॥

अकुण्ठशक्ते वैकुण्ठादागत स्वसमीहया ।
विश्वम्भर महोदार कृपाकूपार ते नमः ॥ ४७ ॥

पताका—हे महती शक्तिवाले ! हे वैकुण्ठसे स्वेच्छासे पधारे हुये ! हे विश्वम्भर ! हे महान् उदार ! हे कृपासागर ! आपको नमस्कार हो ॥४७॥

कल्याणगुणसम्पूर्ण निर्विकार निरञ्जन !
भक्तिमार्गसमुद्धारदत्तचित्ताय ते नमः ॥ ४८ ॥

पताका—हे कल्याण गणोंसे परिपूर्ण ! हे विकार रहित ! हे निरञ्जन ! भक्तिमार्गके उद्धारकेलिये दत्तचित्त आपको नमस्कार हो ॥४८॥

धर्मराज्यमहाराज दुराचारापनुत्तये ।
स्वयं स्वीकृतमानुष्यसंहननाय ते नमः ॥ ४९ ॥

पताका—हे धर्मराज्यके महाराज ! दुराचारोंके नाश करनेकेलिये स्वेच्छासे मानवदेह धारण करनेवाले आपको नमस्कार हो ॥४९॥

पादारविन्दसञ्चारात्संपावितवसुन्धर !
कृतार्थितवसुमतीलोकलोचन ते नमः ॥ ५० ॥

पताका—चरणकमलके सञ्चारसे पृथिवीको पवित्र करनेवाले! स्वदर्शनसे मनुष्योंके नेत्रोंको कृतार्थ करनेवाले ! आपको नमस्कार हो ॥५०॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारते ।
तदात्मानं हि संसृज्यागच्छते ते सते नमः ॥ ५१ ॥

पताका—भारतमें जब २ धर्मकी ग्लानि होती है तब २ मानवादि शरीर धारण करके पधारनेवाले आपको नमस्कार हो ॥५१॥

एवं लब्धार्हणः श्रीमान् भवतापवितापनः ।
वचः सारयवं श्रुत्वा सुप्रीतः पुरमभ्यगात् ॥ ५२ ॥

पताका—संसारके दुःखोंको नाश करनेवाले श्रीमान् स्वामीजी महाराज इस प्रकार पूजित होकर, सरयूजीके वचन सुनकर, प्रसन्न होकर पुरीमें प्रविष्ट हुये ॥५२॥

हिन्दूँस्तत्रागतान्सर्वानुद्दिश्य यतिभूषणः ।
हासयन् हृदयाम्भोजकुड्मलानि जगाद सः ॥ ५३ ॥

पताका—स्वामीजी, अपने पास आये हुये सब हिन्दुओंके हृदयकमलकी कलियोंको खिलाते हुये बोले ॥५३॥

भव्या निवचनेकृत्याऽऽकर्णयेत वचो मम ।
युष्मद्भद्रस्य पन्थानं स्पष्टतः प्रवबीम्यहम् ॥ ५४ ॥

पताका—हे भव्य पुरुषो ! ध्यान देकर मेरी बातको सुनो ! तुम्हारे कल्याणके मार्गको मैं स्पष्टरीतिसे कहता हूं ॥५४॥

यस्यां जातौ समाजे वा यस्मिन् केवलमाश्रिता ।
शक्तिर्वियोजनस्यैव जीवेन्न च चिरं स सा ॥ ५५ ॥

पताका--जिस जातिमें अथवा जिस समाजमें केवल पृथक करनेकी शक्ति है (सम्मिलित करनेकी शक्ति नहीं है) वह जाति और वह समाज चिरकाल तक नहीं जी सकता ॥५५॥

केवलं यश्च वमति पचत्यद्धा कदापि न ।
यथा तस्य चिरायुष्ट्वं नास्ति तस्यापि तत्तथा ॥ ५६ ॥

पताका—जो केवल वमन करता रहता है और कदापि किसी वस्तुको पचाता नहीं है, जिस प्रकारसे ऐसे पुरुषको चिरायु नहीं होती उसी प्रकार उस जाति और समाजकी दशा हो जाती है ॥५६॥

अयं तु प्रथमः पादः कलिकालस्य वर्तते ।
तारुण्ये भविता यद्यत्कथं च सहितास्थ तत् ॥ ५७ ॥

पताका—अभी तो यह कलियुगका प्रथम ही चरण है! इसकी जवानीमें जो २ रहेगा उस कैसे सहन करोगे ? ॥५७॥

आश्रयेदग्रिमे काले परदारासनादिभिः ।
द्यूतैश्चापि सुरापानैर्मत्स्यमांसादिभक्षणैः ॥ ५८ ॥
असत्यभाषणैश्चापि तथा तस्करतादिभिः ।
अकृत्यकरणैश्चान्यैर्दोषैरेतान्विधर्मता ॥ ५९ ॥

पताका—भविष्यकालमें परस्त्रीगमन, जूआ, सुरापान, मत्स्य मांसादि भक्षण, असत्य भाषण, चोरी आदि अनेक अकृत्यकरण द्वारा अनेकों दोष हिन्दुओंको लगेंगे, उससे इनमें विधर्मता आवेगी ॥५८—५९॥

परदारेषु मातृत्वं परद्रव्येषु लोष्ठता ।
सर्वभूतेषु वा साम्यमग्रे सर्वं विनङ्क्ष्यति ॥ ६० ॥

पताका—परस्त्रीमें मातृबुद्धि, परद्रव्यमें लोष्ठबुद्धि, सर्व प्राणियोंमें समभाव ये सब भविष्य में नष्ट हो जायंगे ॥६०॥

एतद्दोषग्रहग्रस्ताः स्युश्चेत्सर्वे बहिष्कृताः ।
हिन्दुजातिस्तदा तिष्ठेत्कथं भूमौ विचार्यताम् ॥ ६१ ॥

पताका-इन सब दोष रूपी ग्रहोंसे ग्रस्त सबही हिन्दु यदि जातिसे बहिष्कृत कर दिये जावें-छोड़ दिये जावें तो पृथ्वीपर हिन्दु जाति कैसे रह सकेगी इसका विचार करो ॥६१॥

कथं वा वेदरक्षा स्यात्कथं देवादिपूजनम् ।
कथं श्राद्धसदाचारः कथं तीर्थाभिरक्षणम् ॥ ६२ ॥

पताका-कैसे वेदोंकी रक्षा होगी ? देवादिकोंका पूजन कैसे होगा ? श्राद्धादि कैसे होंगे ? तीर्थोंका रक्षण कैसे होगा ? ॥६२॥

गवादिप्राणिनां रक्षा कथङ्कारं भविष्यति ।
सतीत्वस्यापिनामात्र स्मर्तव्यपदवीं व्रजेत् ॥ ६३ ॥

पताका-गौ आदि प्राणियोंकी रक्षा कैसे होगी ? सतीधर्म भी देखनेको न मिलेगा ! भूतकालकी वस्तु हो जावेगी ॥६३॥

एते ये चात्र युष्माभिस्त्यज्यन्ते ते न दूषिताः ।
बलात्कारेण पातित्यं पातित्यं तन्न संमतम् ॥ ६४ ॥

पताका-और इन जिनलोगोंका तुम त्यागकर रहे हो ये दूषित नहीं हैं ! क्योंकि ये तो यन्त्रबलसे हठात् पतित बनाये गये हैं ! अतः बलात्कारका पातित्य पातित्य ही नहीं है ॥६४॥

निपीय यतिराजस्य वचनामृतमादरात् ।
केचित्सप्रश्रयं प्राहुरित्येवं नीतिमत्तया ॥ ६५ ॥

पताका-श्रीस्वामीजीके इस प्रकार वचनामृतका पान करके नीतिमत्तासे नम्रतापूर्वक कितने लोगोंने ऐसा कहा ॥६५॥

आयोध्यका द्विजश्रेष्ठा यत्रैषां भुञ्जतां गृहे ।
आददीरञ्जलं चापि गृह्णीमस्ताँस्तदा वयम् ॥ ६६ ॥

पताका-यदि अयोध्याके उत्तम कोटिके ब्राह्मण इनके घरमें भोजन करें, इनका जल ग्रहण करें तो इनको हम जातिमें लेलेंगे ॥६६॥

क्रियतामेवमित्युक्ते मुनिवर्येण तत्क्षणम् ।
तत्रत्या ब्राह्मणाः सर्वे न्यमन्त्र्यन्त मुदा च तैः ॥ ६७ ॥

पताका–स्वामीजीने कहाकि अस्तु, ऐसाही करो ! उन लोगोंने उसी समय वहांके ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया ॥६७॥

कैश्चित्सन्देहिता विप्रा नितरां धर्मभीरवः ।
भोक्ष्यामह इति प्रोच्य नागता समये हि ते ॥ ६८ ॥

पताका–उन धर्म भीरू ब्राह्मणोंको किन्हींने सन्देहमें डाल दिया। अतः आनेकी प्रतिज्ञा करके भी भोजनके समय नहीं आये ॥६८॥

महाद्रव्यव्ययेनैव सामग्रीयं सुसज्जिता ।
चिन्तेयं महती जाता सर्वेषां किं भवेदिति ॥ ६९ ॥

पताका–सबको यह चिन्ता हो गई कि बहुत धनव्यय करके यह सब भोजनकी सामग्री एकत्रित की गई है, अब क्या होगा ॥६९॥

चिन्ताव्यालीभयाक्रान्तास्तेभ्यश्चाथिपताधुना ।
मुनिनाथेन पात्रेषु भोजनं परिवेष्यताम् ॥ ७० ॥

पताका–श्रीस्वामीजीने, चिन्तारूपिणी सर्पिणीके भयसे आतुर उन मनुष्योंको कहाकि पात्रोंमें तुम लोग भोजनको परसो ॥७०॥

प्रत्येकं विप्रवर्याणां तदा द्वित्वमिवाभवत् ।
हठादेको गृहे चैकस्तत्र भोक्तुं समागतः ॥ ७१ ॥

पताका–उस समय अयोध्याके सब ब्राह्मणोंको द्वित्व हो गया। एकके दो २ हो गये। एक शरीरसे तो वह लोग घरपर रहे और दूसरे शरीरसे वहाँ हठात् भोजनकरने आये ॥७१॥

भुञ्जानं कश्चिदालोक्य तत्र कश्चिद्गृहं गतः ।
तत्रापि तं समालोक्य महदाश्चर्यमाप्तवान् ॥ ७२ ॥

पताका—कोई किसीको वहाँ भोजन करते देखकर उनके घर गया। वहाँ भी उन्हें देखकर वह बहुत चकित हुआ ॥७२॥

सर्वे सर्वानलोकन्त भुञ्जानांस्तत्र तद्गृहे।
किमित्येतदभूत्तन्न विजानीमस्त ऊचिरे ॥ ७३ ॥

पताका—सबने सबको उन परावर्तित पतितं हिन्दुओंके घरमें भोजन करते हुये देखा। वे बोले कि, यह क्या हुआ सो हमलोग नहीं जानते ॥

वदत्स्वेवं नभोवाणी समजायत हे द्विजाः।
यतिराजं मनुष्यं मा मनुध्वं हरिरेष हि ॥ ७४ ॥

पताका—जब सब ब्राह्मण ऐसा बोलने लगे तब आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मणो! तुम लोग श्रीस्वामीजीको मनुष्य मत मानना। यह तो साक्षात् हरि—प्रभु—हैं ॥७४॥

इदमाश्चर्यमालोच्य वाचं चाकर्ण्य नाभसीम्।
हरिं मनसि कृत्वा तं पेतुः पादे यतेश्च ते ॥ ७५ ॥

पताका—इस प्रकारका आश्चर्य देखकर, आकाशवाणिको सुनकर स्वामीजिको निश्चय ही प्रभु जानकर सब उनके चरणोंमें पड़ गये ॥७५॥

वशे वर्तामहे तेऽद्य यथेच्छमनुशाधि नः।
विधिवत्कर्तुमिच्छामस्तव वाचां हि वेदता ॥ ७६ ॥

पताका—हे भगवन्। हम सबके वशवर्ती हैं। जैसी इच्छा हो आज्ञा कीजिये। विधिवाक्य मानकर उसे हम लोग करेंगे। क्योंकि आपकी वाणी ही तो वेद है ॥७६॥

अनुसृत्य मुनेराज्ञां धर्मशास्त्रानुसारिणीम्।
पतिताञ्जगृहुः सर्वे युगमर्यादयापि ते ॥ ७७ ॥

पताका—धर्मशास्त्रानुसार मुनिराजकी उस आज्ञाको सुनकर तथा

युगमर्यादाका विचार करके सबने उन पातित्यसे शुद्र हुये हिन्दुओंको ग्रहण कर लिया ॥७७॥

ये म्लेच्छमन्त्रबलतो यवना बभूवु-
हिंन्दून् विधाय सकलानपि तान्मुनीशः ।
शुद्धां मतिं हरिपदे हृदि सन्दृढय्य,
काशीं स्वशिष्यसहितः पुनरागतोऽसौ ॥ ७८ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये एकोनविंशः सर्गः

पताका-मुनिराज श्रीस्वामीजी महाराज इस प्रकार म्लेच्छोंके मन्त्रबल से मुसलमान बनाये गये हुये समस्त हिन्दुओंको वैष्णवमन्त्रसे पुनः हिन्दू बनाकर भगवान्के चरणोंमें उनकी उत्तमबुद्धि दृढ कराकर स्वशिष्यों सहित पुनः काशी आ गये ॥७८॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमद्भगवद्रामानन्द-दिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायामेकोनविंशः सर्गः

अथ विंशतिः सर्गः

यतिराज उवास ततः सकलैः सकलैर्निजशिष्यगणैः सुगुणैः ।
अधिकाशि बहिर्न विकासिसरोरुहपादयुगं निदधे च ततः ॥१॥

पताका-इस यात्राके पश्चात् श्रीस्वामीजी अपने समस्त गुणी शिष्योंके सहित काशीमें रहने लगे और तबसे पुनः कभी भी काशीसे बाहर नहीं पधारे ॥१॥

विनता जनता सततं सततां यतिराजमुखेन्दुवचःसुसुधाम् ।
परिपीय निपीय च नेत्रभरैरनिमिषकैश्चरणौ शुशुभे ॥ २ ॥

पताका–वहांकी विनयसम्पन्न जनता निरन्तर श्रीयतिराजके मुखेन्दुसे प्रवाहित वचन–सुधाका पान करके तथा अनिमेष दृष्टिसे उनके चरणोंका दर्शन करके शोभने लगी ॥२॥

सफलं न भवेद्यदि नायमयात्करुणारससाररसारसिकः ।
नरजन्म मदीयमिति स्फुटति स्म नृणां मुखतो मुखतश्च वचः ॥३॥

पताका–वहांके सब लोगोंके मुखसे यही वचन निकलताथा कि यदि करुणारसके साररूप रसाके रसिक श्रीस्वामीजी महाराज यहां न पधारे होते तो हमलोगोंका मनुष्य जन्म सफल न होता ॥३॥

उपदेशरविं प्रकटय्य मुदाऽखिलपापनुदा यतिभूपतिना ।
सुपथे नयतोदितभाग्यकलान्सकलान्नयतो निरणाशि तमः ॥४॥

पताका–अखिल पापोंके नाश करनेवाले, श्रीयतिराज प्रसन्नतासे उपदेशरूप सूर्यको प्रकाशित करके सौभाग्यशील जनोंको सुन्दर मार्गमें ले जाते हुये वेगसे अज्ञानान्धकारको नष्ट कर दिये ॥४॥

अथ केसरभूभुव एयुरिडापरमेशमवेक्षितुमादरतः ।
षडधीतिचणा निपुणाः कवयः स्तुतिमारचयन्निति तेऽथ तदा ॥५॥

पताका–एक दिन पृथ्वीपर पधारे हुये परमेश्वर–श्रीस्वामीजीके दर्शनार्थ आदरपूर्वक छ विद्वान् आये। ये सब कवि थे। अतः ये इस प्रकारसे स्तुति करने लगे ॥५॥

यतिराज यशस्ततिरत्र तव द्विजराजकलाधवला विमला ।
सततं विलसच्छविरातनुते न हि कस्य हृदीश ! रतिं सुनुता ॥६॥

पताका–हे श्रीयतिराज ! हे ईश ! चन्द्रकीकला समान धवल, निर्मल, सर्वप्रशस्त तथा सुन्दरकान्तिवाली आपकी कीर्ति किसके हृदयमें अनुराग नहीं उत्पन्न करती है ? अर्थात् सबके हृदयमें करती है ॥६॥

हरिदश्व इतो हरिदश्व इवाथ शिखीव शिखी यतिराज तथा।
भवदीयसुतेज इतित्रिजगद्भवदीयसुतेज इवास्ति परम् ॥ ७ ॥

पताका—हे यतिराज! जिस प्रकारसे सूर्यकी उपमा केवल सूर्य है तथा जैसे अग्निकी उपमा केवल अग्नि है। उसी प्रकारसे तीनों लोकोंमें प्रख्यात आपके सुन्दर तेजकी उपमा केवल आपका सुन्दर तेज ही है॥

सुधियि त्वयि धीरिव शक्तिरहो विलसत्यथ शक्तिरिवैव सुधीः।
शमिता दमितेव यतिक्षितिभृद्! दमिता शमितेव लसत्यनिशम् ॥८॥

पताका—हे श्रीयतिराज! परम विद्वान् आपमें, बुद्धिके समान शक्ति और शक्तिके समान बुद्धि विलास कर रही है॥ तथा आपमें शमिताके समान दमिता और दमिताके समान शमिता विराज रही है। अर्थात् आपमें बुद्धि, शक्ति, शम और दम सब परिपूर्ण हैं॥८॥

तव तेज इव द्युमणेर्दिवि तेज उदारमनाः परमास्त परम्।
तव भीतिभरैरिव कृष्णपृषत्समजन्यधिकं विजयस्व चिरम् ॥ ९ ॥

पताका—हे उदारमनाः! आपके परमोत्कृष्ट तेजके समान आकाशमें सूर्यका तेज था परन्तु वह सूर्य आपके भयसे काले बिन्दुओंवाला हो गया अतः आपका सर्वथा विजय हो॥९॥

वहसे किमु गर्वमधीरमते रजनीरमण प्रति सुन्दरताम्।
अधिभूमि विराजति योगिवरानन इत्थमुदेति यतेऽत्र रवः ॥१०॥

पताका—हे मन्दमति चन्द्र! पृथ्वीपर श्रीस्वामीजीके सुन्दर मुखके विराजते हुये तू अपनी सुन्दरताके प्रति क्यों गर्व धारण करता है, इस प्रकारसे चारों ओर लोग बोल रहे हैं॥ १० ॥

यतिराज! पदाब्जयुगं यदि ते कृतिभिर्नयनैः परिपीतमथ।
स्वदितं वचनामृतमास्वदितं सुधया किमु वा किमु अब्जकुलैः ॥११॥

पताका—हे श्रीयतिराज! यदि भाग्यशीलजनोंने अपने नेत्रोंसे आपके चरणकमलका दर्शनकर लिया तो उनकेलिये कमल व्यर्थ है। तथा

जिन्होंने परमास्वादयुक्त आपके वाणीरूप अमृतका अस्वादन किया है उनकेलिये अमृत व्यर्थ है ॥११॥

गुरोः सुराणामभवद्य एष सुरेषु नैकोपि विचक्षणोऽस्ति।
मया समं क्वास्तु नरेषु तावत्त्वयि स्थिते तद्व्यगलत्स गर्वः ॥१२॥

पताका–हे यतिराज! देवगुरु वृहस्पतिको जो यह गर्व हो गया था कि मेरे समान जब देवोंमें कोई विद्वान् नहीं है तो मनुष्योंमें तो कहांसे होगा। वह गर्व आपके रहते रहते नष्ट हो गया ॥१२॥

प्रभो जगत्यद्य मुधा सुधाकरोऽभवद्यतस्ते त्रिजगद्विलासिनी।
प्रसादयन्ती हृदयं निरन्तरं चकास्ति कीर्तिर्भवदोषहारिणी ॥१३॥

पताका–हे प्रभो आज संसारमें चन्द्रमा व्यर्थ हो गया। क्योंकि वह तो केवल इस एक लोकमें ही विलास करता है, तथा केवल रात्रिमें ही लोगोंके हृदयको प्रसादित करता है और केवल अन्धकाररूप दोषको हरण करता है परन्तु आपकी कीर्ति तीनों लोकमें विलास करनेवाली रात्रिन्दिवा सबके हृदयोंको प्रसन्न करनेवाली तथा भवके समस्त दोषोंको हरण करनेवाली शोभित हो रही है ॥१३॥

निरस्तदोषो भवतीह मानुषः स एष यं त्वसरसीरुहेण भोः।
कटाक्षयस्याशु यतिक्षितीश्वर कृपालवेनापि सकृत्कृपाकर ॥१४॥

पताका–हे श्रीयतिराज! कृपाके भण्डार! इस जगत्में वह मनुष्य सर्वथा दोष शून्य होजाता है जिसे आप कृपाके एक लेशमात्रसेभी और एक वार भी अपने कटाक्षका पात्र बना लेते हैं ॥१४॥

सर्वेशं परिमन्वते यतिपते विद्वद्वराः सद्वराः,
साक्षाच्छङ्करमेव ते विदधते ये शाङ्कराः किङ्कराः।
तीर्थेशं विजिता जिनाश्च यवनाः कालं करालं तथा,
किं ब्रूमो भगवन् गुरुंच गुरवस्त्वां स्वेच्छया योगिराट् ॥१५॥

पताका—हे परमयोगिराज ! यतिपते ! जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ, महात्मा-पुरुष हैं वह तो आपको श्रीभगवद्रूपसे देखते हैं, जो श्रीशंकरजीके भक्त हैं वह आपको शिवरूप देखते हैं, कितनी ही बार पराजित जैन लोग आपको तीर्थङ्करकी दृष्टिसे देखते हैं, यवन लोग भयङ्कार कालकी दृष्टिसे देखते हैं, हे भगवन् मैं अधिक क्या कहूं, संसारके सभी गुरुजन आपको स्वेच्छापूर्वक गुरुरूप मानते हैं ॥१५॥

सुधा वचस्ते न सुधा सुधा प्रभो निपीय यां मृत्युपथात्पृथजनाः।
अपि प्रपद्यन्त इतोऽनघास्तवाधिधामनीतो सपदीश धामनि ॥१६॥

पताका—हे प्रभो ! हे ईश ! सुधा सुधा नहीं है प्रत्युत आपकी वाणी ही सुधा है। जिसे पानकरके नीचजन भी निष्पाप होकर, उत्कृष्ट तेजको प्राप्त कराये हुये शीघ्र ही आपके धाममें पहुंच जाते हैं ॥१६॥

त्वत्तः प्राप्य पराजयं यतिपते जैना धुनानाः शिरः,
पृष्टाः कैश्चि, दिदं किमस्ति, वदत, ग्रस्ताः परेतैश्च किम्?
तापेनात्र निपीडिता? ज्वरलज्ज्वालालिलीढाश्च वा?
रामानन्दयतिप्रतापतपनोत्तापैरिति प्रोच्यते॥ १७॥

पताका—हे प्रभो ! आपके प्रतापसे जैनियोंकी बुरी दशा हो गई है। वे लोग आपसे पराजित होकर दुःखसे मस्तक हिलाते रहते हैं। यदि कोई पूछता है कि यह तुमको क्या हुआ है—क्या भूत तो नहीं लगा है? अथवा उष्णतातो नहीं पीडित कर रही है? अथवा ज्वरकी ज्वाला तो तुमको नहीं सता रही है? तो वह लोग उत्तर देते हैं कि नहीं—केवल यतिराज श्रीरामानन्दकी प्रताप—ज्वालासे हम लोग दग्ध हैं ॥१७॥

त्वदीयपादाब्जनिषेवणाय विचारयन्नप्ययि कोऽपि जन्तुः।
भवञ्झटित्येव समृद्धिपूर्णस्तरोस्सुराणामपि खेदकोऽभूत् ॥१८॥

पताका—हे प्रभो आपके प्रतापके आगे कल्पवृक्ष निस्तेजस्क हो गया

है। कोईभी प्राणी जब आपके चरणकमलोंकी सेवा करना तो दूर रहा, सेवा करनेका विचार भी करता है तो वह शीघ्र ही सब प्रकारकी समृद्धिसे परिपूर्ण होता हुआ कल्पवृक्षका भी खेदित करता है ॥१८॥

ददाति तद्याचितमेव कल्पतरुर्भवान्सर्वमयाचितं हि ।
कथं परित्यज्य न तं तवैव पादानतेयं जनतास्तु नित्यम् ॥१९॥

पताका—हे महाराज! कल्पवृक्ष तो मांगी हुई वस्तुको ही देता है और आप तो मांगे विना ही देते हैं, अतः लोग उसे छोड़कर क्यों न आपके चरणोंमें ही प्राप्त हों? ॥१९॥

हे वादिनागेन्द्रमदापहार निशम्य कण्ठीरवकण्ठरावम् ।
सहैव ते कीर्तिकलाकलापैर्दिगन्तमीयुस्तव वादिवृन्दाः ॥२०॥

पताका—हे वादिरूप गजके मदको अपहरण करनेवाले प्रभो! सिंह समान आपके कण्ठ—रवको सुनकर आपकी कीर्तिके साथ ही साथ वादी लोग भी दिशाओंके अन्तमें चले गये ॥२०॥

वृथा गतं जन्म नृणां हि तेषां यतिप्रकाण्डात्र न यैस्त्वदीयम् ।
पादाम्बुजं दृष्टमथापि ते वाक्सुधा न पीता वसुधासुधेयम् ॥२१॥

पताका—हे यतिश्रेष्ठ! जिन लोगोंने आपके चरणकमलोंका दर्शन नहीं किया और पृथ्वीका—अमृत आपका वचनामृतपान न किया उनका जन्म वृथा ही गया ॥२१॥

विलोक्य तेऽगाधविबोधितां प्रभो विवेकवारिप्रचयाधिशोधिते ।
उदेति नो चेतसि कस्य धीरियं बृहस्पतिस्ते पुरतो जडायते ॥२२॥

पताका—हे प्रभो! आपके अगाध पाण्डित्यको देखकर विवेकरूप जलसे धोये हुये किसके चित्तमें यह विचार नहीं उत्पन्न होता है कि 'आपके आगे बृहस्पति जड समान प्रतीत होते हैं।' ॥२२॥

कथं वदामः प्रभुतां तव प्रभो पथि श्रुतीनां चरतो यथा, तथा ।
ततः पृथग्भूय यते गतिस्पृशां प्रदीयते नूनमहो परा गतिः ॥२३॥

पताका—हे प्रभो ! आपकी प्रभुताका हम क्या वर्णन करें । आप जिस प्रकारसे वैदिक मार्गमें चलने वालोंको 'परागति' प्रदान करते हैं वैसे ही वैदिक मार्गसे पृथक् प्रतिकूल चलनेवालेको भी 'परागति' देते है। प्रथमको परा गति—श्रेष्ठ गति देते हैं और दूसरेको प्रतिकूल गति अधोगति देते हैं ॥२३॥

सकृन्निपीतस्तव पादपंकजप्रसूरसो येन न सोऽन्यमिच्छति ।
सुधाकरे सत्युडुपेषु कोपि नो दृशौ स्वकीये प्रहितुं हि वाञ्छति ॥

पताका—हे महाराज ! एक वार भी जिसने आपके चरणकमलोंके रसका आस्वादन कर लिया है पुनः वह अन्य रसकी इच्छा नहीं करता । क्यों कि चन्द्रमाके रहते २ ताराओंकी ओर कोई दृष्टिपात करनेकी इच्छा नहीं करता ॥२४॥

सन्त्येव नद्यो बहवोऽत्र नाथ गङ्गैव मूर्धन्यतमाऽविगीता ।
विद्वत्सु तिष्ठत्स्वपि देवदेव त्वमेव चूडामणितां गतोऽसि ॥ २५ ॥

पताका—हे देवोंके भी देव ! जैसे संसारमें नदियां तो बहुत हैं परन्तु गङ्गा ही सर्वश्रेष्ठ है। वैसे ही संसारमें विद्वान् तो अनेक हैं परन्तु सबके चूडामणि तो आप ही हैं ॥२५॥

असारा तारेयं विविधविपदावर्तगहने,
निमग्ना संभग्नाखिलकलकला भावजलधौ ।
नता नीता दुःखं नियतिवलतो हिन्दुजनता,
मते ! श्रेय ! श्रेयः श्रयति तवपादाब्जयुगलम् ॥२६।

पताका—हे यतिराज ! हे श्रेय—आश्रयणीय ! नानाप्रकारके विपत्तिरूआवर्त—भँवरसे गहन, संसारमें डूबी हुई, नष्ट हो गये हैं समस्त सुन्दर कला-

विज्ञान जिसके, ऐसी; तथा पारब्धबलसे दुःखको प्राप्त कराई गई हुई यह हिन्दु-जनता आज कल्याणकारक आपके चरणकमलोंका आश्रयग कर रही है ॥२६॥

काषायवस्त्रपरिधानपराः परेऽपि,
सन्त्येव किन्तु भवदीयपदं कथं ते ।
हे नाथ यान्तु हि कदापि मृगाधिपस्य,
चर्मादधन्मृगपतित्वमुपैति किं श्वा ॥ २७ ॥

पताका-कदाचित् कोई कहे कि संन्यासी तो बहुत हैं उनके ही शरणमें क्यों नहीं लोग जाते, तो हे नाथ ! काषाय वस्त्रके धारण करनेवाले हैं तो अनेक, परन्तु वह आपकी पदवीको कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? क्या सिंहके चर्मको धारण करनेसे कभी श्वा सिंह हो सकता है ? ॥२७॥

यतिप्रकाण्डाङ्घ्रिसरोजरेणोः कस्ते विवेको विलसत्यजस्रम् ।
नयत्यलं पापरतिस्पृशोऽपि जनाँस्त्वदीयं यदियं पदं नु ॥ २८ ॥

पताका-हे यतिप्रकाण्ड ! आपके चरणकमलके रजको यह कैसा अविवेक हो गया है कि पापियोंको भी आपके धाममें पहुंचा देता है ॥

न योगिनामप्यभियाति गोचरं पदद्वयं ते जगदीश्वरस्य यत् ।
तदेव सद्म परिरभ्य तद्रजः कृतागसामुन्नयने कृतस्पृहम् ॥२९॥

पताका-त्रिलोकीनाथ आपके जो चरण योगियोंको भी प्राप्त नहीं होते उन्हीं चरणोंका आश्रय लेकर-आपके चरणकी धूलि, पापियोंके भी उद्धार करनेमें स्पृहा कर रही है ॥ २९ ॥

दयानिधे धेहि दयालवं जनेष्वमीषु वा तिष्ठतु सोऽत्र तिष्ठति ।
महाघसङ्ग्रसितात्मनामपि सुखप्रदा त्वज्जलजाङ्घ्रिधूलिका ॥३०॥

पताका-हे दयानिधे हम दासोंके ऊपर कृपाका लेश भी करिये।

अथवा वह लेश रहे—कोई प्रयोजन नहीं है। बड़े २ पापोंके समूहसे ग्रसित जीवोंको भी सुख देनेवाली आपके चरणकमलोंकी धूरी यहां विराजमान है ॥ ३० ॥

सरस्वतीवल्लभ ! सा निषेवते सरस्वती ते सततं समीपताम् ।
अतश्च सापन्त्यविपद्विषादिता गता दिगन्तेषु यशोलता रुषा ॥३१॥

पताका—हे सरस्वतीवल्लभ ! वह सरस्वती—लोकोत्तरविद्या निरन्तर आपके ही पास रहती है अत एव सौतियाडाह रूप विपत्तिसे विपन्न होकर आपकी कीर्ति क्रोधसे दिशाओंके अन्तमें चली गई है ॥३१॥

पटीयाँस्त्वं स्वामिन्धिषणधिषणाधर्षणविधौ,
तपःस्थाम्ना स्थेमा जगति गरिमा ते विजयते ।
त्रिविष्टप्यां को यो वहतु तुलनां ते गुणलवा-
दपीत्याश्चर्यं किं यदि तिरस्करोरेव सकलान् ॥ ३२ ॥

पताका—हे स्वामिन् बृहस्पतिकी बुद्धिके धर्षण विधिमें आप ही परमपटु हैं। तपोबलसे आपका स्थायी गुरुत्व जगतमें सर्वोत्कृष्टतासे देदीप्यमान है। त्रिलोकीमें कौन ऐसा है जो आपके गुणोंके लवकी भी तुलना कर सके ? अतः हे प्रभो यदि आपने सबका तिरस्कार कर दिया तो इसमें क्या आश्चर्य है ॥३२॥

अहं त्वत्तुल्यः स्यामिति मनसि संकल्प्य स विधु-
र्मुधा दर्पक्ष्वेडं दधदभवदाकृष्णजठरः ।
तदारभ्यैवायं परमरमणीयोऽपि वपुषा,
जनैः सग्लान्युक्तस्त्वमथ भव दोषाकर इति ॥३३॥

पता—हे प्रभो ! चन्द्रमाने एकबार अपने मनमें ऐसा सङ्कल्प करके कि मैं 'यतिराजके समान हूं'—जो व्यर्थ दर्परूप विषका पान किया उसीसे उसका उदर—मध्यभाग काला हो गया। और तबसे आरम्भ करके

उस सुंदर शरीरवाले भी चन्द्रको लोगोंने ग्लानिके साथ कहाकि आजसे तू 'दोषाकर' हो जा ॥३३॥

मोहद्विपालान इव त्वदीये विराजमाने चरणे यतीन्दो !
जपेन किं वा तपसापि किं वा तीर्थप्रयाणैरपि किं नराणाम् ॥३४॥

पताका—हे यतिचन्द्र ! मोहरूप गजके बांधनेकेलिये स्तम्भ समान आपके चरणोंके रहते हुये मनुष्योंको जप, तप और तीर्थयात्रा आदिसे क्या प्रयोजन है ? ॥३४॥

को नाम पापोच्चयशैल एवं त्वद्दर्शनाशन्यवलोकितो यः ।
स्थातुं विधत्तां हृदये समीहां पुनः पुरस्ते च यतिक्षितीश ! ॥३५॥

पताका—हे यतिराज ! कौन ऐसा पापरूप पर्वत है कि जो आपके दर्शनरूप वज्रसे देखा गया भी पुनः आपके सामने स्थित रहनेकी हृदयमें इच्छा करे ? अर्थात् आपके दर्शनमात्रसे ही बड़े २ पाप भाग जाते हैं ॥

तवोपदेशपञ्चास्यो निकामं कामकुञ्जरम् ।
भव्यानां हृदयारण्ये प्रणिहन्ति निरन्तरम् ॥ ३६ ॥

पताका—हे महाराज आपका उपदेशरूप सिंह भव्यपुरुषोंके हृदयरूप जङ्गलमें कामरूप गजका निरन्तर वध कर रहा है ॥३६॥

पराजयं प्राप्य जिनानुगामिनः सहस्रशस्ते यतिराट् तवाग्रतः ।
त्रपावशादेव ततः पटावृतं निजाननं नूनमिमे प्रकुर्वते ॥ ३७ ॥

पताका—हे महाराज । आपके सामने सहस्रोंवार पराजय प्राप्तकरके जैन लोग लज्जावश होकर ही अपने मुखको पटावृत करते हैं। अर्थात् मुखपर वस्त्र रखकर बाहर निकलते या बोलते हैं ॥३७॥

स्तुवत्यथैवं विदुषि श्रितश्रियि महान्निनादो दिवि देवदुन्दुभेः ।
जगत्समस्तं ध्वनयन्नवीशत्समस्तलोकश्रुतियुग्मवर्त्मनि ॥ ३८ ॥

पताका—इस प्रकारसे जब वे विद्वान् स्तुति कर रहे थे उसी समय

आकाशमें देवताओंकी दुन्दभिका स्वर समस्त जगत्को शब्दायमान करता हुआ लोगोंके श्रवणगोचर हुआ ॥३८॥

भुवो बभुर्भूरिसुमाधिवृष्टिभिर्विमानसङ्काकलितं बभौ नभः।
विमानमेकं क्रमशः पुरो यतेरवातरद्धुश्च्यवनाभिभूषितः ॥ ३९ ॥

पताका–पुष्पोंकी अतुल वृषिसे पृथ्वी शोभने लगी। विमानोंकी पङ्क्तियोंसे आकाश शोभित होने लगा। तथा इन्द्र महाराजसे सुशोभित एक विमान क्रमसे श्रीयतिराजके सामने नीचे उतरा ॥३९॥

दृशां सहस्रेण पिबन् सतृष्णजा दृगध्वनि प्राप्तमिमं चिराय सः।
करौ नयन्मूर्धतटं दिवस्पतिर्जगाद मूर्ध्ना विनतेन तत्पुरः ॥४०॥

पताका–पिपासित सहस्र नेत्रोंसे–चिरकालके पश्चात् प्राप्त श्रीयतिराजके दर्शन करते हुये, हाथ जोड़े हुये, मस्तक झुकाये हुये श्रीस्वामीजीके सामने खड़े होकर इन्द्र बोले ॥४०॥

भुवोऽधिभारस्य जिहीर्षया प्रभो अकारि भूमौ चरणार्पणं त्वया।
तदत्र कृत्यं करणीयमत्र ते न चावशिष्टं जगदीश किञ्चन ॥४१॥

पताका–हे प्रभो! पृथ्वीके भारके हरण करनेकी इच्छासे ही आपने यहां पदार्पण किया है। अब यहांपर हे जगदीश! आपकेलिये कोई भी कृत्य अवशिष्ट नहीं रहा ॥४१॥

विशोधितं नाथ बलं च यावनं प्रदर्शितो विक्रम एव पावनः।
न बाधते म्लेच्छगणो जनान् क्वचित्सभीरिदानीं दनुवंशसम्भवः॥४२

पताका–हे नाथ! आपने यवनोंका बल नष्टकर दिया है। अपना पवित्र पराक्रम भी आपने दिखा दिया है। अतः अब वह सभय यवनगण किसीको पीडा नहीं पहुंचा रहे हैं ॥४२॥

तव प्रतापज्वलनेन भस्मतां गता च सा म्लेच्छभुवां हि दुर्मतिः।
प्रवर्तते गोहनने न चापि वा कदापि सा हिन्दुमनो दुनोति नो ॥

पताका—आपके प्रतापरूप अग्निसे म्लेच्छोंकी वह दुष्टमति नष्ट हो गई। अतः अब गौओंके वधमें उनकी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती है तथा हिन्दुओंके हृदयको भी अब वह किसी प्रकार नहीं दुखाती है ॥४३॥

प्रवर्तमानाः किल वैदिकीः क्रिया,
विनिन्दितुं ये वृजिनाधिपा जिनाः।
पुरा भवन्त्यत्र च तेप्युपासते,
नितान्तमात्यन्तिकमौनमीश्वर ॥ ४४ ॥

पताका—हे ईश्वर! प्रथम जो जैनलोग वैदिकी यज्ञादि क्रियाओंकी निन्दा करनेमें तत्पर थे वह भी अब मौनावलम्बन करके बैठ गये ॥४४॥

विगर्हितैस्तैश्च विगर्हणा कृता पुरा च या वेदवचःश्रियां प्रभो!
तदर्थमालुच्य शिरोरुहान्स्वयं दधत्यलं पापविशोधनं च ते ॥ ४५ ॥

पताका—प्रथम उन जैनियोंने जो वेदोंकी निन्दाकी है उसकेनिमित्त वह स्वयं अपने बालोंको नोच २ कर अत्यन्त प्रायश्चित कर रहे हैं ॥

विरक्तमार्गो व्युपरम्य निर्गतः पुरा य आसीदिह वैष्णवेषु सः।
पुनःप्रतिष्ठो विलसन्विशोभते तवोद्यमस्यैव फलं च तद्विभो ॥४६॥

पताका—हे विभो! प्रथम जो विरक्तमार्ग वैष्णवोंमेंसे विरत होकर निकल गया था वह पुनः प्रतिष्ठित होकर सुशोभित हो रहा है। यह भी आपके ही उद्यमका फल है ॥४६॥

पुनर्विलासं दधते महेश्वर विलासिनी भक्तिरुदारकान्तिभृत्।
तवानुकम्पाबलतः समन्ततो मनोभिरामे हृदये कृतात्मनाम् ॥४७॥

पताका—हे महेश्वर! आपकी ही कृपासे महात्मा पुरुषोंके मनोहर हृदयमें परमशोभाशालिनी विलासिनी भक्ति पुनःविलास करने लगी है ॥

गृहे गृहे पावनवेदपारगा विभान्ति मुख्या मुखजा अनिन्दिताः।
सरस्वती चापि मुदं वितन्वती धुनोत्यभव्यां विपदां विभावरीम् ॥

पताका—प्रत्येक ब्राह्मण गृहमें अब निष्कलङ्क वेदपारदृश्वा ब्राह्मण शोभित हो रहे हैं। सरस्वती अर्थात् संस्कृतभाषा भी आनन्दित होकर अपनी विपत्तिमयी रात्रिको दूर कर रही है ॥४८॥

दयालुताऽदर्शि दयानिधे त्वया मपूर्य संप्रार्थनमीदृशां च नः।
वयं गता नाथ कृतार्थतां ततः प्रपूजयामो जगदेकसत्पतिम् ॥४९॥

पताका—हे दयासागर! क्षुद्र हमलोगोंकी प्रार्थनाको पूर्ण करके आपने जो दयालुता प्रकटकी है उससे हमलोग कृतार्थ हो गये हैं। तथा जगत्के एक मात्र सर्वैश्वर्यसम्पन्न स्वामी—आपकी पूजा करते हैं ॥४९॥

विनीतभावेन पुनस्तवाग्रतो निवेदयामोऽद्य यथेच्छमीश्वर!
निशम्य तच्चापि विधीयतां सपद्यलं दयाधीश निरस्ततूस्तक! ॥५०॥

पताका—आज विनीत भावसे अपनी इच्छाके अनुसार पुनः एक प्रार्थना करते हैं। हे दयाधीश! हे सर्वपाप—प्रणाशक! उसे भी श्रवण करके शीघ्र पूर्ण कीजिये ॥५०॥

सनाथयन्स्वर्गभुवां भुवं क्षणं पदार्पणेनाथ वियोगकातरम्।
चिरेण साकेतमवापयोत्सुकं सुखं सुखागार! दयालुत्वादपि ॥५१॥

पताका—हे नाथ! सुखके भण्डार! साकेतलोक चिरकालसे आपके दर्शनकेलिये उत्कण्ठित है, वियोगकातर है। अतः क्षणभर स्वर्गकी भूमिको चरणरजसे पवित्र करते हुये अब साकेतको सुखी बनाइये ॥५१॥

देवराजीयवाग्राजीमेवं राजीवलोचनः।
कर्णजाहमुपाधाय समाधिस्थोऽभवत्क्षणम् ॥ ५२ ॥

पताका—श्री राजीवलोचन श्री यतिराज देवराजकी इस प्रकारकी वाणीको सुनकर क्षणभर समाधिस्थ हो गये ॥५२॥

विकसच्छतपत्राभे नेत्रे उद्घाट्य स प्रभुः।
शिष्यान्सर्वान्समाहूयाददे वाचं सुधामुचम् ॥ ५३ ॥

पताका—खिले हुये कमल समान आंखोंको उघाड़कर श्रीयतिराज अपने सम्पूर्ण शिष्योंको बुलाकर अमृतसमान वचन बोले ॥५३॥

वत्सा ! भूवासकालो मे परिपूर्णः सुखाकरः ।
ततः साकेतलोकस्य यानकालो ह्युपस्थितः ॥ ५४ ॥

पताका—हे वत्स ! अब इस पृथिवी ऊपर मेरा सुखमय निवासकाल पूर्ण हो गया । इसलिये साकेतलोक जानेका समय उपस्थित है ॥५४॥

आयुष्मद्भिश्च युष्माभिः सदा सत्त्वावलम्बिभिः ।
धर्मकल्पतरुः सेव्यः सदानन्दाप्तये मुदा ॥ ५५ ॥

पताका—तुम सब लोग सदा सत्त्वका अवलम्बन करके सत्य आनन्दकी प्राप्तिकेलिये धर्मरूप कल्पवृक्षका प्रेमसे सेवन करना ॥५५॥

भक्तिकल्पलता येयं महायासेन रोपिता ।
श्रद्धाजलप्रदानेन रक्षणीया मुहुर्मुहुः ॥ ५६ ॥

पताका—महान् परिश्रमसे जो यह भक्तिरूपा कल्पलता रोपी गई है । उसकी श्रद्धारूप जल प्रदान करके पुनः २ रक्षा करते रहना ॥५६॥

भाविको विभवो भव्याः शयानोऽग्रे शयानकः ।
इति मत्वा न गन्तव्यं समीपे तस्य कर्हिचित् ॥ ५७ ॥

पताका—हे भव्य शिष्यो ! सांसारिक वैभवको आगे पड़े हुये सर्प समान मानकर कभी उसके पास नहीं जाना ॥५७॥

संक्रान्तकौमुदीकान्तकान्तकान्तिमहीयसी ।
कामिनी यामिनी धर्मपद्मसद्म न संक्रमेत् ॥ ५८ ॥

पताका—प्रस्तुत चन्द्रके समान सुन्दर कान्तिसे शोभित कामिनी—स्त्रीरूपा यामिनी—रात्रि धर्मरूपकमल समूहमें प्रवेश न करे अर्थात् कभी भी स्त्रीसङ्गमें मत पड़ना ॥५८॥

शशिलीलेन शीलेन शीलनीयमिदं जगत् ।
शीलशैलं समारोहन् जनो वन्द्यः शशी यथा ॥ ५९ ॥

पताका—चन्द्रसमान—अर्थात् शीतल—सुन्दर शीलसे इस जगत्के साथ व्यवहार करना। शीलरूप शैलपर चढ़ता हुआ पुरुष वन्दनीय होता है। जैसे कि चन्द्रमा ॥५९॥

दिष्ट्या दृष्ट्या न कुत्रापि द्रष्टव्याः क्रूरया क्वचित् ।
भ्रान्त्यापि प्राणिनः केऽपि धर्ममूलमिदं परम् ॥ ६० ॥

पताका—हे शिष्यो ! कभी भी, किसी दशामें भी क्रूरदृष्टिसे किसी प्राणीको नहीं देखना। यह धर्मका प्रधान मूल है ॥६०॥

कुक्षिप्लुक्षिपरिप्लुष्टानपुष्टान्दीनमानवान् ।
आयातानाश्रमे वोऽत्र प्रत्याख्यात न जातुचित् ॥ ६१ ॥

पताका—जठरानलसे दग्ध, दुर्बल, दीन मनुष्योंका—जो कि तुम्हारे आश्रममें आवें कभी भी प्रत्याख्यान—तिरस्कार नहीं करना ॥६१॥

अयं लघुर्गुरुश्चायमिति मा भूद्भिदा क्वचित् ।
प्रभुभक्तेषु युष्माकं धर्मध्यानस्पृशां पुनः ॥ ६२ ॥

पताका—धर्मचिन्तन करनेवाले तुमलोग प्रभुके भक्तोंमें कभी यह भेद नहीं करना कि यह लघु है और यह गुरु ॥६२॥

भक्तापचारमासोढुं दयालुरपि स प्रभुः ।
न शक्तस्तेन युष्माभिः कर्तव्यो न च स क्वचित् ॥६३॥

पताका—प्रभु दयालु हैं, तथापि अपने भक्तोंकी अवहेलनाको नहीं सह सकते। अतः तुम लोग कभी भी प्रभुभक्तापचार नहीं करना ॥६३॥

वर्णाश्रमसदाचारो यथाशास्त्रं यथाकुलम् ।
भरणीयः सदा किन्तु तत्र सक्तिर्न पुष्यताम् ॥ ६४ ॥

पताका—चारों वर्ण और चारों आश्रमके जो सदाचार हैं उन्हें शास्त्रोंकी

मर्यादाके अनुकूल तथा कुलकी मर्यादाके अनुकूल पालन करना चाहिये परन्तु उसमें आसक्ति न होनी चाहिये ॥ ६४ ॥

शक्त्या सक्तिः समासाद्या रामतामरसक्रमे ।
बन्धच्छेदाय सर्वेषां सैव प्रभवतीह यत् ॥ ६५ ॥

पताका—श्रीरामजीके चरणकमलोंमें शक्त्यनुसार आसक्ति सम्पादन करनी चाहिये । क्योंकि संसारमें सबके बन्धनोंको छेदन करनेमें केवल श्रीरामभक्ति ही समर्थ है ॥ ६५ ॥

राम एव सदोपास्यो रमया सह सर्वदः ।
तिरस्कारो न कर्तव्यो देवान्तर इह क्वचित् ॥ ६६ ॥

पताका—श्रीमहाराणी जानकी सहित—सर्वफलप्रद श्रीरामजी महाराज ही उपासनीय हैं । परन्तु अन्यदेवोंमें तिरस्कार नहीं करना चाहिये ॥६६॥

वीक्षिता दीक्षिताः कार्या अधिकारिण ऐश्वराः ।
नाधिकारिगतो मन्त्रो भस्मन्याज्यमिवास्तु वै ॥ ६७ ॥

पताका-जो अच्छे प्रकारसे परिचित हों, अधिकारी हों, ईश्वरभक्त हों, उन्हें ही श्रीराममन्त्रकी दीक्षा देनी चाहिये । क्योंकि अनधिकारीमें गया हुआ मन्त्र भस्ममें घी डालनेके समान व्यर्थ है ॥ ६७ ॥

उप्तं तद्धृदयक्षेत्रे धर्मबीजं पुरा च यत् ।
देशनासुधयासिच्य महर्द्धि विभुराकृत ॥ ६८ ॥

पताका—श्रीस्वामीजी महाराजने अपने इन शिष्योंके हृदयरूप क्षेत्रमें जो धर्मरूप बीज पूर्वमें वपन किया था उसे इस प्रकार उपदेशरूपा सुधासे सींचकर अतीव उत्कृष्ट बना दिया ॥ ६८ ॥

पुनः प्रोचे विचार्य्यार्य्यं विचारं स बुधार्यमा ।
सम्प्रदायपरित्राणं कैरुपायैर्भविष्यति ॥ ६९ ॥

पताका—विद्वानोंमें सूर्य्य श्रीस्वामीजी महाराज सम्प्रदायकी रक्षा किन उपायोंसे होगी यह सुन्दर विचार करके पुनः बोले ॥ ६९ ॥

काश्यामास्तामनन्तोऽयं वङ्गेषु च सुखो व्रजेत् ।
सुरः पञ्चनदे गच्छेद्यातु भावश्च दक्षिणे ॥ ७० ॥

पताका—श्रीअनन्तानन्द काशीमें ही रहें । श्रीसुखानन्द बङ्गालमें रहें । श्रीसुरसुरानन्द पञ्जाबमें और श्रीभावानन्द दक्षिणमें जावें ॥ ७० ॥

उत्कलेषु नरस्तिष्ठेत्काश्मीरं गालवो व्रजेत् ।
योगः पीपां समादाय गुर्जरेषु व्रजेत्सुधीः ॥ ७१ ॥

पताका—श्रीनरहर्य्यानन्द उत्कल—उड़ीसामें रहें और श्रीगालवानन्द काश्मीर जावें । तथा पीपाजीको लेकर श्रीयोगानन्द गुर्जरदेशमें जावें ॥

अन्ये तिष्ठेयुरत्रैव यथाकालं च सर्वतः ।
मर्यादां वैष्णवीं नित्यं बोधयन्तु यथाविधि ॥ ७२ ॥

पताका—अन्य अर्थात् धनेश, कबिर, सेन और रमादास प्रभृति यहां ही रहें । तथा देशकालके अनुसार यथाविधि लोगोंको वैष्णवी मर्यादाका बोध करावें ॥ ७२ ॥

निशम्य वाचं यतिराजनिर्मितां मनोऽव्यथानिर्मितिकौशलाञ्चिताम् ।
यतिक्षितीशस्य च शिष्यसत्कुलं समाकुलं खेदकुलं जगाम तत् ॥७३॥

पताका—हृदयको पीडित करनेवाले श्रीयतिराजके इस वचनको सुनकर उनके शिष्ट शिष्योंको अत्यन्त खेद हुआ ॥ ७३ ॥

यदीयपादाब्जपरागसेवनाद्धुता दुरन्ता अपि कश्मलोच्चयाः ।
कथं नु तस्यैव गुरोर्वियोगजं सहन्तु ते हन्त महाविपज्ज्वरम् ॥७४॥

पताका—जिनके चरणकमलोंके परागके सेवन करनेसे दुरन्त पाप भी नष्ट हो जाते हैं उन्हीं श्रीगुरुमहाराजके वियोगसे जायमान दुःखको वे कैसे सहें ? ॥ ७४ ॥

विलोक्य तेषां सुदृशां दृशौ यतिर्जलाविले हास्यमुपास्य मृद्वयम् ।
करेण पस्पर्श शिरांसि सत्कृपः क्रमेण शोकापनयं च निर्ममौ ॥७५॥

पताका–श्रीयतिराजने अपने शिष्योंको रोते हुये देखकर मृदु हास्य करके कृपासहित उनके मस्तकको स्वहस्त कमलोंसे स्पर्श किया और क्रमसे उनके शोकको दूर कर दिया ॥ ७५ ॥

निरस्तशोकाधिविलासकास्तके यतीश्वरस्याङ्घ्रिसरोरुहद्वये ।
प्रणम्य साष्टाङ्गमयाचिषुर्दयां तपः प्रभावादतितिग्मतेजसः ॥७६॥

पताका–शोकके दूर हो जानेपर स्वामीजीके तपः–भगवद्भजनके प्रभावसे अत्यन्त तेजस्वी वे सब शिष्य श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करके दयाकी याचना करने लगे ॥ ७६ ॥

कृपाकटाक्षेण निरीक्ष्य सर्वथा स्थितां समक्षं निजशिष्यमण्डलीम् ।
तथागताञ्ज्ञानपदांश्च सम्पदां पदं शिवानां स उपादिशच्छिवम् ॥७७॥

पताका–समस्त कल्याण–सम्पद् के स्थानभूत श्रीस्वामीजीने अपने सामने अपने शिष्यों तथा काशीकी जनताको उपस्थित देखकर कल्याणोपदेश करने लगे ॥ ७७ ॥

सत्यं ब्रूत दयां सदा हृदि निधत्ताचारचर्याङ्गणे,
कामं भावविहारमारचयत श्रद्धां गुरौ श्रीहरौ ।
बध्नीत प्रतिकूलमाचरत मा श्रौताध्वगानां पथो,
धर्मे स्थास्नव आघतो भवत भो यूयं चिरं त्रस्नवः ॥७८॥

पताका–हे सर्वजनो ! सदा सत्य बोलो, हृदयमें दया रखो, आचारका पालन करो, गुरु और भगवान्में श्रद्धा रखो, श्रौतमार्गके अनुयायियोंकी पद्धतिसे विरुद्ध आचरण मत करो, धर्ममें स्थिर रहो और पापसे सदा डरते रहो ॥ ७८ ॥

एवं जनान्समुपदिश्य सुधर्ममार्गं,
जाते नभःस्पृशि नृणामतिहर्षनादे ।
तन्वत्सु मोदममरेषु च देवदेवो,
यातो विमानमधिरुह्य शिवं स्वधाम ॥ ७९ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारिश्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमज्जगद्गुरुरामानन्द-
दिग्विजये विंशतिः सर्गः

पताका- इसीके भी देव श्रीयतिराजने इस प्रकारसे लोगोंको धर्ममा-र्गका उपदेश करके, गगनचुम्बी लोगोंके हर्षनादमें तथा देवताओंके हर्षके बीचमें, विमानपर चढ़कर अपने कल्याणस्वरूप धामको पधारे ॥ ७९ ॥

इतिश्रीअयोध्यावास्तव्य-ब्रह्मचारि-श्रीभगवद्दास-विरचिते श्रीमज्जगद्गुरुरामानन्द-
दिग्विजये पताकाख्यव्याख्यायां विंशतिः सर्गः

"यः साकेतपुरीस्थसुन्दरबृहत्स्थानाधिपस्यादृतः,
शिष्यः शास्त्रपथानुधावनपरः शास्त्रेष्वधीती महान् ।
वाचामाचमतां लयं लयमगाद्यस्य द्विषां द्वेषधीः,
स्थेयात्तस्य कवेस्त्रिवेदभगवद्दासस्य वाङ्निर्झरः ॥"

अर्थ-जो अयोध्यापुरीके बड़ास्थानके महान्त पूज्यपाद परमाचार्य श्री १०८ स्वामीराममनोहरप्रसादजी महाराजके शिष्य हैं, जो शास्त्रोक्त मार्गपर चलनेवाले तथा शास्त्रोंके अध्ययन करनेवाले हैं, तथा जिनकी वाणीको सुनकर विद्वेषियोंकी द्वेषबुद्धि नष्ट हो जाती है, उन्हीं ब्रह्मचारी श्री भगवद्दास त्रिवेदीका यह वाङ्निर्झर स्थिरताको प्राप्त हो ॥

॥ नमः श्रीरामाय ॥

श्री रामानन्ददिग्विजयके श्लोकोंका शुद्धिपत्र

पाठकोंसे निवेदन है कि इस शुद्धिपत्रके अनुसार प्रथम श्लोकोंको सुधार लें। पश्चात् अध्ययन करें।

सर्गः	श्लोकः	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	७५	–रीशा	–राशा
,,	७६	परिसेविनः	परिषेविणः
,,	७९	–ने वतरिष्यामि	–नेऽवतरिष्यामि
,,	८०	–कृशी	–कुशी
२	४	प्राग–	प्रयाग–
,,	२०	–समन्वित–	–समर्चित–
,,	२५	–प्रसतिं	–प्रसत्तिं
,,	२८	–शुम–	–शुभ–
,,	३२	–त्रेषुः	–त्रेषु
,,	,,	–नित्यंः	–नित्यं
,,	४२	–वेण (टीकायामपि)	–वेन
,,	४४	–र्य्यमेवं	–र्य्यंचैवं
३	८	–त्रयै–	–त्र्यै–
,,	१५	–जस्ते	–जस्स
४	६	वरिणा	वैरिणी
,,	२२	मूछ्ना–	मूर्छना–
,,	३०	नः सदे–	ते सदे–
,,	,,	ते परं	नः परं
,,	३७	प्रत्न–	नूत्न–
,,	४०	सन्दधे	सन्दधुः
५	६	–नीयकीतिः	नीयकीर्तिः
,,	१९	–सुकीतिः	सुकीर्तिः
६	३	विजयीत	विजयेत
,,	६	भूसंषया–	संभूषया–
,,	७	क्रीडनके–	क्रीडनै–

सर्गः	श्लोकः	अशुद्धम्	शुद्धम्
,,	१४	मौहूतिकैः	मौहूर्तिकैः
,,	३६	तरणिवि–	तरणिर्वि–
,,	४३	धर्मज्ञा	धर्मज्ञाः
,,	६६	धौरेया	धौरेयी
,,	७२	क्रशका–	क्लेशका–
,,	८१	पुष्पिता हरत	पुष्पिताऽहरत
,,	८२	गुरुमः	गुरुः
७	६	वर्हिषम्	वर्हिषम्
,,	१२	सङ्कृता–	स कृता–
,,	२१	सूत–	सुत–
,,	,,	चैदितौ	चोदितौ
,,	३६	गुरुते	गुरु ते
,,	५०	भलज–	भवज–
८	३	–र्त्रचः सुकृ–	–वर्चःसुकृ–
,,	६	गमदयं	गमददो
,,	८	गिात	गिति
,,	१७	क्षमाप्य	विमाप्य
,,	२५	–ध्वानैविद–	–ध्वानैर्विद–
,,	३०	निराशी	निराशीः
,,	३२	ह्युपवृंह–	ह्युपवृंह–
,,	३४	नतशिरा	नतशिराः
९	१०	–ऽपि ग–	–ऽपि च ग–
१०	४४	–न मां	नु मां
११	१७	विश्वसिति:	विश्वसतिः
,,	२४	–वरा	–वराः
,,	३७	–विल क–	–विलयं क–
१२	५३	पार्श्वो	पार्श्वौ
१४	२७	–ताया	ताथाः
,,	४२	दशेयंहत–	दशेयं हत–
,,	४६	–द्रधूतम–	द्रघूतम–

सर्गः	श्लोकः	अशुद्धम्	शुद्धम्
,,	५३	–जनास्त–	–जनाँस्त–
१५	११	–घोष बो–	–घोषवो–
,,	१५	–मूद्धन्या–	–मूर्द्धन्या–
,,	२८	कण्ठ गता	कण्ठगता
,,	३१	शरणे षि	शरणैषि–
,,	३८	व्याधिं	व्याधिं
,,	४४	–णाऽघाषि	–णाऽघोषि
,,	५२	कर्णाकाण	कर्णाकर्णि
,,	५६	यामिनां	यमिनां
,,	८५	क्षीरस्याति	क्षीरस्यति
,,	९९	द्रष्टुंधु–	द्रष्टुं धु–
१६	५१	–हमयुस्पैमि	–हमस्म्युपैमि
,,	६०	नाटयन्तं	नाट्यन्तं
,,	६२	प्रत्यथा–	प्राथया–
१७	१	नमो र–	नभो र–
,,	३३	भाण्ड श–	भाण्डश–
,,	३७	शिष्ममण्ड–	शिष्यमण्ड–
,,	५८	भक्तिग–	भक्तग–
,,	८७	–दिकाम्	–दिकाः
,,	,,	नानादस्थां	नानात्रस्थाः
,,	९८	स्वभात्रयो–	स्त्रभावायो–
,,	१००	–शक्तिवि–	–शक्तिर्वि–
,,	११४	धारणादि क्रियां	धारणादिक्रियां
,,	११६	प्रवते	प्रवन्नृते
,,	१२०	वहि	वहिः
,,	१२८	–शुद्धिविवा–	–शुद्धिर्विवा–
,,	१४८	रागद्द्वेषा–	रागद्वेषा–
,,	,,	–कालानाभि–	–कालानभि–
१८	१६	–मुपाधुरु–	–मुपाधुरु–
,,	२९	विभुविभु–	विभुर्विभु–

सर्गः	श्लोकः	अशुद्धम्	शुद्धम्
,,	२५	वचः सहस्र	वचःसहस्रं
,,	३६	त्वदायप-	त्वदीयप-
,,	४७	निर्वर्तितं । वो-	निर्वर्तितावों-
,,	५०	-सांधितो-	-साधितो-
,,	५५	वच सुधां	वचःसुधां
,,	५६	आनन्दमा-	अमन्दमा-
,,	६८	सर्व श्रुतीनां	सर्वश्रुतीनां
,,	,,	सुस्त्रकरं	सुखकरं
१९	२०	-कोद्घोष-	-कोद्घोष-
,,	२५	विंविच्छुदुं:	विचिच्छिदुः
,,	३४	यावनकुलं	म्लेच्छकुलं
,,	३७	तन्मध्ये	तन्मध्ये
,,	,,	काटिभा-	कोटिभा-
,,	४१	भूदृष्टि-	भूदृष्टि-
,,	७८	-न्त्रवलतो	-न्त्रवलतो
२०	१६	-पृथजनाः	-पृथग्जनाः
,,	१८	त्वदीयापा-	त्वदीयपा-
,,	२०	-लापैदि-	-लापैर्दि-
,,	२६	-मते	यते
,,	२९	सद्य	सद्यः
,,	४८	विभावराम्	विभावरीम्
,,	४९	कतार्थतां	कृतार्थतां

अभी कितनी ही भूलें रह गई हैं। मैं नेत्ररोगसे पीडित होनेके कारण ग्रन्थकी पूर्ण पुनरावृत्ति न कर सका। अतः सुज्ञ जन अवशिष्ट त्रुटियोंको सुधारकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

विदुषां वशंवद
भगवद्दास ब्रह्मचारी